समरहिल

ए. एस. नील

हिन्दी अनुवाद

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

एकलव्य का प्रकाशन

(1960)

समरहिल

Summerhill

लेखक : ए. एस. नील

हिन्दी अनुवाद : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

कार्टून : हैरी हैरिंग

ए. एस. नील की बेटी ज़ोई रेडहेड से प्राप्त अनुमति के अन्तर्गत प्रकाशित
अगस्त 2004 / 2000 प्रतियाँ
80 gsm मेपलिथो एवं 300 gsm आर्टकार्ड (कवर) पर प्रकाशित
मूल्य : 110.00 रुपए
ISBN 81-87171-60-x

प्रकाशक : एकलव्य
ई-7/453 एच.आई.जी., अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462016 म.प्र.
फोन : (0755) 246 3380
फैक्स : (0755) 246 1703
ई मेल : eklavyamp@mantrafreenet.com

मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, भोपाल, म.प्र. फोन 255 0291, 255 5442

हैरल्ड हार्ट के प्रति

आशा है आपको भी इस पुस्तक के लिए उतना ही श्रेय या अपयश मिलेगा, जितना मुझे। आप इस पुस्तक के प्रकाशक मात्र नहीं रहे, बल्कि आप एक ऐसे व्यक्ति रहे जिसने समरहिल के प्रयोग में सदा विश्वास किया है।

आपके धीरज ने मुझे हमेशा आश्चर्यचकित किया। मेरी पिछली चारों पुस्तकों में से हज़ारों शब्दों को छाँटना, उन्हें सम्पादित कर नई व ताज़ा सामग्री के साथ पिरोना आसान काम नहीं था।

आप जब-जब समरहिल आए आपने यही जताया कि आपका मुख्य सरोकार यही है कि आप अमरीका को उस काम के बारे में बताना चाहते हैं जो आपने देखा, पसन्द किया और जिसमें आपकी आस्था बनी। ऐसा करते समय आप समरहिल का ही हिस्सा थे। आपने सभी आधारभूत बातों पर गौर किया और जो महत्वपूर्ण नहीं थीं उन्हें नज़रअन्दाज़ किया। उदाहरण के लिए हमारे प्रसन्नचित्त बच्चों की अस्तव्यस्तता।

मैं आपको समरहिल का मानद छात्र घोषित करता हूँ।

ए. एस. नील
समरहिल, लाइस्टन, सफोल्क, इंग्लैण्ड

हैरल्ड हार्ट : समरहिल के पहले संस्करण के प्रकाशक

प्रकाशक की ओर से.....

यह किताब जितनी बच्चों के बारे में है उतनी ही बड़ों के बारे में भी है। यह किसी पाठ्यक्रम की शिक्षा के बारे में न होकर एक अलग ढंग का अभिभावक बनने की कहानी है।

कई वर्षों तक सामान्य स्कूलों में पढ़ाने के बाद ए. एस. नील और उनकी पहली पत्नी फ्रॉ न्यूस्टैटर ने एक ऐसा स्कूल बनाने का फैसला किया जो मनोविश्लेषण की खोजों को मनुष्य की एक पीढ़ी को पालने-पोसने में लागू करके दिखा सके। एक ऐसा स्कूल जिसमें बच्चे जैसे हैं वैसे ही होकर जी सकें। 1921 में जर्मनी में शुरू होने के बाद समरहिल नाम का यह स्कूल अंततः लन्दन के पास एक गाँव में सन् 1923 में स्थापित हुआ और आज तक बना हुआ है। इसमें 5 से 15 वर्ष की आयु के लगभग 40-50 बच्चे हर साल रहते थे। इन दिनों इनकी संख्या 60-70 के करीब रहती है।

यह पूरी तरह से आवासी स्कूल रहा है औऱ इसका मूल मंत्र है - स्वतंत्रता। स्वतंत्रता पर दो तरह के अंकुश भी हैं - एक, बच्चों की सुरक्षा के लिए ज़रूरी समझे गए नियम और दो, स्कूल की आमसभा द्वारा तय किए गए नियम। स्कूल में लागू अनुशासन वे हैं जो सब मिलकर बनाते हैं, मिलकर लागू करते हैं, चाहें तो उन्हें बदलते भी हैं।

समरहिल स्कूल के चालीस वर्षों के अनुभव को नील ने इस किताब में प्रस्तुत किया है। स्वशासन, शिष्टाचार, सहशिक्षा, काम, खेल, नाटक, संगीत, धर्म, सेक्स, भय, हीनभावना, कल्पनालोक, झूठ, आज्ञापालन, सज़ा, टट्टी-पेशाब का प्रशिक्षण, खिलौने, पैसा, गालियाँ बकना, यौन निर्देश, समलैंगिकता, हस्तमैथुन, चोरी ऐसी अनेकों बातें हैं जो बच्चों के अभिभावकों को दिन-रात परेशान रखती हैं। इस पुस्तक के माध्यम से नील इन सबके सम्बंध में अपना नज़रिया और बच्चों के साथ हुए वास्तविक अनुभवों को तमाम अभिभावकों के सामने रखते हैं।

समरहिल से निकले हुए आत्मसंचालित, स्वनिर्देशित बच्चों के आगे के जीवन का ब्यौरा देते हुए नील यह प्रमाणित करते हैं कि आज़ादी और स्वनिर्देशन से किसी मनुष्य का कभी नुकसान नहीं हुआ है।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषक सिगमंड फ्रॉयड के सिद्धान्तों से प्रभावित होते हुए नील बार-बार यह व्याख्या करते हैं कि बचपन की स्वाभाविक रुचियों के लगातार दमन के कारण मनुष्य में कुंठाएँ और नफरतें बसती हैं, जो संसार की अमानवीयता और क्रूरता का कारण बनती हैं। हालाँकि आज मनोविज्ञान की दुनिया में फ्रॉयड की इन प्रारम्भिक मान्यताओं से आगे बढ़ते हुए यह स्वीकार किया जाता है कि सामाजिक-राजनैतिक प्रक्रियाओं के विकास का अपना सिलसिला भी होता है और बाहर की यह सारी दुनिया मनुष्य के अन्दर की इच्छाओं, खासकर यौन इच्छाओं, के दमन का प्रतिफल मात्र नहीं है; फिर भी फ्रॉयड की कई धारणाएँ आज भी मनोविज्ञान में मूल्यवान मानी जाती हैं। जैसे, अचेतन विचारों व भावों का मनुष्य के काम पर असर पड़ता है, बचपन के अनुभवों का आगे जाकर व्यक्तित्व के निर्माण में असर पड़ता है, बचपन की यौन इच्छाओं से चिन्ताएँ और असुरक्षा के भाव पैदा होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में समरहिल का यह दस्तावेज़ अपना महत्व व आकर्षण बनाए रखता है। 1960 में इस किताब के संस्करण के लिए एरिक फ्रॉम द्वारा लिखा आमुख, यहाँ दिया जा रहा है। यह समरहिल के मौलिक महत्व को विस्तार से प्रस्तुत करता है।

समरहिल स्कूल के दर्शन और व्यवहार ने यूरोप और अमेरिका में कई मिलते जुलते प्रयोगों को प्रेरित किया। 1973 में अपनी मृत्यु तक नील इस स्कूल को संचालित करते रहे। उनके बाद उनकी दूसरी पत्नी एना ने 1985 तक इसका प्रभार सम्भाला। 1985 से वर्तमान तक उनकी बेटी ज़ोई इस स्कूल का संचालन कर रही हैं। अपनी शुरुआत से अब तक यह स्कूल मूल रूप से अपरिवर्तित रहा है। नील द्वारा लिखी यह किताब *समरहिल* संयुक्त राज्य अमेरिका के विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान और शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल की जाती रही। इस किताब के असर से कई अभिभावक, इंग्लैण्ड आकर अपने बच्चों को स्कूल में दाखिला दिलाते रहे। वर्तमान में स्कूल के 65-70 बच्चे इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, ताइवान, कोरिया, ब्राज़ील, स्पेन, अमेरिका, इण्डोनेशिया, फ्रांस आदि देशों के रहे हैं। इनके अलावा यहाँ स्टाफ के औसतन 12 सदस्य रहते हैं।

समरहिल स्कूल में छात्रों की संख्या बहुत ज़्यादा कभी नहीं रही और छात्रों को आकर्षित करने व अपने संसाधनों को मज़बूत करने के प्रयास स्कूल को अभी भी करते रहने पड़ते हैं। कई बार ब्रिटिश सरकार ने यह आकलन प्रस्तुत किया कि स्कूल में छात्रों की उपलब्धि का स्तर संतोषजनक नहीं है और स्कूल को बंद करने की कोशिश की। पर समरहिल उन सब बाधाओं का सामना करते हुए 81 सालों से विद्यमान है। यह समाज की समस्याओं का समाधान तो नहीं पेश करता है, पर शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों के तहत् एक मूल्यवान अनुसंधान जारी रखे हुए है।

शिक्षा और समाज के सही स्वरूप की तलाश में संघर्षरत लोगों को ऐसे कई अनुभवों से सीखकर अपने रास्ते चुनने हैं। जिस समय समरहिल स्कूल विकसित

हो रहा था, सोवियत रूस में एक नए समाज की शिक्षा के लिए प्रयोग चल रहे थे। भारत में उस दौर में गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, कृष्णमूर्ति, गीजूभाई ने प्रयोग किए। बच्चों के लालन-पालन और विकास के बारे में जहाँ इन सभी प्रयासों में कुछ मूलभूत समानताएँ थीं, वहीं अन्तर भी थे। बच्चों की निहित अच्छाई और ईमानदारी में विश्वास, बौद्धिक के साथ-साथ भावनात्मक विकास पर ज़ोर, स्वप्रेरणा, स्वतंत्रता, स्वअनुशासन व सामूहिक अनुशासन पर ज़ोर, अपनी रचनात्मकता और ऊर्जा को निखारते हुए कुछ बनने और समाज को योगदान देने पर ज़ोर - इसके पुट सभी के प्रयासों में दिखते हैं। पर अनुशासन के स्वरूप में अंतर है; विचारधाराओं को दिए जाने वाले महत्व में अंतर है; बचपन की व्याख्या में भी अंतर है। ऐसे कई प्रयोगों की विवेचना हमें करनी है। हम यह विश्वास करते हैं कि समरहिल का हिन्दी में प्रकाशन इस विवेचना को आगे बढ़ाएगा। समरहिल स्कूल के साहसी अनुभवों का यह ईमानदार दस्तावेज़ हमें बार-बार अपने बचपन की ओर लौटाएगा और हमारे भावी कदमों को प्रभावित किए बगैर नहीं रहेगा।

एकलव्य समूह

विषयवस्तु

एरिक फ्रॉम का प्राक्कथन *viii*

समरहिल का विचार / 1
बच्चों की परवरिश / 76
सेक्स / 165
धर्म और नैतिकता / 194
बच्चों की समस्याएँ / 217
अभिभावकों की समस्याएँ / 242
सवाल-जवाब / 277

एरिक फ्रॉम का प्राक्कथन

अठारहवीं शताब्दी के दौरान प्रगतिशील विचारकों ने आज़ादी, लोकतंत्र तथा आत्मनिर्णय के विचार उद्घोषित किए और बीसवीं शताब्दी की पूर्वा में ये सभी विचार शिक्षा के क्षेत्र में फलते नज़र आने लगे। आत्मनिर्णय या स्वाधीनता का आधारभूत सिद्धान्त था सत्ता के बदले आज़ादी। बच्चे को दबाव के बिना उसकी जिज्ञासा और स्वतःस्फूर्त आवश्यकताओं को सम्बोधित कर पढ़ाना और सहज ही आसपास की दुनिया में उसकी रुचि जगा देना। इस दृष्टिकोण ने प्रगतिशील शिक्षा की शुरुआत की। यह मानव विकास के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ।

पर इस नई विधि के नतीजे अक्सर निराशाजनक थे। हाल में प्रगतिशील शिक्षा के प्रति विरोध बढ़ता गया है। आज, कई लोग मानने लगे हैं कि यह सिद्धान्त ही त्रुटिपूर्ण है और उसे रद्दी की टोकरी में फेंक देना चाहिए। आज अधिक से अधिक अनुशासन की दिशा में एक मज़बूत आन्दोलन उभरता नज़र आने लगा है। यही नहीं, पब्लिक स्कूलों के शिक्षकों को शारीरिक दण्ड की अनुमति हो, इसका अभियान भी सिर उठा रहा है।

इस प्रतिक्रिया में जो घटक सबसे मज़बूत है, वह शायद सोवियत यूनियन में शिक्षा विधि की सफलता है। वहाँ पुराने सत्तावादी तौर-तरीकों का पुरज़ोर उपयोग किया जाता है। जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है, इन तौर-तरीकों के परिणाम हमें भी यही संकेत देते लगते हैं कि बच्चे की आज़ादी को भूलकर अनुशासन की ओर लौटो।

क्या बल प्रयोग के बिना शिक्षा का विचार ही गलत है? विचार गलत न भी हो, तो भी हमारे पास उसकी तुलनात्मक असफलता का क्या स्पष्टीकरण है?

मेरा मानना है कि बच्चे की स्वतंत्रता का विचार गलत नहीं है। पर आज़ादी का विचार लगभग हमेशा ही विकृत किया गया है। बात को साफ-साफ समझने के लिए हमें स्वतंत्रता की प्रकृति को समझना होगा। और यह समझने के लिए हमें प्रत्यक्ष सत्ता और अनाम या अज्ञात सत्ता में अंतर करना होगा। प्रत्यक्ष सत्ता, सीधे और साफ-साफ आरोपित की जाती है। सत्तावान व्यक्ति अपने अधीनस्थ व्यक्ति को साफ कहता है, तुम्हें यह करना ही है। अगर तुम यह नहीं करोगे तो तुम पर कुछ दण्ड लगाए जाएँगे। पर अज्ञात सत्ता यह बात छुपाती है कि दबाव का प्रयोग किया जा रहा है। अज्ञात सत्ता यह ढोंग करती है कि सत्ता है ही नहीं। बल्कि सब

कुछ व्यक्ति की सहमति से किया जा रहा है। पुराने समय का शिक्षक जॉनी से कहता था, तुम्हें यह करना ही है। नहीं करोगे तो मैं सज़ा दूँगा। आज का शिक्षक कहता है, मुझे विश्वास है कि तुम इसे करना पसन्द करोगे। यहाँ बात नहीं मानने की सज़ा, शारीरिक दण्ड नहीं होता बल्कि माँ-बाप के पीड़ित चेहरे होते हैं। और भी बुरी सज़ा होती है बच्चे को यह जताना कि वह अनुकूलित नहीं है, वह शेष लोगों का सा आचरण नहीं कर रहा है। प्रत्यक्ष सत्ता शारीरिक बल का प्रयोग करती थी। पर अज्ञात सत्ता मानसिक परिचालन करती है।

आधुनिक औद्योगिक समाज की संगठनात्मक ज़रूरतों के कारण उन्नीसवीं शताब्दी की प्रत्यक्ष सत्ता, बीसवीं शताब्दी की अज्ञात सत्ता में बदली। पूँजी के केन्द्रीकरण ने विशाल उद्यमों को जन्म दिया जिनकी व्यवस्था पद के क्रम में श्रेणी अफसरशाही के हाथों थी। इनमें कार्मिकों और क्लर्कों के विशाल समूह एक साथ काम करते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक विशाल व्यवस्थित उत्पादन मशीन का हिस्सा होता है। ऐसी मशीन को चलाना तभी सम्भव है, जब सब कुछ सहजता से बिना रुकावट के होता रहे। यहाँ प्रत्येक कार्मिक मशीन का एक पुर्ज़ा भर होता है। ऐसे उत्पादन संगठन में व्यक्ति प्रबन्धित भी होता है और संचालित भी।

उपभोग के क्षेत्र में भी; जहाँ कहने को व्यक्ति को चुनाव की स्वतंत्रता होती है, उसे ठीक इसी तरह प्रबन्धित और संचालित किया जाता है। बात चाहे भोजन, वस्त्र, शराब, सिगरेट, फिल्में, टेलीविज़न कार्यक्रम किसी की भी हो, हर जगह एक सशक्त सुझाव तंत्र सतत् काम करता है। इस सुझाव के दो उद्देश्य होते हैं। पहला उद्देश्य है लगातार व्यक्ति में नए-नए उत्पादों की भूख बढ़ाना। दूसरा, इस भूख को उस दिशा में मोड़ना जो उद्योगों के लिए सर्वाधिक फायदेमन्द हो। मानव एक उपभोक्ता में बदल दिया जाता है। वह ऐसे दुध-मुँहे बच्चे का रूप धारण कर लेता है, जिसकी एकमात्र इच्छा होती है और अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग।

हमारी आर्थिक व्यवस्था को ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना पड़ता है जो उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप हों। ऐसे व्यक्ति जो आसानी से सहयोग करें, ऐसे व्यक्ति जो अधिकाधिक उपभोग करना चाहें। हमारी व्यवस्था को ऐसे लोग चाहिए जिनकी रुचियाँ मानकीकृत हों, जिन्हें आसानी से प्रभावित किया जा सके, जिनकी ज़रूरतों का आसानी से अनुमान लगाया जा सके। हमारी व्यवस्था को ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो स्वयं को आज़ाद और स्वावलम्बी महसूस करते हों, पर फिर भी वह सब करने को तैयार हों जिसकी उनसे उम्मीद की जाती है। ऐसे व्यक्ति, जो सामाजिक मशीनरी में बिना घर्षण के फिट किए जा सकें, जिन्हें बिना दबाव के किसी भी दिशा में मोड़ा जा सके। जिनका एकमात्र लक्ष्य हो सफलता। ऐसा नहीं है कि आज सत्ता विलुप्त हो गई हो या उसकी शक्ति क्षीण हो गई हो। हुआ इतना भर है कि उसका स्वरूप बल प्रयोग करने वाली प्रत्यक्ष सत्ता से बदलकर समझाने

और सुझाव देने वाली अज्ञात सत्ता का हो गया है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक व्यक्ति को अनुकूल बनाने के लिए इस भ्रम को पोषित करना पड़ता है कि सब कुछ उसकी सहमति से हो रहा है। फिर चाहे उसकी सहमति सूक्ष्म संचालन द्वारा उससे क्यों न निकाली गई हो। कह सकते हैं कि यह सहमति उसकी पीठ पीछे, या चेतन मानस के पीछे से ले ली जाती है।

ठीक ऐसी ही चालों का उपयोग प्रगतिशील शिक्षा में होता है। बच्चे को कड़वी दवा की गोली तो निगलनी ही पड़ती है, हाँ उस पर चीनी की परत ज़रूर चढ़ा दी जाती है। माता-पिता तथा शिक्षक समझाइश व गुप्त दबाव द्वारा दी जा रही शिक्षा को ही वास्तविक सत्ताहीन शिक्षा मान लेते हैं। प्रगतिशील शिक्षा दरअसल भ्रष्ट हो चुकी है। उससे जो अपेक्षाएँ थीं वैसी बनने में वह असफल रही है और न ही उसे उस प्रकार विकसित किया जा सका है जैसा किया जाना चाहिए था।

ए. एस. नील की प्रणाली बालक के लालन-पालन का क्रान्तिकारी तरीका है। मेरी राय में उनकी पुस्तक इसलिए बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि वह भयमुक्त शिक्षा के सच्चे सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करती है। सत्ता छिपकर बच्चों को संचालित नहीं करती।

समरहिल किसी सिद्धान्त को प्रतिपादित नहीं करता। बल्कि लगभग चालीस वर्षों के वास्तविक अनुभवों का वर्णन करता है। पुस्तक के लेखक का मानना है कि आज़ादी सच में कारगर है।

नील की प्रणाली में अन्तर्निहित सिद्धान्तों को पुस्तक में सहजता और स्पष्टता से प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप में ये सिद्धान्त हैं:

1. नील का बालक की अच्छाई में दृढ़ विश्वास है। वे मानते हैं कि एक औसत बच्चा जन्म से अपंग, कायर और आत्महीन मानव-मशीन नहीं होता। बल्कि उसमें जीवन के प्रति प्रेम, जीवन में रुचि की सम्पूर्ण सम्भावनाएँ होती हैं।

2. शिक्षा का ध्येय या कहें जीवन का ध्येय है प्रसन्नता से काम करना और आनंद को तलाश पाना। नील के अनुसार आनन्द का अर्थ है जीवन में रुचि लेना। यही बात मैं दूसरे शब्दों में यूँ कहना चाहूँगा - जीवन के प्रति महज़ दिमागी प्रतिक्रिया न कर अपने समग्र व्यक्तित्व से जुड़ना।

3. शिक्षा में सिर्फ बौद्धिक विकास पर्याप्त नहीं है। शिक्षा बौद्धिक के साथ भावनात्मक भी हो, यह ज़रूरी है। आधुनिक समाज में बुद्धि और भावना में अन्तर क्रमशः बढ़ता जा रहा है। आज मानव के अनुभव उसकी आन्तरिक भावनाओं से आँखों से देखकर या कानों से सुनकर नहीं होते। वे अनुभव मुख्यतः दिमागी होते हैं। बुद्धि और भावनाओं का यह फासला व्यक्ति में ऐसी खण्डित मानसिकता पैदा करता है जो उसे वैचारिक अनुभव ही पाने देता है।

4. शिक्षा बच्चे की आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली होनी चाहिए। बच्चा परोपकारी नहीं होता। वह वयस्कों-सा परिपक्व प्रेम करने की स्थिति में नहीं पहुँचा होता है। बच्चे से उसकी उम्मीद करना भूल होगी, जिसका वह केवल ढोंग करे। परोपकारिता तब विकसित होती है जब वह बचपन पार कर लेता है।

5. सख्ती से लागू किया गया अनुशासन और दण्ड भय पैदा करता है। और भय, विद्वेष जगाता है। यह विद्वेष चेतन न होकर गुप्त भी हो सकता है, फिर भी वह उसके प्रयासों को, उसकी भावनाओं की प्रामाणिकता को पंगु बना डालता है। बच्चों पर व्यापक अनुशासन लागू करना उसके आत्मिक विकास में बाधक साबित होता है।

6. आज़ादी का अर्थ स्वेच्छाचार नहीं होता। नील जिस सिद्धान्त पर खासा बल देते हैं, वह यह है कि व्यक्ति के प्रति श्रद्धा दो-तरफा होती है। शिक्षक बालक पर बल प्रयोग नहीं करे, न ही बालक को यह अधिकार हो कि वह शिक्षक पर बल प्रयोग करे। उसे अधिकार नहीं है कि वयस्क पर महज़ इसलिए हावी हो क्योंकि वह बच्चा है। न ही वह उन तरीकों से दबाव डाले जिनका प्रयोग बच्चा कर सकता है।

7. इस सिद्धान्त से जुड़ी बात है शिक्षक की वास्तविक निष्कपटता। लेखक कहते हैं कि 40 वर्षों तक समरहिल में काम करने के दौरान उन्होंने किसी बच्चे से झूठ नहीं बोला। जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा उसे विश्वास हो जाएगा कि यह एक दम्भी दावा नहीं है, बल्कि सीधी-साफ सच्चाई का बयान है।

8. अपराधबोध मुख्यतः बच्चे को सत्ता से जोड़ने का काम करता है। स्वतंत्रता की राह में अपराधबोध आड़े आता है। आपराधिक भावनाएँ एक ऐसा दुष्चक्र शुरू करती हैं जो बच्चे को विद्रोह, पश्चाताप, आत्मसमर्पण और एक नए विद्रोह में फँसाती हैं। हमारे समाज के अधिकांश लोग जो अपराध की भावनाएँ झेलते हैं, वह अपराधबोध आत्मिक आवाज़ की प्रतिक्रिया नहीं होती बल्कि मूलतः सत्ता के प्रति खिलाफत और दण्ड का भय होता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह दण्ड शारीरिक हो, स्नेह-प्रेम को हटा लेना हो, या फिर उसे यह जताना हो कि वह अपना नहीं पराया है। सभी आपराधिक भावनाएँ डर पैदा करती हैं, और डर से उपजता है विद्वेष और पाखण्ड।

9. समरहिल किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं देता। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि जिसे हम आधारभूत मानवीय मूल्य कहें, उनसे समरहिल का कोई सरोकार नहीं। नील इस बात को खूबसूरती से समेटते हुए कहते हैं, "लड़ाई, धर्मविज्ञान में विश्वास या उसमें अविश्वास करने वालों की नहीं। यह झगड़ा दरअसल मानवीय आज़ादी में विश्वास करने वालों और मानवीय दमन में आस्था रखने

वालों के बीच है।" लेखक जोड़ते हैं, "कोई दिन ऐसा भी आएगा जब नई पीढ़ी आज के अप्रासंगिक धर्म और मिथकों को नहीं स्वीकारेगी। जब उसका स्थान एक नया धर्म लेगा तो वह इस विचार को नकारेगा कि मानव की सृष्टि पाप से हुई है। लोगों को प्रसन्न रखकर ही वह नया धर्म ईश्वर की स्तुति करेगा।"

नील आज के समाज के आलोचक हैं। वे यह रेखांकित करते हैं कि हम जिस तरह के व्यक्ति को पालते-पोसते हैं वह एक भीड़-मानव है। हम एक विक्षिप्त समाज में जी रहे हैं और हमारे ज़्यादातर धार्मिक रिवाज़ पाखण्ड हैं। ज़ाहिर है कि लेखक एक अन्तर्राष्ट्रवादी हैं और इस विचार में अडिग विश्वास करते हैं कि युद्ध के लिए तैयार रहना मानव जाति का एक बर्बर कुलानुजातिक रोग है।

वास्तव में नील बच्चे को ऐसे शिक्षित करने की कोशिश करते ही नहीं कि बच्चा मौजूदा व्यवस्था में बखूबी फिट हो जाए। बल्कि उनका प्रयास बच्चों को ऐसे पालने-पोसने का है जिससे वे प्रसन्न इन्सान बन पाएँ। वे ऐसे पुरुष बनें जिनके मूल्य अधिक पाने, अधिक उपभोग करने के बदले स्वयं कुछ अधिक बनने का हो। नील यथार्थवादी हैं, वे यह देख सकते हैं कि जिन बच्चों को वे शिक्षित कर रहे हैं वे सम्भवतः दुनियाई अर्थ में अधिक सफल न सिद्ध हों। पर फिर भी उनमें सच्ची निष्कपटता विकसित होगी जो उन्हें बेमेल बनने या भूखे-भिखारी बनने से बचाएगी। लेखक ने समग्र मानवीय विकास और पूर्ण बाज़ारी सफलता के बीच चुनाव किया है। और अपने चयनित लक्ष्य की दिशा में वे बिना समझौते किए, पूरी ईमानदारी के साथ आगे बढ़े।

(1960)

एरिक फ्रॉम : सिगमन्ड फ्रॉयड के विचारों से प्रभावित फ्रॉम ने मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के क्षेत्र में बहुत अध्ययन और काम किया।

1

समरहिल का विचार

एलेक्ज़ैण्डर सदरलैण्ड नील
(1883-1973)

समरहिल का विचार

यह एक आधुनिक स्कूल समरहिल की कहानी है।

समरहिल 1921 में स्थापित हुआ। इंग्लैण्ड के सफोल्क क्षेत्र के लाइस्टन गाँव में लन्दन से तकरीबन सौ मील दूर यह स्कूल स्थित है।

समरहिल के छात्र-छात्राओं के बारे में कुछ बता दिया जाए। कुछ बच्चे हमारे स्कूल में पाँच साल की उम्र में आए तो कुछ पन्द्रह साल के हो जाने पर। लगभग सभी बच्चे सोलह साल की उम्र तक स्कूल में रहे। सामान्य रूप से हमारे पास हर सत्र में करीब पच्चीस लड़के और बीस लड़कियाँ रहीं।

बच्चे आयु के अनुसार तीन समूहों में बाँटे गए थे। सबसे छोटे बच्चों के समूह में पाँच से सात साल के, बीच वाले समूह में आठ से दस साल के और बड़े बच्चों के समूह में ग्यारह से पन्द्रह साल के बच्चे थे।

समरहिल के शिक्षार्थियों में अक्सर कुछ विदेशी छात्र-छात्राएँ भी होते थे। 1968 में दो बच्चे स्कैन्डिनेविया के और चवांलीस अमरीका के थे।

बच्चे आयु के अनुसार समूहों में हाउस मदर के साथ रहा करते थे। बीच की उम्र के बच्चे पत्थर के बने एक भवन में रहते और बड़े बच्चे झोंपड़ियों में। बड़े बच्चों में केवल दो ही ऐसे थे जिनके अपने कमरे थे। शेष लड़के एक-एक कमरे में दो, तीन या चार की संख्या में एक साथ रहते थे। लड़कियाँ भी ऐसे ही रहती थीं। बच्चों के कमरों का निरीक्षण नहीं किया जाता था। उन्हें कमरों की हालत पर कोई टोकता नहीं था। उन्हें मुक्त छोड़ा जाता था। वे क्या पहनें, यह भी उन्हें कोई नहीं बताता था। वे अपनी मर्ज़ी के हिसाब से तैयार होते थे।

अखबारों में कई बार समरहिल के बारे में लिखा जाता कि यह *मनमर्ज़ी* का स्कूल है। ऐसा लिखते समय वे यह जता देना चाहते थे कि यह जंगली लोगों का एक समूह है जिसमें न कोई कायदा-कानून है, न शिष्टाचार। इसलिए समरहिल की कहानी, पूरी ईमानदारी के साथ बयान करना मुझे ज़रूरी लगता है। ज़ाहिर है कि मैं जो कुछ लिखूँगा उसमें पूर्वाग्रह होंगे। फिर भी कोशिश यह रहेगी कि मैं उसकी खूबियों के साथ उसकी तमाम कमियाँ भी बताऊँ। उसकी खूबियाँ ऐसे स्वस्थ और मुक्त बच्चों की खूबियाँ होंगी जो भय और घृणा से विकृत न हुए हों।

ज़ाहिर है कि जो स्कूल सक्रिय बच्चों को मेज़ों पर बैठाकर दिन भर निरर्थक विषय पढ़ाते हैं, वे बेमानी हैं। ऐसे स्कूल केवल उन के लिए अच्छे हो सकते हैं जिनका *ऐसे* स्कूलों में विश्वास है, उन नागरिकों के लिए जो ऐसे रचनाहीन और आज्ञाकारी बच्चे चाहते हैं जो एक ऐसी सभ्यता का हिस्सा बन सकें जहाँ सफलता का एक ही मानक होगा - पैसा।

समरहिल एक प्रयोग के रूप में प्रारम्भ हुआ। पर बाद में महज़ प्रयोग नहीं रह गया। बल्कि एक प्रदर्शन स्कूल में तब्दील हुआ। इसलिए क्योंकि समरहिल यह दर्शा सका कि आज़ादी सच में कारगर है।

जब मैंने और मेरी पहली पत्नी ने यह स्कूल शुरू किया उस वक्त हमारे मन में एक मुख्य विचार था। हमारी कोशिश यह थी कि बच्चों को स्कूल के अनुरूप ढालने के बदले स्कूल को बच्चों के अनुरूप बनाएँ। जहाँ बच्चे फिट न किए जाएँ, *स्कूल ही उनको फिट हो*।

मैंने बरसों सामान्य स्कूलों में अध्यापन किया था। मैं उस तरीके को बखूबी जानता था। यह भी कि वह तरीका गलत है। गलत इसलिए क्योंकि वह वयस्कों की इस धारणा पर आधारित है कि बच्चा कैसा होना चाहिए, उसे कैसे सीखना चाहिए। यह धारणा उस युग में पनपी थी जब मनोविज्ञान जन्मा ही नहीं था।

हम एक ऐसा स्कूल बनाने में जुटे जहाँ बच्चों को, जैसे वे दरअसल हैं, वैसे बने रहने की आज़ादी हो। यह कर पाने के लिए हमने हर तरह का अनुशासन, हर तरह का निर्देशन, सुझाव देना, नैतिक और धार्मिक उपदेश देने का मोह त्यागा। कई बार कहा गया कि हम बड़े साहसी हैं। पर सच पूछें तो ऐसा करने के लिए साहस की ज़रूरत न थी। ज़रूरत बस एक ही चीज़ की थी जो हमारे पास पर्याप्त रूप में मौजूद थी। ज़रूरत थी इस तथ्य में विश्वास की कि बच्चा दुष्ट नहीं, अच्छा होता है। चालीस वर्षों के अनुभव में बच्चों की अच्छाई में हमारा विश्वास कभी नहीं डिगा, बल्कि उसने पुख्ता हो 'अन्तिम आस्था' का रूप ले लिया है।

मेरी दृष्टि में बच्चा स्वाभाविक रूप से विवेकशील और यथार्थवादी होता है। अगर उसे वयस्कों के सुझावों के बिना अपने भरोसे छोड़ा जाए तो जिस सीमा तक विकसित होना उसके लिए सम्भव है, वह होता है। इसी तर्क से प्रेरित हो समरहिल वह जगह बनी, जहाँ जो बच्चे स्वाभाविक रूप से विद्वान बनने की क्षमता रखते हों वे विद्वान बनें, पर जो महज़ इस लायक हों कि वे सिर्फ सड़कें साफ कर सकते हों, वे वहीं करें। वैसे अब तक कोई सड़क सफाईकर्मी हमारे यहाँ बना नहीं है। यह बात मैं दम्भ से नहीं कह रहा। मैं सच में मानता हूँ कि मैं एक मनोरोगी विद्वान के बदले एक खुश मिज़ाज सफाईकर्मी ही बनना पसन्द करूँगा।

समरहिल भला कैसी जगह है? एक बात तो यह है कि यहाँ कक्षाओं में जाना ज़रूरी नहीं, ऐच्छिक है। बच्चे चाहें तो जाएँ, न चाहें तो सालों-साल तक न जाएँ। एक टाइमटेबल *ज़रूर* है, पर वह सिर्फ शिक्षकों के लिए है।

कक्षाएँ अमूमन आयु के हिसाब से लगती हैं, पर यदाकदा बच्चों की रुचि के हिसाब से भी लगती हैं। पढ़ाने के हमारे तरीके नए नहीं हैं, क्योंकि हमारा मानना है कि महज़ पढ़ाने का खास महत्व नहीं है। किसी स्कूल में भाग करने की लम्बी विधि पढ़ाने का एक खास तरीका है, यह बात केवल उनके लिए अर्थ रखती है जो भाग करने की लम्बी विधि *सीखना चाहते* हैं। पर सच्चाई यह है कि जो बच्चा विलम्बित भाग *सीखना चाहता* है, वह उसे ज़रूर *सीख लेगा*, चाहे उसे किसी भी तरीके से वह सिखाया जाए।

जो बच्चे बालवाड़ियों से समरहिल में आते हैं, वे शुरू से ही कक्षाओं में जाते हैं। पर जो बच्चे दूसरे स्कूलों से आते हैं, वे उबाऊ कक्षाओं में कभी भी नहीं बैठने का संकल्प लेकर आते हैं। वे खेलते हैं, साइकिल चलाते हैं, दूसरों के रास्ते में अटकते हैं, पर कक्षाओं में जाने से बचते हैं। कई बार यह स्थिति महीनों तक बनी रहती है। उन्हें इस स्थिति से उबरने में जो समय लगता है, वह पिछले स्कूल में कक्षाओं के प्रति जन्मी घृणा के अनुपात में होता है। हमारे पास एक बच्ची एक कॉन्वेंट से आई थी। वह पूरे तीन साल तक मस्ती करती रही जो कि एक रिकॉर्ड है। सामान्यतः बच्चों को अभ्यस्त होने में करीब तीन महीने लगते हैं।

आज़ादी के विचार से जो लोग अपरिचित हैं वे सोच रहे होंगे कि वह पागलखाना कैसा होगा जहाँ बच्चे जी में आए तो दिन भर खेल सकते हैं। कई वयस्क यह भी कहेंगे, ''अगर मुझे ऐसे किसी स्कूल में भेजा जाता तो मैं वहाँ कुछ भी नहीं करता।'' दूसरे लोग कहते हैं, ''ऐसे बच्चों को जब उन बच्चों के साथ स्पर्धा करनी होगी जिन्हें सीखने की आदत डालनी पड़ी है तो वे स्वयं को अपंग पाएँगे।''

मुझे जैक की बात याद आती है जो सत्रह साल की उम्र में एक इंजीनियरिंग फैक्ट्री में यहाँ से गया था। एक दिन उसे उसके प्रबन्ध निदेशक ने बुलाया।

''तुम समरहिल के छात्र हो ना,'' उन्होंने पूछा। ''मैं यह जानना चाहता हूँ कि अब तुम अपनी शिक्षा के बारे में क्या सोचते हो। क्योंकि अब तुम्हें दूसरे स्कूलों के छात्रों से मिलने का मौका मिला है। अगर तुम्हें फिर से चुनने का मौका मिले तो तुम कहाँ पढ़ना चाहोगे, ईटन या समरहिल में?''

''बेझिझक समरहिल ही चुनूँगा,'' जैक ने कहा।

''वहाँ ऐसा क्या मिलता है जो दूसरे स्कूलों में न मिले?''

जैक ने अपना सिर खुजलाया और धीरे से कहा, ''मुझे पता नहीं।'' फिर जोड़ा

''मुझे लगता है कि समरहिल पूर्ण आत्मविश्वास की भावना जगाता है।''

''हाँ,'' प्रबन्धक ने रुखाई से कहा। ''यह तो मैंने तभी देख लिया था जब तुम कमरे में घुसे थे।''

''हे भगवान!'' जैक हँसा, ''अगर मैंने आपको यह आभास दिया हो, तो मुझे माफ कीजिएगा।''

''नहीं यह बात तो मुझे अच्छी लगी,'' निदेशक महोदय बोले, ''अक्सर जब मैं किसी को अपने दफ्तर में बुलाता हूँ तो वे बेहद बेचैन और असहज लगते हैं। तुम ऐसे घुसे मानो मेरे बराबर के व्यक्ति हो। अच्छा, तुम किस विभाग में तबादला चाहते थे, यह तो बता दो।''

यह घटना दर्शाती है कि सीखना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण। जैक विश्वविद्यालय की परीक्षा में फेल हो गया था। इसलिए क्योंकि उसे किताबी पढ़ाई से नफरत थी। पर *लैम्ब के लेख* और फ्रेंच भाषा के ज्ञान के अभाव ने उसे जीवन भर के लिए अपंग नहीं बना दिया। वह आज एक सफल इंजीनियर है।

इसके बावजूद समरहिल में बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं। सम्भव है कि हमारे बारह वर्षीय छात्र-छात्राएँ अपनी उम्र के दूसरे बच्चों की सुलेख, वर्तनी या भिन्न के हिसाब में स्पर्धा नहीं कर पाएँ। पर अगर कोई ऐसी परीक्षा हो जिसमें मौलिकता की ज़रूरत हो तो हमारे बच्चे दूसरों को पछाड़ सकते हैं।

हमारे स्कूल में कक्षा परीक्षाएँ नहीं होती थीं। पर मैं कभी मज़े के लिए प्रश्नपत्र बना देता था। एक ऐसी ही परीक्षा की बानगी देखें:

ये कहाँ हैं: मैड्रिड, थर्सडे द्वीप, बीता हुआ कल, प्रेम, लोकतंत्र, घृणा, मेरा जेबी पेंचकस। (मुझे अफसोस है कि इस अंतिम सवाल का कोई ऐसा जवाब न मिला, जो उसे वापस पाने में मेरी मदद करता।)

निम्न शब्दों के अर्थ लिखो (शब्द के आगे लिखी गई संख्या अपेक्षित उत्तरों की संख्या बताती है):

हाथ (3) ... केवल दो ही बच्चों ने तीसरा अर्थ लिखा - एक घोड़े को नापने की मानक इकाई। पीतल (4) ... धातु, गाल, सेना के आला अफसर और ऑर्केस्ट्रा का एक हिस्सा। हैमलेट के 'टू बी और नॉट टू बी' संवाद का समरहिल भाषा में अनुवाद करो।

ज़ाहिर है कि ये सवाल गम्भीरता से नहीं पूछे गए थे और बच्चों को इनके जवाब लिखने में खूब-खूब मज़ा आया। नए आए बच्चों के जवाब देने का स्तर उन बच्चों

का सा नहीं था जो यहाँ के वातावरण से वाकिफ हो चुके हों। इसलिए नहीं कि उनमें अक़्ल नहीं है। बल्कि इसलिए क्योंकि सवालों के गम्भीर जवाब देते-देते हल्का-फुल्का रहने का तरीका उन्हें परेशान करता है।

हमारे शिक्षण का यह एक विनोदी पक्ष है। वैसे सभी कक्षाओं में काफी काम होता है। अगर किसी कारण से कोई शिक्षक/शिक्षिका तयशुदा दिन पर अपनी कक्षा नहीं ले पाती तो छात्र-छात्राओं को बहुत बुरा लगता है।

नौ वर्षीय डेविड को कुकुर-खाँसी हो गई और उसे दूसरों से अलग रखना पड़ा। वह ज़ोर ज़ोर से रोया। "मैं रॉजर की भूगोल की कक्षा में नहीं जा पाऊँगा।" डेविड प्रायः अपने जन्म के समय से ही समरहिल में था। पाठों की उपयोगिता पर उसके स्पष्ट विचार थे। डेविड आज लंदन विश्वविद्यालय में गणित का व्याख्याता है।

कुछ साल पहले स्कूल की एक औपचारिक बैठक में (जिसमें स्कूल के सभी नियम तय किए जाते हैं और प्रत्येक छात्र-छात्रा व शिक्षक का एक-एक मत होता है) यह तय किया गया कि कुछ खास तरह के नियम तोड़ने वालों को सप्ताह भर तक कक्षाओं से बाहर रखा जाए। बच्चों ने इस सुझाव का विरोध किया। उनका कहना था कि यह सज़ा बहुत कठोर है।

मेरे सहशिक्षकों और मुझे परीक्षाओं से घृणा है। हमारी नज़र में विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ अभिशाप हैं। पर हम उनमें पूछे जाने वाले आवश्यक विषय पढ़ाने से मना नहीं कर सकते। ज़ाहिर है कि जब तक परीक्षाओं का अस्तित्व है हम उनके गुलाम हैं। इसलिए समरहिल के सभी शिक्षक मानक शिक्षण की योग्यता रखते हैं।

अधिकांश बच्चे ये परीक्षाएँ देना नहीं चाहते हैं। केवल वे बच्चे ही ये परीक्षाएँ देते हैं जो विश्वविद्यालय में दाखिला चाहते हैं। उन्हें ये परीक्षाएँ खास कठिन नहीं लगतीं। अमूमन वे चौदह साल की उम्र में पूरी गम्भीरता से काम शुरू करते हैं। तकरीबन तीन साल तक इनकी तैयारी करते हैं। पहली कोशिश में इनमें उत्तीर्ण तो नहीं होते। पर जो महत्वपूर्ण है वह यह कि वे हताश न होकर फिर से कोशिश करते हैं।

समरहिल शायद दुनिया का सबसे खुश स्कूल है। यहाँ बच्चे नागा नहीं करते। उन्हें घर की याद नहीं सताती। बिरले ही लड़ाइयाँ होती हैं। हाँ उनकी आपसी तकरारें ज़रूर होती हैं। पर हम जब बच्चे थे उस समय हमारी जैसी लड़ाइयाँ होती थीं, वैसी यहाँ कम होती हैं। मैं बच्चों को रोते नहीं सुनता, क्योंकि उनके मन में उतनी नफरत नहीं होती जितनी दबाए गए बच्चों में होती है। घृणा से घृणा जन्मती है और प्यार से प्यार। प्यार का मतलब है बच्चों को समर्थन देना। यह किसी भी स्कूल के लिए ज़रूरी है। अगर आप उन्हें सज़ा देते हैं, उन पर चीखते-चिल्लाते

हैं, तो आप बच्चों के पक्ष में नहीं हैं। समरहिल एक ऐसा स्कूल है जहाँ बच्चे जानते हैं कि उनका पक्ष लिया जाता है।

हम इन्सानी कमज़ोरियों से ऊपर नहीं हैं। एक बसन्त का मौसम मैंने आलू बोते बिताया था। और मैंने पाया कि जून में किसी ने आठ पौधे उखाड़ फेंके। मैंने खूब शोर मचाया। पर मेरे शोर मचाने और किसी तानाशाह के शोर मचाने में फर्क़ है। मेरा शोर आलुओं के बारे में था। पर कोई तानाशाह इसमें नैतिकता का सवाल उठाता। वह सही या गलत की बात करता। मैंने यह नहीं कहा कि आलू के पौधे चुराना गलत काम था। मैंने इसे अच्छे या बुरे का मुद्दा नहीं बनाया। मैंने इसे *मेरे आलू* का मुद्दा बनाया। वे *मेरे* आलू थे और उन्हें छेड़ा नहीं जाना चाहिए था। आशा है मैं यह अन्तर साफ कर पा रहा हूँ।

चलिए, बात दूसरी तरह से रखता हूँ। मैं बच्चों के लिए कोई ऐसी सत्ता नहीं हूँ जिससे डरा जाए। मैं ठीक उनके समान हूँ। और अगर मैं अपने आलुओं के लिए शोर मचाता हूँ तो उसका उतना ही महत्व है जितना किसी लड़के का उस वक्त शोर मचाना जब कोई उसकी साइकिल का टायर पंचर कर दे। अगर आप बच्चे के समान हैं तो बच्चों के साथ झगड़ने में कोई खतरा नहीं है।

ज़रूर कुछ लोग कहेंगे, "यह सब बकवास है। समता यहाँ हो ही नहीं सकती। नील बॉस है, वह बड़ा है, बुद्धिमान है।" यह बात भी सच है। ज़ाहिर है कि मैं ही बॉस हूँ। अगर कहीं आग लगे तो बच्चे मेरे पास ही आएँगे। उन्हें पता है कि मैं बड़ा हूँ, ज़्यादा जानता हूँ। पर इस बात का उस स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ता जब हम एक ही धरातल पर मिलते हैं। जैसे आलू के खेत में।

जब पाँच साल के बिली ने मुझे कहा कि मैं उसके जन्मदिन की पार्टी से चला जाऊँ क्योंकि मुझे बुलाया नहीं गया था तो मैं बिना हिचक चला आया। ठीक वैसे ही जैसे बिली मेरे कमरे से उस वक्त बाहर चला जाता है जब मुझे उसका साथ नहीं चाहिए होता। छात्र-छात्राओं और शिक्षकों के इस रिश्ते को समझाना शायद आसान नहीं। पर समरहिल आने वाला हरेक व्यक्ति यह समझता है कि यही रिश्ता, आदर्श रिश्ता है। मेरे सहशिक्षकों के प्रति बच्चों के दृष्टिकोण में भी यही झलकता है। रूड जो रसायन शास्त्र पढ़ाता है उसे डेरेक नाम से बुलाया जाता है। शेष शिक्षक-शिक्षिकाएँ भी हैरी, उला और पैम हैं। मैं नील हूँ और रसोईदारिन एस्थर।

समरहिल में सबके अधिकार समान हैं। मेरे पियानो तक आने की किसी को अनुमति नहीं है और मैं बिना अनुमति किसी बच्चे की साइकिल नहीं छू सकता। स्कूल की औपचारिक बैठक में किसी छह साल की बच्ची के मत का वज़न उतना ही है जितना मेरे मत का।

पर ज्ञानी जन कहेंगे कि व्यावहारिक रूप में तो वयस्कों की आवाज़ों का ही महत्व रहता है। क्या छह साल की बच्ची अपना हाथ उठाने के पहले तब तक रुकती नहीं जब तक वह यह नहीं देख लेती कि तुम्हारा मत क्या है? काश वे सच में रुकते, मेरे तमाम सुझाव धराशायी होते रहते हैं। जो बच्चे आज़ाद होते हैं वे आसानी से प्रभावित नहीं होते। इसका कारण है भय का न होना। और सच तो यह है कि भय का न होना ही किसी बच्चे के लिए सबसे उम्दा चीज़ है।

हमारे बच्चे अपने शिक्षकों से नहीं डरते। हमारा एक नियम यह है कि रात दस बजे के बाद रिहाइशी भवन की पहली मंजिल में शान्ति रहेगी। एक रात करीब ग्यारह बजे तकियों से युद्ध छिड़ा हुआ था। मैं अपनी मेज़ से जहाँ मैं बैठा लिख रहा था शिकायत करने उठा। मैं जब वहाँ पर पहुँचा तो मैंने पाया कि गलियारा शान्त और खाली है। अचानक एक आवाज़ आई, ''अरे यह तो नील ही है।'' और फिर से मस्ती चालू हो गई। जब मैंने समझाया कि मैं नीचे एक किताब लिखने में जुटा हूँ तो उन्होंने चिन्ता जताई और शोर न मचाने का वादा किया। वे छुपे इसलिए थे क्योंकि उन्हें यह शक हुआ था कि उनका सोने का समय जाँचने वाले अफसर, जो उनमें से ही एक होता था, उनकी टोह लेने पहुँच गया है।

मैं वयस्कों का डर न होने पर बल देना चाहता हूँ। एक नौ वर्षीय बच्चा आकर मुझे खुद बताता है कि उसकी बॉल से एक खिड़की टूट गई है। वह यह इसलिए बता सकता है क्योंकि उसे मेरी नाराज़गी या नैतिक आक्रोश का भय नहीं है। हो सकता है कि उसे खिड़की सुधरने की लागत देनी पड़े पर उसे भाषण सुनने या सज़ा पाने का डर नहीं रहता।

कुछ साल पहले स्कूल की सरकार से सबने त्यागपत्र दे दिया और कोई भी चुनाव लड़ने को तैयार नहीं था। मैंने मौके का फायदा उठाकर एक नोटिस लगाया। ''सरकार की नामौजूदगी में मैं खुद को तानाशाह घोषित करता हूँ। नील की जय हो।'' तुरन्त फुसफुसाहटें शुरू हो गईं। दोपहर में छह साल का विविएन मेरे पास आया और उसने कहा, "नील मैंने व्यायामशाला की एक खिड़की तोड़ी है।"

मैंने इशारे से उसे हटाते हुए कहा, "ऐसी छोटी-छोटी बातें लेकर मेरे पास न आया करो।" वह लौट गया।

कुछ देर बाद वह लौटा और बताने लगा कि उसने दो खिड़कियाँ तोड़ी हैं। मैंने जानना चाहा कि माजरा क्या है। उसने कहा, "मुझे तानाशाह पसन्द नहीं हैं और मुझे भूखे रहना भी पसन्द नहीं है।" (बाद में पता चला कि तानाशाही का विरोध रसोईदारिन पर ज़ाहिर करने की कोशिश की गई थी। इसपर वह रसोई बन्द कर घर भाग गई थी।)

मैंने पूछा, "तो तुम इस बारे में क्या करने वाले हो?"

"और खिड़कियाँ तोडूँगा!"

"ठीक है, जारी रखो," मैंने कहाँ और उसने तोड़-फोड़ जारी रखी।

जब वह लौटा तो उसने बताया कि वह सत्रह खिड़कियाँ तोड़ चुका है। "पर जान लो," वह पूरी गम्भीरता से बोला, "मैं हरेक की मरम्मत के पैसे चुकाऊँगा।"

"कैसे?"

"अपने जेब खर्च से। चुकाने में कितना समय लगेगा?"

मैंने फटाफट हिसाब लगाया। "लगभग दस साल" मैंने कहाँ। एक मिनट को वह उदास हुआ, तब अचानक उसका चेहरा चमक उठा। वह बोला, "पर, मुझे पैसे नहीं चुकाने होंगे।"

"पर निजी सम्पत्ति के नियम का क्या होगा?" मैंने जानना चाहा। "वे खिड़कियाँ मेरी निजी सम्पत्ति हैं।"

"वह तो मैं जानता हूँ, पर अब यह नियम कहाँ है? सरकार ही नहीं है। सरकार ही तो नियम बनाती है।"

फिर शायद मेरे चेहरे का हावभाव देख उसने जोड़ा, "फिर भी मैं सबके पैसे चुकाऊँगा।"

पर उसे पैसे नहीं देने पड़े। घटना के कुछ समय बाद मैं लन्दन में भाषण दे रहा था। वहाँ मैंने इस घटना का ज़िक्र किया। भाषण खत्म होने पर एक नौजवान मेरे पास आया, मुझे एक पाउण्ड का नोट थमाते हुए बोला "ये पैसे नन्हे शैतान की खिड़कियों के लिए हैं।" इस घटना के दो साल बाद तक विविएन, लोगों को खिड़कियाँ तोड़ने और उसके पैसे चुकाने वाले व्यक्ति के बारे में बताता रहा। "वह आदमी बड़ा बेवकूफ ही होगा क्योंकि उसने मुझे देखा तक नहीं था।"

बच्चे अपरिचित लोगों से उस वक्त सहज ही सम्पर्क बना लेते हैं जब उनमें अनजान चीज़ों का भय नहीं होता। जिस विख्यात ब्रिटिश आत्मसंयम की बात की जाती है, उसकी जड़ में दरअसल भय होता है। इसलिए वे लोग ही अधिक मितभाषी होते हैं जो बेहद धनी होते हैं। समरहिल के बच्चे अपरिचित आगंतुकों से जिस दोस्ताना अंदाज़ से मिलते हैं वह मेरे और मेरे सहशिक्षकों के लिए गर्व का विषय है।

पर मैं यह भी स्वीकारता हूँ कि हमारे कई मेहमान हमारे बच्चों के लिए रोचक होते हैं। उन्हें जिनके आने की खुशी नहीं होती है वे हैं शिक्षक। खास तौर से संजीदा शिक्षक जो बच्चों के बनाए चित्रों और उनके लेखन को देखना चाहता है। वे उनकी खुलकर अगवानी करते हैं जो उन्हें यात्रा या साहसिक भ्रमण के बारे में बताते हैं।

सबसे रोचक उन्हें लगता है हवाई जहाज़ उड़ाने की बातें सुनना। कोई मुक्केबाज़ या टेनिस खिलाड़ी भी तुरन्त बच्चों से घिर जाता है। पर सिद्धान्त छाँटने वालों से बच्चे कोसों दूर भागते हैं।

मेहमानों की एक टिप्पणी सबसे ज़्यादा दोहराई जाती है। वह यह कि उन्हें पता नहीं चल पाता कि शिक्षक कौन है, और छात्र कौन। यह सच है। एकात्मता की भावना वहाँ खूब मज़बूत होती है जहाँ बच्चों को अनुमोदन मिलता है। शिक्षक के रूप में बच्चे उन्हें अलग से भाव नहीं देते। शिक्षक और छात्र एक साथ खाना खाते हैं और उन्हें एक से सामुदायिक नियमों का पालन करना पड़ता है। अगर शिक्षकों को कुछ खास सुविधाएँ दी जाएँ तो बच्चों को यह पसन्द नहीं आता।

जब मैंने शिक्षकों के साथ हर सप्ताह मनोविज्ञान पर चर्चाएँ शुरू कीं, तो बच्चों में यह बड़बड़ाहट शुरू हुई कि यह उचित नहीं है। मैंने योजना बदली और इन बैठकों को बारह साल से अधिक उम्र के सभी लोगों के लिए खोल दिया। हर मंगलवार को मेरा कमरा उत्सुक बच्चों से भरने लगा। वे न केवल सब कुछ ध्यान से सुनते, बल्कि अपना मत भी ज़ाहिर करते। बच्चों ने जिन विषयों पर चर्चाएँ कीं वे थेः हीन भावना, चोरी का मनोविज्ञान, गुण्डे का मनोविज्ञान, हास्य-विनोद का मनोविज्ञान, मनुष्य नैतिकवादी क्यों बना?, हस्तमैथुन, भीड़ का मनोविज्ञान। ज़ाहिर है कि ऐसे बच्चे जब बाहरी जीवन में उतरेंगे तो उन्हें अपने और दूसरों के बारे में व्यापक समझ होगी।

समरहिल में आने वाले मेहमान एक सवाल हमेशा पूछते हैं, "क्या बच्चे बाद में स्कूल को यह दोष नहीं देंगे कि स्कूल ने उन्हें गणित या संगीत क्यों नहीं सिखाया?" इस सवाल का जवाब यह है कि फ्रेडी बीथोविन या टॉमी आइंस्टीन को उनके विषयों से कोई दूर नहीं रख सकता।

बच्चे का काम है कि वह अपनी ज़िन्दगी जिए, वह ज़िन्दगी नहीं जो उसके आतुर माता-पिता सोचते हैं उसे जीनी चाहिए। ना ही वह जो कोई शिक्षाविद् श्रेष्ठतम मानता हो। वयस्कों की दखलंदाजी और उनके निर्देश रोबोट की पीढ़ी ही तैयार कर सकती है।

आप बच्चों को संगीत या कोई दूसरा विषय *ज़बर्दस्ती* नहीं सिखा सकते। ऐसा करने का अर्थ होगा उन्हें इच्छाशक्तिहीन वयस्कों में तब्दील करना। मतलब आप उन्हें *यथास्थिति* स्वीकारने वाले ही बना पाएँगे। यह उस समाज के लिए तो बिल्कुल सही है जो ऐसे आज्ञाकारी नागरिक चाहता हो जो उबाऊ मेज़ों पर बैठें, जो दुकानों में खड़े हों, ठीक साढ़े आठ बजे की भूमिगत रेल पकड़ने वाले हों। संक्षेप में ऐसा समाज जो डरे हुए छोटे मानव के कन्धों पर टिका हो। मौत से डरे ऐसे आतंकित लोगों के कन्धों पर जो सिर्फ़ हाँ में हाँ मिलाना जानते हों।

समरहिल पर एक नज़र

समरहिल के एक सामान्य दिन का ब्यौरा देता हूँ। नाश्ता सुबह सवा आठ से नौ बजे के बीच निपटता है। शिक्षक और बच्चे रसोई से अपना-अपना नाश्ता लेकर पास के भोजनागार में आते हैं। साढ़े नौ बजे जब पाठ शुरू होते हैं, उसके पहले बच्चों को अपने बिस्तर आदि समेट लेने होते हैं।

हर सत्र की शुरुआत में एक टाइमटेबल लगा दिया जाता है। उसके अनुसार सोमवार को डेरेक प्रयोगशाला में पहली कक्षा और मंगलवार को दूसरा कक्षा पढ़ाता है। अँग्रेज़ी और गणित के लिए मेरा भी ऐसा ही टाइमटेबल है और मॉरिस का भूगोल और इतिहास के लिए। छोटे बच्चे (सात से नौ साल वाले) अमूमन अपने शिक्षक के साथ सुबह का समय बिताते हैं। पर वे भी विज्ञान या कला के कमरे में जाते हैं।

किसी भी बच्चे को पाठों के लिए उपस्थित रहने पर बाध्य नहीं किया जाता। पर अगर जिमी सोमवार को अँग्रेज़ी की कक्षा में आने के बाद अगले सप्ताह शुक्रवार तक न आए, तो दूसरे बच्चे आपत्ति करते हैं। क्योंकि वह सबकी प्रगति को अटका देता है। वे उसे आगे बढ़ने में बाधक मान अपने समूह से निकाल भी सकते हैं।

पाठ करीब एक बजे तक चलते हैं। पर बालवाड़ी और प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे साढ़े बारह बजे खाना खा लेते हैं। खाना दो खेपों में होता है। शिक्षक और बड़े बच्चे डेढ़ बजे खाने बैठते हैं। दोपहर सबके लिए पूरी तरह खाली होती है। वे उस समय क्या करते हैं मुझे पता नहीं। मैं बागवानी करता हूँ। उस वक्त मुझे छोटे बच्चे कम ही नज़र आते हैं। कुछ बच्चे डाकू-डाकू खेलते दिख जाते हैं। कुछ बड़े बच्चे मोटरों और रेडियो या चित्रकला में व्यस्त हो जाते हैं। मौसम अच्छा हो तो बड़े बच्चे खेलते हैं। कुछ वर्कशॉप में खुटपुट करते हैं। अपनी साइकिलें सुधारते हैं, नावें या बन्दूकें बनाते हैं।

शाम चार बजे चाय होती है। पाँच बजे अन्य गतिविधियाँ शुरू होती हैं। प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे किताबों से कहानी सुनना पसंद करते हैं। उनसे थोड़े बड़े कला कक्ष में काम करना पसन्द करते हैं - चित्रकारी, लिनोलियम से काटकर बनाई गई आकृतियाँ, चमड़े का काम, टोकरियाँ बनाना आदि। मिट्टी के बर्तन वाले कक्ष में भी काफी व्यस्तता रहती है। दरअसल वहाँ सुबह और शाम काफी भीड़ रहती है।

सबसे बड़े बच्चे पाँच बजे के बाद वहाँ काम करते हैं। लकड़ी और धातु कार्यशालाएँ भी हर रात पूरी तरह भरी रहती हैं।

सोमवार की शाम बच्चे सिनेमा देखने जाते हैं। बृहस्पतिवार को फिल्म बदलती है। जिन बच्चों के पास पैसे होते हैं वे उस रात फिर से जाते हैं। मंगल की रात शिक्षक और बड़े बच्चे मनोविज्ञान पर मेरा भाषण सुनते हैं। उस समय छोटे बच्चों के पठन समूह चलते हैं। बुध की रात नृत्य संध्या होती है। एक बड़ी ढेरी में से वे नृत्य संगीत के रिकॉर्ड चुनते हैं। बच्चे बेहद अच्छा नाचते हैं। हमारे मेहमानों में से कईयों ने टिप्पणी की है कि हमारे बच्चों के साथ नाचने पर उनमें हीन भावना जगती है। बृहस्पतिवार रात कुछ खास नहीं होता। बड़े बच्चे लाइस्टन या एल्डबर्ग जाकर फिल्म देखते हैं। शुक्रवार की रात खास तैयारी के लिए छोड़ी जाती है, जैसे किसी नाटक की तैयारी।

हस्तशिल्प का कोई तयशुदा टाइमटेबल नहीं है। लकड़ी के काम के कोई तयशुदा पाठ नहीं हैं। जो उनकी इच्छा हो वह बच्चे बनाते हैं। अक्सर वे रिवॉल्वर या बन्दूक, नाव या पतंग बनाना पसन्द करते हैं। बारीक, पेचीदा जोड़ लगाना सीखने में उनकी रुचि नहीं है। बड़े बच्चे भी पेचीदा बढ़ईगिरी पसन्द नहीं करते। मेरे पसन्दीदा शौक, पीतल के काम में भी अधिक बच्चे रुचि नहीं लेते। आखिर किसी पीतल के कटोरे के साथ कल्पना शक्ति की कितनी उड़ानें भरी जा सकती हैं? किसी भी खुशनुमा दिन आप समरहिल में लड़कों को डाकू-डाकू खेलते पाएँगे। वे हर कोने में छिपे किसी साहसिक कारनामे में जुटे मिलेंगे। पर आप लड़कियों को देखें तो वे भवन के अन्दर या उसके आसपास ही मिलेंगी, और कभी भी वयस्कों से ज़्यादा दूर नहीं।

कला कक्ष अक्सर लड़कियों से भरा मिलेगा। वे कपड़े पर चित्रकारी करतीं और उससे खूबसूरत चीज़ें बनातीं मिलेंगी। मुझे लगता है कि छोटे लड़के अधिक रचनात्मक होते हैं। कम से कम मैंने यह किसी छोटे लड़के से नहीं सुना कि वह ऊब रहा है क्योंकि उसे यह समझ नहीं आ रहा कि वह क्या करे। पर यह मैं कभी-कभार लड़कियों को कहते सुनता हूँ।

सम्भव है कि मुझे लड़के अधिक रचनाशील इसलिए लगते हों क्योंकि हमारे स्कूल में लड़कों के लिए अधिक तैयारी है। दस साल या उससे अधिक उम्र की लड़कियों की लोहे या लकड़ी की कार्यशाला में खास रुचि नहीं रहती। इंजनों से छेड़छाड़ करने की इच्छा उनमें नहीं होती। ना ही वे बिजली या रेडियो से आकर्षित होती हैं। उन्हें कलात्मक काम पसन्द आते हैं। इसमें मिट्टी के बर्तन, लिनोलियम की आकृतियाँ, चित्रकारी, सिलाई शामिल हैं। लेकिन कुछ के लिए यह पर्याप्त नहीं है। कुछ लड़के भी लड़कियों की तरह रसोई के कामों में खास रुचि रखते हैं। कई

लड़के और लड़कियों अपने नाटक खुद लिखते और निर्देशित करते हैं। उनके लिए वेशभूषा और मंचसज्जा भी वे खुद ही करते हैं। सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि उनके अभिनय कौशल का स्तर काफी ऊँचा है। क्योंकि उनका अभिनय ईमानदार है, दिखावा भर नहीं है।

लड़कियाँ भी रसायन शास्त्र की प्रयोगशालाओं में उतना ही जाती हैं जितना लड़के। यही एक जगह है जहाँ नौ साल से बड़ी लड़कियाँ जाना पसन्द नहीं करतीं।

हाँ, स्कूल बैठकों में भी लड़कियाँ, लड़कों की तुलना में कम सक्रिय भागीदारी करती हैं। पर इसका कोई स्पष्ट कारण मेरे पास नहीं है।

कुछ साल पहले तक लड़कियाँ जब समरहिल आतीं थीं तो कुछ बड़ी होने पर ही आती थीं। कॉन्वेंट और बालिका शालाओं में फेल हुई बच्चियों की सँख्या काफी होती थी। ऐसे किसी बच्चे को मैं मुक्त शिक्षा का सच्चा उदाहरण नहीं मानता जो देर से आए। उनके माता-पिता आज़ादी को पसन्द करने वाले निश्चित रूप से नहीं है। क्योंकि अगर ऐसा होता तो उनकी बेटियाँ समस्याग्रस्त भी नहीं होतीं। पर जब समरहिल में ऐसी लड़कियों को उनकी खास कमज़ोरी से उबार लिया जाता है तो माता-पिता उसे फट से किसी 'अच्छे स्कूल' में दाखिला दिलवाने ले जाते हैं जहाँ वह ढंग से 'शिक्षित' हो सके। पर पिछले कुछ समय से हमारे यहाँ उन परिवारों की लड़कियाँ भी आ रही हैं जो समरहिल में विश्वास करते हैं। ये बेहद अच्छी लड़कियाँ हैं। उत्साही, मौलिकता लिए और पहल करने वाली।

कई बार लड़कियाँ आर्थिक कारणों से भी हटा ली जाती हैं। यह तब भी होता है जब उनके भाई किसी बेहद खर्चीले निजी स्कूल में बरकरार रहते हैं। परिवार में लड़कों को अधिक महत्व देने की परम्परा अभी भी मरी नहीं है। कुछ लड़कियाँ और लड़कों को इसलिए भी हटा लिया गया है क्योंकि माता-पिता के मन में स्वामित्व के भाव से उपजी जलन पैदा हो जाती है। उन्हें यह डर लगने लगता है कि उनके बच्चे घर के बदले स्कूल के प्रति वफादार बनने लगे हैं।

समरहिल को चलाना हमेशा से ही कुछ कठिन रहा है। ऐसे माता-पिता कम हैं जिनमें इतना धीरज या विश्वास हो कि अपने बच्चों को एक ऐसे स्कूल में भेजें जहाँ पढ़ने के विकल्प के रूप में वे खेलें। वे यह सोचकर भी थर्राते हैं कि कहीं इक्कीस का होने के बाद भी उनका बेटा गुज़ारा चलाने लायक तक न कमा पाए।

आज जितने छात्र-छात्राएँ समरहिल में हैं उनके माता-पिता उन्हें नियामक अनुशासन के बिना बढ़ने देना चाहते हैं। यह स्थिति हमारे लिए बेहद आनन्द की है। क्योंकि पहले मेरे पास कट्टर माता-पिता के बच्चे आते थे जो समरहिल को आखिरी विकल्प मान, मज़बूरी में ही अपने बच्चों को भेजते थे। उनकी बच्चों की

आज़ादी में कोई रुचि नहीं होती थी। मन ही मन वे हमें पागल ही समझते थे। ऐसे कट्टरवादियों को कुछ भी समझा पाना मुश्किल था।

मैं एक सैनिक को याद करता हूँ जिसने अपने नौ साल के बच्चे को हमारे स्कूल में दाखिला दिलाना चाहा।

"यह जगह ठीक-ठाक लगती है।" उसने कहा। "लेकिन मुझे एक डर है। मेरे लड़का यहां हस्तमैथुन सीख सकता है।"

मैंने उससे पूछा कि उसे यह डर क्यों है।

"यह उसे बहुत नुकसान पहुँचाएगा।"

"इससे मुझे या आपको तो ज़्यादा नुकसान नहीं हुआ, क्या नहीं?"

और वो तुरन्त ही अपने बच्चे के साथ वहाँ से चल दिया।

एक अमीर माँ ने मुझसे घण्टे भर सवाल किए और तब अपने पति की ओर मुड़कर बोली "मैं यह तय नहीं कर पा रही हूँ कि मार्जरी को यहाँ भेजा जाए या नहीं।"

"आप फिक्र न करें। मैंने तय कर लिया है कि हम आपकी बेटी को दाखिला नहीं देंगे।"

मुझे अपनी बात उन्हें समझानी पड़ी। "आप आज़ादी में विश्वास नहीं करतीं। अगर मार्जरी यहाँ आई तो मुझे अपनी आधी उम्र आपको यह समझाने में गुज़ारनी पड़ेगी कि आज़ादी का मतलब क्या है। पर आप फिर भी विश्वास नहीं करेंगी। मार्जरी के लिए इसके घातक परिणाम होंगे। उसके सामने लगातार यह सवाल होगा कि सही कौन है? घर या स्कूल।"

हमारे लिए आदर्श माता-पिता दरअसल वे हैं जो खुद आकर कहते हैं, "हमारे बच्चों के लिए समरहिल ही सही है। हमें उसे कहीं और नहीं भेजना है।"

जब हमने स्कूल खोला तो हमारे सामने गम्भीर कठिनाइयाँ आईं। हम उस वक्त मध्य और उच्च वर्ग के बच्चों को ही दाखिला दे सके। क्योंकि हमें खर्चे पूरे करने थे। हमारे पीछे कोई धन्ना सेठ नहीं था। एकाध बार एक व्यक्ति ने अनाम रह हमें कठिनाइयों से उबारा। बाद में एक अभिभावक ने हमें कुछ बेहद उदार उपहार दिए - एक नई रसोई, रेडियो, हमारे कॉटेज में नया हिस्सा, एक नई वर्कशॉप। वे एक आदर्श दानदाता थे क्योंकि उन्होंने कोई शर्तें नहीं लगाईं, बदले में कुछ भी नहीं चाहा।

"समरहिल ने मेरे जिमी को वह शिक्षा दी जो मैं उसके लिए चाहता था," जेम्स शेन्ड ने कहा। वह बच्चों की आज़ादी में सच्चा विश्वास रखते थे।

पर सच में गरीब बच्चों को हम कभी दाखिल नहीं कर पाए। हमें इसका बेहद

अफसोस है। क्योंकि इस कारण हमारा अध्ययन मध्यवर्गीय बच्चों तक सिमट गया। कई बार बच्चों की सहज प्रकृति इसलिए नज़र नहीं आती क्योंकि वह पैसे और महँगे कपड़ों के पीछे छुप जाती है। जब किसी लड़की को यह पता हो कि इक्कीस साल की उम्र में वह लखपति बनने वाली है तो उसकी बाल-प्रकृति का अध्ययन करना कठिन बन जाता है। हमारा सौभाग्य रहा कि समरहिल के वर्तमान और पूर्व छात्र-छात्राएँ अमीरी से बिगड़े नहीं। उनमें से हरेक को यह पता रहा कि स्कूल से निकलने के बाद उन्हें अपनी रोज़ी-रोटी खुद कमानी है।

समरहिल में कुछ सेविकाएँ हैं जो शहर से आती हैं। वे दिन भर काम करती हैं और रात को अपने घर लौटती हैं। वे नौजवान लड़कियाँ हैं जो खूब मेहनत करती हैं, अच्छा काम करती हैं। ऐसे वातावरण में जहाँ उन पर कोई हुक्म नहीं चलाता, वे अधिक मेहनत करती हैं, बेहतर काम करती हैं। वे हर अर्थ में बेहतरीन लड़कियाँ हैं। मुझे हमेशा इस बात से शर्म आती रही कि उन्हें इसलिए इतनी कठोर मेहनत करनी पड़ती है क्योंकि वे गरीब हैं। और मेरे पास बिगड़ैल अमीरज़ादियाँ हैं, जिनमें अपना बिस्तर तक समेटने की ऊर्जा नहीं है। पर ईमानदारी इसी में है कि मैं यह बता दूँ कि बिस्तर समेटना मुझे भी बेहद नापसन्द था। मेरा बहाना हमेशा यह रहता कि मुझे ढेरों काम करने पड़ते हैं, पर बच्चे इससे सन्तुष्ट नहीं होते। वे मेरे इस उदाहरण तक का माखौल उड़ाते कि किसी सेना नायक से कूड़ा उठाने की उम्मीद तो नहीं रखी जा सकती है न।

मैं कई बार कह चुका हूँ कि समरहिल के वयस्क नैतिकता की मिसाल नहीं थे। हम भी दूसरों की तरह इन्सान थे और कई बार हमारी इन्सानी कमज़ोरियाँ हमारे सिद्धान्तों के आड़े आती थीं। सामान्य घरों में अगर बच्चा एक प्लेट तोड़े तो माँ या पिता शोर करते हैं। उस पल अचानक प्लेट बच्चे से अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। समरहिल में अगर कोई बच्चा या कोई परिचारिका प्लेटों की एक ढेरी गिरा देती है, तो मैं या मेरी पत्नी कुछ नहीं कहते। दुर्घटनाएँ तो होती ही हैं। पर अगर कोई बच्चा एक किताब लेता है और उसे बरसात में बाहर छोड़ आता है तो मेरी पत्नी शोर करती है। इसलिए क्योंकि उसकी नज़र में किताबें महत्वपूर्ण हैं। पर मैं तटस्थ रहता हूँ। मेरे लिए किताबों की इतनी अहमियत नहीं है। पर जब मैं एक छेनी टूटी पाता हूँ और शोर करता हूँ तो मेरी पत्नी को आश्चर्य होता है। मेरे लिए सभी औज़ार महत्वपूर्ण हैं, पर मेरी पत्नी के लिए नहीं।

समरहिल में हमें अपना पूरा समय देना पड़ता है। पर सच्चाई यह है कि बच्चों से कहीं ज़्यादा मेहमान हमें थकाते हैं। सम्भव है कि पाने से देना कहीं बेहतर काम हो, पर वह बेहद थकाने वाला भी है।

शनिवार की रात स्कूल की आमसभा में बच्चों और वयस्कों का टकराव उभरता है।

यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि अगर आपका समुदाय मिश्रित उम्र के लोगों का है और वहाँ बच्चों के नाम पर अगर सभी लोग सब कुछ त्यागते जाएँगे तो बच्चे पूरी तरह बिगड़ैल बन जाएँगे। बैठक में हम बड़े शिकायतें करते हैं कि सबके सो जाने के बाद बड़े बच्चों का झुण्ड इतना हँसी मज़ाक करता है कि वे सो नहीं सकते। हैरी शिकायत करता है कि घण्टे भर उसने बाहरी दरवाज़े के लिए एक पैनल की योजना बनाई, तब खाना खाने गया। लौटने पर उसने पाया कि उसकी लकड़ी से बिली ने शैल्फ बना डाली है। मैं उन लड़कों की शिकायत करता हूँ जो मुझसे सोल्डर करने के उपकरण माँगकर ले गए पर लौटाना भूल गए। मेरी पत्नी कहती है कि तीन छोटे बच्चे एक रात भूखे होने के कारण उससे डबलरोटी और जैम माँगकर ले गए। पर अगली सुबह डबलरोटी के टुकड़े बाहर पड़े मिले। पीटर दुखी होते हुए बताता है कि पॉटरी कक्ष में बच्चों के एक झुण्ड ने उसकी बेशकीमती चिकनी मिट्टी एक दूसरे पर फेंकी। वयस्कों के नज़रिए और बच्चों में चेतना के अभाव के बीच लगातार खींचतान चलती रहती है। पर यह लड़ाई कभी व्यक्तियों के स्तर पर नहीं उतरती। किसी एक के प्रति कड़ुवाहट नहीं पैदा होती। यह टकराव समरहिल को हमेशा चौकन्ना बनाए रखता है। उसे ज़िन्दा रखता है। साल भर कुछ न कुछ ज़रूर होता है। कोई दिन उबाऊ नहीं रहता।

सौभाग्य से हम शिक्षकों में स्वामित्व की भावना नहीं है। फिर भी मुझे मानना पड़ेगा कि जब मैं कोई महँगा और खास रंग खरीदकर लाता हूँ और पाता हूँ कि कोई लड़की उसे खाट को रंगने के लिए ले गई है तो मुझे तकलीफ होती है। अपनी गाड़ी, अपने टाइपराइटर, अपने वर्कशॉप के औज़ारों को लेकर मेरे में निजता की भावना है। पर लोगों को लेकर नहीं। अगर आप लोगों के प्रति स्वामित्व भाव रखते हैं तो आपको स्कूल में नहीं पढ़ाना चाहिए।

समरहिल में सामग्री की टूट-फूट एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसे केवल भय द्वारा ही रोका जा सकता है। पर मानसिक शक्ति की टूट-फूट किसी तरह रोकी नहीं जा सकती। बच्चे समय माँगते हैं, और वह उन्हें देना ही पड़ता है। दिन में पचासों बार मेरे कमरे का दरवाज़ा खुलता है और कोई बच्चा सवाल पूछता हैः ''क्या आज फिल्म देखने की रात है?'' ''मुझे निजी पाठ क्यों नहीं दिए जाते?'' ''आपने पैम को देखा है?'' ''ईना कहाँ है?'' यह सब मेरे काम का हिस्सा है और मुझे उस समय इसका कोई दबाव महसूस नहीं होता। यद्यपि इसका मतलब यह है कि हमारी कोई निजी ज़िन्दगी नहीं होती। इसका कारण यह भी है कि हमारा भवन स्कूल के लिए उपयुक्त नहीं है। यह मैं वयस्कों के नज़रिए से कह रहा हूँ। बच्चे हमेशा हमारे ऊपर रहते हैं। सत्र के समापन तक मैं और मेरी पत्नी पस्त हो जाते हैं।

समरहिल की एक खासियत यह भी है कि हमारे शिक्षक गुस्सा नहीं होते। यह

शिक्षकों के साथ-साथ बच्चों के बारे में भी बहुत कुछ बताता है। सच में हमारे बच्चे बेहद अच्छे हैं। उनके साथ रहने में मज़ा आता है। नाराज़ होने के मौके कम आते हैं। अगर बच्चा खुद को पसन्द करता है तो सामान्यतः वह नफरत से भरा नहीं होता। उसे किसी वयस्क को जानबूझ कर, उकसा कर नाराज़ करने में कोई मज़ा नहीं आता।

हमारी एक शिक्षिका आलोचना झेल नहीं पाती थी। उन्हें लड़कियाँ बेहद सताती रहीं। वे दूसरे शिक्षकों को इसलिए नहीं चिढ़ा सकीं क्योंकि वे कोई प्रतिक्रिया ही नहीं करते थे। आप केवल उन लोगों को ही छेड़ सकते हैं जो प्रतिष्ठा की भावना से भरे हों।

क्या समरहिल के बच्चों में भी साधारण बच्चों की तरह आक्रामक भावनाएँ दिखती हैं? सच्चाई यह है कि ज़िन्दगी में अपनी राह बनाने के लिए हरेक बच्चे में कुछ आक्रामकता होना ज़रूरी है। पर आज़ादीहीन बच्चों में जो बढ़ी-चढ़ी आक्रामकता होती है वह उस नफरत के विरोध का नतीजा है जो उसकी ओर दिखाई जाती है। समरहिल में जहाँ किसी बच्चे को यह नहीं लगता कि वयस्क उससे घृणा करते हैं, आक्रामकता की ज़रूरत भी नहीं रहती। जो बच्चे हमारे यहाँ आक्रामक हैं वे इसलिए ऐसे हैं क्योंकि उन्हें घर में प्यार और समझ नहीं मिलती।

जब मैं एक ग्रामीण स्कूल का छात्र था तो तकरीबन हर सप्ताह ही कोई ऐसी घटना होती थी जिसमें किसी की नाक से खून निकल आए। जो आक्रामकता लड़ाई पर आमादा कर दे, वह नफरत ही तो है। जो बच्चे घृणा से भरे हैं, वे लड़ते ही हैं। जब बच्चों को घृणाहीन वातावरण मिलता है तो वे घृणा दर्शाना भी बन्द कर देते हैं।

फ्रॉयड ने आक्रामकता पर जो बल दिया है वह घरों और स्कूलों की *वास्तविकता* के कारण ही दिया था। आप अगर कुत्तों के मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहें तो उसे ज़ंजीरों से बाँधे रखकर नहीं कर सकते। इसी तरह अगर आपको मानव मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर कुछ कहना हो तो आप पीढ़ी दर पीढ़ी ज़िन्दगी से नफरत भरे बन्धनों में जकड़े मानव के आधार पर क्या कह सकेंगे? मैं समरहिल की आज़ादी के वातावरण में उतनी आक्रामकता नहीं पाता जितनी कठोर अनुशासन वाले स्कूलों में नज़र आती है।

समरहिल की आज़ादी का मतलब सहजबुद्धि को तिलांजलि देना नहीं है। यहाँ बच्चों की सुरक्षा की हर समय सावधानी बरती जाती है। बच्चे केवल उस समय तैर सकते हैं जब हर छह बच्चों पर एक रक्षक मौजूद हो। ग्यारह साल से कम उम्र का कोई बच्चा सड़कों पर अकेला साइकिल नहीं चला सकता। ये सारे नियम बच्चों की ओर से ही सुझाए जाते हैं और हमारी आम सभा में इन पर मतदान होता है।

पर पेड़ों पर चढ़ने के बारे में कोई नियम नहीं है। उन पर चढ़ना जीवन-शिक्षा का

हिस्सा है। और फिर अगर उन सभी गतिविधियों को रोक दिया जाए जो खतरनाक हो सकती हैं तो बच्चे पूरी तरह से डरपोक नहीं बन जाएँगे? परंतु छतों पर चढ़ने पर पाबन्दी है। एयर-गन या दूसरे हथियारों, जिनसे कोई घायल हो सकता है, पर पाबन्दी है। जब कभी लकड़ी से बनी तलवारों की झक चढ़ती है तो मुझे बेहद चिन्ता होती है। मैं तब इस बात पर बल देता हूँ कि उन तलवारों की नोकों पर रबर या कपड़ा लगाया जाए। और जब यह झक उतरती है तो मुझे बेहद खुशी होती है। सच तो यह है कि सावधानी और चिन्ता में फर्क करना हमेशा आसान भी नहीं होता।

मेरे कभी पसन्दीदा छात्र-छात्राएँ नहीं रहे। ज़ाहिर है कि मुझे हमेशा ही कुछ बच्चे दूसरों से अधिक अच्छे लगते हैं, पर यह बात मैंने कभी उजागर नहीं की। शायद समरहिल की सफलता का एक राज़ यह है कि यहाँ सभी बच्चों से समान व्यवहार किया जाता है, सबको सम्मान दिया जाता है। स्कूल में छात्र-छात्राओं के प्रति अनावश्यक भावनात्मक दृष्टिकोण से मुझे डर लगता है। अपनी बत्तखों को हंस मान लेना या जो बच्चा रंगों से खिलवाड़ करे उसमें भावी पिकासो तलाशना बड़ा आसान भी तो है।

जितने भी स्कूलों में मैंने पढ़ाया है वहाँ शिक्षक-कक्ष षड़यंत्र, घृणा और जलन से भरा नर्क था। हमारा शिक्षक-कक्ष एक खुशनुमा कमरा है। दूसरी जगहों पर नज़र आने वाला दुर्भाव यहाँ नामौजूद है। आज़ादी के वातावरण में वयस्कों को भी वही खुशी और सदभाव मिलता है जो छात्र-छात्राओं को मिलता है। कई बार नए शिक्षकों की आज़ादी के प्रति वही प्रतिक्रिया होती है जो बच्चों की होती है। वे बिना दाढ़ी बनाए घूमते हैं, सुबह अलसाते रह जाते हैं। यहाँ तक कि वे स्कूल के नियम भी तोड़ते हैं। सौभाग्य से अपनी कुण्ठाओं से निपटने में वयस्कों को बच्चों की तुलना में कम समय लगता है।

हर दूसरे इतवार को मैं छोटे बच्चों को उन्हीं के साहसिक कारनामों की कहानियाँ सुनाता हूँ। यह मैं सालों-साल करता आया हूँ। मैं उन्हें अफ्रीका के दुर्गम इलाकों में, समुद्र की गहराइयों में, बादलों के ऊपर ले गया हूँ। कुछ समय पहले एक किस्से में मैं खुद को मार चुका हूँ। समरहिल पर मगिन्स नाम के एक कठोर शख्स का कब्ज़ा हो चुका है। उसने पढ़ाई को अनिवार्य बना दिया। अगर मुँह से गाली का 'ग' भी निकलता तो समरहिल के बच्चों को बेंत से ठोंका जाता। मैंने बच्चों को चुपचाप मगिन्स का हुक्म बजाने की कल्पना की।

तीन से आठ साल के वे नन्हे मुझसे नाराज़ हो गए। "कोई हुक्म नहीं माना हमने। हम सब तो भाग गए थे। हमने हथौड़े से मगिन्स को मार डाला। क्या सोच रखा है तुमने? हम भला ऐसे आदमी को झेल सकते हैं?"

उन्हें तब चैन आया जब मैं वापस ज़िन्दा हुआ और मगिन्स महोदय को दरवाज़े

के बाहर किया। कहानी सुनने वाले ज़्यादातर वे छोटे बच्चे थे जिनका किसी कठोर स्कूल से परिचय तक न था। उनका गुस्सा स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। ऐसी दुनिया जहाँ शिक्षक उनके पक्ष में न हो वे उसकी कल्पना तक न कर सकते थे। न केवल समरहिल के अनुभव के कारण, बल्कि इसलिए भी कि उनके पारिवारिक अनुभव में भी उनके माँ-बाप उनके पक्ष में थे।

एक अमरीकी मनोविज्ञान के प्रोफेसर ने हमारे स्कूल की आलोचना यह कहते हुए की कि यह एक द्वीप है और समुदाय के मुनासिब नहीं है। अर्थात वह एक बड़ी सामाजिक इकाई का हिस्सा नहीं है। मेरा जवाब हैः अगर मैं किसी छोटे शहर में स्कूल खोलूँ और उसे समुदाय का हिस्सा बनाना चाहूँ तो क्या होगा? सौ अभिभावकों में कितने अभिभावक ऐसे होंगे जो कक्षा में उपस्थित होने के बारे में बच्चों की मर्ज़ी की बात मान सकेंगे? कितने लोग बच्चे के हस्तमैथुन के हक को अनुमोदित करेंगे? ऐसे में मुझे शुरू से ही अपनी आस्थाओं से समझौता करना पड़ेगा।

समरहिल *यकीनन* एक द्वीप है। क्योंकि यहाँ पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावक मीलों दूर बसे शहरों और कस्बों में या फिर विदेशों में रहते हैं। उन सबको लाइस्टन में इकट्ठा करना सम्भव नहीं है। सो समरहिल को लाइस्टन के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन का हिस्सा भी नहीं बनाया जा सकता।

यहाँ मैं यह ज़रूर जोड़ दूँ कि लाइस्टन से हम कटे हुए नहीं हैं। स्थानीय लोगों से हमारा सम्पर्क है। हमारे आपसी रिश्ते दोस्ताना हैं। इसके बावजूद हम मूल रूप से स्थानीय समुदाय का हिस्सा नहीं हैं। मुझे कभी यह ख्याल तक नहीं आएगा कि मैं स्थानीय अखबार के सम्पादक को कहूँ कि वे मेरे पुराने छात्र-छात्राओं की सफलता की कहानियाँ छापें।

शहर के स्कूली बच्चों के साथ हम खेलते ज़रूर हैं पर हमारे शैक्षणिक लक्ष्य अलग-अलग हैं। धार्मिक आस्थाओं से जुड़ाव न होने के कारण हम शहर की किसी स्थानीय धार्मिक संस्था से भी नहीं जुड़े हैं। अगर समरहिल को हम स्थानीय समुदाय का हिस्सा बनाना चाहें तो हमें अपने छात्र-छात्राओं को धार्मिक शिक्षा देनी होगी।

मुझे लगता है कि हमारे अमरीकी मित्र को यह पता ही नहीं था कि उनकी आलोचना का दरअसल क्या अर्थ है। शायद वे कहना चाहते थे कि नील केवल समाज विद्रोही है। उसकी शिक्षा दुनिया को एक सामंजस्यपूर्ण इकाई में नहीं बदल सकेगी। बाल-मनोविज्ञान और उसके बारे में समाज की अज्ञानता, जीवन समर्थक और जीवन विरोधी तत्वों के बीच, स्कूल और घर के बीच जो फासले हैं, उसे यह पद्धति पाट नहीं सकती। इसका जवाब यह है कि मैं कोई सक्रिय धर्म-प्रचारक या

समाज सुधारक नहीं हूँ। मैं तो समाज को यह बताने की कोशिश ही कर सकता हूँ कि वह अपनी जड़ों में जमी बैठी नफरत की भावना को, अपनी सज़ा को, अपने रहस्यवाद को हटाए। मैं समाज के बारे में जो कुछ सोचता हूँ वह मैं लिखता भी हूँ। पर अगर मैं समाज सुधारने का *कदम उठाता* हूँ तो मुझे एक सार्वजनिक खतरा मानकर खत्म कर डाला जाएगा।

उदाहरण के लिए यदि मैं एक ऐसे समाज का निर्माण करने की कोशिश करता हूँ जिसमें किशोरों को प्यार दर्शाने और सम्भोग की आज़ादी हो तो मैं बरबाद हो जाता या फिर उन्हें बिगाड़ने के ज़ुल्म में जेल में डाल दिया जाता। समझौते मुझे नापसन्द हैं, फिर भी मैंने समझौता किया है। क्योंकि मैं यह समझता हूँ कि मेरा मुख्य काम समाज सुधारने का नहीं है, बल्कि कुछ बच्चों के जीवन को आनन्ददायक बनाने का है।

समरहिल की शिक्षा बनाम मानक शिक्षा

मेरा मानना है कि जीवन का लक्ष्य है आनन्द हासिल करना। इसका अर्थ है अपनी वास्तविक रुचि को तलाश पाना। शिक्षा जीवन की तैयारी होनी चाहिए। हमारी संस्कृति बहुत सफल नहीं रही है। हमारी शिक्षा, राजनीति और अर्थव्यवस्था युद्ध की ओर ले जाती है। हमारी औषधियों से रोग समाप्त नहीं हुआ है। हमारे धर्म ने सूदखोरी और चोरी खत्म नहीं की है। जिस मानवतावाद का हम इतना बखान करते हैं वह आज भी आम जनता को शिकार जैसे बर्बर खेल की स्वीकृति देता है। हमारी प्रगति दरअसल मशीनीकरण की दिशा में प्रगति है। वह प्रगति रेडियो, टी.वी., इलैक्ट्रॉनिक्स और जेट विमानों की प्रगति है। आए दिन एक नए विश्व युद्ध का खतरा हमारे सिर पर मँडराता है। यह सब इसलिए होता है क्योंकि हमारी विश्व चेतना अभी भी आदिम है।

अगर आज हम सवाल उठाना चाहें तो कुछ अटपटे सवाल खड़े कर सकते हैं। हम पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों लगता है कि पशुओं की तुलना में, इन्सानों में रोग अधिक होते हैं? आदमी लड़ाई के दौरान इतनी घृणा और हत्या क्यों करता है, जबकि पशु ऐसा नहीं करते? कैंसर का रोग बढ़ क्यों रहा है? आत्महत्या की वारदातें क्यों बढ़ती जा रही हैं? इतने वहशी यौन-अपराध क्यों होते हैं? यहूदियों के प्रति इतनी घृणा क्यों है? किसी काले व्यक्ति को, घृणा से उद्वेलित भीड़ क्यों मार डालती है? एक दूसरे के लिए कड़वी बातें, एक दूसरे की बुराई क्यों की जाती है? सम्भोग को अश्लील और भद्दा मज़ाक क्यों समझा जाता है? अवैध सन्तान को

सामाजिक कलंक क्यों माना जाता है? ऐसे धर्म, जो अपना प्रेम, आशा और उदारता खो चुके हैं आज भी क्यों प्रचलित हैं? ख्याति के उच्चतम शिखरों पर पहुँची हमारी सभ्यता को लेकर ऐसे हज़ारों 'क्यों' हमारे सामने हैं।

लगातार मैं ये तमाम सवाल इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि मेरा पेशा शिक्षक का है। ऐसा शिक्षक जिसका वास्ता किशोर-किशोरियों से है। मैं ये सवाल इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि अक्सर शिक्षक जो सवाल उठाते हैं वे गैर-महत्वपूर्ण हैं, स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विषयों के सम्बंध में हैं। मैं पूछता हूँ कि जीवन के स्वाभाविक लक्ष्य - व्यक्ति की आन्तरिक शान्ति - के अहम सवाल की तुलना में फ्रेंच, प्राचीन इतिहास, या किसी भी विषय पर चर्चा का क्या अर्थ हो सकता है?

हमारी शिक्षा का कितना भाग वास्तविक रूप से कुछ करने या वास्तविक आत्म अभिव्यक्ति का है? हमारी हस्तकला का मतलब किसी विशेषज्ञ के निर्देशन में एक पिन ट्रे बनाना भर रह जाता है। निर्देशों के साथ खेल की विश्वविख्यात मॉन्टेसरी पद्धति भी, कुछ करते हुए सीखने का एक निहायत कृत्रिम तरीका है। उसमें मुझे कुछ भी रचनात्मक नज़र नहीं आता है।

घर में बच्चे को हमेशा सिखाया जाता है। हरेक घर में एक ऐसा 'बचकाना' वयस्क ज़रूर होता है जो खेलते टॉमी को अपने इंजन की क्रियाविधि समझाने को हमेशा तत्पर रहता है। अगर नन्हीं दीवार पर टँगी कोई चीज़ देखना चाहे, तो कोई न कोई उसे कुर्सी पर खड़ा करने वाला भी मौजूद होता है। जब-जब हम टॉमी को उसके इंजन के बारे में बताते हैं तो दरअसल हम उससे जीवन का आनन्द छीनते हैं। खोज का आनन्द, एक बाधा पार करने का आनन्द। यही नहीं हम उसे विश्वास दिलाते हैं कि वह बड़ा आश्रित है, हीन है। उसे दूसरों पर निर्भर होना चाहिए।

अभिभावक दरअसल यह बात बड़ी देर से समझते हैं कि स्कूल में सीखने-सिखाने का पक्ष कितना बेमानी है। वयस्कों की तरह बच्चे भी वही सीखते हैं जो वे दरअसल सीखना चाहते हैं। सारे इनाम, अंक और परीक्षाएँ उचित व्यक्तित्व विकास से बच्चे को बहुत दूर ले जाते हैं। केवल पण्डिताऊ लोग ही यह दावा करते हैं कि किताबी शिक्षा, असल शिक्षा है।

किताबें स्कूल का सबसे कम ज़रूरी उपकरण हैं। बच्चों के लिए पढ़ना, लिखना, हिसाब करना ज़रूरी है। उसके बाद केवल औज़ार, मिट्टी, खेल-कूद, नाटक, रंग और आज़ादी ही होनी चाहिए।

स्कूलों में किशोर-किशोरियों द्वारा की गई लिखाई-पढ़ाई दरअसल ऊर्जा, समय और धीरज की बरबादी है। वह बच्चों से खेलने का अधिकार छीनता है। किशोर कन्धों पर बुढ़ापा लादता है।

मैं जब कभी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण ले रहे शिक्षार्थियों को भाषण देने जाता हूँ तो निरर्थक ज्ञान से भरे इन शिक्षार्थियों में बड़े होने के भाव की कमी को देख भौंचक्का रह जाता हूँ। वे बहुत कुछ जानते हैं। उनकी अभिव्यक्ति व तर्कशक्ति अच्छी होती है। वे तमाम पोथों को उद्धृत करते हैं। पर जीवन के प्रति उनका नज़रिया बच्चों जैसा होता है। क्योंकि उन्हें हमेशा सिर्फ़ *जानना* सिखाया गया है *महसूस करना* नहीं। उनका अंदाज़ दोस्ताना होता है, वे मनोहर और उत्साही होते हैं। फिर भी उनमें कुछ कमी-सी लगती है। यह है भावनात्मकता की कमी। उनमें विचारों को अहसास के स्तर पर उतारने की क्षमता नहीं होती। मैं उन्हें उस दुनिया की बात बताता हूँ जो उन्होंने कभी देखी तक नहीं है। उनकी पाठ्यपुस्तकों में मानव चरित्र का, या प्रेम का, आज़ादी का या तय करने की स्वतंत्रता का उल्लेख नहीं होता। यह परिपाटी यूँ ही आगे चलती जाती है। किताबें ज्ञान के स्तरों को पा लेने के लक्ष्य की बैसाखियाँ हैं। पर वे दिल और दिमाग को लगातार अलग रखती हैं।

वह समय आ चुका है जब हम काम की स्कूली धारणा को चुनौती दें। अमूमन यह मानकर चला जाता है कि हरेक बच्चे को गणित, इतिहास, भूगोल, थोड़ा सा विज्ञान, कुछ कला और निश्चित रूप से साहित्य सीखना ज़रूरी है। पर वास्तव में एक औसत बच्चे की इन विषयों में कोई रुचि नहीं होती। यह समझ लेने का समय भी आ चुका है।

यह बात मैं हर नए छात्र, नई छात्रा के साथ सिद्ध करता हूँ। जब उन्हें बताया जाता है कि समरहिल मुक्त शाला है तो वे चीखकर कहते हैं, "हुर्रा। क्या बात है। मुझे आप गणित और दूसरी उबाऊ चीज़ें नहीं सिखाएँगे।"

मैं ज्ञान का माखौल नहीं उड़ा रहा। इतना भर कह रहा हूँ कि पढ़ाई-लिखाई, खेल के बाद आनी चाहिए। और उसे जानबूझकर खेल के साथ नहीं परोसा जाना चाहिए ताकि वह भी स्वादिष्ट लगे।

ज्ञान महत्वपूर्ण है, पर सबके लिए नहीं। निजिंस्की सेंट पीटर्सबर्ग में अपनी स्कूली परीक्षाएँ पास नहीं कर सका। परीक्षाएँ पास किए बिना उसे राजकीय बैले नृत्यशाला में दाखिला नहीं दिया गया। वह स्कूली विषय सीख ही नहीं सकता था, उसका ध्यान तो कहीं और था। उसकी आत्मकथा के लेखक ने बताया कि उसकी नकली परीक्षा ली गई। प्रश्न पत्र के साथ उसे सवालों के जवाब भी दिए गए। अगर निजिंस्की इन इम्तहानों में पास नहीं होता तो दुनिया को कितना बड़ा नुकसान होता।

जो रचनाकार होते हैं, वे जो कुछ सीखना चाहते हैं वह सिर्फ़ इसलिए ताकि वे उन औज़ारों को हासिल कर सकें जो उनकी मौलिकता और प्रतिभा के लिए ज़रूरी हैं। हमें शायद इस बात का अंदाज़ ही नहीं है कि स्कूली कक्षाओं में सीखने पर बल देने पर कितनी रचनात्मकता कुचली जाती है।

मैंने एक लड़की को हर रात ज्यामिति को लेकर रोते देखा है। वह चाहती थी कि वह विश्वविद्यालय में दाखिला ले। पर इस लड़की की आत्मा कलाकार की थी। जब मैंने सुना कि वह सातवीं बार भी दाखिले की परीक्षा में असफल हो गई है, तो मुझे खुशी हुई। इसलिए कि शायद अब उसकी माँ उसे रंगमंच में जाने देगी, जहाँ वह हमेशा से जाना चाहती थी।

कुछ समय पहले मुझे कॉपेनहैगन में एक चौदह साल की लड़की मिली जिसने तीन साल समरहिल में बिताए थे। यहाँ वह अँग्रेज़ी बोलती थी। मैंने पूछा, "तो तुम अँग्रेज़ी में अपनी कक्षा में अव्वल रहती होगी।"

उसने मुँह बिगाड़ा, "ना मैं सबसे नीचे हूँ क्योंकि मुझे अँग्रेज़ी व्याकरण नहीं आता।" वयस्क किसे शिक्षा समझते हैं, उस पर यह एक उम्दा टिप्पणी है।

ठीक-ठाक छात्र-छात्राएँ अनुशासन के डण्डे के ज़ोर पर कॉलेजों और विश्वविद्यालयों से किसी तरह निकलकर आखिर कल्पनाहीन शिक्षक, साधारण चिकित्सक, अदक्ष वकील ही तो बनते हैं। पूरी सम्भावना यह है कि वे शायद बेहतरीन मैकेनिक, चिनाई करने वाले या अच्छे पुलिस वाले बनते।

हमने पाया कि जो लड़का तकरीबन पन्द्रह साल की उम्र तक ढंग से पढ़ना सीख नहीं पाता, या सीखना नहीं चाहता, उसका रुझान हमेशा मशीनों की ओर होता है। वह बाद में उम्दा इंजीनियर या बिजली मिस्त्री बनता है। मैं उन लड़कियों के बारे में ऐसा कोई सिद्धान्त देने की हिम्मत नहीं कर सकता जो कक्षाओं में, खासकर गणित या भौतिकशास्त्र की कक्षाओं में, नहीं जातीं। अक्सर ये लड़कियाँ अपना ज़्यादातर समय सिलाई-कढ़ाई में बिताती हैं। बाद में कपड़े बनाने या डिज़ाइन करने के काम से जुड़ती हैं। वह पाठ्यक्रम बेवकूफी भरा होगा जो इन बच्चियों को चतुष्कोणीय समीकरण या बॉयल का सिद्धान्त पढ़ाता है।

कैल्डवेल कुक ने *द प्ले वे* शीर्षक से एक किताब लिखी थी। पुस्तक में खेल-खेल में अँग्रेज़ी भाषा सिखाने की उनकी विधि बताई गई है। किताब बेहद सम्मोहक है। उसमें तमाम बेहतरीन चीज़ें हैं। फिर भी मुझे लगता है कि यह उसी सिद्धान्त पर बल देती है कि सीखना सबसे महत्वपूर्ण है। कुक का मानना था कि सीखना इतना ज़रूरी है कि इस कड़वी दवा को खेल की चीनी से लपेटकर दिया जाना चाहिए। यह धारणा कि अगर बच्चा कुछ सीख नहीं रहा तो वह अपना समय बर्बाद कर रहा है एक भारी अभिशाप है। यह अभिशाप हज़ारों शिक्षकों और अधिकांश स्कूल निरीक्षकों को अंधा बना देता है। पचास साल पहले का नारा था 'करके सीखो'। आज का नारा है 'खेल-खेल में सीखो'। यहाँ भी खेल एक लक्ष्य तक पहुँचने का माध्यम भर है। पर वह लक्ष्य क्या है यह मुझे अब तक समझ नहीं आया।

अगर शिक्षक बच्चों को मिट्टी में खेलता पाता है और उस पल को और यादगार बनाने के उद्देश्य से वह उन्हें नदी तट में भूक्षरण की बात बताने लगता है तो उसका उद्देश्य क्या होता है? बच्चों को भूक्षरण से क्या लेना-देना? कई शिक्षाविदों का विश्वास है कि बच्चा क्या सीखता है दरअसल इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ज़रूरी सिर्फ़ इतना भर है कि उन्हें कुछ न कुछ *सिखाया* जाए। स्कूलों में (जैसे कि स्कूल आज के हालात में हैं - बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले कारखानों समान) शिक्षक और कर ही क्या सकते हैं? वे कुछ न कुछ सिखाते जाते हैं और यही यकीन कर लेते हैं कि सिखाना अपने आप में सबसे महत्वपूर्ण काम है?

जब शिक्षकों को भाषण देता हूँ तो अपनी बात यह कहकर शुरू करता हूँ कि मैं पढ़ाए जाने वाले विषयों, अनुशासन या कक्षाओं पर कुछ नहीं बोलूँगा। तकरीबन एक घण्टे तक श्रोतागण पूरे ध्यान से मुझे सुनते हैं। ईमानदारी से तालियाँ बजाते हैं। तब अध्यक्ष प्रश्नोत्तर सत्र की घोषणा करते हैं। तब पाता हूँ कि तीन-चौथाई सवाल विषयों और पढ़ने के तौर-तरीकों से जुड़े हैं।

यह बात मैं दम्भ से नहीं कर रहा। मैं दुख के साथ कहता हूँ कि कक्षाओं की दीवारें और जेलनुमा स्कूल भवन शिक्षकों के नज़रिए को कितना संकुचित कर देते हैं। शिक्षा के वास्तविक तत्वों को वे देख तक नहीं पाते। शिक्षक का समूचा काम बच्चे की गर्दन से ऊपर वाले हिस्से के साथ होता है। ऐसे में बच्चे का भावनात्मक पक्ष जो उसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है, शिक्षक के लिए अनजाना रह जाता है।

मेरी तमन्ना है कि मैं युवा शिक्षकों में एक व्यापक आन्दोलन देख सकूँ। उच्च शिक्षा और विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ दरअसल सामाजिक बुराइयों का सामना कर पाने की क्षमता में रत्ती भर असर नहीं करतीं। एक पढ़े-लिखे मनोरोगी और अशिक्षित मनोरोगी में कोई फर्क नहीं है।

सभी देशों में, फिर चाहे वे पूँजीवादी, समाजवादी या साम्यवादी हों, बच्चों को शिक्षित करने के लिए भारी भरकम योजनाएँ बनाई जाती हैं, स्कूल खोले जाते हैं। ये उम्दा प्रयोगशालाएँ और कार्यशालाएँ किसी जॉन, पीटर या ईवान को पहुँची भावनात्मक ठेस को दूर करने में कतई मददगार नहीं होतीं। भावनात्मक क्षति, बच्चे के अभिभावक, शिक्षक और हमारी सभ्यता के दमनकारी रूप के कारण, बच्चे पर लगातार दबाव डालने से पहुँचती है।

समरहिल से निकले बच्चों की क्या स्थिति रहती है?

भविष्य को लेकर माता-पिता के मन में बसा डर उनके बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह भय इस इच्छा के रूप में झलकता है कि उनका बेटा/बेटी उनसे कहीं ज़्यादा पढ़े। इस तरह का कोई पिता अपने बेटे को अपनी रफ़्तार से पढ़ना-लिखना सीखने नहीं देता। उसे डर रहता है कि अगर उसने दबाव नहीं बनाया तो विली असफल हो जाएगा। ऐसे माता-पिता अपने बच्चों को उनकी गति से बढ़ने नहीं देते। वे सवाल करते हैं कि अगर मेरे बेटे या बेटी ने बारह साल की उम्र तक पढ़ना नहीं सीखा है तो जीवन में सफल होने की उसकी क्या सम्भावना है? अगर अठारह साल की उम्र में वह कॉलेज दाखिले का इम्तहान नहीं पास कर सकता तो एक अकुशल नौकरी के अलावा वह क्या करेगा? पर मैंने इन्तज़ार करना, धीरज रखना सीखा है। बच्चा अपनी रफ़्तार से आगे बढ़े या रुका रहे, मुझे कोई शक नहीं कि अगर उसे छेड़ा न जाए, उसे तोड़ा न जाए तो वह अपने जीवन में ज़रूर सफल रहेगा।

मेरे विरोधी कहेंगे, "वाह! एक ट्रक ड्राइवर बनने को भला क्या जीवन में सफल होना कहा जा सकता है?" सफलता का मेरा अपना मापदण्ड है, *खुशी-खुशी काम करने और सकारात्मक जीवन जी पाने की क्षमता*। और इस परिभाषा से चलें तो समरहिल के अधिकांश छात्र-छात्राएँ जीवन में सफल ही होते हैं।

टॉम पाँच साल की उम्र में समरहिल आया। सत्रह साल का हुआ तब उसने स्कूल छोड़ा। इस दौरान वह एक भी कक्षा में, एक भी पाठ के लिए नहीं गया। उसने ज़्यादातर समय वर्कशॉप में कुछ न कुछ बनाते बिताया। उसके माता-पिता उसके भविष्य की कल्पना कर थर्राते थे। उसने कभी पढ़ना-लिखना सीखने की इच्छा तक नहीं दर्शाई। जब वह तकरीबन नौ साल का था, मैंने उसे एक रात बिस्तर पर पसरे *डेविड कॉपरफील्ड* पढ़ते पाया।

"हलो!" मैंने कहा, "भई तुम्हें पढ़ना किसने सिखाया?"

"मैंने ही खुद को सिखाया!"

कुछ साल बाद वह मेरे पास यह पूछने आया, "आधा और एक बटा पाँच कैसे जोड़ते हैं?" मैंने उसे बता दिया। मैंने पूछा कि वह भिन्नों के बारे में कुछ और जानना चाहता है? तो उसका कहना था, "नहीं, धन्यवाद!"

स्कूल से निकलने के बाद उसे एक फिल्म स्टूडियो में कैमरा बॉय की नौकरी मिली। जब वह काम सीख ही रहा था कि मुझे उसके बॉस से एक डिनर पार्टी में मुलाकात करने का मौका मिला। मैंने जानना चाहा कि टॉम का काम कैसा चल रहा है।

"अब तक जितने लड़के आए, उन सबसे बढ़िया," उन्होंने बताया। "वह चलता नहीं दौड़ता है। पर सप्ताह अन्त में वह सिरदर्द बन जाता है। शनिवार और इतवार को वह स्टूडियो से दूर रहता ही नहीं!"

एक लड़का था जैक, जो पढ़ना-लिखना सीख नहीं पा रहा था। उसे कोई सिखा भी नहीं सकता था। जब वह खुद पढ़ने का आग्रह करता तो भी नहीं। कोई अन्दरूनी बाधा थी जो उसे *बी (B)* और *पी (P)*, *एल (L)* और *के (K)* अक्षरों का अन्तर समझने नहीं देती थी। सत्रह साल की उम्र में बिना पढ़ना सीखे वह स्कूल से निकला।

जैक आज औज़ार बनाने में उस्ताद है। उसे धातुकर्म की बात करना बेहद पसन्द है। वह मशीनों के बारे में लेख पढ़ता है। कभी-कभार मनोविज्ञान से सम्बंधित लेख भी पढ़ता है। मुझे नहीं लगता कि उसने कभी एक उपन्यास तक पढ़ा होगा। वह व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध अँग्रेज़ी बोलता है और उसका सामान्य ज्ञान विलक्षण है। एक अमरीकी मेहमान जो उसकी कहानी नहीं जानते थे, ने उससे मिलने पर टिप्पणी की, "यह लड़का बड़ा चतुर है।"

डायेन प्यारी-सी लड़की थी। वह कक्षाओं में खास रुचि नहीं लेती थी। विद्वता के प्रति उसका रुझान नहीं था। सोलह साल की उम्र में कोई भी विद्यालय निरीक्षक उसे पढ़ाई-लिखाई में कमज़ोर लड़की का दर्ज़ा देते। डायेन आज लन्दन में एक भिन्न तरह की पाककला के प्रदर्शन देती है। वह अपने काम में बेहद कुशल है। उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह *बहुत खुश* है।

एक फर्म की माँग थी कि उसमें काम करने वाले सभी लोग कम से कम कॉलेज दाखिले की परीक्षा पास कर चुके हों। मैंने उसे रॉबर्ट के बारे में खत लिखा। "इस लड़के ने कोई परीक्षा पास नहीं की है। उसका रुझान विद्वता की ओर नहीं है, पर उसमें साहस है।" रॉबर्ट को नौकरी मिल सकी।

विनिफ्रेड तेरह साल की नई छात्रा है। उसने मुझे बताया कि उसे सभी विषयों से नफरत है। जब उसे पता चला कि वह जो चाहे कर सकती है, तो वह खुशी से चीख पड़ी। "तुम्हारी इच्छा न हो तो तुम्हें स्कूल जाने की भी ज़रूरत नहीं है," मैंने कहा।

उसने तय किया कि वह मस्ती करेगी। यह उसने कुछ सप्ताह किया। मैंने देखा कि इसके बाद वह ऊबने लगी।

"मुझे कुछ तो सिखाओ," उसने एक दिन मुझसे कहा, "मैं बेहद बोर हो रही हूँ।"

"ठीक है," मैंने खुशी से कहा, "तुम क्या सीखना चाहोगी?"

"पता नहीं," उसका जवाब था।

"मुझे भी पता नहीं," मैंने कहा, और चल दिया।

महीनों बीत गए। तब वह फिर से आई। "मैं कॉलेज में दाखिले की परीक्षा पास करना चाहती हूँ। मुझे आप पढ़ाएँ," वह बोली।

हर सुबह वह मेरे और दूसरे शिक्षकों के साथ काम करने लगी। खूब मेहनत की। उसने बताया कि उसे विषयों में खास मज़ा नहीं आ रहा था। पर अपने लक्ष्य में उसकी *रुचि* थी। विनिफ्रेड स्वयं अपने लक्ष्य को तलाश पाई क्योंकि उसे यह अनुमति मिली कि वह जैसी है वैसी बनी रहे।

मज़े की बात यह है कि मुक्त बालक-बालिकाएँ गणित पसन्द करने लगते हैं। इतिहास और भूगोल में आनन्द पाते हैं। वे विभिन्न विषयों में से उन विषयों को छाँट पाते हैं जो उन्हें रोचक लगें। मुक्त बच्चे अपना ज़्यादातर समय अपनी दूसरी अभिरुचियों में बिताते हैं। वे लकड़ी या धातु का काम करने, चित्रकारी करने, कहानियाँ-उपन्यास पढ़ने, अभिनय करने या अपनी कल्पनाओं को खेल में बदलने, जैज़-संगीत के रिकॉर्ड बजाने में अपना समय बिताते हैं।

आठ साल का टॉम हमेशा मेरे दरवाज़े से खेलता और पूछता, "मुझे अब क्या करना चाहिए?" पर उसे कोई यह नहीं बताता कि वह क्या करे।

छह महीने बाद अगर आप टॉम को तलाशते हुए उसके कमरे में जाते तो उसे कागज़ों के समुन्दर में डूबा पाते। वह घण्टों नक्शे बनाने में गुज़ारता। एक बार विएना विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर साहब ने बताया, "मैंने उस लड़के से भूगोल पर सवाल पूछने चाहे। वह ऐसी जगहों की बात कर रहा था जिनके नाम तक मैंने नहीं सुने हैं।"

पर मुझे हमारी असफलताओं के बारे में भी बताना है। बारबेल नामक पन्द्रह वर्षीय स्वीडिश लड़की हमारे पास साल भर रही। उसे इस दौरान कोई ऐसा काम नहीं मिला जो उसे रोचक लगा हो। दरअसल वह बहुत देर से समरहिल आई। तकरीबन दस साल से उसकी शिक्षिकाएँ उसके लिए निर्णय लेती रहीं थीं। समरहिल आने तक उसकी पहल करने की ताकत सूख चुकी थी। वह ऊब गई। सौभाग्य इतना भर था कि वह अमीर परिवार की थी सो आराम की ज़िन्दगी काट सकती थी।

हमारे यहाँ यूगोस्लाविया से आई दो बहनें थीं। एक ग्यारह और दूसरी चौदह साल की। उनकी रुचि बाँधने में स्कूल असफल रहा। उन्होंने अपना ज़्यादातर समय

क्रोएशियन भाषा में मेरी आलोचना करने में लगाया। मेरे एक क्रूर मित्र हमेशा टिप्पणियों का अनुवाद कर मुझे बताते। इस स्थिति में सफलता हाथ लगती तो चमत्कार ही होता क्योंकि हमारे बीच साझी भाषा एक ही थी। वह थी कला और संगीत की। जब उनकी माँ उन्हें वापस लेने आईं तो मुझे बेहद खुशी हुई।

हमने सालों के अनुभव से पाया कि जो लड़के इंजीनियरिंग के क्षेत्र में जाते हैं, वे मैट्रिक के इम्तहान की परवाह नहीं करते। वे सीधे ही व्यावहारिक प्रशिक्षण केन्द्रों में जाना पसन्द करते हैं। विश्वविद्यालय में प्रवेश करने से पहले वे दुनिया देखना चाहते हैं। एक जहाज़ में खिदमतगार बन सारी दुनिया घूमा। दो लड़कों ने केन्या में कॉफी की खेती की। एक लड़का ऑस्ट्रेलिया गया और एक पहुँचा दूरस्थ ब्रिटिश गयाना।

डेरिक बॉयड मुक्त शिक्षा से पनपा ऐसा ही एक साहसिक व्यक्ति था। वह आठ साल की उम्र में समरहिल आया और अठारह की उम्र में विश्वविद्यालय की परीक्षा पास करने के बाद उसे छोड़ा। वह डॉक्टर बनना चाहता था पर उसके पिता आर्थिक कारणों से उसे उस वक्त पढ़ा नहीं सकते थे। उसने सोचा कि वह बीच का समय दुनिया देखने में बिताएगा। वह लंदन के बंदरगाह पर गया। दो दिन उसने नौकरी तलाशने में बिताए। उसे कोई भी नौकरी मंजूर थी। जहाज़ की भट्टी में कोयला झोंकने वाले की भी। उसे बताया गया कि वैसे ही सैकड़ों प्रशिक्षित नाविक बेरोज़गार हैं। वह काफी उदास हो घर लौटा।

कुछ ही दिनों में उसे उसके किसी साथी ने बताया कि स्पेन में रहने वाली एक अँग्रेज़ महिला को ड्राइवर चाहिए। डेरिक ने मौका लपक लिया और स्पेन चला गया। वहाँ उसने महिला का मकान बनाने और उसकी मरम्मत करने में मदद की। उसे यूरोप भी घुमाया और तब आगे की पढ़ाई करने लौटा। महिला ने उसकी फीस में सहायता करने का निर्णय लिया। दो साल बाद उस महिला ने आग्रह किया कि वह साल भर छुट्टी ले और उसके साथ केन्या जाए। वहाँ भी उसका मकान बनवा दे। डेरिक ने अपनी पढ़ाई केन्या के केपटाउन में पूरी की।

लैरी हमारे पास बारह साल की उम्र में आया, विश्वविद्यालय में दाखिले की परीक्षा देकर सोलह साल में निकला और तब ताहिती में फलों की खेती करने चला गया। उसने पाया कि इस काम में कमाई कम है तो उसने टैक्सी चलानी शुरू की। बाद में वह न्यूज़ीलैण्ड गया। वहाँ उसने तमाम काम किए, टैक्सी भी चलाई। तब ब्रिसबेन विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। उस विश्वविद्यालय के डीन जब मिलने आए तो उन्होंने लैरी की तारीफ की। "जब छुट्टियाँ हो गईं और हमारे सब छात्र घर चले गए तो लैरी एक लकड़ी काटने की मिल में मज़दूरी करने चला गया।" आज लैरी एसेक्स में डॉक्टर है।

समरहिल के ऐसे भी पूर्व छात्र हैं जिन्होंने कोई पहल नहीं दर्शाई है। ज़ाहिर कारणों से मैं उनके बारे में लिख नहीं सकता। जहाँ-जहाँ हम सफल हुए हैं उन बच्चों की पृष्ठभूमि में अच्छे घर थे। डेरिक, जैक और लैरी के माता-पिता की स्कूल के साथ हमदर्दी थी। इसलिए इन लड़कों को थकाने वाला द्वन्द नहीं झेलना पड़ा। द्वन्द्व यह कि दरअसल सही कौन है - स्कूल या घर?

क्या समरहिल में कोई जीनियस हुआ है? नहीं, अब तक नहीं। कुछ रचनाकार हैं जो अब तक विख्यात नहीं हुए हैं। कुछ उम्दा कलाकार हैं। कुछ अच्छे संगीतज्ञ हैं। कोई सफल लेखक हुआ हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। बेहद अच्छे फर्नीचर डिज़ाइनर और लकड़ी के कारीगर हुए हैं। कुछ अभिनेत्रियाँ और अभिनेता। कुछ वैज्ञानिक और गणितज्ञ, जो भविष्य में मौलिक काम कर सकते हैं। मुझे लगता है कि हमारी संख्या के अनुपात में - जो एक साल में तकरीबन पैंतालीस रहते हैं - काफी छात्र-छात्राएँ रचनात्मक और मौलिक कामों से जुड़े हैं।

पर मैं हमेशा कहता हूँ कि आज़ाद बच्चों की एक पीढ़ी कुछ भी सिद्धान्त साबित नहीं कर सकती। समरहिल में भी बच्चों के मन में अपराधबोध घर कर जाता है। उन्हें लगता है कि वे दरअसल पढ़ाई नहीं कर रहे हैं। जिस दुनिया में परीक्षाएँ ही किसी व्यवसाय का दरवाज़ा हों वहाँ यह स्वाभाविक ही है। और फिर बच्चों के ज़रूर कोई ऐसे अंकल-आंटी भी होते ही हैं जो कहते हैं, "क्या? ग्यारह साल की उम्र में आकर भी तुम ठीक से पढ़ नहीं पाते हो?" बच्चों में इस बात की अस्पष्ट-सी समझ बनने लगती है कि बाहर का पूरा वातावरण खेल विरोधी और काम के पक्ष में है।

सामान्य रूप से कहें तो मुक्त शिक्षा की विधि बारह साल से कम उम्र के बच्चों के लिए अमूमन सफल रहती है। पर बारह साल से बड़े बच्चों को ज़ोर-ज़बरदस्ती परोसी गई शिक्षा से उबरने में काफी लम्बा समय लगता है।

समरहिल में निजी सत्र

पहले मेरा काम कक्षा में पढ़ाना नहीं बल्कि बच्चों को निजी स्तर पर पढ़ाना था। अधिकांश बच्चों को मनोवैज्ञानिक ध्यान की भी ज़रूरत थी। पर अक्सर कुछ बच्चे ऐसे होते थे जो दूसरे स्कूलों से आते थे। आज़ादी से अभ्यस्त होने की प्रक्रिया को तेज़ बनाने के लिए निजी सत्र ज़रूरी होते थे। अगर बच्चा अन्दर से पूरी तरह बँधा हो तो वह आज़ाद होने की स्थिति से समझौता नहीं कर पाता।

निजी सत्र दरअसल अलाव के पास बैठकर खुली बातचीत के सत्र होते थे। मेरे

मुँह में पाइप होता था और अगर बच्चा सिगरेट पीने का आदी हो तो वह भी सिगरेट पी सकता था। सिगरेट अक्सर वातावरण की औपचारिकता को तोड़ने में मदद करती थी।

एक बार मैंने एक चौदह वर्षीय लड़के को बातचीत के लिए बुलाया। वह एक निजी स्कूल से समरहिल हाल में ही आया था। मैंने देखा कि उसकी उँगलियाँ सिगरेट से पीली पड़ी थीं। सो मैंने अपनी सिगरेट का पैकेट निकाला और उसे सिगरेट लेने को कहा। "धन्यवाद," वह हकलाते हुए बोला, "मैं सिगरेट नहीं पीता, सर!"

"झूठे कहीं के, एक सिगरेट उठा लो," मैंने मुस्कराते हुए कहा। और उसने सिगरेट ली। मैं एक ही ढेले से दो शिकार कर रहा था। मेरे सामने एक ऐसा लड़का था जिसके लिए हेडमास्टर का मतलब था एक कठोर, नैतिक अनुशासन लागू करने वाला व्यक्ति, जिससे हर बार झूठ बोलने की ज़रूरत पड़ती है। उसे झूठा कह मैं खुद उसके स्तर पर उतर रहा था। साथ ही सत्ता के प्रति उसके नज़रिए पर भी चोट कर रहा था। काश उस पहले साक्षात्कार के समय उसके चेहरे के हाव भाव की मैं फोटो ले पाता।

उसे उसके पिछले स्कूल से चोरी के इल्ज़ाम के कारण निकाल दिया गया था। "सुना है तुम कुछ उचक्के से हो," मैंने कहा। "बताओ तो रेल कम्पनी को ठगने के लिए तुम्हारे पास सबसे अच्छी तरकीब कौन सी है?"

"मैंने कभी रेल कम्पनी को ठगने की कोशिश नहीं की है, सर।"

"ओहो," मैंने कहा, "कैसे चलेगा। तुम्हें कोशिश तो करनी चाहिए। मुझे तो कई तरीके पता हैं।" मैंने उसे कुछ तरीके बताए। वह मुँह बाए रह गया। उसे लगा वह ज़रूर किसी पागलखाने में आ पहुँचा है। स्कूल का प्रिंसिपल उसे बेहतर चोर बनने के गुर सिखा रहा है? सालों बाद उसने बताया कि वह साक्षात्कार उसके जीवन का सबसे बड़ा धक्का था।

ऐसे निजी सत्रों की ज़रूरत कैसे बच्चों को होती है? सबसे अच्छा जवाब कुछ उदाहरणों से मिल सकेगा।

बालवाड़ी की शिक्षिका लूसी मेरे पास आकर कहने लगी कि पेगी बड़ी दुखी और असामाजिक लगती है। मैंने कहा, उसे मेरे पास निजी सत्र के लिए भेजना। पेगी मेरी बैठक में आई।

"मुझे कोई सत्र-वत्र नहीं चाहिए," वह बैठते हुए बोली। "वे बेवकूफी भरे होते हैं।"

"बिल्कुल ठीक," मैंने हाँ में हाँ मिलाई। "इसमें समय बर्बाद ही होता है। हम कोई पाठ-वाठ नहीं करेंगे।"

उसने बात पर कुछ विचार किया। तब धीरे से बोली, "अगर छोटा-सा हो तो मुझे

कोई ऐतराज़ नहीं होगा।" इस बीच वह मेरी गोद में बैठ गई। मैंने उसकी माँ और पिता के बारे में और खासकर उसके छोटे भाई के बारे में पूछा। उसने बताया कि उसका भाई बिल्कुल गधा है।

"ज़रूर होगा," मैंने सहमति जताई। "क्या तुम्हें लगता है माँ उसे तुमसे ज़्यादा चाहती है?"

"वह दोनों को बराबर चाहती है," उसने जल्दी से कहा, पर साथ ही जोड़ा, "कम से कम वह कहती तो यही है।"

कई बार बच्चे किसी दूसरे बच्चे से झगड़े के कारण भी दुखी हो जाते हैं। पर ज़्यादातर घर से आई चिट्ठी ही परेशानी का कारण बनती है। खासकर जब चिट्ठी में यह लिखा हो कि किसी भाई या बहन को नई गुड़िया या साइकिल मिली है। हमारा सत्र खत्म हुआ और पेगी बाहर निकलते समय खुश नज़र आई।

हर नए बच्चे के साथ बात इतनी आसान नहीं होती। एक बार एक ग्यारह साल का बच्चा आया जिसे यह बताया गया था कि डॉक्टर बच्चों को दुनिया में लाते हैं। उस बच्चे को झूठ और भय से उबारने में काफी मेहनत करनी पड़ी। क्योंकि ऐसे बच्चे हस्तमैथुन को लेकर अपराध-बोध के तले दबे होते हैं। और इस अपराधबोध को नष्ट करने से ही बच्चे को खुशी मिलना सम्भव है।

अधिकांश छोटे बच्चों को नियमित सत्रों की ज़रूरत नहीं पड़ती। आदर्श स्थिति जिसमें नियमित रूप से निजी पाठ दिए जाएँ, वह होती है जब बच्चा स्वयं उसकी *माँग* करे। कुछ बच्चे इसकी माँग करते भी हैं। पर छोटे विरले ही ऐसा करते हैं।

सोलह साल का चार्ली हमउम्रों के सामने खुद को हीन महसूस करता था। मैंने उससे पूछा कि यह भावना उसमें कब सबसे ज़्यादा उभरी। वो बोला जब वह अपने दोस्तों के साथ नहाता है क्योंकि उसका शिश्न सभी से छोटा है। मैंने उसको समझाया कि उसमें यह डर कैसे समाया। वह छह बहनों के परिवार में सबसे छोटा था। सभी उससे काफी बड़े थे। उसके और उसकी सबसे छोटी बहन के बीच दस साल का फासला था। परिवार में महिलाओं का वर्चस्व था। पिता गुज़र चुके थे और घर में बड़ी बहनों का दबदबा था। इसलिए चार्ली अपने आप को महिलाओं की नज़र से देखने लगा ताकि उसके पास भी सत्ता हो।

दस निजी सत्रों के बाद चार्ली ने मेरे पास आना बंद कर दिया। मैंने जब इसका कारण पूछा तो वह बोला, "अब मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है।" मैने पूछा, "क्यों।" उसने खुशी-खुशी बताया, "मेरा शिश्न अब बर्ट के बराबर है।"

लेकिन इसमें उपचार के इन छोटे सत्रों के अलावा कुछ और भी छुपा था। चार्ली को बताया गया था कि हस्तमैथुन की आदत से बड़ा होने पर आदमी नपुंसक बन

सकता है। और इसी डर ने उसे शारीरिक रूप से प्रभावित किया था। उसका इलाज अपराधबोध व नपुंसकता की बेवकूफी को खत्म करने से हुआ। चार्ली ने एक-दो साल बाद समरहिल छोड़ा। अब वह एक स्वस्थ संतुष्ट ज़िन्दगी में आगे बढ़ता इन्सान है।

सिल्विया के पिता सख्त मिज़ाज के थे। वे कभी उसकी तारीफ नहीं करते थे। बल्कि हमेशा उसकी आलोचना करते उसके पीछे पड़े रहते। उसके जीवन की एक ही तमन्ना थी कि वह अपने पिता का प्यार पा सके। अपनी कहानी बताते वह खूब रोई। ज़ाहिर था कि बेटी के मनोविश्लेषण से पिता का व्यवहार नहीं बदल सकता है। सिल्विया जब तक बड़ी होकर घर से दूर न चली जाती उसकी स्थिति बदलने वाली न थी। मैंने उसे चेताया कि कहीं वह अपने पिता से बच निकलने के चक्कर में किसी गलत व्यक्ति से विवाह न कर ले।

"कैसे गलत व्यक्ति से?" उसने जानना चाहा।

"जो तुम्हारे पिता जैसा हो, जो तुम्हें मानसिक यातना देना चाहता हो।"

सिल्विया की कहानी दुखद थी। समरहिल में वह सबसे मिलती-जुलती थी। उसका व्यवहार दोस्ताना था, वह किसी को आहत नहीं करती थी पर घर पर उसे शैतान कहा जाता था। ज़ाहिर है कि मनोविश्लेषण की दरकार बेटी को नहीं पिता को थी।

एक और केस था। नन्हीं फ्लोरेन्स का जिसका कोई समाधान नहीं था। वह एक अवैध संतान थी, पर उसे इस बात का पता नहीं था। मेरा अनुभव बताता है कि हरेक अवैध बच्चे को अवचेतन रूप से यह पता होता है कि वह अवैध है। फ्लोरेन्स निश्चित रूप से यह जानती थी कि उसके पीछे कोई रहस्य ज़रूर है। मैंने उसकी माँ को सुझाया कि उसकी बेटी में घृणा और दुख खत्म करने का एक ही इलाज है कि उसे सच बताया जाए।

"न, मेरी हिम्मत नहीं होगी, नील। मुझे तो कोई फर्क़ नहीं पड़ेगा। पर अगर मैं उसे बता दूँ तो वह बात अपने तक नहीं रख पाएगी। और मेरी माँ उसका नाम अपनी वसीयत से काट देगी।"

मुझे डर है कि फ्लोरेन्स की मदद करने के लिए हमें तब तक इन्तज़ार करना होगा जब तक नानी जी स्वर्ग न सिधारें। जब तक उससे सच्चाई छुपाई जाएगी कुछ नहीं हो सकेगा।

हमारा एक पुराना छात्र बीस बरस का होने पर वापस आया और उसने कुछ निजी पाठ चाहे।

"पर जब तुम यहाँ थे, उस दौरान हम दर्ज़नों बार मिल चुके हैं।"

"जानता हूँ," उसने कुछ उदासी से कहा, "पर उन दर्ज़नों बार मैंने कोई परवाह न की थी। लेकिन मुझे अब उसकी ज़रूरत लगती है।"

आजकल मैं नियमित थेरेपी नहीं देता। सामान्य बच्चों को जब जन्म और हस्तमैथुन के जवाब मिल जाते हैं, जब वे यह समझने लगते हैं कि परिवारिक परिस्थितियाँ किस प्रकार घृणा और जलन को पैदा करती हैं, तो आगे करने को कुछ खास नहीं रह जाता। बच्चों की मानसिक परेशानियों का इलाज यही है कि उनकी भावनाओं को निर्बाध निकलने दिया जाए। बच्चों को मनोचिकित्सा के सिद्धान्त बताने में या उसे यह कहने से कि तुम्हारे मन में फलाँ ग्रन्थि है कोई फायदा नहीं होता।

मुझे एक पन्द्रह साल के बच्चे की याद आती है जिसकी मैंने मदद करनी चाही थी। वह हफ्तों तक मेरे पास आता रहा और एक शब्द में जवाब देता रहा। मैंने अगले सत्र के दौरान रुख पलटा और कहा, "मैं तुम्हें आज बताऊँगा कि मैं तुम्हारे बारे में क्या सोचता हूँ। तुम आलसी, बेवकूफ, अभिमानी और द्वेष से भरे हो।"

"मैं ऐसा हूँ?" उसने गुस्से से लाल होकर पूछा, "और आप खुद को क्या समझते हैं?" उस पल के बाद वह सहज हो गया और उसके लिए मतलब की बात करना आसान बन गया।

एक ग्यारह साल का लड़का था जॉर्ज। उसके पिता ग्लैसगो के पास के एक गाँव में छोटे व्यापारी थे। बच्चे के चिकित्सक ने उसे मेरे पास भेजा। उसकी समस्या थी मन में गहरा पैठा डर। उसे घर से दूर गाँव के स्कूल तक जाने में डर लगता था। घर से निकलना हो तो वह डर से चीखने-चिल्लाने लगता। बड़ी परेशानी के साथ उसके पिता उसे समरहिल ला पाए। वह खूब रोया और पिता से लिपट गया ताकि वे घर न लौटें। मैंने उसके पिता को सुझाया कि वे कुछ दिन रुकें।

उसके चिकित्सक ने मुझे उसका इतिहास भेज दिया था। उनकी टिप्पणियाँ मुझे सही और उपयोगी लगीं। पिता के घर लौटने का सवाल हमारे सामने था। मैंने जॉर्ज से बात करने की कोशिश की, पर वह बिलखता रहा कि वह घर लौटना चाहता है। "यह तो जेल है," उसने सुबकते हुए कहा। मैं उसके आँसुओं की परवाह किए बिना बात करता चला।

"जब तुम चार साल के थे, तब तुम्हारे भाई को अस्पताल ले जाया गया था। वह वहाँ से ताबूत में बन्द लौटा था"। (*जॉर्ज और सुबकने लगा।*) "तुम्हें घर से निकलने में यही डर सताता है कि कहीं तुम्हें भी कुछ हो जाएगा और तुम ताबूत में बन्द लौटोगे।" (*सुबकना और तेज़ हो गया।*) "पर दरअसल बात यह नहीं है जॉर्ज। *तुमने अपने भाई को मार डाला था।*"

उसने बात का ज़ोरदार विरोध किया, मुझे लतियाने की कोशिश की।

"तुमने उसे *सच में* नहीं मारा था, पर तुम्हें लगता था कि उसे तुम्हारी माँ का

ज़्यादा प्यार मिलता है। इसलिए तुम अक्सर इच्छा करते थे कि वह मर जाए। जब वह *सच में* मर गया तो तुम्हारे मन में अपराधबोध बैठ गया। तुम्हें लगा कि *तुम्हारे* चाहने से ही उसकी मौत हो गई। और अब तुम्हें लगता है कि तुम घर से दूर जाओगे तो तुम्हें भगवान सज़ा देने के लिए मार डालेगा।" उसका सुबकना थम गया। अगले दिन थोड़े नाटक के बाद उसने अपने पिता को लौटने दिया।

कुछ समय तक जॉर्ज को घर की याद सताती रही। पर अगली कड़ी यह थी कि अठारह महीने बाद जब वह छुट्टियों में घर लौटा तो उसने अकेले यात्रा की। लन्दन पहुँचकर खुद स्टेशन बदला और तब घर गया। समरहिल लौटते समय भी उसने ठीक वही किया।

मुझे अब यह और भी सही लगने लगा है कि उपचार की ज़रूरत बच्चों को उस वक्त नहीं होती जब वे आज़ादी के वातावरण में अपनी मनोग्रन्थियों से खेल सकें। पर जॉर्ज जैसे मामले में केवल आज़ादी से काम नहीं चलता।

पहले मैंने चोरों के साथ भी ऐसे सत्र किए हैं, उसका परिणाम देखा है। पर ऐसा भी हुआ है कि कुछ चोरी करने वाले बच्चों ने इन सत्रों के लिए आने से इन्कार किया है। फिर भी तीनेक साल आज़ादी की हवा में साँस लेने के बाद उनकी चोरी की आदत छूट गई।

समरहिल में दरअसल प्रेम ही इलाज करता है। बच्चों को यहाँ समर्थन मिलता है और स्वयं के प्रति ईमानदार बने रहने की आज़ादी भी। हमारे पैंतालीस बच्चों में चन्द ही ऐसे हैं जिन्हें निजी सत्रों की दरकार पड़ती है। मेरा यह विश्वास दिनों दिन बढ़ रहा है कि रचनात्मक कार्य द्वारा इलाज किया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि बच्चे ज़्यादा से ज़्यादा हाथ का काम, नाटक और नृत्य आदि करें।

मैं सभी बच्चों के लिए पिता का प्रतीक हूँ जो स्वाभाविक भी है। और मेरी पत्नी माँ का। सामाजिक रूप से मेरी पत्नी को माँ के प्रति लड़कियों के अवचेतन में पली नफरत झेलनी पड़ती है, जबकि मुझे उनका प्रेम मिलता है। लड़के मेरी पत्नी को अपनी माँ का सा प्यार देते हैं और मुझे मिलता है उनका आक्रोश।

पर लड़के अपना आक्रोश उतनी आसानी से ज़ाहिर नहीं करते जितनी आसानी से लड़कियाँ करती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि लड़के अपना गुस्सा चीज़ों पर निकाल लेते हैं। एक नाराज़ लड़का गेंद को लतियाता है जबकि गुस्से से भरी लड़की किसी माँ प्रतीक को अपशब्द कहती है।

फिर भी सच्चाई यह है कि एक खास समय ही है जब लड़कियों को झेलना सच में मुश्किल होता है। वह है किशोरावस्था के पहले का समय और किशोरावस्था का पहला वर्ष। पर सभी लड़कियाँ इस चरण से गुज़रें यह ज़रूरी भी नहीं है। यह सब

उनके पिछले स्कूल के अनुभव पर और खासकर सत्ता के प्रति उनकी माँ के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

निजी सत्रों के दौरान मैं घर और स्कूल के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं के बीच जो रिश्ते थे उसकी ओर संकेत करता था। अपनी आलोचना को मैं पिता की आलोचना होने की बात बताता। मेरी पत्नी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को मैं माँ के विरुद्ध आरोप दर्शाता था। मैं इस विश्लेषण को वस्तुगत स्तर तक रखता क्योंकि आत्मगत गहराइयों तक उतरना बच्चों के लिए अनुचित होता।

ज़ाहिर है कि ऐसे कुछ मौके भी आते हैं जब एक आत्मगत विश्लेषण ज़रूरी होता है, जैसा जेन को लेकर हुआ। तेरह वर्षीय जेन स्कूल भर में घूमती और तमाम बच्चों से कहती कि नील उन्हें बुला रहा है।

मेरे पास बच्चों का ताँता बँध गया "जेन ने कहा कि आपने बुलाया है।" मैंने जेन को बाद में बताया कि दूसरों को मेरे पास भेजने का मतलब यह है कि दरअसल वह खुद आना चाहती थी।

इन सत्रों के दौरान मैं क्या विधि अपनाता था? मेरा कोई तयशुदा तरीका नहीं था। कभी मैं सवाल पूछता, "जब आइने में अपनी शक्ल देखते हो तो क्या वह पसन्द आती है?" जवाब हमेशा ''नहीं'' होता।

"अपने चेहरे में सबसे खराब क्या लगता है?" जवाब हमेशा होता, "मेरी नाक।"

वयस्क भी यही जवाब देते हैं। बाहरी दुनिया के लिए चेहरा ही व्यक्ति है। जब लोगों को याद करते हैं तो चेहरे ही उभरते हैं। जब हम बात करते हैं तो हम चेहरे ही देखते हैं। यूँ हमारे आन्तरिक 'स्व' का बाहरी चित्र हमारा चेहरा बन जाता है। जब कोई बच्चा कहता है कि उसे अपना चेहरा पसन्द नहीं है तो उसका मतलब है कि उसे अपना व्यक्तित्व पसन्द नहीं है। मेरा अगला सवाल चेहरे से हटकर 'स्व' से जुड़ा होता है। "अपने आप में सबसे ज़्यादा घृणा किस चीज़ से होती है?" मैं पूछता।

अमूमन जवाब शरीर से जुड़ा होता। "मेरे पैर बेहद बड़े हैं।" "बेहद मोटा हूँ।" "बहुत छोटी हूँ।" "मेरे बाल।" मैं कोई मत ज़ाहिर नहीं करता। कभी सहमत नहीं होता कि वह लड़का या लड़की बहुत मोटा या पतली है। न मैं बातचीत को किसी खास दिशा में बढ़ाने की कोशिश करता। अगर शरीर में रुचि लगती हो तो हम उसके बारे में तब तक बात करते जब तक कुछ और कहने को नहीं बचता। तब हम व्यक्तित्व की ओर बढ़ते।

कई बार मैं एक परीक्षा भी ले लेता। "मैं कुछ चीज़ें लिखता हूँ, उनसे तुम्हें जाँचूँगा। तुम्हें जितने सही लगें, उतने नम्बर तुम खुद को देना। उदाहरण के लिए तुमसे

पूछूँगा कि तुम खुद को खेलकूद में या साहस में सौ में से कितने नम्बर दोगे?" और यूँ परीक्षा शुरू हो जाती।

एक चौदह साल के लड़के की परीक्षा कुछ यूँ थीः

शक्ल सूरत : "ओह, तकरीबन पैंतालीस प्रतिशत।"

दिमाग : "साठ।"

साहस : "पच्चीस।"

वफादारी : "मैं अपने दोस्तों से दगा नहीं करता - अस्सी।"

संगीत का ज्ञान : "शून्य।"

हाथ का काम : (*कुछ बुदबुदाया, अस्पष्ट उत्तर।*)

घृणा : "कठिन सवाल है। मुझे पता नहीं।"

खेलकूद : "छियासठ।"

सामाजिक भावना : "नब्बे।"

बेवकूफी : "ओह, करीब एक सौ नब्बे प्रतिशत।"

ज़ाहिर है कि बच्चे के उत्तरों से चर्चा का मौका मिलता था। मैं हमेशा बच्चे के अहम् से शुरू करता था क्योंकि इससे उसकी रुचि जगती थी। इससे जब हम उसके परिवार की चर्चा करते तो बच्चा सहज होता और रुचि भी लेता।

छोटे बच्चों के साथ बातचीत अधिक स्वतःस्फूर्त होती। मैं बच्चे के जवाबों के सहारे आगे बढ़ता। छह साल की मार्गरेट के पहले सत्र का उदाहरण लें। वह मेरे कमरे में आई और बोली "मुझे निजी सत्र चाहिए।"

"ठीक है" मैंने कहा।

वह आरामकुर्सी में बैठी।

"निजी सत्र आखिर होता क्या है?" उसने पूछा।

"सीखने की चीज़ नहीं है यह," मैंने कहा। "पर मेरी जेब में कहीं एक गोली थी ज़रूर। ये रही।" मैंने उसे मीठी गोली दी।

"तुम्हें निजी सत्र क्यों लेना है?"

"एविलिन को निजी सत्र दिया था, इसलिए मुझे भी चाहिए।"

"बढ़िया! तुम शुरू करो। तुम्हें किस बारे में बात करनी है?"

"मेरी एक गुड़िया है।" (*चुप्पी*) "वो आले में रखी चीज़ कहाँ से लाए?" (*ज़ाहिर है कि सवाल का जवाब पाने तक उसे रुकना नहीं है।*) "इस घर में तुम आए उससे पहले यहाँ कौन रहता था?" उसके सवालों से पता चला कि वह कोई सच्चाई

जानना चाहती है। मुझे अन्दाज़ से यह लगता है कि वह जन्म के बारे में जानना चाहती है।

"बच्चे कहाँ से आते हैं?" मैं अचानक पूछता हूँ।

मार्गरेट उठकर दरवाज़े तक जाती है।

"मुझे निजी सत्र पसन्द नहीं है," इतना कहकर वह बाहर निकल जाती है। पर कुछ ही दिनों बाद फिर से निजी सत्र चाहती है - और हम आगे बढ़ते हैं।

नन्हे टॉमी, उम्र छह साल, को निजी सत्र तब तक बुरा नहीं लगा जब तक उनमें 'क्रूर' बातें नहीं होतीं। पहले तीन सत्रों में वह रुष्ट होकर चला गया। मुझे पता था क्यों। मुझे मालूम था कि केवल क्रूर चीज़ें उसे पसंद थीं। वह हस्तमैथुन पर पाबंदी का शिकार था।

कई बच्चों को कभी निजी सत्र नहीं दिया गया। क्योंकि वे इसे चाहते ही नहीं थे। उनके अभिभावकों ने उन्हें झूठ और उपदेशों के सहारे नहीं पाला था।

थेरेपी तुरन्त इलाज नहीं करती। जिस बच्चे का उपचार चल रहा हो उसे लगभग साल भर तक कुछ फायदा नहीं होता। इसलिए मैं उन बड़े छात्र-छात्राओं को लेकर हताश नहीं होता जो स्कूल से उस स्थिति में ही निकल जाते हैं जिसे हम अधपकी मानसिक स्थिति कह सकते हैं।

टॉम को हमारे पास बस इसलिए भेजा गया क्योंकि वह अपने स्कूल में असफल रहा था। मैंने उसके साथ कई गहन सत्र किए। परन्तु इसका कोई ज़ाहिर असर नहीं हुआ। जब उसने समरहिल छोड़ा तो लगता यह था कि वह जीवन में भी असफल ही रहेगा। पर साल भर बाद उसके अभिभावकों का पत्र आया। उन्होंने बताया कि वह डॉक्टर बनना चाहता है और खूब जमकर पढ़ाई कर रहा है।

बिल तो और भी लाइलाज लगता था। उसे तीन साल तक निजी सत्र देने पड़े। जब स्कूल छोड़ा तो वह एक दिशाहीन अठारह वर्षीय लड़का था। साल भर वह छुटपुट नौकरियाँ करता रहा। तब उसने तय किया कि वह खेती करना चाहता है। मैंने सुना है कि वह अच्छा काम कर रहा है और उसे अपना काम पसन्द भी है।

दरअसल ये निजी सत्र पुनर्शिक्षा ही थे। इनका लक्ष्य था उन तमाम ग्रँथियों को छाँटना जो नैतिकता के उपदेशों व भय से उपजती हैं।

समरहिल जैसी मुक्तशाला बिना ऐसे सत्रों के भी चलाई जा सकती है। वे तो दिमागी सफाई कर पुनर्शिक्षा की प्रक्रिया को तेज़ भर करते हैं ताकि आज़ादी का सुहाना मौसम शुरू हो सके।

स्वशासन

समरहिल एक स्वशासित शाला है, जिसका स्वरूप लोकतांत्रिक है। सामाजिक या सामूहिक जीवन से जुड़ी सभी बातों को, जिसमें सामाजिक अपराधों की सज़ा भी शामिल है, शनिवार की आमसभा में वोट द्वारा तय किया जाता है।

हरेक शिक्षक और बच्चे का एक-एक वोट होता है, फिर चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो। मेरे और एक सात साल के बच्चे के मत का दर्ज़ा समान है।

कोई मुस्कुराकर कह सकता है, "पर तुम्हारी आवाज़ की कीमत तो ज़्यादा होगी ही, न?" इसे भी जाँच लें। एक बार मैंने सुझाव रखा कि सोलह साल से कम उम्र वाले किसी बच्चे को धूम्रपान न करने दिया जाए। मैंने अपनी बात के तमाम तर्क पेश किए - तम्बाकू नशा है, ज़हरीला है, बच्चों में दरअसल इसकी चाहत भी नहीं होती। वे तो यह जताने के मकसद से सिगरेट पीते हैं कि वे बहुत बड़े हो गए हैं। इन तर्कों के विरुद्ध तमाम तर्कों की बौछार हुई। तब वोट पड़े। मेरा सुझाव काफी वोटों से पिट गया।

पर इसके बाद जो हुआ वह गौर करने लायक है। मेरे परास्त होने के बाद एक सोलह साल के लड़के ने प्रस्ताव रखा कि बारह साल से कम उम्र वाले बच्चों को सिगरेट पीने की छूट न हो। उसका सुझाव मान लिया गया। पर अगले ही सप्ताह बारह साल के एक बच्चे ने नया नियम वापस लेने की बात यह कहकर की कि, "हम सब पाखानों में लुकछिपकर सिगरेट पी रहे हैं। जैसे कठोर स्कूल के चंट बच्चे करते हैं। मेरा मानना है कि यह समरहिल के विचार के विरुद्ध है।" उसके भाषण पर खूब तालियाँ बजीं और सभा ने नियम वापस ले लिया। आशा है मैं स्पष्ट कर सका हूँ कि मेरी आवाज़ हमेशा एक बच्चे की आवाज़ से ज़्यादा ताकतवर नहीं होती।

एक बार मैंने सोने के समय के नियम को तोड़ने और उसके फलस्वरूप अगली सुबह उनींदे बच्चों के इधर-उधर घूमने की कड़ी आलोचना की। मैंने सुझाव दिया कि जब कोई बच्चा यह नियम तोड़े तो सज़ा के बतौर उसका पूरा जेबखर्च कट जाना चाहिए। जवाब में एक चौदह वर्षीय बच्चे ने कहा, "जो रतजगे के बावजूद अगली सुबह जग पाएँ उन्हें हर घण्टे के हिसाब से एक पेनी इनाम मिलना चाहिए।" मुझे कुछ वोट मिले परन्तु अधिकतर वोट उसे ही मिले।

समरहिल की सरकार में कोई अफसरशाही नहीं है। हर सभा का सभापति एक

अलग व्यक्ति होता है, जिसे पिछली सभा का सभापति नियुक्त करता है। सचिव का काम स्वैच्छिक होता है। सोने के समय के अधिकारी कुछ सप्ताह में बदल दिए जाते हैं।

हमारा लोकतंत्र अच्छे कानून बनाता है। उदाहरण के लिए बिना लाइफ गार्ड की मौजूदगी के समुद्र में कोई नहीं तैरेगा। और लाइफ गार्ड हमेशा शिक्षक होते हैं। छतों पर चढ़ना मना है। समय से सोना ज़रूरी है, नहीं तो स्वतः फाइन लगता है। छुट्टी होने के पहले वाले बृहस्पति या शुक्रवार को कक्षाएँ लगें या नहीं, यह आमसभा में हाथ खड़े कर तय कर लिया जाता है।

सभाओं की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सभापति कमज़ोर है या मज़बूत। क्योंकि पैंतालीस जोशीले बच्चों के बीच व्यवस्था बनाए रखना आसान काम नहीं है। सभापति शोर मचाने वालों पर फाइन लगा सकता है। किसी कमज़ोर सभापति के कार्यकाल में ढेरों फाइन जमने लगते हैं।

शिक्षक चर्चा में हिस्सा लेते हैं। मैं भी लेता हूँ। पर कई ऐसी स्थितियाँ होती हैं जहाँ मुझे निष्पक्ष रहना पड़ता है। मैंने कभी यह भी देखा है कि जिस पर किसी ज़ुर्म का आरोप लगाया गया, वह गवाही के बूते पर साफ छूट गया जबकि उसने अकेले में मुझे बताया था कि उसने गुनाह किया था। ऐसे में मैं हमेशा उसी व्यक्ति का पक्ष लेता हूँ।

अपना वोट डालने या प्रस्ताव रखने में मेरी भागीदारी रहती है। इसका एक उदाहरण देखें। मैंने एक बार सवाल उठाया कि बैठकघर में फुटबॉल खेली जानी चाहिए या नहीं? बैठकघर मेरे दफ्तर के नीचे है। मैंने बताया कि काम करते समय मुझे फुटबॉल का शोर पसन्द नहीं है। सो मेरा सुझाव था कि कमरों के अन्दर फुटबॉल खेलने पर मनाही लगा दी जाए। कुछ लड़कियों, कुछ बड़े लड़कों और अधिकांश शिक्षकों ने मेरा समर्थन किया। पर मेरा प्रस्ताव पारित न हो सका। मतलब हुआ कि मुझे शोर-शराबे को झेलने पर बाध्य होना पड़ा। कई बैठकों में इस पर काफी बहसबाज़ी हुई। अन्ततः मुझे बहुमत का समर्थन मिला और बैठकघर में फुटबॉल खेलना बन्द हो सका। यही वह तरीका है जिससे हमारे स्कूल के लोकतंत्र में अल्पमत को अपने अधिकार मिलते हैं। उन्हें अपने अधिकार बारबार माँगने पड़ते हैं। यह बात छोटे बच्चों पर उतनी ही लागू होती है जितनी वयस्कों पर।

स्कूली जीवन के कुछ पक्ष ऐसे भी हैं जो स्वशासन के तहत नहीं आते। मेरी पत्नी सोने के कमरों की व्यवस्था, खाने में कब, क्या बनेगा और बिलों का लेनदेन सँभालती है। मैं शिक्षकों को नियुक्त करता हूँ और अगर वे अनुपयुक्त हों तो उन्हें जाने को कहता हूँ।

समरहिल में स्वशासन का मकसद केवल कानून बनाना नहीं है, बल्कि एक समुदाय के सामाजिक पक्षों पर चर्चा करना भी है। हर सत्र की शुरुआत में सोने के समय के नियम मतदान से तय किए जाते हैं। यह उम्र के अनुसार तय किया जाता है। तब सामान्य व्यवहार सम्बंधी मसले उठते हैं। खेलकूद की समिति चुनी जाती है, साल शेष होने पर नृत्य आयोजन की समिति और नाट्य समिति, सोने के समय के अधिकारी, शहर में जाने पर निगरानी करने वाले अधिकारी; जो स्कूल के बाहर किए गए दुर्व्यवहार की रपट देते हैं आदि भी चुने जाते हैं।

जो विषय हमेशा उत्तेजना पैदा करता है वह है खाने का। मैंने कई मर्तबा उबाऊ बैठकों को इस प्रस्ताव से गर्माया है कि बच्चों को दूसरी बार कोई चीज़ लेने की मनाही कर दी जाए। रसोई में अगर किसी के साथ पक्षपात होता नज़र आता है तो उससे सख़्ती से निपटा जाता है। जब रसोईघर से खाना बर्बाद करने की शिकायत होती है तो उसमें सभा की खास रुचि नहीं रहती है। खाने के बारे में बच्चों का दृष्टिकोण निहायत व्यक्तिगत और आत्मकेन्द्रित होता है।

आमसभा में किसी भी तरह की पढ़ाई सम्बंधी चर्चाओं से सब बचते हैं। बच्चे व्यावहारिक होते हैं। उन्हें सिद्धान्त बेहद उबाते हैं। उन्हें ठोस चीज़ें पसन्द आती हैं, अमूर्त नहीं। मैंने एक बार प्रस्ताव रखा कि गाली देना कानूनन बन्द किया जाए और मैंने इसके कारण भी सामने रखे। "मैं एक महिला को उसके बेटे के साथ स्कूल दिखा रहा था। वह बच्चा भावी छात्र था। अचानक से एक तेज़-तर्रार विशेषण सुनाई दिया। वह माँ अपने बेटे को लेकर भागी। भावी अभिभावकों के सामने किसी बेवकूफ की गालियों की वजह से मेरी आय में नुकसान क्यों होना चाहिए? यह नैतिकता का सवाल नहीं है, वित्त का सवाल है। तुम गाली देते हो और मैं एक छात्र खो बैठता हूँ।" मेरे सवाल का जवाब एक चौदह साल के लड़के ने दिया। "नील बकवास कर रहा है। अगर महिला सच में इससे सकते में आ गई है तो ज़ाहिर है कि समरहिल में उसका विश्वास नहीं था। अगर वो अपने बेटे का दाखिला करवा भी देती और जब वह पहली बार घर लौटकर कोई हल्की-सी गाली देता, तो वह उसे तुरन्त स्कूल से निकाल लेती।" सभा ने उसकी बात मानी और मेरा प्रस्ताव गिर गया।

आमसभा में अक्सर दादागिरी के मसले से निपटना पड़ता है। हमारा समुदाय दादाओं से सख्ती बरतता है। मैंने पाया है कि हमारे सूचना-पट पर स्कूल नियमों में दादागिरी वाले नियम को अक्सर रेखांकित कर दिया जाता है - *दादागिरी की सभी घटनाओं से सख़्ती से निपटा जाएगा।* फिर भी हमारे यहाँ दादागिरी उतनी नहीं होती जितनी कठोर स्कूलों में होती है। इसका कारण तलाशने की ज़रूरत भी नहीं है। वयस्कों के अनुशासन में बच्चों में नफरत पनपती है। क्योंकि वह इसे वयस्कों पर निकाल नहीं सकता, वह अपने से छोटे या कमज़ोर बच्चे पर

निकालता है। ऐसा समरहिल में कम ही होता है। आमतौर पर दादागिरी वाली घटनाओं की तहकीकात करने पर पता चलता है कि आरोप के पीछे की घटना महज़ इतनी थी कि जेनी ने पेगी को पगली कहा था।

कई बार आमसभा में चोरी की वारदात उठाई जाती है। चोरी की सज़ा कभी सख़्त नहीं होती। पर चुराई चीज़ हमेशा लौटानी पड़ती है। अक्सर बच्चे मुझसे आकर पूछते हैं, "जॉन ने डेविड के कुछ सिक्के चुरा लिए। क्या यह मनोविज्ञान का मसला है? या हम इसे सभा में उठाएँ?"

अगर मुझे लगता है कि बात किसी तरह उस बच्चे के मनोविज्ञान से जुड़ी है, जिसमें बच्चे पर व्यक्तिगत ध्यान देने की ज़रूरत है तो मैं उन्हें मामला छोड़ देने को कहता हूँ। अगर जॉन एक खुश और सामान्य लड़का है, जिसने कोई छुटपुट चीज़ उठा ली है, तो मैं उस पर आरोप लगाने देता हूँ। इससे सबसे बुरा बस यही हो सकता है कि जब तक वह पूरे पैसे लौटा न दे, उसके पास जेब खर्च के लिए फूटी कौड़ी नहीं बचती।

आमसभा की बैठकें कैसे चलाई जाती हैं?

हर सत्र के प्रारम्भ में एक बैठक के लिए एक सभापति चुना जाता है। बैठक के अन्त में वह दूसरे सभापति को चुनता है। ऐसा पूरे सत्र भर होता है। जिस किसी की कोई शिकायत हो, कोई आरोप लगाना हो, सुझाव रखना हो या कोई नए कानून का प्रस्ताव रखना हो, तो वह अपनी बात को आमसभा में रख सकता है।

इसका एक उदाहरण देखेंः जिम ने जैक की साइकिल के पैडल ले लिए क्योंकि उसकी खुद की साइकिल दुरुस्त नहीं थी और वह दूसरे लड़कों के साथ सप्ताह के अन्त में होने वाले भ्रमण के लिए जाना चाहता था। सारे सबूतों को देखने के बाद सभा ने तय किया कि उसे यात्रा में जाने नहीं दिया जाए।

सभापति ने पूछा, "कोई आपत्तियाँ?"

जिम खड़ा हुआ और ज़ोर से बोला, "आपत्तियाँ तो होंगी ही।" पर उसने जिस विशेषण का उपयोग किया वह कुछ और था। "यह उचित नहीं है," वह बोला। "मुझे पता ही नहीं था कि जैक अपने पुराने खटारे का कभी इस्तेमाल भी करता है। वह साइकिल तो कब से झाड़ियों में पड़ी हुई थी। मैं उसका पैडल वापस लगा दूँगा, पर मुझे सज़ा सही नहीं लगती। मुझे यात्रा से निकालना नहीं चाहिए।"

इस पर बहस छिड़ी। बातचीत में पता चला कि जिम को हमेशा घर से साप्ताहिक जेब खर्च मिलता था। पर पिछले छह सप्ताह से उसके पैसे आए ही नहीं थे। उसके पास फूटी कौड़ी न थी। सभा ने तय किया कि सज़ा न दी जाए। और सज़ा नहीं दी गई।

पर जिम का क्या हो? अन्ततः तय होता है कि सब चन्दा करके उसकी साइकिल सुधरवा देंगे। उसके स्कूली साथी मिलजुलकर साइकिल के पैडल खरीद देते हैं और जिम खुशी-खुशी अपनी यात्रा पर जाता है।

आम तौर पर दोषी बच्चा सभा का फैसला मानता है। पर अगर फैसला किसी को बिल्कुल मान्य न हो तो वह अपील कर सकता है। ऐसी स्थिति में सभापति बैठक के अन्त में मामला फिर से उठाता है। अपील के समय मसले को और गौर से देखा जाता है और अमूमन मूल फैसले को असन्तोष के चलते कुछ कम कर दिया जाता है। बच्चे यह बात समझते हैं कि अगर दोषी बच्चे को यह लग रहा है कि उसके साथ अन्याय हो रहा है, तो सम्भवतः सच में अन्याय ही हो रहा हो।

समरहिल का कोई भी दोषी समुदाय की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह या नफरत नहीं जताता है। मुझे हमेशा आश्चर्य होता है कि वे सज़ा पाने पर भी विनय जताते हैं।

एक सत्र के दौरान चार बड़े बच्चों पर आमसभा में आरोप लगा कि वे एक गैर-कानूनी काम कर रहे हैं। वे अपने कपड़े बेच रहे थे। इस पर कानूनी पाबन्दी है क्योंकि यह दरअसल माता-पिता के साथ अन्याय तो है ही जो कपड़े खरीदते हैं। साथ ही स्कूल के साथ भी अन्याय है, क्योंकि अभिभावक कपड़े गायब हो जाने पर स्कूल पर अव्यवस्था का दोष मढ़ते हैं। चारों को सज़ा मिली। सज़ा यह कि वे चार दिन स्कूल के बाहर नहीं निकलेंगे और हर रात आठ बजे सोने चले जाएँगे। उन्होंने बिना चूँ-चपड़ किए मान लिया। सोमवार रात जब सब शहर में फिल्म देखने चले गए, मैंने अपराधियों में से एक, डिक को बिस्तर पर पसरे पढ़ते पाया।

"तुम भी अजीब गधे हो," मैंने कहा। "सब फिल्म देखने चले गए हैं। तुम उठकर घूमते-फिरते क्यों नहीं हो?"

"मज़ाक मत करो," उसने कहा।

अपने लोकतन्त्र के प्रति समरहिल के छात्र-छात्राओं की निष्ठा अद्‌भुत है। इसमें न तो भय है न ही नाराज़गी। मैंने एक लड़के को किसी असामाजिक कृत्य के लिए एक लम्बी जाँच से गुज़रते देखा है। उसे सज़ा मिलते देखा है। अक्सर जिस लड़के को सज़ा मिली हो उसे अगली बैठक में सभापति भी चुना जाता है।

बच्चों में न्याय का जो भाव है वह मुझे हमेशा आश्चर्य से भर देता है। उनकी प्रशासनिक क्षमताएँ भी खूब हैं। शिक्षा के रूप में स्वशासन बेहद कीमती है।

कुछ ऐसे भी अपराध होते हैं जो स्वतः दण्ड की श्रेणी में आते हैं। जैसे बिना अनुमति लिए किसी दूसरे की साइकिल चलाना। इस पर छह पेन्स का फाइन है। शहर में जाकर गाली-गलौज करना (स्कूल में इसकी छूट है), फिल्म देखते समय दुर्व्यवहार करना, छत पर चढ़ना, भोजनागार में खाना बर्बाद करना आदि। ये और ऐसे दूसरे अपराधों पर स्वतः फाइन लगता है।

सज़ा अमूमन फाइन ही होती हैः सप्ताह भर का अपना जेब खर्च दो या एक फिल्म देखने न जाओ।

जो बच्चे जज बनते हैं उन पर एक आरोप हमेशा लगता है, वह यह कि वे बेहद कठोर दण्ड देते हैं। मुझे ऐसा नहीं लगता। बल्कि लगता यह है कि वे बड़े उदार हैं। कोई ऐसी घटना याद नहीं आती जब किसी को कठोर सज़ा मिली हो। साथ ही दी गई सज़ा का अपराध से रिश्ता होता है।

तीन लड़कियों ने दूसरों की नींद में खलल डाला। सज़ा थी सप्ताह भर तक एक घण्टे पहले सोने जाओ। दो लड़कों ने एक बच्चे पर ढेले फेंके। उनकी सज़ा थी कि वे हॉकी के मैदान तक ढेले ढोकर ले जाएँ।

कई बार ऐसा भी होता जब सभापति कहता यह आरोप बेवकूफी का है और वह तय कर लेता कि किसी सज़ा की ज़रूरत नहीं है।

जब हमारे सचिव पर आरोप लगा कि उसने बिना अनुमति के जिंजर की साइकिल चलाई है तो उसे और दो अन्य शिक्षकों को, जिन्होंने भी ठीक यही किया था, कहा गया कि वे एक-दूसरे को जिंजर की साइकिल पर बैठाकर सामने वाले बाग के दस चक्कर लगाएँ।

जब चार छोटे बच्चे नई वर्कशाप बनाने वाले मज़दूरों की सीढ़ी पर चढ़े तो उन्हें यह सज़ा दी गई कि वे लगातार दस मिनट तक सीढ़ी पर ऊपर-नीचे चढ़ें और उतरें।

सज़ा के मामले में सभा किसी वयस्क की सलाह नहीं लेती। मुझे बस एक वाकया याद आता है जब ऐसा किया गया। तीन लड़कियों ने रसोई पर गुपचुप धावा बोला। बैठक में उनका जेब खर्च जब्त करने की सज़ा दी गई। उसी रात उन्होंने फिर से यही किया, सज़ा के रूप में एक फिल्म देखने की मनाही हुई। वे तीसरी बार फिर रसोई में खाना चुराने पहुँचीं। बैठक में खूब विचार हुआ। सभापति ने मुझसे सलाह की। "हरेक को दो-दो पेन्स का इनाम दो," मैंने सुझाया। "क्या? पता है ऐसा किया तो पूरा स्कूल ही रात को रसोई में घुसने लगेगा।"

"ऐसा कुछ नहीं होगा," मैंने कहा, "आज़माकर देखो।"

उसने नई सज़ा आज़माई। दो लड़कियों ने इनाम का पैसा लेने से इन्कार कर दिया। तीनों को घोषणा करते सुना गया कि वे कभी रसोईघर से खाना नहीं चुराएँगी। और सच में उन्होंने खाना नहीं चुराया - लगभग दो महीने तक।

आमसभा में दूसरों पर उपदेश छाँटने का रवैया बिरले ही अपनाया जाता है। इसका आभास तक समुदाय नापसन्द करता है। एक ग्यारह साल का लड़का था। उसे आत्मप्रदर्शन की आदत थी। वह अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के मकसद से

लम्बी, पेचीदा पर बेतुकी टिप्पणियाँ करता था। यानी कोशिश करता पर बाकी बच्चे शोर मचाकर उसे चुप कर देते थे। बच्चे पाखण्ड को फौरन ताड़ लेते हैं।

मेरा विश्वास है कि हम समरहिल में यह सिद्ध कर चुके हैं कि स्वशासन कारगर है। जिस स्कूल में यह न हो उसे किसी सूरत में प्रगतिशील नहीं कहना चाहिए। वह महज़ समझौता स्कूल है। अगर बच्चों को अपने सामाजिक जीवन को खुद पूरी तरह नियमित करने की आज़ादी न हो, तो वह मुक्तशाला हो ही नहीं सकती। जहाँ कोई एक बॉस हो वहाँ वास्तविक आज़ादी नहीं होती। यह बात किसी अनुशासक की बनिस्बत किसी सहृदय बॉस पर ज़्यादा लागू होती है। किसी कठोर बॉस के विरुद्ध एक साहसी बच्चा विद्रोह कर सकता है, पर ढुलमुल बॉस बच्चे में अपनी वास्तविक भावनाओं के बारे में अनिश्चय जगाता है।

किसी स्कूल में स्वशासन तब ही सम्भव है जब वहाँ कुछ ऐसे बड़े बच्चे भी हों जो शान्त जीवन पसन्द करते हों और उस उम्र के बच्चों की उदासीनता या विरोध से लड़ सकते हों, जिस उम्र में उनमें उजड्ड़पन हावी होता है। ये बड़े बच्चे ही स्वशासन में विश्वास रखते हैं लेकिन अक्सर उन्हें जनमत नहीं मिलता। दूसरी तरफ बारह साल की उम्र तक के बच्चे स्वशासन खुद नहीं चला सकते। क्योंकि इस उम्र में वे अपनी बातचीत में तो सामाजिक हो सकते हैं पर समुदाय की व्यवस्था चलाने के लिए छोटे होते हैं। लेकिन समरहिल में सात साल तक के बच्चे भी कभी आम सभा में आने से नहीं चूकते।

एक ऐसा बुरा समय आया जब हमारे स्कूल में बहुत कम बड़े बच्चे बच गए थे क्योंकि उनमें से अधिकांश विश्वविद्यालय के इम्तहानों में पास होकर चले गए थे। बहुमत उन बच्चों का रहा जिनपर उजड्ड़पन सवार था। वे अपने भाषणों में तो समुदाय के पक्ष में बोलते थे परन्तु सामुदायिक कार्यों को चलाने में असमर्थ थे। वे खुद ढेरों कानून बनाते हैं फिर उन्हें खुद ही तोड़ने लगते हैं। स्कूल में जो थोड़े से बड़े बच्चे थे वे व्यक्तिनिष्ठ बन चले थे। अपना जीवन अपने समूह में बिताते थे। स्कूल के कायदे-कानून तोड़ने की शिकायत शिक्षकों की ओर से ज़्यादा होने लगी। एक आमसभा में मुझे बच्चों पर आक्षेप लगाने पर बाध्य होना पड़ा। मैंने उन्हें असामाजिक नहीं, बल्कि स्वयं को समाज से ऊपर समझने वाला कहा। आरोप लगाया कि वे सोने के समय के बाद भी जगे रहते हैं और छोटे बच्चों के असामाजिक व्यवहार में कोई रुचि नहीं लेते। सच कहें तो व्यवस्था चलाने में छोटे बच्चों की रुचि सीमित होती है। अगर सब कुछ उन पर छोड़ दिया जाए तो मुझे शक है कि वे कभी सरकार बना पाएँगे। उनके मूल्य हमारे मूल्य नहीं हैं। न ही उनका शिष्टाचार हमारा शिष्टाचार है।

वयस्कों के लिए अमन और चैन से जीने का सबसे आसान तरीका है कठोर अनुशासन। ड्रिल सार्जेन्ट तो कोई भी बन सकता है। समरहिल में हमारी कोशिशें

और भूलें वयस्कों को चैन की ज़िन्दगी जीने नहीं देतीं। पर बच्चों की ज़िन्दगी भी उतने शोर-शराबे से भरी नहीं हो पाती है जितनी वे चाहते हैं। शायद स्थिति को बच्चों की प्रसन्नता से ही नापा जा सकता है। इस मानदण्ड से चलें तो समरहिल की स्वशासन प्रणाली में हम एक असरकारक समझौता तलाश सके हैं।

खतरनाक हथियारों का हमारा नियम इसी प्रकार का समझौता है। एयरगन पर मनाही है। चन्द बच्चे जो एयरगन चाहते हैं उन्हें यह कानून नापसन्द है। फिर भी वे अमूमन इस नियम को मानते हैं। जब मनाही कम हो तो बच्चे को किसी बात पर इतना बुरा नहीं लगता जितना वयस्कों को लगता है।

समरहिल की एक समस्या सतत है। उसे आप *व्यक्ति बनाम समुदाय* कह सकते हैं। शिक्षक और छात्र-छात्राएँ उस वक्त आजिज़ आ जाते हैं जब किसी समस्यात्मक लड़की के नेतृत्व में कुछ लड़कियाँ दूसरों को परेशान करती हैं। किसी पर पानी फेंकना, सोने के समय का नियम तोड़ना और सबको तंग करना। उनकी नेता जीन पर आमसभा में आरोप लगते हैं। कठोर शब्दों में कहा जाता है कि वह आज़ादी का दुरुपयोग कर उसे उच्छृंखलता में बदल रही है।

एक मेहमान मनोवैज्ञानिक ने मुझसे कहा, ''यह गलत हो रहा है। लड़की का चेहरा बताता है कि वह बड़ी दुखी है। उसे कभी प्यार नहीं मिला है। यह खुली आलोचना उसे यही बता रही है कि उसे कोई प्यार नहीं करता। जीन को विरोध नहीं प्रेम की ज़रूरत है।''

मैंने उनसे कहा, ''देवीजी, हम उसे प्यार से बदलने की कोशिश *कर* चुके हैं। कई सप्ताहों तक उसे असामाजिक काम पर इनाम दिया गया है। हमने उसके प्रति स्नेह और सहनशीलता दिखाई है। पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई है। उसने हम सबको बेवकूफ मान लिया है। उसे लगता है कि वह आसानी से अपना आक्रोश हम पर निकाल सकती है। हम एक के पीछे पूरे समुदाय को बलि नहीं दे सकते।''

सच यह है कि इस द्वन्द्व का पूरा जवाब मेरे पास नहीं है। मुझे पता है कि जब जीन पन्द्रह साल की होगी तो वह एक गुण्डाटोली की नेता नहीं रहेगी। उसका व्यवहार भी दोस्ताना हो जाएगा। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मेरी सार्वजनिक राय में अटूट आस्था है। कोई भी बच्चा सालों-साल तक नापसन्दी और आलोचना को नहीं झेल सकता। जहाँ तक स्कूल की आमसभा का सवाल है, तो ज़ाहिर है कि समस्यात्मक बच्चों के पीछे शेष बच्चों की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।

हमारे पास एक बार एक छह साल का बच्चा आया था जिसकी समरहिल आने से पहले की ज़िन्दगी बड़ी दुखद थी। वह आक्रामक दादागीरी करता था, बेहद तोड़-फोड़ करता था और घृणा से भरा था। चार-पाँच साल की उम्र वाले बच्चों

को उसने खूब यातना दी, वे ज़ार-ज़ार रोए। समुदाय को उनके बचाव का उपाय करना था। ऐसा करना उस दादा लड़के के विरुद्ध ही होता। पर एक बच्चे के माता-पिता की गल्तियों की सज़ा उन बच्चों को तो नहीं दी जा सकती जिनके माता-पिता ने बेहद लाड़-प्यार से उन्हें पाला हो।

चन्द ऐसे मौके भी आए जब मुझे किसी बच्चे को इस कारण घर वापस भेजना पड़ा, क्योंकि दूसरे बच्चों के लिए उसने स्कूल नरक बना दिया था। यह बात मैं बड़े दुख और असफलता की भावना के साथ बता रहा हूँ। पर दूसरा कोई चारा मेरे सामने था ही नहीं।

क्या इस लम्बी अवधि में मुझे स्वशासन पर अपने विचार बदलने पड़े हैं? मोटे-मोटे रूप में नहीं। मैं उसके बिना समरहिल की कल्पना तक नहीं कर सकता। यह तरीका हमेशा लोकप्रिय रहा। हमारे मेहमानों के लिए भी यह एक देखने लायक चीज़ है। मेहमानों की उपस्थिति में नुकसान भी हैं। जैसे एक बैठक में पास बैठी चौदह साल की लड़की फुसफुसाई, "मैं सैनिटरी नैपकिन फेंककर संडास का मुँह बन्द कर देने की बात उठाना चाहती थी। पर देखो तो कितने मेहमान बैठे हैं।" मैंने सुझाया, "उनकी परवाह न करो, जो बात कहनी है वह ज़रूर कहो।" उसने यही किया।

व्यावहारिक नागरिक शास्त्र का शैक्षणिक लाभ है। इसकी महत्ता पर बल देना ही चाहिए। समरहिल के छात्र-छात्राएँ स्वशासन के अधिकार की रक्षा में लड़ने-मरने को तैयार रहते हैं। मेरी राय तो यह है कि स्कूली विषयों की सप्ताह भर की पढ़ाई की तुलना में एक आमसभा का अधिक मूल्य है। सार्वजनिक रूप से भाषण देने के अभ्यास का भी यह एक उम्दा मंच है। अधिकांश बच्चे बिना हिचक के और बेहद अच्छी तरह से बोलते हैं। मैंने कई बार ऐसे बच्चों को, जो न पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं, अपनी बात बड़ी तरतीब के साथ रखते सुना है।

हमारे समरहिल के लोकतंत्र का कोई विकल्प मुझे तो नहीं सूझता। राजनैतिक लोकतंत्र की तुलना में शायद यह अधिक न्यायपूर्ण भी है। क्योंकि बच्चे एक दूसरे के प्रति कहीं अधिक उदार होते हैं और उनके आम तौर पर शायद निहित स्वार्थ भी नहीं होते। यह एक वास्तविक लोकतन्त्र इसलिए भी है क्योंकि सारे नियम प्रारम्भिक आमसभा में बनाए जाते हैं और निरंकुश चयनित प्रतिनिधियों का प्रश्न भी नहीं उठता।

आज़ाद बच्चे स्वशासन से जो व्यापक नज़रिया पाते हैं वही स्वशासन को इतना महत्वपूर्ण बनाता है। उनके नियम दिखाने के नहीं होते। वे आवश्यक चीज़ों से निपटने के लिए होते हैं। शहर में जाने पर अपेक्षित व्यवहार के नियम कम आज़ाद सभ्यता के साथ समझौता हैं। शहर - बाहरी दुनिया - अपनी ऊर्जा छोटी-मोटी,

गैर-ज़रूरी चीज़ों पर बर्बाद करती है। मानो आपने कैसे कपड़े पहने हैं या कोई अपशब्द कहा हो तो उसका जीवन पर सच में कोई असर पड़ेगा। जीवन के बाहरी शून्य से अलग होने के कारण ही समरहिल में एक सामुदायिक चेतना पनप सकती है, और पनपी भी है। यह चेतना अपने समय से काफी आगे है। सच है कि यहाँ एक फावड़े को साला बेलचा कहा जाता है। पर सच यह है कि अगर आप किसी गड्ढा खोदने वाले से पूछें तो वह भी फावड़े को साला बेलचा *ही* कहेगा।

सहशिक्षा

अधिकांश स्कूलों में योजनाबद्ध तरीके से लड़कों और लड़कियों को अलग-अलग रखा जाता है खास तौर पर सोने की व्यवस्था में इस नियम का पालन होता है। उनके बीच सम्बंधों को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। समरहिल में भी प्रोत्साहित नहीं किया जाता, पर हतोत्साहित भी नहीं किया जाता। उनके बीच स्वस्थ सम्बंध बनते हैं। एक दूसरे के प्रति भ्रम या भ्रांतियाँ नहीं पनपतीं। ऐसा भी नहीं है कि समरहिल एक बड़ा परिवार है जिसमें सभी प्यारे बच्चे भाई-बहनों की तरह रहते हैं। अगर स्थिति ऐसी होती तो मैं सहशिक्षा का कट्टर विरोधी होता।

वास्तविक सहशिक्षा - उस किस्म की नहीं जिसमें लड़के-लड़कियाँ कक्षा में साथ-साथ बैठकर पढ़ते हैं, लेकिन सोना और रहना अलग-अलग होता है - में ऐसी शर्म भरी जिज्ञासा नहीं पनपती। समरहिल में ताँक-झाँक करने वाले नहीं होते। दूसरे स्कूलों की तुलना में इन बच्चों में यौन सम्बंधों के प्रति चिन्ताएँ भी कम होती हैं।

कभी-कभी कोई वयस्क मेहमान आकर पूछता, ''क्या ये साथ-साथ नहीं सोते?'' जवाब में जब मैं 'नहीं' कहता तो वो ज़ोर देकर कहते, ''पर क्यों नहीं? इस उम्र में तो मैं इसका बहुत मज़ा लेता।''

इसी तरह के लोग अक्सर मानते हैं कि जब भी लड़के-लड़कियाँ साथ पढ़ते हैं तो उनके बीच यौन सम्बंध होता ही होगा। वे कभी भी इसे स्वीकार नहीं करते कि यही उनके विरोध का कारण है। इसकी बजाय वे यह तर्क देते हैं कि क्योंकि लड़के-लड़कियों की सीखने की क्षमताएँ अलग-अलग होती हैं, इसलिए उन्हें पढ़ाना भी अलग-अलग चाहिए।

सहशिक्षा इसलिए आवश्यक है क्योंकि जीवन भी सहशिक्षा है। लेकिन गर्भ ठहरने के खतरे के चलते कई सारे पालकों और शिक्षकों में सहशिक्षा के प्रति डर बना रहता है। ऐसा भी सुनने में आता है कि सहशिक्षण स्कूलों के कई सारे प्राध्यापक इसकी सम्भावना की चिन्ता में रतजगे करते हैं।

दोनों लिंगों के अनुकूलित बच्चे अक्सर प्यार करने में अक्षम होते हैं। यह खबर यौन सम्बंधों से डरने वालों को तो खुश करने वाली हो सकती है लेकिन एक आम युवा के लिए प्यार न कर पाना एक बड़ी मानवीय त्रासदी है।

एक बार मैंने एक मशहूर प्राइवेट सहशिक्षण स्कूल के कुछ किशोरों से पूछा, ''क्या तुम्हारे स्कूल में कोई प्यार-व्यार होता है।'' उनका जवाब था ''नहीं।'' मेरे आश्चर्य ज़ाहिर करने पर उन्होंने समझाया, ''लड़के-लड़कियों में कभी-कभार दोस्ती तो हो जाती लेकिन वो शारीरिक सम्बंधों में नहीं बदलता।'' उस स्कूल में मैंने कई हैण्डसम लड़के और खूबसूरत लड़कियाँ देखीं। इसलिए मुझे यकीन था कि उस स्कूल में प्रेम विरोधी विचार को ज़बरदस्ती बच्चों पर थोपा जा रहा था। और स्कूल का अति-नैतिक माहौल ऐसे सम्बंधों को पनपने नहीं देता था।

एक बार मैंने एक प्रगतिशील स्कूल के प्राध्यापक से पूछा, ''क्या आपके स्कूल में कोई प्रेम सम्बंध होता है?''

''नहीं,'' उनका गम्भीर जवाब था। ''लेकिन हम तो समस्यात्मक बच्चों को कभी नहीं लेते।''

जो लोग सहशिक्षा के विरुद्ध हैं उनकी आपत्ति यह होती है कि इस पद्धति से लड़के स्त्रैण या औरतों जैसे बनते हैं और लड़कियों में पौरुष जागता है। पर सच्चाई यह है कि वयस्कों के मन में कहीं एक नैतिक भय पैदा होता है जो वास्तव में जलन से पैदा हुआ भय है। प्यार से उपजा शारीरिक सम्बंध दुनिया की सबसे सुखद अनुभूति है। और *यही* वजह है कि इसे दबाया जाता है। बाकी सब ढोंग है।

जो बच्चे प्रारम्भ से समरहिल में रहे हैं उनके बीच शारीरिक सम्बंध को लेकर मुझे कोई चिन्ता नहीं होतीं। चिन्ता इसलिए नहीं होती क्योंकि उनका दमन नहीं किया जाता। यही कारण है कि उनमें शारीरिक सम्बंधों को लेकर अस्वाभाविक रुचि नहीं जगती।

कुछ साल पहले दो छात्रों ने एक साथ स्कूल में दाखिला लिया। लड़कों के प्राइवेट स्कूल से आया सत्रह साल का लड़का और लड़कियों के प्राइवेट स्कूल से आई सोलह बरस की लड़की। दोनों में प्यार हो गया। वे हमेशा साथ-साथ रहते। एक देर रात मैंने उनको रोका, ''मुझे नहीं मालूम तुम दोनों क्या कर रहे हो। नैतिकता के लिहाज़ से मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है। लेकिन इसमें नैतिकता का सवाल ही नहीं है। मामला आर्थिक है। इसलिए मुझे फिक्र है। केट, अगर तुम्हें गर्भ ठहर जाता है तो मेरा स्कूल बरबाद हो जाएगा।''

मैंने उसे विस्तार से समझाया, ''देखो, तुम दोनों समरहिल में हाल ही में आए हो। तुम्हारे लिए आज़ादी का मतलब है कुछ भी करने का हक। स्वाभाविक है कि

तुम्हें स्कूल के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं है। अगर तुम यहाँ सात साल की उम्र से आए होते तो मुझे तुम्हें यह सब बताने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। तुम्हारे मन में स्कूल के प्रति इतनी गहरी चिन्ता होती कि तुम समरहिल पर इसके प्रभाव के बारे में ज़रूर सोचते।" इस समस्या से इसी तरह से निपटा जा सकता था। सौभाग्यवश इस विषय पर मुझे उनसे दुबारा बोलने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

काम

समरहिल का एक सामुदायिक नियम हुआ करता था जिसके अनुसार बारह वर्ष से ऊपर के हरेक बच्चे और शिक्षक को सप्ताह में दो घण्टे, स्कूल परिसर में काम करना ज़रूरी था। इस काम का एक सांकेतिक पारिश्रमिक - छह पेन्स प्रति घण्टा - मिलता था। काम नहीं करने पर एक छोटा-सा फाइन देना पड़ता था। कुछ लोग, जिसमें शिक्षक भी शामिल थे फाइन देकर खुश रहते थे। जो काम करते थे उनमें से अधिकांश की नज़रें घड़ी पर होती थीं। इसमें खेल का कोई पुट नहीं था, सो यह सबको उबाऊ लगता था। इस नियम को जाँचा गया और बच्चों ने सर्वसम्मति से उसे वापस ले लिया।

कुछ साल पहले हमें समरहिल में एक अस्पताल की ज़रूरत थी। हमने तय किया कि भवन हम खुद ही बनाएँगे। ईंट-सीमेंट वाला पक्का भवन। हममें से किसी ने पहले एक ईंट तक नहीं चिनी थी, पर काम शुरू किया गया। कुछ बच्चों ने नींव खोदी और ईंटों के लिए कुछ पुरानी दीवारें तोड़ीं। पर बच्चों ने पारिश्रमिक की माँग की। दिहाड़ी देने से मना किया गया। अन्ततः भवन शिक्षकों और मिलने आने वाले मेहमानों ने पूरा किया। यह काम बच्चों को बेहद नीरस लगा। उनके अपरिपक्व दिमाग में अस्पताल की ज़रूरत बहुत दूर की चीज़ थी। अस्पताल से उनका स्वार्थ भी नहीं जुड़ा था। पर कुछ ही समय बाद उन्हें साइकिल रखने का शेड चाहिए था, जिसे उन्होंने बिना शिक्षकों की मदद के खुद बनाया।

मैं, बच्चों का वैसे ही बयान कर रहा हूँ जैसे वे होते हैं। जैसा वयस्क चाहते हैं वे हों, उसका नहीं। उनकी सामुदायिक भावना, सामाजिक ज़िम्मेदारी की भावना तब तक विकसित नहीं होती जब तक वे अठारह या उससे अधिक उम्र के नहीं हो जाते। उनकी रुचियाँ तात्कालिक होती हैं और भविष्य का अस्तित्व ही नहीं होता।

मैंने अब तक कोई आलसी बच्चा नहीं देखा। जिस चीज़ को हम आलस कहते हैं वह रुचि या स्वास्थ्य का अभाव होता है। स्वस्थ बच्चा खाली नहीं बैठता, दिन भर कुछ न कुछ करता ही है। मैं एक स्वस्थ बच्चे को जानता था जिसे बेहद

आलसी माना जाता था। दरअसल उसकी गणित में कोई रुचि नहीं थी, पर स्कूल के पाठ्यक्रम में गणित पढ़ना ज़रूरी था। ज़ाहिर है उसे गणित सीखनी ही नहीं थी। इस कारण उसके गणित शिक्षक को वह आलसी नज़र आता था।

हाल में मैंने पढ़ा कि अगर कोई दम्पत्ति किसी शाम नाचने जाए और हरेक नाच में शरीक हो तो वह दम्पत्ति तकरीबन पच्चीस मील पैदल चला होगा। पर नाचते समय वे थकते नहीं हैं। क्योंकि उन्हें इसमें पूरी शाम आनन्द आता है। यही बात छात्रों पर लागू होती है। जो बच्चा कक्षा में आलस करता है, वही फुटबॉल के खेल के दौरान मीलों दौड़ लगाता है।

आलू बोने या प्याज़ की खरपतवार निकालते समय किसी भी सत्रह साल के लड़के की मदद मुझे नहीं मिलती। जबकि यही लड़के किसी गाड़ी के इंजन से छेड़छाड़ करने, गाड़ी धोने या रेडियो बनाने में घण्टों बिता देते हैं। इस स्थिति को स्वीकारने में मुझे लम्बा समय लगा। मुझे यह सच्चाई उस वक़्त समझ आने लगी जब मैं स्कॉटलैण्ड में अपने भाई के बगीचे में खुदाई कर रहा था। मुझे काम में मज़ा नहीं आ रहा था। मुझे अचानक समझ आया कि गड़बड़ दरअसल यह है कि मैं उस बाग में खुदाई कर रहा हूँ जिसका मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। ज़ाहिर है लड़कों के लिए मेरा बाग अर्थहीन है, जबकि उनकी साइकिलें और रेडियो उन्हें बेहद सार्थक लगते हैं। वास्तविक परोपकारिता उनमें पनपे, इसमें लम्बा समय लगता है और तब भी स्वार्थ का पुट उसमें से पूरी तरह जाता नहीं है।

काम के प्रति छोटे बच्चों का नज़रिया, किशोर बच्चों से फर्क होता है। तीन से आठ साल के समरहिल के छात्र-छात्राएँ दारा सिंह की तरह काम करते हैं। सीमेंट मिलाना, रेत ढोकर लाना, ईंटें हटाना। वे यह सब इनाम की इच्छा के बिना करते हैं। वे स्वयं को वयस्कों के साथ जोड़कर देखते हैं और अपनी कल्पनाओं को वास्तविक रूप में साकार करते हैं। पर आठ-नौ साल से उन्नीस-बीस साल की उम्र तक उन्हें उबाऊ शारीरिक श्रम रास नहीं आता। यह बात अमूमन सभी बच्चों के लिए सच है। फिर भी कुछेक बच्चे बचपन से ही ताउम्र काम करने वाले बने रहते हैं।

सच यह भी है कि हम वयस्क लोग बच्चों का अक्सर शोषण भी करते हैं। "मेरियॉन दौड़कर यह चिट्ठी डाक के डिब्बे में डाल आओ।" तो बच्चों को इस्तेमाल होना पसन्द नहीं आता। एक औसत बच्चा अस्पष्ट रूप से यह बात समझता भी है कि उसके माता-पिता उसके किसी प्रयास के बिना भी उसकी देखभाल करते हैं, उसे खिलाते-पहनाते हैं। उसे लगता है कि ऐसी देखभाल पाना उसका स्वाभाविक अधिकार है। पर साथ ही उसे यह भी समझ आता है कि ऐसे सैकड़ों छोटे-बड़े उबाऊ कामों की अपेक्षा उससे रखी जाती है और उसे करने भी पड़ते हैं, जिनसे उसके माता-पिता खुद बचना चाहते हैं।

मैंने एक बार अमेरिका के एक स्कूल के बारे में पढ़ा जिसका भवन छात्रों ने खुद बनाया था। मैं सोचा करता था कि यही आदर्श स्थिति है। पर दरअसल ऐसा है नहीं। अगर बच्चे अपना स्कूल भवन खुद बनाते हैं तो यकीनन कोई सद्भावपूर्ण सत्ता उनके सर पर खड़ी उन्हें जोश दिला रही होगी। जैसे ही सत्ता हटा ली जाएगी *बच्चे स्कूल भवन का काम बन्द कर देंगे*।

मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि कोई भी समझदार सभ्यता बच्चों से अठारह साल की उम्र के पहले काम करने की अपेक्षा नहीं रखती। अठारह वर्ष के पहले अधिकांश लड़के-लड़कियाँ खूब काम करेंगे बशर्ते यह काम उनके लिए खेल समान हो और उनके माता-पिता की नज़र में आर्थिक रूप से बेकार भी। बच्चों को परीक्षाओं के लिए जितनी मेहनत करनी पड़ती है उसकी कल्पना ही मुझे उदास कर देती है। मैंने सुना है कि दूसरे विश्वयुद्ध के पहले बुडापेस्ट में आधे छात्र-छात्राएँ अपनी मैट्रिक की परीक्षा के बाद शारीरिक या मानसिक रूप से टूट जाते थे।

हमारे पुराने छात्र-छात्राओं द्वारा स्कूल से निकलने के बाद ज़िम्मेदार पदों पर बेहतरीन प्रदर्शन का कारण यह है कि वे अपने आत्मकेन्द्रित काल्पनिक चरण को समरहिल में भरपूर जी पाते हैं। नवयुवक और नवयुवतियों के रूप में अपने जीवन की वास्तविकता का सामना, बचपन को फिर से जीने की अवचेतन चाहना के बिना कर पाते हैं।

खेल

समरहिल को एक ऐसे स्कूल की परिभाषा दी जा सकती है जिसमें खेल सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है। बच्चे और बिलौटियाँ क्यों खेलते हैं, यह मुझे पता नहीं। मुझे लगता है कि बात ऊर्जा की है।

यहाँ जब मैं खेल की बात करता हूँ तो कसरती अखाड़ों या व्यवस्थित खेलकूद के बारे में नहीं सोच रहा होता। मैं कल्पना के स्तर के खेल के बारे में सोच रहा होता हूँ। व्यवस्थित खेलकूद में कौशल, स्पर्धा और टोली में काम शामिल होता है। पर बच्चों के खेल में अमूमन किसी कौशल की ज़रूरत नहीं होती। वहाँ न स्पर्धा होती है और न ही टीम में काम करने की ज़रूरत पड़ती है। छोटे बच्चे डाकू-डाकू का खेल खेलते हैं जिसमें गोलियाँ दागी जाती हैं, तलवारें खनकती हैं। चलचित्रों का युग शुरू हुआ उसके बहुत पहले से बच्चे डाकूओं का खेल खेलते आए हैं। कहानियाँ और फिल्में इस खेल को कोई दिशा ज़रूर दे सकते हैं पर उसका मूल तत्व सभी प्रजातियों के बच्चों की आत्मा में बसता है।

समरहिल में छह साल के बच्चे पूरे दिन खेलते हैं, अपनी कल्पना जगत के खेल। छोटे बच्चों के लिए वास्तविकता और काल्पनिक जगत काफी पास-पास होते हैं। जब कोई दस साल का लड़का भूत बनकर डराता है तो नन्हे-मुन्ने खुशी के मारे चीख पड़ते हैं। उन्हें पता है कि सामने सिर्फ़ टॉमी है, उसने उनके सामने ही तो सफ़ेद चादर ढँकी है। फिर भी जब वह उनकी ओर बढ़ने लगता है तो हरेक बच्चा डर से चिल्लाने लगता है।

छोटे बच्चे काल्पनिक जीवन जीते हैं और उसी कल्पना जगत को अपने कार्यों में उतारते हैं। आठ से अठारह साल के लड़के गिरोह बनाने का खेल खेलते हैं। वे लोगों के सिर काटते हैं या फिर अपने लकड़ी के हवाई जहाज़ों में बादलों से भी ऊपर उड़ते हैं। छोटी लड़कियाँ भी गिरोह बनाने के उस चरण से गुज़रती हैं, पर उसमें बन्दूकें या तलवारें नहीं घुसतीं। मेरी के गिरोह को नैली के गिरोह से आपत्ति होती है और दोनों में कहा-सुनी होती है, कठोर शब्द कहे जाते हैं। लड़कों के गिरोह बस खेल-खेल के दुश्मन होते हैं। यही कारण है कि छोटी लड़कियों की बनिस्बत छोटे लड़कों के साथ जीना आसान होता है।

काल्पनिक जगत की सीमा कहाँ शुरू और कहाँ खत्म होती है, यह मैं आज तक तलाश नहीं सका हूँ। जब कोई बच्चा किसी गुड़िया के लिए खिलौने की तश्तरी में खाना लाता है तो क्या वह उस पल यह मानता है कि गुड़िया जीवित है? क्या लकड़ी का घोड़ा सच में एक घोड़ा है? जब कोई लड़का पीछे से ''हाथ ऊपर उठाओ'' कहकर गोली दागता है, तो क्या उसे लगता है कि उसके हाथ में असली बन्दूक है? मैं सोचता हूँ कि बच्चे अपने खिलौनों को असली ही मानते हैं, जब तक कोई असंवेदनशील वयस्क खेल में टाँग अड़ा कर उन्हें काल्पनिक जगत की याद नहीं दिला देता। वे तब धपाक से धरती पर आ गिरते हैं। कोई भी संवेदनशील अभिभावक बच्चों के काल्पनिक जगत को भंग नहीं करता।

लड़के आम तौर पर लड़कियों के साथ नहीं खेलते। वे डाकू-डाकू खेलते हैं, पकड़म-पकड़ाई खेलते हैं, वे पेड़ों पर घर बनाते हैं, गड्ढे और खाइयाँ खोदते हैं।

लड़कियाँ व्यवस्थित खेल नहीं खेलतीं। टीचरजी या डॉक्टर बनने के खेलों की परिपाटी मुक्त बच्चों में नहीं मिलती, क्योंकि सत्तावान लोगों की नकल करने की उन्हें ज़रूरत नहीं लगती। छोटी लड़कियाँ गुड़ियों से खेलती हैं, पर बड़ी लड़कियों को दूसरे लोगों से सम्पर्क करने में बेहद रस आता है। उन्हें चीज़ों से खेलना पसन्द नहीं आता।

हमारी हॉकी की टीम मिश्रित होती है, ताश और अन्दर खेले जाने वाले दूसरे खेल भी लड़के लड़कियाँ साथ-साथ खेलते हैं।

बच्चों को शोर और मिट्टी पसन्द है। वे धड़धड़ाते हुए सीढ़ियाँ चढ़ते हैं। वे

चिल्लाते भी बहुत हैं। उन्हें सामने धरे फर्नीचर का ध्यान तक नहीं रहता, अगर वे पकड़म-पकड़ाई खेल रहे हों, और रास्ते में चीनी मिट्टी के गुलदान धरे हों, तो वे उन्हें भी रौंद डालें।

अक्सर माताएँ अपने बच्चों से खेलती ही नहीं हैं। उन्हें लगता है कि उनके पालने में एक नरम मुलायम-सा खिलौना रख देने से दो-एक घण्टे की छुट्टी हो जाती है। वे भूल जाती हैं कि बच्चों को गुदगुदाना, चिपटाना, दुलराना पसन्द है।

ज़ाहिर है कि बाल्यावस्था खेल की अवस्था है। पर हम सभी वयस्कों की अमूमन प्रतिक्रिया क्या रहती है? हम इसकी *उपेक्षा* करते हैं। हम इस बारे में सब कुछ भूल जाते हैं - क्योंकि हम इसे समय की बर्बादी मान बैठते हैं। सो हम बड़े-बड़े शहरी स्कूल खड़े करते हैं। उनमें ढेरों कमरे और महँगी-महँगी शिक्षण सामग्री इकट्ठा करते हैं। पर खेलने की प्रवृत्ति के लिए हम एक छोटी-सी पक्की जगह भर उपलब्ध करवाते हैं।

शायद ईमानदारी से यह दावा भी किया जा सकता है कि हमारी सभ्यता की कई बुराइयाँ इस कारण हैं कि बच्चे पर्याप्त खेल नहीं सकते। दूसरे शब्दों में कहें तो हर बच्चे को मानो अलाव में पकाकर वयस्क होने की उम्र के काफी पहले ही वयस्क बना डाला जाता है।

खेल के प्रति वयस्कों के नज़रिए में काफी मनमानापन होता है। हम बच्चों के लिए टाइम टेबल बनाते हैं, सुबह नौ से दोपहर बारह बजे तक पढ़ाई, तब एक घण्टे की खेलने की छुट्टी, फिर तीन बजे तक वापस पढ़ाई। अगर किसी आज़ाद बच्चे से यही टाइम टेबल बनाने को कहाँ जाए तो वह खेल के घण्टे ज़्यादा रखे और पढ़ाई के केवल कुछ ही।

बच्चों के खेल के प्रति वयस्कों के विरोध की जड़ में है क्या? मुझसे सैंकड़ों बार पूछा जाता है, "अगर मेरा बेटा दिन भर खेलेगा तो वह कुछ सीखेगा कैसे? वह परीक्षाएँ कैसे पास करेगा?" मेरा उत्तर कम ही लोग स्वीकार पाते हैं। "अगर आपका बच्चा जी भरकर खेलता है, तो वह दो साल की सघन पढ़ाई से ही कॉलेज दाखिले के इम्तहान पास कर सकता है। जबकि जिन स्कूलों में खेल के घण्टे को ही हटा दिया जाता है, वहाँ बच्चों को इसी काम में पाँच, छह या सात साल लगते हैं।"

पर मुझे हमेशा इसके साथ यह भी जोड़ना पड़ता है, "यह तब, जब वह खुद अपनी मर्ज़ी से परीक्षाएँ पास *करना चाहे*।" सम्भव है कि वह बैले नर्तक या रेडियो इंजीनियर बनाना चाहे। या ड्रेस डिज़ाइनर या बच्चों की नर्स बनना चाहे। जी हाँ, बच्चों के भविष्य की चिन्ता के कारण, वयस्क उनके खेलने के अधिकार को बाधित

करते हैं। पर इसमें और भी बातें जुड़ी हैं। खेल को लेकर कुछ अस्पष्ट नैतिक नापसन्दगी भी हम दर्शाते हैं। हम अक्सर किशोर-किशोरियों को कहते हैं, ''बच्चों की-सी हरकतें न करो''।

जो माता-पिता बचपन की ललक भूल जाते हैं, खेलना और कल्पनाएँ करना भूल जाते हैं, वे अच्छे अभिभावक नहीं बन पाते। जब बच्चा अपने खेलने की क्षमता सीखने बैठता है तो वह मानसिक रूप से मर चुका होता है। वह उन बच्चों के लिए भी खतरनाक होता है जिनके सम्पर्क में वह आता है।

इज़राइल के शिक्षकों ने मुझे अपने सामुदायिक केन्द्रों के बारे में बताया है। मुझे बताया गया कि वहाँ स्कूल स्थानीय समुदाय का हिस्सा होते हैं जिनकी प्राथमिक ज़रूरत है कठोर शारीरिक श्रम। एक शिक्षक ने बताया कि वहाँ दस साल के बच्चों को अगर सज़ा के बतौर बाग में काम न करने दिया जाए तो वे रोते हैं। अगर समरहिल में किसी बच्चे को आलू खोदने से रोका जाए और वह रो पड़े तो मैं ज़रूर यह सोचने लगूँगा कि कहीं बच्चा मानसिक रूप से अस्वस्थ तो नहीं है। बचपन का मतलब है खिलंदड़ापन। जो सामुदायिक व्यवस्था इस सच्चाई की उपेक्षा करती है उसकी शिक्षा-दीक्षा भी गलत है। मुझे लगता है कि इज़राइल की व्यवस्था आर्थिक ज़रूरत की वेदी पर बाल जीवन की बलि चढ़ाती है। यह ज़रूरत हो सकती है, पर मैं ऐसी प्रणाली को आदर्श सामुदायिक जीवन का नाम नहीं दे सकता।

जिन बच्चों को इच्छानुसार खेलने नहीं दिया जाता, उनको जो हानि होती है उसे जानना रोचक होने के बावजूद बेहद कठिन है। व्यावसायिक फुटबॉल खिलाड़ियों को खेलते देखने वाली भीड़ को देख मुझे अक्सर लगता है कि लोग खुद को खिलाड़ियों की जगह मान, कहीं बचपन की बाधित रुचि को फिर से जीने की चेष्टा तो नहीं कर रहे। समरहिल से निकले अधिकांश बच्चे फुटबॉल के मैच नहीं देखते, उसकी तड़क-भड़क में उनकी रुचि नहीं होती। मुझे लगता है उनमें ऐसे बच्चे भी कम ही होंगें जो जुलूस देखने जाएँ। आखिर जुलूस में भी तो बचकानापन होता है। उसके चटकीले रंग, उसकी औपचारिकताएँ, उसकी धीमी गति, सभी कुछ खिलौनों की दुनिया और सजी-धजी गुड़ियों का आभास देती हैं। शायद यही कारण हो कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं को जुलूस और लवाज़में इतने पसन्द आते हैं। जैसे-जैसे लोगों की उम्र बढ़ती है, वे सुसंस्कृत होते चलते हैं, उन्हें तामझाम आकर्षित नहीं करता। मुझे शक है कि सेना के उच्च अधिकारी, राजनीतिज्ञों और राजनायकों को राजकीय जुलूसों में ऊब से अधिक कुछ हासिल होता होगा।

कुछ प्रमाण इस तथ्य के भी हैं कि जिन बच्चों को आज़ादी से पाला-पोसा जाता है, जिन्हें खूब खेलने का समय मिलता है, वे भीड़ के पीछे चलने वाले नहीं बनते।

समरहिल के पुराने छात्र-छात्राओं में केवल वे ही भीड़ में शामिल हो, नारे लगाते हैं, जिनके माता-पिता की पृष्ठभूमि साम्यवादी है।

नाटक

सर्दियों में समरहिल में इतवार की शाम अभिनय की होती है। नाटकों में उपस्थिति हमेशा अच्छी रहती है। मैंने लगातार छह इतवारों के नाटक कार्यक्रम देखे हैं। पर नाटकों की बाढ़ के बाद ऐसा भी होता है कि कुछ सप्ताह पूरी शान्ति रहे।

दर्शकों की दृष्टि मीनमेख निकालने वाली नहीं होती। वे शिष्टाचार बरतते हैं। लंदन के दर्शकों की तुलना में कहीं अच्छा व्यवहार हमारे बच्चे करते हैं। ताने-फब्तियाँ कसना, पैर पटकना या सीटियाँ बजाना आदि बिरले ही होता है।

हमारा पुराना स्क्वॉश का मैदान ही नाट्यशाला में बदल दिया गया है। उसमें तकरीबन सौ लोग बैठ सकते हैं। उसका मंच बक्सों से बना है। बक्सों को जहाँ मर्ज़ी वहाँ रखा जा सकता है। यानी उन बक्सों को सीढ़ीनुमा आकार या सपाट मंच का रूप बच्चे दे सकते हैं। प्रकाश की व्यवस्था बेहतरीन है। प्रकाश कम करने और स्पॉटलाईट की अच्छी व्यवस्था है। मंचसज्जा की चीज़ें नहीं हैं, सिर्फ पर्दा है। जब नाटक में कहा जाता है, *गाँववासी झाड़ियों के बीच से घुसते हैं* तो अभिनेता पर्दे को एक तरफ से धकिया देते हैं।

हमारी परम्परा है कि हम समरहिल में रचे गए नाटक ही खेलते हैं। एक अलिखित नियम यह भी है कि किसी शिक्षक का लिखा नाटक तब ही खेला जाएगा जब बच्चों के लिखे नाटकों की कमी हो। अभिनेता स्वयं अपनी पोशाकें बनाते हैं। अकसर वे बेहद अच्छी होती हैं। हमारे यह नाटक प्रहसन या स्वांग अधिक होते हैं, दुखान्त कम। पर जब भी दुखान्त नाटक खेले जाते हैं, वे अच्छे होते हैं, कभी-कभार तो बेहद खूबसूरत अदाकारी के साथ।

लड़कों की तुलना में लड़कियाँ अधिक नाटक लिखती हैं। छोटे लड़के अपने नाटक खुद ही तैयार करते हैं। पर उसमें पात्रों के संवाद नहीं लिखे होते। और उसकी ज़रूरत भी आखिर क्या है। क्योंकि हरेक चरित्र "हाथ ऊपर करो!" ही तो कहता है। इन नाटकों में हमेशा लाशों के ढेर पर पर्दा गिरता है क्योंकि छोटे लड़के अमूमन समझौता-पसन्द नहीं होते और विरोधियों का काम तमाम करना ही पसन्द करते हैं।

तेरह वर्ष की डेफ्नी शरलॉक होम्स के नाटक बनाया करती थी। याद आता है कि उनमें से एक में हवलदार सार्जेन्ट की बीबी को भगा ले गया था। सार्जेन्ट ने तब

एक निजी जासूस और 'माय डियर वॉटसन' की मदद से अपनी पत्नी को ढूँढा था। तब उस नाटक में एक आश्चर्यजनक दृश्य नज़र आया। हवलदार सोफे पर दगाबाज़ बीबी के साथ बैठा था, उनके चारों ओर औरतें नाच रहीं थीं। *और हवलदार अपनी वर्दी तक में नहीं था*। डेफ्नी अपने नाटकों में 'फर्राटेदार जीवन' को उतारने की कोशिश करती थी।

चौदह-एक साल की लड़कियाँ कभी-कभार छन्द में नाटक लिखा करती थीं। अक्सर वे काफी अच्छे भी होते थे। ज़ाहिर है कि सभी शिक्षक और बच्चे नाटक नहीं लिखते।

दूसरों के नाटक चुराने की प्रवृत्ति से सब परहेज़ करते हैं। कुछ समय पहले अचानक नाटक कार्यक्रम से एक नाटक निकाला गया। जल्दबाज़ी में मुझे ही एक नाटक तैयार करना था। मैंने डब्ल्यू.डब्ल्यू. जेकब की कहानी को आधार बनाकर एक नाटक लिखा। हर ओर "नकलची! चोर!" का शोर मच गया।

समरहिल के बच्चों को किसी कहानी का नाटक बनाना पसन्द नहीं। न ही वे दूसरे स्कूलों में खेले जाने वाले नाटक पसन्द करते हैं। हमारे बच्चे कभी शेक्सपीयर के नाटक नहीं करते। पर कभी-कभार मैं शेक्सपीयर की एकांकी लिख डालता हूँ जैसे अमरीकी गुण्डागर्दी के माहौल में जूलियस सीज़र। वहाँ भाषा मिश्रित होती है। एक ओर शेक्सपीयर के ज़माने की अँग्रेज़ी तो दूसरी ओर जासूसी पत्रिकाओं की भाषा।

मेरी ने उस वक़्त तहलका मचा दिया जब उसने क्लिओपेट्रा के किरदार में मंच पर मौजूद हरेक पात्र की हत्या कर दी। तब छुरी पर लिखा 'स्टेनलेस स्टील' पढ़ा और उसे अपनी छाती में उतार लिया। हमारे छात्र-छात्राओं की अभिनय क्षमता काफी ऊँची है। वे मंच पर आने से नहीं डरते। छोटे बच्चों को देखना बड़ा आनन्द देता है। वे पूरी ईमानदारी से अपने पात्र चरित्र जीते हैं। लड़कियाँ लड़कों से अधिक आसानी से अभिनय करती हैं। दस साल से छोटे लड़के अपनी गुण्डाटोली के नाटकों के अलावा दूसरे नाटकों में भागीदारी नहीं करते। और कुछ अभिनय का कोई मौका नहीं पाते, न पाना ही चाहते हैं।

हमारे लम्बे अनुभव से हमें पता चला है कि सबसे खराब अभिनेता वे होते हैं जो वास्तविक जीवन में अभिनय करते हैं। ऐसे बच्चे मंच पर भी खुद से और अपने संकोच से दूर नहीं हो पाते। शायद यहाँ संकोच का प्रयोग सही भी नहीं हो, क्योंकि दरअसल वे इस बात के प्रति सचेत होते हैं कि देखने वाले उनके प्रति सचेत हैं।

अभिनय शिक्षा का एक ज़रूरी हिस्सा है। वैसे यह मूलतः आत्म-प्रदर्शन ही होता है। पर समरहिल में जब अभिनय केवल आत्म-प्रदर्शन बन जाता है तो अभिनेता/अभिनेत्री को कोई प्रशंसा नहीं मिलती।

किसी भी अभिनेता में दूसरों से एकात्म स्थापित करने की ताकत होनी चाहिए। वयस्कों में यह एकात्मकता हमेशा सायास होती है। उन्हें हमेशा यह अहसास होता है कि वे नाटक कर रहे हैं। पर बच्चों के बारे में मुझे ऐसा नहीं लगता। जब भी कोई बच्चा पात्र के रूप में मंच पर इस सवाल के साथ घुसता, "तुम कौन हो?" तो वह यह कहने के बदले, "मैं यहाँ का भूत हूँ !" कह सकता है, "मैं पीटर हूँ।"

छोटे बच्चों के लिए लिखे गए नाटक में एक दृश्य था, सब भोजन कर रहे थे। खाने-पीने की चीज़ें मंच पर रखी थीं। नेपथ्य में याद दिलाने वाला जो प्रॉम्पटर था वह बड़ी मुश्किल से उन अभिनेताओं को अगले दृश्य की ओर बढ़ा सका। बच्चे दर्शकों को भूलकर प्रेम से खाने में जुट गए थे।

अभिनय आत्मविश्वास बढ़ाने का एक तरीका है। पर कुछ बच्चे जो कभी अभिनय नहीं करते बताते हैं कि उन्हें नाटक देखना इसलिए पसन्द नहीं है क्योंकि वह उनके मन में हीन भावना जगाता है।

इस समस्या का कोई समाधान मैं तलाश नहीं पाया हूँ। अमूमन ऐसे बच्चे अपने लिए कोई ऐसी चीज़ ढूँढ लेते हैं जिसमें वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर पाएँ। पर कोई ऐसी लड़की भी हो सकती है जो अभिनय करना पसन्द करती हो पर कर नहीं पाती हो। ऐसी लड़की को हमेशा नाटक में शामिल किया जाता है। यह हमारे स्कूल में व्याप्त शिष्टाचार पर टिप्पणी है।

तेरह-चौदह साल के लड़के-लड़कियाँ ऐसा कोई पात्र बनना पसन्द नहीं करते जिसे प्रेम दृश्य करने हों। पर छोटे बच्चे यह बड़ी सहजता और खुशी के साथ करते हैं। पन्द्रह साल से बड़े बच्चे प्रेम पात्र को हास्य रूप में खेलना पसन्द करते हैं। एक-दो बड़े बच्चे ही ऐसे होते हैं जो गम्भीर प्रेम पात्र का चरित्र लेते हैं। प्रेम सम्बंधी चरित्रों को जीवन्त बनाने में प्रेम का अनुभव आवश्यक होता है। पर जिन बच्चों ने वास्तविक जीवन में कभी दुख नहीं देखा हो वे भी दुख भरे चरित्रों में अच्छा अभिनय कर लेते हैं। मैंने वर्जिनिया को दुखद चरित्र का अभ्यास करते समय फूट-फूटकर रोते देखा है। दरअसल बच्चे कल्पना में दुख और पीड़ा से परिचित होते हैं। सच यह है कि बच्चों के कल्पना जगत में मृत्यु काफी जल्दी ही उभरती है।

बाल-नाटक उनके स्तर के ही होने चाहिए। बच्चों से कालजयी नाटक करवाना, जो उनके वास्तविक कल्पना जगत से दूर हों, भूल है। उनकी पठन सामग्री की तरह ही उनके नाटक भी उनके ही स्तर के होने चाहिए। समरहिल के बच्चे बिरले ही स्कॉट, डिकन्स या थैकरे की रचनाएँ पढ़ते हैं, क्योंकि आज के बच्चे चलचित्र युग के बच्चे हैं। जब बच्चा सिनेमा जाता है तो सवा घण्टे में *वेस्टवर्ड हो* जैसी लम्बी कहानी का सार पा लेता है। इसी कहानी को पढ़ने में उसे दिनों दिन लग सकते हैं। और फिर फिल्म देखने से वह लोगों या दृश्यों के उबाऊ वर्णन से भी

बच जाता है। यही कारण है कि बच्चे नाटक में एल्सिनोर की कहानी नहीं चाहते, वे ऐसी कहानी पसन्द करते हैं जो उनके परिचित वातावरण की हो।

यद्यपि समरहिल के बच्चे अधिकतर अपने लिखे नाटक ही खेलते हैं, फिर भी मौका पड़ने पर उम्दा नाटकों का भी उत्साह से स्वागत करते हैं। एक सर्दियों में मैं बड़े बच्चों को सप्ताह में एक बार नाटक पढ़कर सुनाता रहा। मैंने बेरी, इब्सन, स्ट्रिन्डबर्ग, चेखव, शॉ और गैल्सवर्दी के अलावा *द सिल्वर कॉर्ड* तथा *द वॉर्टेक्स* जैसे आधुनिक नाटक भी सुनाए। हमारे सबसे अच्छे अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को इब्सन पसन्द आया।

बड़े बच्चे मंच तकनीकों में रुचि लेते हैं। उनके प्रति इन बच्चों का दृष्टिकोण मौलिक होता है। नाटक लेखन की एक पुरानी परम्परा यह रही है कि कोई भी पात्र बिना स्पष्टीकरण दिए मंच नहीं छोड़ता। जब नाटककार चाहता है कि पिता मंच से हटे ताकि माँ और बेटी कह सकें कि वह एक खूसट बुड्ढा है तो पिता उठकर कहता है, "देखूँ बागवान ने गोभियाँ बोईं या नहीं," और तब मंच से हट जाता है। पर हमारे समरहिल नाटककार प्रत्यक्ष तकनीक अपनाते हैं। एक लड़की ने मुझे कहा, "वास्तविक जीवन में तो हम क्यों जा रहे हैं, यह बताए बिना ही कमरे से बाहर निकल जाते हैं।" सच यही हम करते हैं, समरहिल के मंच में भी यही किया जाता है।

समरहिल की विशेषता है स्वतःस्फूर्त अभिनय जो नाट्यकला की एक विशेष विधा है। मैं अभिनय के कुछ अभ्यास उन्हें देता हूँ जैसे - *एक काल्पनिक ओवरकोट पहनो, उसे फिर से उतारो, खूँटी पर टाँगों। फूलों का गुच्छा उठाओ, उसका जो काँटा तुम्हें चुभा उसे निकालो। एक तार खोलो जिसमें लिखा है कि तुम्हारे पिता या माता गुज़र गए हैं। रेल्वे स्टेशन के रेस्तराँ में हड़बड़ी में खाना खाओ क्योंकि तुम्हें चिन्ता है कि कहीं ट्रेन तुम्हारे बिना ही चलती न बने।*

कई बार अभिनय में 'संवाद' भी होते हैं। जैसे मैं टेबल कुर्सी पर बैठा घोषणा करता हूँ कि मैं हैरिच में बैठा पासपोर्ट अधिकारी हूँ। हरेक को आकर अपना काल्पनिक पासपोर्ट दिखाना है और मेरे सवालों का जवाब देना है। इसमें सबको खूब मज़ा आता है। कभी मैं एक फिल्म निर्माता बन बैठता हूँ जो अभिनेता-अभिनेत्रियों को तलाश रहा हो या एक निजी सचिव के लिए साक्षात्कार कर रहा हो। एक बार मैं ऐसा व्यक्ति बना जिसने आशुलिपिक तलाशने का विज्ञापन निकाला हो। किसी भी बच्चे को आशुलिपिक का अर्थ पता नहीं था। एक लड़की ने ऐसा अभिनय किया मानों वह प्रसाधक हो, इससे सबका खूब मनोरंजन हुआ।

स्वतःस्फूर्त अभिनय स्कूली नाटकों का रचनात्मक पक्ष है, उसका महत्वपूर्ण पक्ष है। समरहिल में हम किसी और चीज़ की बनिस्बत रचनात्मकता के लिए ही नाटक

खेलते हैं। नाटकों में अभिनय तो कोई भी कर सकता है पर सब नाटक लिख नहीं सकते। ज़ाहिर है कि बच्चों को यह अहसास तो होता ही होगा, फिर चाहे यह अहसास अस्पष्ट ही क्यों न हो, कि दोहराने या नकल करने के बजाए खुद के लिखे मौलिक नाटकों को खेलने की परम्परा ही रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती है।

नृत्य व संगीत

चलो नाचें, पर कुछ नियम के साथ। आश्चर्यजनक बात यह है कि एक भीड़ उन नियमों को भीड़ के रूप में मान लेगी, फिर चाहे उस भीड़ को बनाने वाले लोग व्यक्तिगत स्तर पर उन नियमों से घृणा ही क्यों न करते हों।

मेरे लिए लंदन का बॉलरूम इंग्लैण्ड का प्रतीक है। नृत्य जो एक व्यक्तिगत रचनात्मक सुख है अकड़कर चलने में बदलकर रह जाता है। हर जोड़ा दूसरे जोड़ों की तरह नाचता है। भीड़ की रूढ़िवादिता अधिकांश नर्तकों को मौलिक नहीं बनने देती। यद्यपि नृत्य का आनन्द कुछ नया ईजाद करने का आनन्द है। जब आविष्कार नृत्य से बाहर छोड़ दिया जाता है तो नृत्य मशीनी और उबाऊ हो जाता है। हमारा नृत्य इंग्लैण्डवासियों के मन में बसी भावना व मौलिकता के प्रति डर को अभिव्यक्त करता है। अगर नृत्य के आनन्द में भी आज़ादी की कोई सम्भावना नहीं हो, तो हमें वह जीवन के अधिक गम्भीर पक्षों में भला कैसे मिलेगी? अगर व्यक्ति खुद अपने नाच में पद-संचालन ईजाद नहीं कर सकता तो ज़ाहिर है कि वह अपने धर्म, शिक्षा या राजनीति के चरणों का आविष्कार करने की हिम्मत करे तो समाज भला उसे बर्दाश्त कैसे करेगा?

समरहिल के सभी कार्यक्रमों में नृत्य शामिल होता है। इनकी व्यवस्था और प्रदर्शन हमेशा लड़कियाँ ही करती हैं और अच्छी तरह से करती हैं। वे इसमें शास्त्रीय संगीत काम में नहीं लेतीं। वे हमेशा जैज़ ही चुनती हैं। हमारे यहाँ एक बैले नृत्य हुआ था जो गरश्विन के *एन अमैरिकन इन पैरिस* के संगीत पर आधारित था। मैंने एक कहानी लिखी थी, जिसे लड़कियों ने नाच में रूपान्तरित किया था। सच कहूँ तो मैंने लंदन के मंचों पर इससे कहीं खराब नृत्य देखे हैं।

तकरीबन हर शाम हमारा बड़ा कमरा बच्चों से भर जाता है। हम रिकॉर्ड बजाते हैं और यहीं बहस छिड़ जाती है। बच्चों को ड्यूक एलिंग्टन और एल्विस प्रेसली पसन्द आता है और मुझे उससे घृणा है। मुझे रैवल, स्ट्रेविन्स्की और गरश्विन पसन्द है। जब मैं जैज़ से परेशान हो जाता हूँ तो मैं यह नियम लागू कर देता हूँ कि क्योंकि कमरा मेरा है, वही संगीत बजेगा जो मुझे पसन्द है।

रोज़नकैविलियर तिकड़ी या *माइस्टरसिंगर* चौकड़ी कमरे को अक्सर खाली कर देता। पर कुछ ऐसे बच्चे भी हैं जिन्हें शास्त्रीय संगीत या चित्रकला पसन्द हो। हम उनकी अभिरुचि को परिष्कृत करने की कोशिश भी नहीं करते।

दरअसल जीवन के सुख पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ता कि किसी को बीथोविन पसन्द आता है या आधुनिक जैज़। अगर स्कूल बीथोविन को छोड़ अपने पाठ्यक्रम में जैज़ अपना लें तो शायद उन्हें अधिक सफलता मिले। समरहिल के तीन बच्चे जैज़ बैण्ड से प्रभावित हो साज़ों का अभ्यास करने लगे। दो ने क्लैरिनैट और एक ने ट्रम्पेट खरीदा। स्कूल छोड़ने के बाद उन्हें संगीत की रॉयल एकेडमी में दाखिला मिला। आज वे तीनों ही ऐसे ऑर्केस्ट्रा में शामिल हैं जो केवल शास्त्रीय संगीत बजाते हैं। मैं यह मानता हूँ कि उनकी संगीत में रुचि इसलिए पनप सकी क्योंकि उन्हें समरहिल में ड्यूक एलिंग्टन *के साथ* बाख या जो संगीतकार उन्हें पसन्द आता, उसे भी सुनने की आज़ादी मिल सकी।

खेलकूद

अधिकांश स्कूलों में खेलकूद अनिवार्य होता है। यहाँ तक कि मैच देखना भी अनिवार्य होता है। समरहिल में पढ़ाई की तरह ही खेलकूद भी ऐच्छिक हैं।

एक बच्चा स्कूल में दस साल रहा, उसने एक खेल नहीं खेला, न उससे कभी खेलने को कहा गया। पर सामान्यतः बच्चों को खेलकूद बेहद पसन्द हैं। छोटे बच्चे व्यवस्थित खेल नहीं खेलते। वे तो डाकू-डाकू का खेल खेलते हैं। वे पेड़ों पर झोपड़ियाँ बनाते हैं और वह सब करते हैं जो बच्चे आम तौर पर करते हैं। जब तक उनके मन में सहकारिता की भावना न पनप जाए, व्यवस्थित खेल आयोजित नहीं किए जाने चाहिए। समय आने पर व्यवस्थित खेलकूद उन्हें स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं।

समरहिल में सर्दियों में हॉकी और गर्मियों में टेनिस खेला जाता है। जोड़े में टेनिस खेलने में जो आपसी समझ और काम की ज़रूरत होती है वह बच्चों के लिए कठिन होता है। हॉकी में पूरी टोली एक साथ खेलती है, यह तो वे सहज ही समझते हैं। पर टेनिस में दोनों जोड़ीदार एक इकाई बनने के बदले अपना-अपना खेल खेलते हैं। सत्रह साल के आस-पास बच्चों को टोली में खेलना अधिक आसानी से समझ आता है।

तैराकी सभी उम्र के बच्चों में लोकप्रिय है। साइजवैल के पास जो समुद्रीतट है वह बच्चों के लिए सही नहीं है, क्योंकि वह हमेशा ज्वार के कारण भरा रहता है। लम्बे

पसरे रेतीले तट बच्चों को बेहद पसन्द हैं, पर ऐसे तट हमारी तरफ हैं ही नहीं।

हमारे स्कूल में कोई कृत्रिम जिम्नैस्टिक्स नहीं है, न ही मैं उसे आवश्यक मानता हूँ। बच्चों को जितनी कसरत की ज़रूरत है, वह वे अपने खेलों में पा लेते हैं। तैरना, नाचना, साइकिल चलाना। मुझे इस बात पर भी शक है कि आज़ाद बच्चे जिम्नैस्टिक्स की कक्षा में जाना पसन्द करेंगे। हमारे अन्दरूनी खेल हैं - टेबल टेनिस, शतरंज और ताश।

छोटे बच्चों के लिए उथला ताल है, रेत का ढेर है, सी-सॉ हैं और हैं झूले। किसी भी गर्म दिन ढेरों बच्चे रेत के ढेर पर खेलते मिलते हैं। उनकी हमेशा यह शिकायत रहती है कि बड़े बच्चे भी उनके रेत के टीले का इस्तेमाल करते हैं। लगता है हमें बड़े बच्चों के लिए भी रेत का अलग ढेर बनाना होगा। बच्चों के जीवन में रेत और मिट्टी का युग हमने जितना सोचा था उससे अधिक समय तक चलता है।

खेलकूद के लिए दिए जाने वाले इनामों में विसंगति को लेकर हमारे यहाँ खूब बहस और तकरारें होती हैं। विसंगति इस बात की है कि हम स्कूली पाठ्यक्रम में इनाम या अंक शामिल करने का लगातार विरोध करते हैं। इनाम का विरोध इसलिए है कि उन खेलों को खेलने के लिए ही खेलना चाहिए न कि इनाम पाने के लिए। यह सच भी है। इसलिए हमसे अक्सर पूछा जाता है कि अगर टेनिस के लिए इनाम देना सही है तो भूगोल के लिए ऐसा करना भला गलत क्यों है। शायद उत्तर यह हो कि टेनिस का खेल स्वाभाविक रूप से स्पर्धा का खेल है। विपक्षी को हराना ही उसका उद्देश्य है। पर भूगोल का अध्ययन ऐसा नहीं है। मुझे भूगोल आता है। पर मुझे इससे क्या फर्क पड़ता है कि दूसरे को मुझसे ज़्यादा भूगोल आता है या कम। मुझे पता है कि बच्चे खेलकूद में इनाम चाहते हैं पर स्कूली विषयों में नहीं। कम से कम समरहिल में नहीं। और फिर समरहिल में हम खेलकूद में जीतने वाले बच्चों को हीरो नहीं बना डालते। कोई हॉकी टीम का कप्तान है इससे उसके मत को स्कूल की आम-सभा में अधिक महत्व नहीं मिलता।

समरहिल में खेलकूद अपनी सही जगह पर रखा जाता है। जो लड़का कोई खेल नहीं खेलता उसे कभी हीन नहीं माना जाता। जब बच्चों को यह आज़ादी मिलती है कि वे जैसे हैं वैसे बने रहें तो 'जियो और जीने दो' का नारा अभिव्यक्ति पाता है। खेलकूद में मेरी खुद की भी रुचि नहीं है। पर खेल की सही भावना में मेरी रुचि है। अगर समरहिल के शिक्षक बच्चों से कहते, "चलो बच्चों, खेल-मैदान की ओर बढ़ो!" तो यहाँ भी खेलकूद एक विकृत रूप ले लेता। खेल की असली भावना तब ही विकसित होती है जब यह आज़ादी हो कि खेलना चाहो तो खेलो और न खेलना हो तो न खेलो।

ब्रिटिश सरकार के निरीक्षकों की रिपोर्ट

शिक्षा मंत्रालय

महामहिम सम्राट के निरीक्षकों द्वारा

समरहिल स्कूल पर रिपोर्ट

लाइस्टन, पूर्व सफोल्क

निरीक्षण तिथि 20 व 21 जून, 1949

टिप्पणियाँ

1. यह रिपोर्ट गुप्त है एवं स्कूल के स्पष्ट निर्देशों के बिना कहीं भी प्रकाशित नहीं की जा सकती है। जब भी यह प्रकाशित की जाए तो समग्र रिपोर्ट ही प्रकाशित हो।
2. इस रिपोर्ट के स्वत्वाधिकार सम्राट के स्टेशनरी नियंत्रक के पास निहित हैं। नियंत्रक को इसके प्रकाशन से कोई आपत्ति नहीं है, बशर्ते इससे सम्बंधित सभी लोगों को यह स्पष्ट हो कि स्वत्वाधिकार नियंत्रक के पास निहित हैं।
3. यह भी स्पष्ट हो कि इस रिपोर्ट को मंत्रालय द्वारा स्वीकृति के अर्थ में नहीं लिया जाएगा।

शिक्षा मंत्रालय
कर्ज़न स्ट्रीट
लंदन, डब्ल्यू. 1. क्रमांक 38 बी/6/8

यह स्कूल विश्वभर में एक क्रान्तिकारी शैक्षणिक प्रयोग के रूप में विख्यात है, जहाँ इसके प्रधानाध्यापक के प्रकाशित और बहुचर्चित शिक्षा सिद्धान्तों को व्यवहार में उतारा जाता है। इसके निरीक्षण का कार्य कठिन पर रोचक रहा। कठिन इसलिए क्योंकि यहाँ की शिक्षण पद्धति अन्य स्कूलों से, जिनसे निरीक्षक परिचित हैं, भिन्न थी। और रोचक इसलिए क्योंकि इससे इस शिक्षण पद्धति के मूल्य का न केवल अवलोकन करने का बल्कि उसके आकलन का भी अवसर मिला।

स्कूल के सभी छात्र-छात्राएँ आवासीय हैं। इसका वार्षिक शुल्क एक सौ बीस पाउण्ड है। शिक्षकों को कम तनख्वाह देने के बावजूद (इस पर बाद में चर्चा की जाएगी), प्रधानाध्यापक को इसे चलाने में कठिनाई आ रही है। वे शुल्क इसलिए

नहीं बढ़ाना चाहते क्योंकि वे अभिभावकों की वित्तीय स्थिति से परिचित हैं। अन्य निजी आवासीय स्कूलों की तुलना में शुल्क कम होने के बावजूद यहाँ शिक्षकों का अनुपात अधिक है। निरीक्षकों को उन वित्तीय समस्याओं की बात सुन आश्चर्य हुआ जिनकी शिकायत प्रधानाध्यापक ने की। यह तो हिसाब-किताब को करीब से जाँचने पर ही पता चलेगा कि खर्च पूरा पड़ता है या सच में घाटा हो रहा है। किसी स्वतंत्र व अनुभवी सूत्र से ऑडिट करवाना शायद उचित रहे। तब तक इतना तो कहा जा सकता है कि बाकी चीज़ों की कमी हो या न हो, परन्तु बच्चों को खाना-पीना पर्याप्त मिलता है।

जिन लोगों ने प्रधानाध्यापक की रचनाएँ पढ़ी हैं वे उन सिद्धान्तों से वाकिफ होंगे जिन पर यहाँ की शिक्षण पद्धति आधारित है। उनमें से कुछ तो अब तक व्यापक रूप से स्वीकारे भी जा चुके हैं, कुछ का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है, तो कुछ ऐसे भी हैं जिनके प्रति अधिकांश शिक्षक व माता-पिता शंकालु हैं और उन्हें नापसन्द करते हैं। निरीक्षकों ने आकलन के सामान्य तरीके अपनाने की चेष्टा की जिससे जो कुछ किया जा रहा है उसे निष्पक्ष रूप से देखा जाए। पर लगता है कि स्कूल में अपनाए गए सिद्धान्तों और उसके लक्ष्यों के उल्लेख के बिना उन पर उचित टिप्पणी लिखना असम्भव है। फिर चाहे निरीक्षक उन सिद्धान्तों या लक्ष्यों से व्यक्तिगत स्तर पर सहमत हों या नहीं।

स्कूल जिन सिद्धान्तों पर आधारित है उनमें प्रमुख है आज़ादी। यह आज़ादी पूरी तरह अबाधित नहीं है। स्कूल के कई नियम हैं जो बच्चों के जीवन और शारीरिक सुरक्षा से सम्बंधित हैं। ये नियम बच्चे स्वयं बनाते हैं और प्रधानाध्यापक का अनुमोदन तब मिलता है जब वे पर्याप्त रूप से सख्त हों। उदाहरण के लिए बच्चे केवल तब तैर सकते हैं जब कम से कम दो ऐसे शिक्षक मौजूद हों जो जीवन-रक्षा में प्रशिक्षित हों। छोटे बच्चे, बड़ों के बिना स्कूल परिसर से बाहर नहीं जा सकते। ये व इसी तरह के दूसरे नियम अनिवार्य हैं और उन्हें तोड़ने पर आर्थिक सज़ा दी जाती है। पर शेष मामलों में बच्चों को दी जाने वाली आज़ादी निरीक्षकों ने दूसरे किसी स्कूल में नहीं देखी है। और यह आज़ादी वास्तविक है। उदाहरण के लिए किसी बच्चे के लिए कक्षाओं में जाना अनिवार्य नहीं है। जैसा बाद में स्पष्ट होगा, अधिकांश बच्चे नियमित रूप से कक्षाओं में जाते हैं पर एक ऐसा छात्र भी हमने पाया था जो तेरह साल से स्कूल में है और कभी कक्षा में नहीं गया। वह आज सटीक उपकरणों के निर्माता के यहाँ एक दक्ष कारीगर है। यह चरम उदाहरण महज़ इसलिए दिया जा रहा है जिससे स्पष्ट हो कि बच्चों को सच में आज़ादी दी जाती है, वह तब वापस नहीं ले ली जाती जब उसके परिणाम परेशान करने वाले लगने लगें। पर स्कूल अराजकतावादी सिद्धान्तों पर नहीं चलता। स्कूल की संसद में एक बच्चे की अध्यक्षता में नियम बनाए जाते हैं। सभी शिक्षक और बच्चे उसमें

इच्छानुसार भागीदारी करते हैं। इस सभा को चर्चा की असीमित और नियम बनाने की व्यापक शक्ति दी गई है। एक बार तो इस सभा ने एक शिक्षक के निलम्बन पर चर्चा की और यह दर्शाया कि वे पूरी घटना को न केवल समझ रहे हैं बल्कि यह फैसला उनके मत में उचित भी है। पर ऐसी घटनाएँ बिरले ही होती हैं। अमूमन आमसभा सामुदायिक जीवन के रोज़मर्रा के मसलों से सरोकार रखती है।

निरीक्षक पहले दिन आम सभा के एक सत्र में उपस्थित हो सके। मुख्य चर्चा रात को सोने के समय और निश्चित समयों पर रसोई में घुसने पर हुई। दोनों ही नियम सभा द्वारा बनाए गए थे। समस्याओं पर ज़ोरदार चर्चा हुई। सबने बेहिचक टिप्पणियाँ कीं। चर्चा व्यवस्थित थी। यद्यपि काफी समय फालतू के तर्कों में ज़ाया हुआ। निरीक्षक प्रधानाध्यापक के तर्क से सहमत थे कि बच्चों को अपने मामलों को सुलटाने का जो अनुभव हुआ वह ज़ाया हुए समय की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण था।

एक विवादास्पद मसले का उल्लेख आवश्यक है। वह है धार्मिक जीवन और शिक्षा का अभाव। धर्म पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। और अगर स्कूल की सभा इस विषय को प्रारम्भ करना चाहे तो सम्भवतः वह जोड़ा जा सकता है। इसी तरह अगर किसी बच्चे का किसी धर्म के प्रति व्यक्तिगत रुझान हो तो उसके सामने कोई बाधाएँ भी नहीं आएँगी। सभी बच्चे ऐसे परिवारों के हैं जो कट्टर ईसाई परिवार नहीं हैं और अब तक धार्मिक शिक्षा की कोई इच्छा उनके द्वारा प्रकट नहीं की गई है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि कई सिद्धान्तों व आचरणों का उपयोग स्कूल में होता हैं। स्कूल की कई बातें ऐसी हैं जिनका कोई भी ईसाई व्यक्ति अनुमोदन करे। धार्मिक शिक्षा के पूर्ण अभाव का क्या प्रभाव पड़ रहा है, यह दो दिन के निरीक्षण के दौरान नहीं समझा जा सकता है।

स्कूल की सामान्य रिपोर्ट लिखने के पहले यह परिचय देना आवश्यक लगा। इस वास्तविक आज़ादी की पृष्ठभूमि में ही स्कूल की व्यवस्था तथा गतिविधियों को देखा जाना चाहिए।

व्यवस्था

स्कूल में 4 से 16 वर्ष की आयु के 70 बच्चे हैं। ये बच्चे चार अलग-अलग भवनों में रहते हैं। इनका वर्णन परिसर सम्बंधी भाग में दिया जाएगा। इस भाग में जिस सीमित अर्थ में शिक्षा को समझा जाता है उसका वर्णन किया जाएगा। स्कूल में 6 कक्षाएँ हैं। ये कमोबेश आयु के आधार पर विभाजित हैं, पर इनको बनाने में

क्षमता पर अधिक बल दिया जाता है। इन कक्षाओं में सामान्य स्कूलों की तरह सप्ताह में पाँच बार चालीस-चालीस मिनट के पाँच पीरियड लगते हैं। उनके पढ़ने का स्थान और शिक्षक निश्चित हैं। अन्य स्कूलों से अन्तर केवल इस बात का है कि इस बात की कोई गारन्टी नहीं रहती कि कितने या कोई बच्चे उपस्थित होंगे या नहीं। निरीक्षकों ने कक्षाओं में उपस्थित रहकर और सवाल पूछकर यह जानने की कोशिश की कि दरअसल उनमें क्या होता है। पता चला कि जैसे-जैसे बच्चों की उम्र बढ़ती है वे अधिक नियमित होते जाते हैं। साथ ही अगर कोई बच्चा किसी कक्षा में जाना तय करता है तो सामान्यतः वह नियमित रूप से पढ़ने आता है। कक्षा कार्य व विषय के बीच का संतुलन सही है या नहीं यह जानना और भी कठिन था। क्योंकि कई बच्चे स्कूल सर्टिफिकेट का इम्तहान देने का निर्णय लेते हैं। ऐसे में विषयों का चयन परीक्षा की आवश्यकता से निर्धारित होता चलता है। पर छोटे बच्चों को चयन की पूर्ण स्वतंत्रता है। इस पद्धति के परिणाम अपनी समग्रता में खास प्रभावित नहीं करते। यह सच है कि बच्चे इच्छा और रुचि के साथ काम करते हैं। यह बात बड़ी स्फूर्तिदायक है। फिर भी उनकी उपलब्धियाँ विशेष नहीं हैं बल्कि इस बात के परिणाम हैं कि यह पद्धति ठीक से लागू नहीं हो पा रही है। इसके कारण निम्न लगते हैंः

1. छोटे बच्चों के लिए अच्छे शिक्षकों का अभाव जो पढ़ाई और अन्य गतिविधियों का निरीक्षण कर सकें, दोनों को समेकित कर सकें।

2. शिक्षण का स्तर। जहाँ तक समझा जा सका शिशुओं की शिक्षा प्रबुद्ध और प्रभावी है। कुछ बड़ी कक्षाओं में भी अच्छी पढ़ाई होती है। पर छोटी कक्षाओं में आठ, नौ और दस साल के बच्चों के लिए अच्छे शिक्षकों का अभाव है जो उन्हें प्रेरित और उत्साहित कर सकें। कुछ पुराने और औपचारिक तरीके भी काम में लाए जाते हैं। इस कारण जब बच्चे उस उम्र में आते हैं जब वे उन्नत काम के लिए प्रस्तुत हों तो शिक्षकों को काफी कठिनाइयाँ आती हैं। बड़े बच्चों की शिक्षा काफी अच्छी है और कुछ दृष्टान्तों में बेहतरीन भी कहलाई जा सकती है।

3. बच्चों को सही निर्देशन दे पाने की क्षमता का अभाव लगा। यह बात तो प्रशंसनीय है कि एक पन्द्रह साल की लड़की यह स्वयं तय करे कि वह फ्रेंच व जर्मन पढ़ना चाहती है, जिनकी उसने पहले उपेक्षा की थी। पर हर सप्ताह दो कक्षा जर्मन की और तीन फ्रेंच की पढ़ने के बाद उससे यह अपेक्षा रखना गैर ज़िम्मेदाराना है कि वह इन भाषाओं में दक्षता पा सकेगी। उसके दृढ़ संकल्प के बावजूद उसकी प्रगति धीमी थी। ज़ाहिर है उसे इन विषयों पर इससे अधिक समय बिताने की अनुमति दी जानी चाहिए। निरीक्षकों को लगा कि अपने काम की स्वयं योजना बनाने वाले बच्चों के लिए ट्यूटोरियल जैसी पद्धति अपनानी चाहिए।

4. एकान्त का अभाव। 'समरहिल जैसी जगह में पढ़ाई करना आसान नहीं हैं।' ये शब्द प्रधानाध्यापक के हैं। समरहिल गतिविधियों का गढ़ है। बच्चों का ध्यान और उनकी रुचि को आकर्षित करने के लिए वहाँ बहुत कुछ है। किसी बच्चे का अपना निजी कमरा नहीं है न ही अध्ययन के लिए अलग से कोई कमरे हैं। सच है कि जिसने पढ़ना तय कर ही लिया हो वह कोई न कोई जगह अपने लिए ढूँढ सकता है, पर इसके लिए जिस संकल्प शक्ति की ज़रूरत है वह बच्चों में बिरले ही मिलेगी। सोलह वर्ष की आयु के बाद स्कूल में कम बच्चे रहते हैं, यद्यपि इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। समरहिल के कुछ बच्चे बेहद क्षमतावान और बुद्धिमान हैं तथा इस बात में शंका है कि उन्हें बौद्धिक विकास के लिए जितना चाहिए वह उन्हें यहाँ मिल पा रहा है।

पर साथ ही जहाँ कहीं शिक्षण स्तर अच्छा है वहाँ कुछ बेहतरीन काम भी हो रहा है। कला यहाँ उत्कृष्ट है। समरहिल के बच्चों व अन्य सामान्य स्कूलों के बच्चों के चित्रों में कोई विशेष अन्तर ढूँढ पाना कठिन होगा। पर किसी भी मानदण्ड से देखें उनका काम अच्छा था। हस्तकलाओं में भी विविधता व श्रेष्ठता नज़र आई। निरीक्षण के दौरान एक भट्टी-निर्माण का काम चल रहा था। और मिट्टी के कई बेहतरीन बर्तन उसमें पकने को तैयार थे। पैर से चलाया जाने वाला करघा एक और शिल्प की सम्भावनाओं को साकार करेगा।

लेखन में भी काफी रचनात्मक काम हो रहा है। इसमें एक दीवार अखबार शामिल है। बच्चों के लिखे कई नाटक हर सत्र में मंचित होते हैं। नाटकों की काफी चर्चा हुई, पर क्योंकि उनकी पाण्डुलिपियाँ सम्भाल कर नहीं रखी जातीं, उनकी गुणवत्ता का आकलन करना असम्भव था। कुछ समय पहले *मैकबेथ* का मंचन किया गया था, उसके लिए मंच सज्जा व वेशभूषा आदि स्कूल में ही तैयार किए गए थे। रोचक यह था कि *मैकबेथ* का मंचन बच्चों की इच्छा से किया गया था। स्वयं प्रधानाध्यापक बच्चों के लिखे नाटकों का मंचन ही पसन्द करते हैं।

शारीरिक शिक्षा स्कूल के सिद्धान्तों के अनुरूप होती है। कोई भी खेल या व्यायाम अनिवार्य नहीं है। फुटबॉल, क्रिकेट और टेनिस उत्साह से खेले जाते हैं। फुटबॉल की बारीकियाँ बच्चे समझते हैं क्योंकि शिक्षकों में एक फुटबॉल के विशेषज्ञ हैं। बच्चे शहर के दूसरे स्कूलों के साथ मैच आयोजित करते हैं। जिस दिन निरीक्षक पहुँचे, पड़ोस के स्कूल के साथ एक क्रिकेट मैच चल रहा था। पता चला कि समरहिल का सबसे बढ़िया खिलाड़ी उसमें शामिल नहीं हुआ क्योंकि उन्हें मालूम हुआ कि विपक्षी दल का सबसे अच्छा खिलाड़ी अस्वस्थ है।

कमरों से बाहर काफी समय गुज़ारा जाता है और बच्चे सक्रिय व स्वस्थ जीवन बिताते हैं। यह नज़र भी आता है। औपचारिक शारीरिक शिक्षा के अभाव से उन्हें

कितनी हानि दरअसल हो रही है, यह तो विशेषज्ञों द्वारा बारीक जाँच से ही पता चल सकता है।

परिसर

स्कूल जिस पसरे हुए परिसर में स्थित है वह बच्चों को मनोरंजन के तमाम अवसर देता है। मुख्य भवन, जो पहले निजी रिहायशी मकान था, में स्कूल के लिए एक हॉल, खाने का कमरा, बीमार बच्चों के लिए कमरे, कला कक्ष, एक छोटा हस्तकला कक्ष और लड़कियों के सोने के कमरे हैं। सबसे छोटे बच्चे एक अलग भवन में सोते हैं जहाँ उनके पढ़ने की कक्षा भी है। बड़े बच्चों के सोने के कमरे और बाकी कक्षाएँ बाग में झोपड़ियों में हैं। वहीं कुछ शिक्षकों के कमरे भी हैं। इन सभी कमरों के दरवाज़े बाग में खुलते हैं। पढ़ने के कमरे छोटे हैं पर क्योंकि पढ़ाई छोटे समूहों में ही होती है, वे पर्याप्त हैं। इनमें से एक सोने का कमरा बच्चों व शिक्षकों की मेहनत से बना है। दरअसल उसे एक अस्पताल के लिए बनाया गया था जिसकी अब तक कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है। सामान्य मानदण्डों से देखें तो रिहायशी व्यवस्था आदिम किस्म की है पर स्कूल का स्वास्थ्य रिकॉर्ड अच्छा है। अतः इस व्यवस्था को संतोषजनक माना जा सकता है। स्नानघर पर्याप्त संख्या में हैं।

बाग में पसरा यह परिसर पहली नज़र में असाधारण रूप से आदिम और सार्वजनिक लगता है पर इससे एक स्थाई छुट्टी शिविर का सा वातावरण बनता है, जो इस स्कूल की विशेषता है। साथ ही आने-जाने वाले लोगों से परेशान हुए बिना बच्चे अपनी पढ़ाई जारी रख सकते हैं। निरीक्षण के दिन भी कई मेहमान मौजूद थे।

शिक्षक

शिक्षकों को रहने-खाने की व्यवस्था के साथ आठ पाउण्ड का मासिक वेतन दिया जाता है। ऐसे स्त्री-पुरुष तलाश पाना, जो न केवल स्कूल के सिद्धान्तों में विश्वास करते हों बल्कि इतने परिपक्व व संतुलित हों कि वे बच्चों के साथ समानता के स्तर पर रह सकें, जो शैक्षणिक योग्यताएँ रखते हों और कुशल शिक्षक हों, तब उनको सिर्फ आठ पाउण्ड के वेतन पर काम करने को रज़ामन्द करना, प्रधानाध्यापक के लिए ज़रूर एक कठिन काम होगा। समरहिल में काम करने की सिफारिश अधिकांश लोग नहीं करते। और फिर विश्वास, निस्वार्थता, दृढ़ चरित्र और क्षमताओं का यह आवश्यक मिश्रण खोज पाना काफी कठिन भी है। यह पहले ही

कहा जा चुका है कि स्कूल की सभी माँगों की पूर्ति यहाँ के शिक्षक नहीं कर पाते। फिर भी अन्य निजी स्कूलों, जहाँ शिक्षकों को अधिक वेतन दिया जाता है, की तुलना में ये शिक्षक कहीं बेहतर हैं। इनमें एक एडिनबरो से अँग्रेज़ी में एम.ए. ऑनर्स हैं, एक लिवरपूल से एम.ए. व एक बी.एस.सी. हैं, एक कैम्ब्रिज से हैं, एक शिक्षक लंदन से फ्रेंच व जर्मन में विशेषज्ञता प्राप्त हैं, एक कैम्ब्रिज से इतिहास में बी.ए. डिग्रीधारी हैं। चार शिक्षकों ने शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। इसमें कला व हस्तकला शिक्षक शामिल नहीं हैं जिनके पास विदेशी योग्यताएँ हैं और जो सबसे बेहतरीन शिक्षकों में हैं।

यद्यपि कई जगह विशेष प्रयास करने की ज़रूरत है। वर्तमान शिक्षक कमज़ोर नहीं हैं। अगर उन्हें कुछ प्रशिक्षणों से जुड़ने का, अन्य स्कूलों को देखने का, अवसर मिले, तो उनका नज़रिया व्यापक व ताज़ा हो सकेगा और उनका प्रदर्शन और बढ़िया हो सकेगा। पर साथ ही यह आशा रखना भी कठिन है कि सालाना 96 पाउण्ड के वेतन पर स्कूल अच्छे शिक्षकों को आकर्षित कर सकेगा। समस्या का सामना करना ही होगा।

प्रधानाध्यापक की अटूट आस्थाएँ हैं और वे निष्ठावान व्यक्ति हैं। उनका विश्वास और धैर्य असीमित ही होगा। उनमें वह ताकत है जो बिरले मिलती है। वे दृढ़ व्यक्तित्व के बावजूद किसी पर हावी नहीं होते। उन्हें उनके स्कूल में देखने पर उनके प्रति श्रद्धा जगती ही है फिर चाहे कोई उनसे असहमत हो या फिर उनके विचारों को नापसन्द करता हो। उनका स्वभाव विनोदी है, मानवतावादी है और वे कुशाग्र हैं। वे किसी भी स्थिति में एक बेहतरीन प्रधानाध्यापक होते। उनके सुखी पारिवारिक जीवन में बच्चे भी भागीदार हैं। जो उनके उदाहरण से उतना ही लाभ ले पाते होंगे जितना दूसरे ले सकते हैं।

वे शिक्षा का व्यापक अर्थ लेते हैं। उनके लिए शिक्षा जीवन को प्रचुरता से जीना सीखना है। इस रिपोर्ट में की गई कुछ आलोचना से वे सहमत भी हो सकते हैं। फिर भी उनका आग्रह यही रहेगा कि स्कूल का आकलन यहाँ सिखाए गए कौशलों या क्षमताओं के आधार पर न होकर इस बात से किया जाए कि वहाँ बच्चों को किस तरह विकसित होने दिया जाता है। आकलन के आधार पर कहा जा सकता है किः

1. बच्चे बेहद जीवन्त और उत्साह से भरे हैं। ऊब और तटस्थता का नामों-निशान नहीं है। सन्तोष और सहिष्णुता का वातावरण स्कूल में है। जिस स्नेह से स्कूल के पुराने छात्र इसे याद करते हैं वह इसकी सफलता का द्योतक है। स्कूल सत्र की समाप्ति पर जो नाटक व नृत्य आदि होते हैं उसमें तकरीबन तीस ऐसे ही बच्चे उपस्थित होते हैं। और कई तो छुट्टियों में भी यहीं रहते हैं। यहाँ शायद यह जोड़ना उचित होगा कि स्कूल में पहले 'समस्यात्मक' बच्चे ही दाखिला

लेने आते थे। पर अब समाज के सभी तबकों से सब तरह के बच्चे दाखिल होते हैं।

2. बच्चों का आचरण आनन्ददायक है। आचरण के स्वीकृत मानदण्डों में शायद कभी-कभार कोई त्रुटियाँ नज़र आती हैं। पर उनका दोस्ताना व्यवहार, उनकी सहजता, उनमें झिझक और शर्म का अभाव ऐसे गुण हैं जिनसे उनके साथ रिश्ता बनाना बड़ा आसान है।

3. पहल करने की इच्छा, ज़िम्मेदारी और ईमानदारी की भावना आदि स्कूली पद्धति स्वतः प्रोत्साहित करती है और जहाँ तक समझा जा सकता है, ये सभी गुण यहाँ के छात्र-छात्राओं में पनप रहे हैं।

4. जो प्रमाण मिले हैं वे यह नहीं सुझाते कि स्कूल से निकलने के बाद समरहिल के छात्र-छात्राएँ सामान्य समाज में घुलमिल नहीं पाते। जिस तरह की सूचनाएँ नीचे दी जा रही हैं उनसे पूरी कहानी तो पता नहीं चलती पर यह संकेत तो मिलता ही है कि समरहिल की शिक्षा सफलता के विरुद्ध नहीं है। यहाँ के पूर्व छात्र-छात्राएँ सेना की इंजीनियरिंग शाखा में कप्तान हैं, एक क्वॉर्टरमास्टर सार्जेंट है, एक बॉम्बर पायलट है, एक स्क्वॉड्रन लीडर है, एक नर्सरी की नर्स, एक एयर हॉस्टेस, एक क्लैरिनेट वादिका, एक बैले डांसर, एक रेडियो ऑपरेटर, एक बड़ी कम्पनी में बाज़ार शोधकर्ता है, एक लघु कथा लेखक है जिसकी कहानियाँ राष्ट्रीय समाचार पत्रों में छपती हैं। स्कूल के बाद पूर्व छात्र-छात्राओं ने विविध डिग्रियाँ हासिल की हैं, कैम्ब्रिज से अर्थशास्त्र में बी.ए. ऑनर्स, स्कॉलर रॉयल कॉलेज ऑफ आर्ट्स, लंदन से बी.एस.सी. प्रथम श्रेणी ऑनर्स, कैम्ब्रिज से बी.ए. ऑनर्स, इतिहास, मैनचेस्टर से आधुनिक भाषा की डिग्री आदि।

5. प्रधानाध्यापक की शिक्षा दृष्टि स्कूल को एक ऐसे शैक्षणिक संस्थान का रूप देती है जहाँ मूलभूत काम बच्चों की रुचियों के अनुरूप होता है और कक्षा में हो रहा कार्य परीक्षा की आवश्यकताओं से निर्देशित नहीं होता। ऐसा शैक्षणिक वातावरण बनाना जहाँ विद्वता पनप सके, अपने आप में उपलब्धि है। पर दरअसल वह पनप नहीं रही। इसका एक बड़ा अवसर खो दिया जा रहा है। सभी स्तरों पर बेहतर शिक्षण, खासकर छोटे बच्चों के संदर्भ में बेहतर शिक्षण से यह पनप सकेगी। तभी यह रोचक प्रयोग स्वयं को सिद्ध कर सकेगा।

शिक्षा सिद्धान्तों और विधियों को लेकर कुछ शंकाएँ हैं। स्कूल को करीब से और एक अर्से तक जानने पर सम्भवतः कुछ शंकाएँ दूर हो सकेंगी। सम्भवतः इनमें से कुछ और गहराएँ। पर इस तथ्य में कोई शक नहीं है कि एक बेहद रोचक शैक्षिक शोध का प्रयास यहाँ चल रहा है जिसे सभी शिक्षाविदों को देखना चाहिए।

महामहिम सम्राट के निरीक्षकों की रिपोर्ट पर टीप

हमारा सौभाग्य था कि जो दो निरीक्षक हमारे यहाँ आए वे उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे। हमने तुरन्त ही 'मिस्टर' कहना छोड़ दिया। उनके दो दिनों की यात्रा के दौरान हमारी तमाम दोस्ताना बहसें हुईं।

मुझे लगा कि निरीक्षकों को इस बात की आदत होती है कि वे किसी भी कक्षा में जाकर फ्रेंच की किताब उठाकर छात्रों से सवाल करें और तब यह जानने की कोशिश करें कि छात्र दरअसल कितना जानते हैं। मैंने कहा कि इस तरह का प्रशिक्षण व अनुभव एक ऐसे स्कूल के आकलन में निरर्थक रहेगा जहाँ पाठ मुख्य मानदण्ड ही नहीं हो। मैंने एक निरीक्षक से कहा, "आप समरहिल का निरीक्षण कर ही नहीं सकते क्योंकि हमारा मानदण्ड है आनन्द, ईमानदारी, संतुलन व सामाजिकता।" उन्होंने मुस्कुराकर कहा कि वे फिर भी कोशिश करेंगे। हमारे निरीक्षकों ने स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल बनाने की अद्‌भुत क्षमता दर्शाई। यह भी स्पष्ट लगा कि उन्हें इस प्रक्रिया में मज़ा आया।

अजीब-अजीब चीज़ों पर उनका ध्यान गया। एक ने कहा, "सालों साल कक्षाओं में घुसते ही बच्चों को उछलकर सावधान होते देखने के बाद, इस बात से एक मज़ेदार धक्का लगा कि बच्चों ने हमारी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया।" सच में हमारा सौभाग्य था कि वे दोनों निरीक्षण के लिए आए थे। पर रिपोर्ट की ओर लौटें।

'निरीक्षकों को स्कूल की वित्तीय समस्याओं से आश्चर्य हुआ...।' इसका जवाब कुछ हद तक तो यह है कि लोगों ने अपने बकाया कर्ज़े नहीं चुकाए हैं। रिपोर्ट में वार्षिक शुल्क 120 पाउण्ड का उल्लेख है। तब से हमने बढ़ती मंहगाई की स्थिति से निपटने के लिए औसतन 250 पाउण्ड लेने शुरू किए हैं। पर इसके बावजूद भवनों की मरम्मत, नई सामग्री की खरीद आदि के लिए कुछ नहीं बच पाता। एक तो हमारे यहाँ तोड़-फोड़ भी कठोर अनुशासन वाले स्कूलों की तुलना में अधिक होती है। क्योंकि हम बच्चों को गिरोह-मानसिकता के चरण से गुज़रने देते हैं। परिणामस्वरूप हमारे फर्नीचर का काफी नुकसान होता है। रिपोर्ट में सत्तर बच्चों का उल्लेख है, पर आज यह संख्या घटकर पैंतालीस रह गई है।

रिपोर्ट में बीच की उम्र के बच्चों की कमज़ोर पढ़ाई का ज़िक्र है। यह समस्या हमेशा रही है। अगर बेहतरीन शिक्षक भी होते, तब भी अन्य पब्लिक स्कूलों में जो पढ़ाई

करवाई जाती है, वह करवाना कठिन होता क्योंकि बच्चों को दूसरे तमाम काम करने की आज़ादी है। अगर दूसरे स्कूलों में भी दस-बारह साल के बच्चों को पाठ पढ़ने के बदले पेड़ों पर चढ़ने या गड्ढे खोदने का विकल्प मिलता तो उनके स्तर भी हमारी तरह होते। हम यह स्वीकारते हैं कि हमारे छात्र-छात्राएँ एक ऐसे चरण से गुज़रते हैं जब उनका शैक्षणिक स्तर गिरता है, क्योंकि हमारी मान्यता है कि जीवन के उस चरण में उनके लिए खेलना, पढ़ने से अधिक महत्वपूर्ण है।

अगर हम यह भी मान लें कि छोटे बच्चों का पढ़ाई में पिछड़ने का महत्व है, तो भी सच्चाई यह है कि साल भर बाद यही बच्चे जब बड़े बच्चों की जमात में आते हैं, वे ऑक्सफोर्ड परीक्षाएँ अच्छे अंक लेकर पास करते हैं। हमारे छात्रों को उन्तालीस विषयों में जाँचा गया, औसतन साढे छह विषय प्रति छात्र। चौबीस बच्चों को *बहुत अच्छा* मिला, जो 70 प्रतिशत से अधिक था। इन उन्तालीस विषयों में केवल एक अनुत्तीर्ण था। ज़ाहिर है कि जूनियर छात्रों के रूप में उनकी जो भी कमी थी वह सीनियर कक्षाओं में नहीं रही।

मुझे स्वयं देर से शुरू करने वाले बच्चे पसन्द हैं। चार साल की उम्र में जो बच्चे मिल्टन कण्ठस्थ कर सुना सकते हैं, उन्हें चौंतीस वर्ष की उम्र में शराबी और कामचोर बनते भी मैंने देखा है। मुझे ऐसे लोग अच्छे लगते हैं जो तिरेपन साल की उम्र में यह कहते हैं कि उन्हें यह पता नहीं कि जीवन में उन्हें क्या बनना है। मुझे लगता है कि जो बच्चा सात साल की उम्र में यह जानता है कि वह भविष्य में क्या बनना चाहता है, तो बड़े होने पर उसका दृष्टिकोण निहायत रूढ़िवादी रहेगा।

रिपोर्ट में लिखा हैः 'ऐसी परिस्थितियां बनाना जिसमें शैक्षणिक श्रेष्ठता पनप सके अपने आप में एक उपलब्धि है, पर वह श्रेष्ठता दरअसल पनप नहीं रही है और यूँ एक अवसर खो दिया जा रहा है।' रिपोर्ट का यह अकेला अनुच्छेद है जिसमें दोनों निरीक्षक अपने शैक्षणिक आग्रह से ऊपर नहीं उठ सके हैं। पर हमारी पद्धति तब कारगर होती है जब बच्चा स्वयं पढ़ाई करना *चाहता* है, जैसा हमारे परीक्षा परिणामों से स्पष्ट है। सम्भवतः निरीक्षकों का अर्थ यह रहा हो कि छोटे बच्चों का बेहतर शिक्षण स्तर अधिक बच्चों को मैट्रिक परीक्षाएँ लेने को *प्रेरित* करेगा।

क्या वह समय आ नहीं चुका है जब हम पढ़ाई-लिखाई को शिक्षा में उसकी सही जगह पर रखें? मुझे लगता है कि शैक्षणिक पढ़ाई बच्चों में अनुचित और गैर तार्किक बदलाव लाने की कोशिश में लगी है। कभी सोचता हूँ कि समरहिल के कुछ पूर्व छात्र-छात्राओं पर जो बाद में ड्रेस डिज़ाइनर, बैले नर्तक, हेयर ड्रेसर, संगीतज्ञ, नर्स, मैकेनिक, इंजीनियर या दर्ज़न भर कलाकार बने, उन पर अगर इस तरह की पढ़ाई थोपी जाती तो उनका क्या हश्र होता।

फिर भी यह रिपोर्ट न्यायपूर्ण है, उदार है। मैं इसे इसलिए छाप रहा हूँ ताकि पढ़ने वाले समरहिल पर मेरे अलावा दूसरे विचार भी जानें। यह ध्यान रहे कि रिपोर्ट में किसी प्रकार की सरकारी मान्यता समरहिल को नहीं दी गई है। यह मान्यता अगर मिलती तो व्यक्तिगत स्तर पर दो कारणों से लाभ होता। एक तो हमारे शिक्षकों को राजकीय अनुदान योजना का फायदा मिलता और अभिभावक अपने बच्चों के लिए स्थानीय काउन्सिल से वित्तीय सहायता ले पाते।

मैं यहाँ यह भी दर्ज़ करना चाहूँगा कि समरहिल को शिक्षा मंत्रालय से कभी परेशानी नहीं हुई है। जब भी मैंने प्रश्न पूछे हैं या स्वयं मंत्रालय गया हूँ मेरे साथ शिष्ट और दोस्ताना व्यवहार किया गया है। एक ही अवसर था जब युद्ध के तुरन्त बाद मंत्रालय ने एक स्कैंडिनेवियन अभिभावक को स्कूल के लिए पूर्व निर्मित सामग्री आयात कर एक मकान बनाने की अनुमति नहीं दी।

जब मैं यूरोपीय सरकारों को उनके देशों में चल रहे निजी स्कूलों में आधिकारिक रुचि लेते देखता हूँ तो मुझे खुशी होती है कि मैं एक ऐसे देश में रहता और काम कर रहा हूँ जो निजी उपक्रमों को पनपने देता है। मैं अपने बच्चों के प्रति सहनशील हूँ, मंत्रालय मेरे स्कूल के प्रति सहनशीलता बरतता है। मैं सन्तुष्ट हूँ।

समरहिल का भविष्य

अब, जब मैं अपने चौरासी साल में हूँ मुझे लगता है मैं शिक्षा पर एक और किताब नहीं लिखने वाला क्योंकि नया कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं होगा। फिर भी मुझे जो कहना है वह मेरे पक्ष में है। वह यह कि मैंने पिछले चालीस वर्ष बच्चों पर सिद्धान्त लिखते नहीं गुज़ारे हैं। मैंने जो कुछ लिखा है, वह अधिकतर बच्चों के साथ रहते हुए उनके अवलोकन पर आधारित है। यह सच है कि फ्रॉयड, होमर लेन आदि ने मुझे प्रेरणा दी है, पर मैंने उस समय उनके सिद्धान्तों को त्यागा है जब वास्तविकता ने इन विशेषज्ञों को गलत सिद्ध किया है।

लेखक का काम विचित्र होता है। रेडियो प्रसारण की तरह ही लेखक उन लोगों को सन्देश भेजता है जिन्हें न वह देख सकता है, न गिन सकता है। मेरे पाठक विशेष लोग रहे हैं। जिसे अधिकारिक रूप से 'जनता' कहा जाता है, वे मुझे नहीं जानते। बी.बी.सी. शिक्षा के किसी प्रसारण के लिए मुझे कभी आमंत्रित नहीं करेगी। कोई विश्वविद्यालय, मय मेरे खुद का विश्वविद्यालय एडिनबरो, मुझे कभी

कोई मानद सम्मान नहीं देगा। जब मैं ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज के छात्रों को भाषण देने जाता हूँ तो कोई प्रोफेसर मुझे सुनने नहीं आता। दरअसल मुझे इन सभी बातों पर गर्व है। क्योंकि अगर मुझे अधिकारिक मान्यता मिली होती तो मैं समझता मैं भी पुरातनपंथी हो चला हूँ।

एक समय था जब मैं इस बात से नाराज़ होता था कि *द टाइम्स* कभी मेरे पत्र नहीं छापता है, पर आज मैं इस नामंज़ूरी को प्रशंसा मानता हूँ।

मैं यह नहीं कह रहा कि कद्र पाने की इच्छा से मैं दूर हो गया हूँ। पर आयु के साथ बदलाव आते हैं। खासकर मूल्यों में बदलाव आते हैं। हाल में मैंने स्वीडिश लोगों को भाषण दिया। उसमें सात सौ श्रोता एक ऐसे हॉल में ठसे थे जो छह सौ लोगों के लिए बना था। पर मेरे मन में उल्लास या घमण्ड का भाव नहीं पनपा। मैंने सोचा कि मैं इन चीज़ों के प्रति उदासीन बन चुका हूँ। जब तक मैंने खुद से यह सवाल नहीं पूछा, ''अगर श्रोताओं की संख्या केवल दस होती तो?'' जवाब मिला, ''मुझे बड़ा गुस्सा आता।'' अर्थात अगर घमण्ड नहीं है, तो खीज का अभाव भी नहीं है।

उम्र के साथ महत्वाकांक्षा मर जाती है पर कद्र का मामला दूसरा ही है। मुझे ऐसी कोई किताब जिसका शीर्षक *प्रगतिशील स्कूलों का इतिहास* हो, देखना पसन्द नहीं आता जिसमें मेरे प्रयासों को नज़रअंदाज़ किया गया हो। सच तो यह है कि मैं ऐसे किसी व्यक्ति से कभी नहीं मिला जो कद्र के प्रति उदासीन हो।

उम्र का एक विनोदी पक्ष भी है। मैं सालों से युवा वर्ग तक पहुँचने की कोशिश करता रहा हूँ। युवा छात्र-छात्राओं, युवा शिक्षकों, युवा माता-पिता तक। क्योंकि मैंने उम्र को विकास में बाधा माना है पर अब जब मैं स्वयं बूढ़ा हो गया हूँ, जिनके विरुद्ध बात करता रहा उनकी श्रेणी में आ गया हूँ, तो मेरी भावनाएँ बदली हैं। हाल में मैं कैम्ब्रिज में तीन सौ छात्रों को भाषण दे रहा था, मुझे लगा कि पूरे सभागार में मैं ही सबसे युवा हूँ। *सच में लगा*। मैंने उनसे कहा, ''मेरे जैसा व्यक्ति को *तुम्हें* आज़ादी के बारे में बताने की क्या ज़रूरत है?'' दरअसल अब मैं युवावस्था और वृद्धावस्था को बाँटकर नहीं देखता। मेरा मानना है कि व्यक्ति के सोच का उसकी उम्र से खास लेना-देना नहीं है। मैं बीस वर्ष के छोकरों को जानता हूँ जो नब्बे साल के हैं और साठ साल के लोगों को भी जो बस बीस के ही हैं। यहाँ मैं ताज़गी, उत्साह, रूढ़िवादिता का अभाव, जड़ता और निराशावाद की बात कर रहा हूँ।

मुझे पता नहीं कि उम्र के साथ मैं सौम्य बना हूँ या नहीं। बेवकूफ लोगों को मैं अब कम झेल पाता हूँ, उबाऊ बातचीत मुझे अधिक खिझाती है, लोगों के व्यक्तिगत इतिहास में मेरी रुचि नहीं है। दरअसल पिछले तीस वर्षों में मुझे इन्हें खूब झेलना पड़ा है। मुझे अब चीज़ों में भी रुचि नहीं रही, मुझे कुछ खरीदने की इच्छा नहीं

होती। सालों से कपड़ों की सज़ी दुकानों की ओर मैंने झाँका तक नहीं है। यहाँ तक कि यूस्टन रोड पर मेरी पसन्दीदा औज़ारों की दुकान भी मुझे आकर्षित नहीं करती।

यह सच है कि मैं उम्र के उस पड़ाव पर पहुँच चुका हूँ कि बच्चों का शोर मुझे पहले से ज़्यादा थका देता है। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि उम्र के साथ मेरे धीरज में कमी आई है। मैं अब भी किसी बच्चे को तमाम गल्तियाँ करते, वही पुरानी ग्रंथियों को फिर-फिर जीते देख सकता हूँ, क्योंकि मेरा पक्का विश्वास है कि वह समय के साथ एक अच्छा नागरिक बनेगा। उम्र के साथ भय भी घटते हैं। पर यह भी सच है कि साहस भी कम होता जाता है। सालों पहले अगर कोई बच्चा यह धमकी देता कि उसकी बात नहीं मानी गई तो वह खिड़की से कूद जाएगा, तो मैं उसे कूदने को कह देता था। पर आज शायद मैं ऐसा नहीं कर सकूँगा।

एक सवाल अक्सर मुझसे पूछा जाता है, ''क्या समरहिल एक व्यक्ति का प्रयास नहीं है?'' ऐसा कतई नहीं है। रोज़मर्रा के काम में मेरी पत्नी, हमारे तमाम शिक्षक, उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना मैं हूँ। *यह स्कूल विशेष इसलिए बना है क्योंकि यहाँ यह विचार लागू किया जा सका है कि बच्चे के विकास में बाधा न डालो, उस पर कोई दबाव न डालो*।

क्या समरहिल विश्वविख्यात है? बिल्कुल नहीं। अगर उसके बारे में किसी को पता है भी, तो बस मुट्ठीभर शिक्षाविदों को। स्कैन्डिनेविया में इसकी ख्याति है। पिछले तीस सालों से नॉर्वे, स्वीडन, डेन्मार्क के छात्र-छात्राएँ यहाँ आ रहे हैं, कभी-कभी तो एक बार में बीस तक। ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा के भी छात्र आए हैं। मेरी किताबें कई भाषाओं में अनुदित हो चुकी हैं, जिनमें जापानी, हीब्रू, हिन्दुस्तानी व गुजराती शामिल हैं। जापान में भी समरहिल का कुछ प्रभाव है। तीस साल पहले साइशी शिमोडा समरहिल आए थे जो जापान के जाने-माने शिक्षाविद् हैं। उनके द्वारा किए गए मेरी किताबों के अनुवाद भी जापान में काफी बिके हैं। सुनता हूँ टोक्यो के शिक्षक हमारी शिक्षा पद्धति पर चर्चा करने के लिए भी मिलते हैं। शिमोडा ने एक बार फिर 1958 में एक माह हमारे साथ बिताया। सूडान के एक स्कूल के प्राध्यापक ने मुझे बताया कि वहाँ के शिक्षक समरहिल में बहुत रुचि रखते हैं।

मैं अनुवादों, यात्राओं और पत्रों के तथ्य बिना किसी भ्रम के लिख रहा हूँ। आप ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट में हज़ार लोगों को रोककर यह पूछें कि 'समरहिल' क्या है तो शायद कोई भी व्यक्ति स्कूल के नाम तक से परिचित नहीं होगा। ज़ाहिर है कि खुद की महत्ता या महत्ता के अभाव को लेकर मन में विनोद का भाव होना चाहिए।

मुझे नहीं लगता कि समरहिल की शिक्षण पद्धति का दुनिया में इस्तेमाल होगा, अगर कभी हो तो ऐसा एक लम्बे समय तक नहीं हो सकेगा। सम्भव है कि दुनिया

एक बेहतर पद्धति ईजाद कर ले। कोई खोखला और घमण्डी व्यक्ति ही यह सोच सकता है कि उसका काम शिक्षा में अन्तिम काम है। पर यह तय है कि दुनिया को एक बेहतर शिक्षण पद्धति ढूँढनी *ही होगी*। क्योंकि राजनीति मानवता को नहीं बचाएगी। उसने कभी यह किया ही नहीं है। अधिकांश राजनैतिक समाचार पत्रों में हमेशा घृणा ही भरी रही है। लोग साम्यवादी इसलिए हैं क्योंकि वे अमीरों से घृणा करते हैं, इसलिए नहीं कि वे गरीबों से प्यार करते हैं।

हमारे परिवार प्यार और आनन्द भरे किस तरह बन सकेंगे, जब वे एक ऐसे देश के किसी कोने में बसे हों, जिसके पास सामाजिक घृणा फैलाने के सैकड़ों तरीके हों। आप समझ रहे होंगे कि मैं शिक्षा को परीक्षाएँ, कक्षाएँ और पाठ पढ़ने की बात क्यों नहीं मानता। स्कूल मूल मुद्दे से बचते हैं। ग्रीक भाषा, गणित या इतिहास का ज्ञान हमारे घर-परिवारों को न तो अधिक प्रेममय बनाते हैं न ही हमारे बच्चों को कुण्ठाओं व झिझक से छुटकारा दिला सकते हैं या उनके माता-पिता को मानसिक रोगों से मुक्त बना सकते हैं।

समरहिल का अपना भविष्य महत्वपूर्ण नहीं है। पर समरहिल के मूल विचार का भविष्य मानवता के लिए महत्वपूर्ण है। नई पीढ़ियों को आज़ादी के साथ पनपने का मौका देना ज़रूरी है। आज़ादी देना ही प्रेम देना है। और प्रेम ही दुनिया को बचा सकता है।

2

बच्चों की परवरिश

अमुक्त बच्चा

एक साँचे में ढला हुआ, अनुकूलित, अनुशासित, दमित बालक यानी अमुक्त बच्चा जो 'असंख्य' है, दुनिया के हर कोने में बसता है। वह हमारे शहर में, सामने वाली गली में रहता है। वह एक उबाऊ स्कूल में एक उबाऊ मेज़ पर बैठता है। बाद में वह किसी दफ्तर की उबाऊ मेज़ पर या फैक्ट्री की बेंच पर बैठता है। वह सहमा होता है, अधिकारियों की आज्ञा का पालन करता है, आलोचना से डरता है। उसमें सामान्य, परम्परावादी और सही बने रहने की कट्टर इच्छा होती है। उसे जो कुछ पढ़ाया गया है, वह बिना सवाल किए स्वीकारता है। और बाद में वह अपनी तमाम ग्रन्थियाँ, अपनी कुण्ठाएँ अपने बच्चों को विरासत में देता है।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चे को अधिकतर मानसिक नुकसान उसकी ज़िन्दगी के पहले पाँच सालों में पहुँचता है। शायद यह कहना और भी सच हो कि पाँच साल तो क्या शायद पहले पाँच महीनों, पहले पाँच सप्ताह या पहले पाँच मिनटों में भी बच्चे को ऐसी क्षति पहुँचाई जा सकती है जो ताउम्र उसे परेशान करती है।

अमुक्ति जन्म से ही प्रारम्भ होती है या कहें जन्म से भी पहले। अगर कोई दमित महिला अपने जकड़े हुए शरीर में गर्भधारण करती है, तो उसकी जकड़न उसके बच्चे पर क्या असर करती है यह भला कौन बता सकता है?

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हमारी सभ्यता के सभी बच्चे जीवन-निन्दा के वातावरण में जन्मते हैं। जो समयानुसार बच्चों को खिलाने-पिलाने की बात करते हैं, वे मूलतः आनन्द विरोधी हैं। वे अपने बच्चे को अनुशासित तरीके से खिलाना-पिलाना चाहते हैं क्योंकि उनके अनुसार गैर अनुशासित स्तनपान उत्तेजना भरे सुख के समान है। पोषण की बात आम तौर पर एक तर्क के रूप में परोसी जाती है, जबकि असल उद्देश्य तो बच्चों को एक ऐसे अनुशासित जीव में ढालना है जो आनन्द से पहले कर्तव्य को रखे।

हम एक सामान्य सरकारी स्कूल के बच्चे जॉन स्मिथ की ज़िन्दगी पर विचार करें। उसके माता-पिता खुद तो कभी-कभार ही गिरजा जाते हैं, पर उनका आग्रह होता है कि जॉन हर इतवार धार्मिक शिक्षा की कक्षा में ज़रूर जाए। उसके माता-पिता ने आपसी शारीरिक आकर्षण के कारण विवाह किया था। उन्हें विवाह करना *ही*

था क्योंकि उनके समुदाय में यौन सम्बंध तभी स्थापित किए जा सकते हैं जब आप इज़्ज़तदार हों - यानी विवाहित हों। पर शारीरिक आकर्षण अपने आप में काफी नहीं है। उनके स्वभावों के अन्तर ने घर को एक बोझिल-सी जगह में बदल दिया। दोनों में यदाकदा धीमी आवाज़ में बहस होती है। कुछ स्नेह भरे नाज़ुक पल भी हैं, उन्हें नन्हा जॉन स्वाभाविक मानता है। पर माँ-बाप के बीच ऊँची आवाज़ में बहस उसके दिमाग को झिंझोड़ देती है। वह डर जाता है और रोता है। अकारण रोने के नाम पर उसकी पिटाई होती है।

उसका अनुकूलन शुरू से प्रारम्भ हो गया था। समयानुसार स्तनपान से वह काफी कुंठित हुआ था। उसे भूख लगी होती थी, पर घड़ी कहती कि अभी घण्टे भर की देरी है। उसे ढेरों कपड़ों में जकड़ा जाता था। वह ज़ोर से लतियाना चाहता, पर ऐसा कर नहीं पाता। भूख की कुंठा ने उसे अंगूठा चूसने पर मजबूर किया। पर परिवार के डॉक्टर ने कहा कि यह गन्दी आदत छुड़ानी चाहिए। माँ को कहा गया कि या तो वह कमीज़ खींचकर उसके हाथ को ही बांध दे या कोई कड़वी चीज़ उसके अँगूठे पर लगाए। जब तक वह लंगोट बाँधने की उम्र में था उसके स्वाभाविक कामों में कोई परेशानी नहीं हुई। पर जब वह घुटनों से रेंगने लगा और फर्श गन्दा करने लगा तो *शैतान* और *गन्दी बात* जैसे शब्द घर में तैरने लगे। और यूँ उसे साफ रहना सिखाने की निष्ठुर शुरुआत हुई।

इससे पहले जब भी वो अपने शिश्न को छूता उसका हाथ खींच दिया जाता। नतीजतन जल्द ही वो शिश्न छूने के प्रतिबंध को मल के प्रति घिन से जोड़ने लगा। सालों बाद जब वो सेल्समेन बना तो सफर के दौरान अक्सर यौन और टॉयलेट सम्बंधित चुटकुले सुनाता।

उसके प्रशिक्षण पर उसके सम्बंधियों और पड़ोसियों का भी प्रभाव था। माँ और पिता सही होने को लेकर चिन्तित रहते। इसलिए जब भी सम्बंधी या पड़ोसी आते, जॉन को सुप्रशिक्षित बच्चा बनकर दिखाना होता। जब आंटी उसे चॉकलेट देती तो उसे *धन्यवाद* कहना पड़ता, मेज़ पर ढंग से खाना पड़ता और जब बड़े बातचीत करते उसे बीच में नहीं बोलने का खास ध्यान रखना पड़ता। उसकी इतवार की वेशभूषा दरअसल पड़ोसियों की पसन्द से तय होती थी। प्रतिष्ठा के इस प्रशिक्षण का एक हिस्सा था झूठ बोलने की पेचीदा प्रणाली। इस प्रणाली का उसे आभास भी नहीं था। दरअसल उससे बचपन से ही झूठ बोलना शुरू हो चुका था। उसे कहा गया था कि ईश्वर उन शैतान बच्चों को प्यार नहीं करता जो गाली देते हैं, अगर वह ट्रेन में भाग-दौड़ मचाएगा तो कंडक्टर उसे पीटेगा।

जीवन के बारे में उसकी जिज्ञासा के जवाब में भी उसे झूठ ही मिला। ये झूठ इतने प्रभावी थे कि जीवन और जन्म को लेकर उसकी जिज्ञासा ही समाप्त हो गई।

जीवन का यह झूठ उस भय से जुड़ गया जब पाँच साल की उम्र में माँ ने उसे अपने और अपनी चार साल की बहन या पड़ोस की लड़की के शारीरिक अंतरों में रुचि दिखाते पकड़ा। इसके बाद उसकी जो धुनाई हुई (पिता ने भी घर लौटने पर बाकी की कसर निकाली) उसने उसके दिमाग में हमेशा के लिए यह सीख डाल दी कि सेक्स गन्दी और पाप भरी चीज़ है और इसके बारे में सोचना तक गलत है। बेचारे जॉन को सेक्स को लेकर अपनी भावनाओं को अन्दर ही दबाना पड़ा। परिणामस्वरूप किशोर उम्र में जब भी वो सिनेमा देखने जाता तो पर्दे पर किसी महिला के यह बोलने पर कि उसे तीन माह का गर्भ है वह ज़ोर-ज़ोर से हंस देता।

बौद्धिक रूप से जॉन का विकास सामान्य था। वह आसानी से सीख लेता था इसलिए बेवकूफ शिक्षकों की तीखी टिप्पणियों या सज़ा से वह बच गया। स्कूल में उसने थोड़ा बहुत अनावश्यक ज्ञान पाया और ऐसी संस्कृति में ढला जो घटिया अखबारों, फिल्मों या जासूसी कहानियों से संतुष्ट की जा सकती थी।

जॉन के लिए मिल्टन का नाम केवल मुँह साफ करने वाले द्रव से जुड़ा है। उसके लिए बीथोवन और बाख ऐसे लोग थे जो एलविस प्रेस्ली और बाइडरबेक बैण्ड सुनने में बाधक हैं।

जॉन का एक अमीर चचेरा भाई रेजिनाल्ड वर्धिंग्टन निजी स्कूल में पढ़ा। पर मूलतः उसका विकास भी गरीब जॉन जैसा ही था। उसने भी जीवन में जो कुछ दोयम दर्जे का था उसे स्वीकारना सीखा और वही *यथास्थिति* की गुलामी पाई और वही प्रेम व आनन्द को नकारना सीखा।

क्या जॉन और रेजिनाल्ड का यह चित्रण एक-तरफा व्यंग चित्रण है? पूरी तरह नहीं। पर मैंने पूरी स्थिति का चित्रण नहीं किया है। मैंने दोनों की मानवीय ऊष्मा को छोड़ दिया है, वह मानवीयता जो भयानक से भयानक चारित्रिक अनुकूलन के बावजूद बची रहती है। जीवन में हमें ज़्यादातर स्मिथ और वर्धिंग्टन जैसे लोग ही मिलते हैं। वे कमोबेश अच्छे, दोस्ताना लोग होते हैं, बचकानी आस्थाओं और अंधविश्वास से भरे, बच्चों का सा विश्वास और निष्ठा लिए। वे और उन जैसे तमाम लोग ऐसे नागरिक बनते हैं जो देश के नियम रचते हैं और मानवीयता की माँग करते हैं। ये ही वे लोग हैं जो माँग करते हैं कि पशुओं को मारते समय मानवीयता बरती जाए, अपने पालतू जानवरों की लोग सही देखभाल करें। पर जब मनुष्य, मनुष्य के प्रति अमानवीय होता है तब वे बिखर-से जाते हैं। वे बिना सोचे समझे एक क्रूर दण्ड संहिता अपनाते हैं और युद्ध के दौरान लोगों का मरना स्वाभाविक मान लेते हैं।

जॉन और उसका अमीर चचेरा भाई दोनों ही सहमत हैं कि प्रेम व विवाह के नियम बेवकूफी भरे, क्रूर और घृणास्पद हैं? प्रेम के मामले में वे इससे भी सहमत हैं कि

पुरुषों के लिए एक कानून हो और औरतों के लिए दूसरा। दोनों ही यह माँग करते हैं कि जिन लड़कियों से उनका विवाह हो, *वे* कुंवारी हों। पर अगर उनसे पूछा जाए कि उनका खुद का कौमार्यभंग हुआ है या नहीं, तो उनकी भौहें तन जाती हैं। वे कहते हैं, "पुरुषों की बात अलग है।"

दोनों ही पितृप्रधान राजसत्ता के प्रबल समर्थक हैं, फिर चाहे उन्होंने यह शब्द सुना हो या नहीं। वे दोनों पितृप्रधान राजसत्ता के ऐसे उत्पाद हैं जिनकी उसे आगे बरकरार रखने के लिए ज़रूरत है। उनकी भावनाएँ *व्यक्तिगत* भावनाओं की बजाय *भीड़* की भावनाएँ होती हैं।

जिस स्कूल से वे घृणा करते थे उसे छोड़ने के सालों बाद वे कहते हैं, "स्कूल में मेरी पिटाई हुई थी, और उसका मुझे बड़ा फायदा हुआ।" और वे अपने बच्चों को भी उसी या उस जैसे किसी स्कूल में दाखिल करवाते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वे अपने पिता की सत्ता को बिना रचनात्मक विद्रोह के स्वीकारते हैं। और यूँ पितृसत्ता की परिपाटी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती जाती है।

जॉन स्मिथ के चित्रण को पूरा करने के लिए मुझे उसकी बहन मेरी का भी संक्षिप्त परिचय देना चाहिए। संक्षिप्त इसलिए क्योंकि जिस दमनकारी वातावरण में वह पली-बढ़ी है वह ठीक वैसा ही है जिसमें जॉन का दम घुटता रहा है। पर उसके लिए कुछ और विशेष बाधाएँ हैं जिनका जॉन को सामना नहीं करना पड़ा। पितृप्रधान समाज में उसकी स्थिति नीची है और यह समझने, स्वीकारने के लिए उसे प्रशिक्षित किया गया है। उसे घरेलू काम में मदद करनी पड़ती है, पर जॉन उस समय खेल या पढ़ सकता है। वह यह भी जल्दी ही सीख लेती है कि जब वह नौकरी करेगी तो उसे पुरुषों से कम वेतन मिलेगा।

पुरुषों के बनाए समाज में अपनी हीन स्थिति के विरुद्ध मेरी सामान्यतः विद्रोह नहीं करती। पुरुष इसके लिए कुछ क्षतिपूर्ति भी करता है, फिर चाहे वह फूहड़ ही क्यों न हो। उसके प्रति सही व्यवहार किया जाता है, स्त्री न बैठे तो पुरुष भी नहीं बैठता। मेरी को परोक्ष रूप से यह सिखाया जाता है कि उसका मुख्य काम है बेहद खूबसूरत लगना। परिणामस्वरूप उसकी किताबों और स्कूल पर जितना खर्च किया जाता है उससे कई गुना अधिक कपड़ों और शृंगार प्रसाधनों पर होता है।

जहाँ तक सेक्स का सवाल है मेरी अपने भाई जैसी अबोध और दमित है। एक पितृप्रधान समाज में मर्द ही यह तय करते हैं कि महिलाएं पाक, कुवांरी और मासूम हों। मेरी का कोई दोष नहीं कि वह इसी दृढ़ विश्वास के साथ बड़ी हुई कि महिलाओं का मन पुरुषों की बनिस्बत ज़्यादा पवित्र होता है। कुछ अप्रकट तरीकों से पुरुषों ने महिलाओं में यह सोच और अहसास डाला है कि जीवन में उनका मुख्य काम सिर्फ बच्चे पैदा करना है और भोग मर्दों का अधिकार क्षेत्र है।

मेरी की दादी और शायद उसकी माँ के लिए भी सेक्स तब तक एक प्रतिबंधित चीज़ रही जब तक कि उनका विवाह नहीं हो गया। मेरी उस विचार से तो आगे बढ़ी है परन्तु उसके प्रेम जीवन में हमेशा गर्भवती होने का डर सवार रहता है। उसे मालूम है कि अवैध सन्तान, पति मिलने के उसके अवसरों को कम कर देगी।

भविष्य का एक मुख्य काम दमित सेक्स ऊर्जा और मानव रोग के सम्बंध की पड़ताल करना होगा। जॉन स्मिथ शायद गुर्दे के रोग से मर जाए और मेरी कैन्सर का शिकार हो जाए। लेकिन दोनों को यह अहसास नहीं होगा कि उनकी बीमारी और दमित भावनाओं में क्या रिश्ता है। एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब मानव जान जाए कि उसने जो सभ्यता विकसित की है वही इन तमाम दुखों, घृणा और रोगों की जननी है। क्योंकि वास्तव में यही सभ्यता जीवन-रोधी है। अनुशासित चरित्र प्रशिक्षण ही मानव शरीर को जड़ बनाता है - सिकुड़ा और दबा हुआ, न कि ज़िन्दा और धड़कता। इसी तर्क के आधार पर हम समझ सकते हैं कि ऐसी ही जड़ निष्क्रियता शरीर के हर अंग में स्पन्दन की अवरोधक बनती है जो जीने के लिए ज़रूरी है।

मेरा मानना है कि अमुक्त शिक्षा से गुज़रे लोग जीवन को भरपूर नहीं जी सकते। ऐसी शिक्षा *भावनाओं* की उपेक्षा करती है। भावनाएँ परिवर्तनशील होती हैं, उन्हें अभिव्यक्त करने के अवसरों का अभाव छिछोरेपन, कुरूपता और घृणा में बदलता है। हमारी शिक्षा का सरोकार सिर्फ दिमाग से रहता है। जबकि वास्तविकता यह है कि अगर भावनाओं को, सच में मुक्त रहने दिया जाए तो बौद्धिक विकास स्वतः ही हो जाता है।

मनुष्य की त्रासदी यही है कि ठीक एक कुत्ते की तरह उसके चरित्र को भी गढ़ा जा सकता है पर यह आप बिल्ली के साथ नहीं कर सकते, जो कुत्ते से श्रेष्ठ जानवर है। आप कुत्ते में अपराध बोध जगा सकते हैं पर बिल्ली में नहीं। फिर भी लोगों को कुत्ते पसन्द हैं क्योंकि वे आज्ञा मानते हैं और चाटुकारिता में दुम हिलाते हैं, जो उसके मालिक की श्रेष्ठता और महत्ता को पुष्ट करती है।

शिशु का प्रशिक्षण कुत्तों के प्रशिक्षण जैसा ही होता है। एक पिटा हुआ बच्चा आज्ञाकारी व दीन वयस्क बनता है, ठीक वैसे जैसे एक पिटा हुआ पिल्ला। हम कुत्तों को अपनी सुविधा के अनुसार प्रशिक्षित करते हैं, वैसे ही अपने बच्चों को भी करते हैं। बालवाड़ी में मानव कुत्तों को साफ रहना पड़ता है, अधिक भौंकने की इजाज़त नहीं होती, सीटी की आवाज़ का अनुपालन करना पड़ता है। वे तब ही खाना खा सकते हैं जब हमें उन्हें खिलाने में सुविधा हो।

जब 1935 में बर्लिन के टेम्पलहॉफ में हिटलर नामक प्रशिक्षक ने सीटी बजाई तो मुझे हज़ारों हज़ार आज्ञाकारी कुत्ते दुम हिलाते दिखे।

पेनसिल्वेनिया के महिला मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में कुछ साल पहले गर्भवती माताओं के लिए कुछ निर्देश छापे गए थे। उनमें से कुछ मैं उद्धृत करना चाहूँगाः

'अँगूठा और उंगलियाँ चूसने की आदत रोकने के लिए बच्चों का पूरा हाथ कार्डबोर्ड की नली में बाँध देना चाहिए ताकि वह कोहनी मोड़कर मुँह तक अँगूठा या उंगलियाँ न ले जा सके।'

'गुप्तांगों को साफ रखना चाहिए ताकि बच्चे को कोई असुविधा न हो, रोग न हो *या गलत आदत न पड़ जाए*।'

मैं बच्चों के पालन-पोषण के गलत तौर-तरीकों के लिए चिकित्सकों को ज़िम्मेदार मानता हूँ। दरअसल चिकित्सक इस बारे में सलाह देने के लिए प्रशिक्षित भी नहीं होता। फिर भी कई माताओं की नज़र में वह खुदा ही होता है। जब वो माँ से कहता है कि हस्तमैथुन करने वाले बच्चों की पिटाई की जानी चाहिए तो माँ को यह अंदाज़ नहीं होता कि यह वह अपने खुद की यौन ग्रन्थि से बता रहा है, बाल प्रवृत्ति की वैज्ञानिक समझ से नहीं। चिकित्सक ही समयबद्ध खाना खिलाने की बात करते हैं, उंगली या अँगूठा चूसना बंद करवाते हैं, दूसरे बच्चों से खेलना निषिद्ध करते हैं और बच्चों की मर्ज़ी के आड़े आने की सलाह देते हैं।

जो बच्चा समस्यात्मक है वह ज़रूर ऐसा बच्चा है जिस पर स्वच्छता और यौन दमन का दबाव है। वयस्क यह मान कर चलते हैं कि बच्चों को ऐसा आचरण सिखाना चाहिए ताकि वे बड़ों को यथा सम्भव शांति से जीने दें। यही कारण है कि आज्ञाकारिता, आचरण और दब्बूपन पर इतना बल दिया जाता है।

हाल ही में मैंने एक माँ को देखा जो अपने तीन साल के बच्चे को अपने घर के बाग में छोड़कर अन्दर गई। बच्चे के कपड़े साफ थे। वह मिट्टी में खेलने लगा और यूँ कपड़े कुछ गन्दे हो गए। माँ दौड़ी हुई आई उसे पीटा, अन्दर ले जाकर कपड़े बदले और नए कपड़ों में उसे रोता छोड़ गई। दसेक मिनट गुज़रे होंगे कि उसने कपड़े फिर गन्दे कर लिए। वही प्रक्रिया दोहराई गई। मैंने सोचा कि जाकर उस माँ से कहूँ कि उसका बच्चा उससे ताउम्र नफरत करता रहेगा। यह भी सम्भव है कि वह जीवन से ही घृणा करने लग जाए। पर मुझे यह अहसास हुआ कि मैं जो भी कहूँगा वह उसके पल्ले नहीं पड़ेगा। इसी तरह कस्बे या शहर में किसी तीन साल के बच्चे के लुढ़ककर गिरने पर उसकी माँ उसे पीटती है। इसे देख मेरा दिल बैठ जाता है।

प्रत्येक रेल यात्रा के दौरान एक न एक माँ अपने बच्चे से कहती, ''अगर तुम बाहर गलियारे में गए तो कंडक्टर तुम्हें पकड़कर ले जाएगा।'' अधिकांश बच्चों का पोषण ऐसे ही झूठों और अनभिज्ञता से जन्मे निषेधों द्वारा किया जाता है।

कई माताएँ जो घर में बच्चों के साथ ठीक-ठाक व्यवहार करती हैं, घर से बाहर उन पर बरसती और पीटती हैं। क्योंकि वे पड़ोसियों की राय से डरती हैं। बचपन से ही बच्चे को इस पागल समाज के अनुरूप बनने पर मजबूर किया जाता है।

एक बार मैं इंग्लैण्ड के समुद्रतट पर बसे एक कस्बे में भाषण दे रहा था। मैंने कहा, "क्या आप माताएँ यह समझती हैं कि आप जितनी बार बच्चे को मारती हैं आप दरअसल यह जताती हैं कि आप बच्चे से नफरत करती हैं?" इसकी ज़ोरदार प्रतिक्रिया हुई। मुझ पर वे चिल्लाईं। बाद में मैंने सवाल किया, "हम अपने घरों का नैतिक व धार्मिक वातावरण कैसे सुधार सकते हैं?" श्रोता फुफकारने लगे। मैं सकते में आ गया। क्योंकि अमूमन जब मैं भाषण देता हूँ तो मैं उन लोगों को सम्बोधित करता हूँ जो उन्हीं बातों में विश्वास करते हैं जिनमें मैं भी विश्वास करता हूँ। पर यहाँ मेरे श्रोता कामगार और मध्यवर्ग के थे। उन्होंने बाल-मनोविज्ञान के बारे में कभी सुना नहीं था। मुझे अहसास हुआ कि बहुसंख्यक जनता, बच्चों की आज़ादी, अपनी खुद की आज़ादी के विरुद्ध किस कदर लामबन्द है।

हमारी सभ्यता रोगी है, दुखी है, और मेरा मानना है कि इसकी जड़ है अमुक्त परिवार। परिवार में प्रतिक्रिया और नफरत की ताकतें बच्चों को मारती हैं। उस समय से ही जब वह पालने में होता है। उन्हें जीवन को *नकारने* को प्रशिक्षित किया जाता है। उनका बाल जीवन ही एक प्रकार से नकारना होता है। शोर मत करो, हस्तमैथुन मत करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो।

जीवन में जो कुछ नकारात्मक है उसे उन्हें *स्वीकारना* सिखाया जाता है - बड़ों के प्रति श्रद्धा रखो, धर्म के प्रति श्रद्धा रखो, मास्टरजी के प्रति श्रद्धा रखो, पिता के बनाए कानूनों के प्रति श्रद्धा रखो। सवाल न पूछो, केवल आज्ञापालन करो आदि-आदि।

जो श्रद्धेय न हो उसके प्रति श्रद्धा रखना कोई सद्‌गुण नहीं है। न ही किसी ऐसे पुरुष या स्त्री के साथ जीना ही सद्‌गुण है जिससे आप प्रेम न करते हों। ऐसे ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखना कोई सद्‌गुण नहीं है जिससे आप दरअसल खौफ खाते हों।

त्रासदी यह है कि जो व्यक्ति अपने परिवार को बन्धन में रखता है वह स्वयं भी गुलाम होता है। क्योंकि जेल में जेलर भी बन्द ही होता है। इन्सान की गुलामी नफरत की गुलामी है। वह अपने परिवार का दमन करता है और ऐसा करते समय वह अपने जीवन का भी दमन करता है। उसे अपने ही दमन से पीड़ित लोगों के लिए अदालतें और जेल बनाने पड़ते हैं।

गुलाम स्त्रियों को अपने बेटे युद्धों में बलि चढ़ाने पड़ते हैं। ऐसे युद्ध जिन्हें इन्सान रक्षात्मक युद्ध, देशभक्ति के युद्ध, लोकतंत्र को बचाने के युद्ध, या युद्धों को खत्म

करने के युद्ध कहता है।

बच्चा कभी समस्यात्मक होता ही नहीं है, समस्यात्मक होते हैं केवल माता-पिता। शायद यह कहना बेहतर हो कि *समस्यात्मक है केवल मानवजाति*। यही कारण है कि ऍटम-बम इतना भयावह है। क्योंकि वह उन लोगों के हाथ है जो जीवन-विरोधी हैं। जिस बच्चे के हाथ पालने में बाँधे गए हों वह जीवन-विरोधी क्योंकर न होगा?

मानवजाति में भाईचारा और प्रेम प्रचुर मात्रा में है। मेरा विश्वास है कि नई पीढ़ी के बच्चे जिन्हें बचपन से जकड़ा न गया हो एक-दूसरे के साथ शान्ति से जी सकेंगे। पर यह तब ही सम्भव होगा जब, इसके पहले कि आज के घृणा करने वाले इस दुनिया को तबाह कर दें, नई पीढ़ी दुनिया का नियंत्रण हाथ में ले।

यह संघर्ष गैर-बराबरी का संघर्ष है। क्योंकि घृणा करने वाले ही आज शिक्षा, धर्म, कानून, सेना और कैदखानों को नियंत्रित करते हैं। मुट्ठी भर शिक्षक ही शायद ऐसे हों, जो बालक में निहित अच्छाइयों को आज़ादी से पनपने देते हैं। जीवन विरोधी तत्वों के समर्थक ही अधिकांश बच्चों को अपनी घृणास्पद दण्ड प्रणाली द्वारा लगातार गढ़ और ढाल रहे हैं।

कॉन्वेंट स्कूलों में लड़कियों को अभी भी नहाते वक्त बदन को ढांपे रखना होता है ताकि वे अपने शरीर को न देख पाएं। पालक और शिक्षक लड़कों को अभी भी बताते हैं कि हस्तमैथुन एक पाप है जिसका नतीजा है पागलपन और अन्य भयावह परिणाम। हाल ही में मैंने एक महिला को देखा जो अपने दस माह के बच्चे को इसलिए मार रही थी क्योंकि वह प्यास के कारण रो रहा था।

यह स्पर्धा है जड़ता में विश्वास करने वालों और जीवन में आस्था रखने वालों के बीच की। इसमें कोई भी निष्पक्ष नहीं रह सकता। क्योंकि इसका अर्थ होगा मृत्यु। हमें एक या दूसरे खेमे में होना ही है। जो मृत्यु पक्ष है वह हमें समस्यात्मक बच्चा देता है, और जीवन पक्ष एक स्वस्थ बालक।

मुक्त बच्चा

दुनिया में स्वनिर्देशित बच्चे इतने कम हैं कि उनके वर्णन का कोई भी प्रयास अन्तरिम ही हो सकता है। इसके जो परिणाम देखे गए हैं उनसे एक नई सभ्यता के जन्मने का संकेत मिलता है। ऐसी सभ्यता जिसका चरित्र किसी भी राजनैतिक दल द्वारा तय किए गए समाज से भिन्न होगा।

स्वसंचालन में मानव स्वभाव की अच्छाइयों में विश्वास निहित है। इसकी जड़ में यह विश्वास है कि न कोई 'मूल पाप' है, न कभी था।

किसी ने एक पूर्णतः स्वनिर्देशित बच्चा नहीं देखा है। आज का हरेक बच्चा अपने माता-पिता, शिक्षक और समाज द्वारा ढाला गया है। जब मेरी बेटी ज़ोई दो साल की थी तो *पिक्चर पोस्ट* नामक पत्रिका ने उसके चित्रों के साथ एक लेख छापा था। उनकी राय में ब्रिटेन भर की वही एकमात्र स्वनिर्देशित बच्ची थी, जिसकी स्वतंत्र बच्चे के रूप में पलने बढ़ने की सम्भावना थी। यह बात पूरी तरह सच नहीं है, क्योंकि वह एक ऐसे स्कूल में रहती थी, और अब भी रह रही है जहाँ सभी बच्चे स्वनिर्देशित नहीं हैं। ये बच्चे पहले से ही अनुकूलित थे और क्योंकि चरित्र गढ़ने की कोशिश से भय पनपता है, ज़ोई का सम्पर्क ऐसे भी कुछ बच्चों से था जो जीवन विरोधी हैं।

वह ऐसे वातावरण में पली जहाँ पशुओं के प्रति कोई भय नहीं था। फिर भी एक दिन मैंने एक खेत के पास गाड़ी रोककर कहा, ''चलो बाँ-बाँ करती गाएँ देखते हैं।'' वह अचानक भयभीत लगी ओर बोली, ''ना, ना, गाएँ खा जाती हैं।'' यह उसे एक ऐसे सात साल के बच्चे ने बताया था जो स्वनिर्देशित नहीं था। सच है कि यह भय केवल एक या दो सप्ताह रहा। बाद में झाड़ियों में घात लगाए शेरों के भय ने भी कुछ समय तक उसके जीवन को प्रभावित किया।

लगता है कि स्वनिर्देशित बालक अनुकूलित बच्चों के प्रभाव से उपजे भय पर तुलनात्मक रूप से कम समय में काबू पा लेते हैं। ज़ोई में दूसरों से पाए भय ओर रुचियों से उपजा दमन कभी लम्बे समय तक नहीं टिका। पर यह कोई नहीं बता सकता है कि इन भयों का उसके चरित्र पर क्या स्थाई असर पड़ा होगा।

दुनिया भर से आए तमाम मेहमानों ने ज़ोई को देखकर कहा, ''यह बिल्कुल नई बात है। बच्ची में लावण्य संतुलन है और आनन्द है। आसपास के वातावरण के साथ उसका रिश्ता शान्ति का है, युद्ध का नहीं।'' एक मनोरोग ग्रस्त समाज में जितना यह सम्भव है उतना भर उसमें मिलता है। लगता है कि आज़ादी और उच्छृंखलता का अंतर उसे स्वतः और स्वाभाविक रूप से पता है।

स्वनिर्देशित बच्चे के सामने तमाम खतरों में एक यह भी है कि वयस्क उसमें ज़रूरत से ज़्यादा रुचि लेते हैं। फलस्वरूप वह हमेशा उनके ध्यान के केन्द्र में रहता है। सम्भव है कि स्वनिर्देशित बच्चों के समुदाय में जहाँ सभी बच्चे स्वाभाविक हों, स्वतंत्र हों, कोई एक बच्चा ध्यान का केन्द्र न बने। किसी एक को सबके सामने नुमाइश करने को प्रोत्साहित न किया जाए। ऐसे में दूसरे बच्चों में वह जलन भी न भड़के जो एक आज़ाद बच्चे को देख उनमें पैदा होती है।

अपने दोस्त टेड की तुलना में ज़ोई के अंग खुले ओर लचीले थे। जब उसे उठाया

जाता तो उसका शरीर तनावमुक्त रहता। पर टेड को उठाना आलू के बोरे को उठाने के समान लगता है। उसका शरीर कभी ढीला नहीं छूटता। उसकी प्रतिक्रियाएँ पूरी तरह बचाव व विरोध की होतीं। वह हर तरह से जीवन विरोधी था।

मेरी घोषणा है कि स्वनिर्देशित बच्चे उस अप्रिय चरण से नहीं गुज़रेंगे। उन्हें इसकी ज़रूरत ही नहीं होगी। अगर बच्चों को शिशु अवस्था से ही बांधा और जकड़ा नहीं गया हो तो कोई कारण नहीं कि बड़े होकर उनमें माता पिता के प्रति विद्रोह जागे। जो घर अर्धस्वतंत्र हैं, जहाँ माता पिता और बच्चों में समता है, वहाँ भी उनसे मुक्त होने का विद्रोह नहीं जन्मता है।

स्वनिर्देश का मतलब है शिशु का मुक्त रूप से जीने का अधिकार। जहाँ बाहरी मानसिक व दैहिक अनुशासन न हों। इसका मतलब होगा वह तब खाए जब वह भूखा हो, वह तब साफ रहे जब वह खुद रहना चाहे, उस पर कोई चिल्लाए नहीं, उसे पीटा न जाए, उसे हमेशा प्यार व संरक्षण दिया जाए।

सुनने में यह बड़ा आसान, स्वाभाविक और अच्छा लगता है पर आश्चर्य यह होता है कि कितने नौजवान माता पिता इसे गलत समझ लेते हैं। चार साल का टॉमी पड़ोसियों के पियानो को डंडे से ठोकता है। प्रेम में डूबे उसके माता पिता गर्व से मुस्कुराते हुए उसे देखते हैं। इस मुस्कान का अर्थ होता है 'स्वनिर्देशन कितनी अच्छी बात है ना?'

कुछ माँ-बाप यह सोच बैठते हैं कि उन्हें अपने अठारह माह की नन्हीं को कभी ज़बरदस्ती सुलाना ही नहीं चाहिए, क्योंकि यह प्रकृति के काम में नाजायज़ दखलंदाज़ी करना होगा। पर सच यह है कि जब बच्चा थक जाए तो उसे जागते नहीं रहना चाहिए। उसे उसके बिस्तर पर सुलाना चाहिए। क्योंकि होता यह है कि थकने पर बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है। वह खुद यह कह नहीं सकता कि वह सोना चाहता है। अमूमन एक दुखी माँ चीखते-चिल्लाते बच्चे को उठाकर सुलाने ले जाती है। एक दम्पति ने मुझसे यह पूछा कि बच्चे के कमरे में अलाव के सामने जाली लगानी चाहिए या ऐसा करना गलत होगा। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कोई भी विचार - नया या पुराना खतरनाक सिद्ध होगा जब तक उसके उपयोग में सहजबुद्धि का पुट न हो।

कोई बेवकूफ ही बच्चे को ऐसे कमरे में सुलाएगा जिसकी खिड़कियाँ सुरक्षित न हों, कमरे में जलने वाली आग से बचाव का उपाय न किया गया हो। स्वनिर्देशन के प्रति उत्साही लोग हमारे स्कूल में आने पर अक्सर आज़ादी के अभाव पर टिप्पणी करते हैं। वे जानना चाहते हैं कि हमारी प्रयोगशाला की अलमारी में ताले क्यों हैं, छत पर या आग लगने पर बच निकलने वाले रास्ते में खेलना क्यों मना है?

आज़ादी का यह पूरा आन्दोलन ही इस वजह से आहत होता है, उसे नापसन्द किया जाता है, क्योंकि इसकी पैरवी करने वाले के पैर धरती पर नहीं टिके हैं।

हाल में ऐसे ही एक व्यक्ति ने मेरा विरोध किया। क्योंकि मैंने एक सात वर्षीय समस्यात्मक बच्चे को अपने दफ़्तर के दरवाज़ों को लतियाते देख डाँटा था। उसका विचार यह था कि मुझे मुस्कुराकर तब तक वह शोर बर्दाश्त करना चाहिए था जब तक दरवाज़ों को लतियाने की उसकी इच्छा शान्त न हो जाती। यह सच है कि मैंने सालों-साल समस्यात्मक बच्चों के ध्वंसात्मक आचरण को धैर्य से झेला है। पर यह मैंने उनके मनोचिकित्सक के रूप में किया था। एक साथ रहने वाले नागरिक के रूप में नहीं।

अगर कोई माँ यह सोचती है कि उसे उसके तीन साल के बच्चे को घर का दरवाज़ा लाल स्याही से इसलिए पोतने देना चाहिए क्योंकि वह स्वयं को मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर रहा है, तो दरअसल वह स्वनिर्देशन का मतलब समझी ही नहीं है।

याद आता है कि एक बार मैं कवेन्ट गार्डन थियेटर में अपने दोस्त के साथ बैठा था। पहले बैले के दौरान हमारे सामने बैठी बच्ची अपने पिता से ज़ोर से बातें करती रही। नृत्य समाप्त हुआ और मैंने जगह बदल ली। मेरे साथी ने पूछा, ''अगर समरहिल का कोई बच्चा यह करता, तो तुम क्या करते?''

''मैं उसे चुप रहने को कहता।''

''उसकी ज़रूरत न पड़ती,'' मित्र ने कहा, ''वह ऐसा आचरण ही नहीं करता।'' और सच मुझे लगता है कि उनमें से कोई भी ऐसी हरकत नहीं करता।

एक मरतबा एक महिला अपनी सात वर्षीय बिटिया को लेकर मुझसे मिलने आई। ''नील साहब,'' वे बोलीं, ''डैफने पैदा हुई उसके भी पहले मैंने आपकी लिखी एक-एक पंक्ति पढ़ी थी। मैं उसे आपके विचारों के अनुसार ही पालूँगी।''

मैंने डैफने की ओर देखा। वह मेरे पियानो पर अपने भारी जूतों के साथ चढ़ी हुई थीं। वहाँ से वह सोफे पर कूदी। ''देखिए कितनी स्वाभाविक है मेरी बेटी,'' माताजी बोलीं, ''बिल्कुल एक नील-नुमा बच्ची!'' मेरा चेहरा तमतमा उठा।

आज़ादी और उच्छृंखलता का यही अन्तर कई माता-पिता समझ ही नहीं पाते हैं। एक अनुशासित परिवार में बच्चों के *कोई* अधिकार नहीं होते। एक बिगाड़ने वाले परिवार में उन्हें *सारे* अधिकार होते हैं। सही परिवार वह है जहाँ बच्चों और वयस्कों में बराबर के अधिकार होते हैं। यही बात स्कूल पर भी लागू होती है।

इस बात पर बार-बार ज़ोर देना पड़ता है कि स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि बच्चों को पूरी तरह बिगाड़ दिया जाए। अगर कोई तीन साल का नन्हा या नन्हीं

खाने की मेज़ पर चलना चाहे तो उसे यह सीधे और साफ तौर पर बताना चाहिए कि यह नहीं किया जा सकता। यह सच है कि उसे आज्ञा माननी होगी। पर इसी तरह आपको भी उसकी आज्ञा माननी होगी। जब छोटे बच्चे मुझे दफा करते हैं तो मैं फौरन उनके कमरे से बाहर निकल जाता हूँ।

अगर बच्चों को अपने आन्तरिक स्वभाव के अनुसार जीने देना है तो वयस्कों को कुछ त्याग करना ही होगा। स्वस्थ माता-पिता एक तरह का समझौता तलाश लेते हैं पर बीमार माता-पिता या तो हिंसक बन जाते हैं, या उन्हें बिगाड़ते हैं और उन्हें ही सारे के सारे सामाजिक अधिकार सौंप देते हैं।

माता-पिता और बच्चों के बीच जो फासला है वह दूर नहीं तो कम अवश्य किया जा सकता है। ज़ोई और मेरे बीच ईमानदार लेनदेन है। इस कारण वह मेरी मेज़ पर मेरा अधिकार स्वीकारती थी और मेरे टाइपराइटर से खेलने पर आमादा नहीं रहती थी। बदले में मैं उसके कमरे और उसके खिलौनों पर उसके अधिकार का सम्मान करता था। बच्चे बुद्धिमान होते हैं और जल्दी ही सामाजिक नियम समझने लगते हैं। उनका शोषण नहीं होना चाहिए जैसा अक्सर होता है। अक्सर जब बच्चा किसी खेल में मशगूल हो तो माता-पिता हाँक लगाते हैं,

"बेटे ज़रा एक गिलास पानी तो पकड़ाना।"

बच्चों की शैतानी सही तरह से न निपटने से बढ़ती है। जब ज़ोई तकरीबन साल भर की थी तब वह एक ऐसे दौर से गुज़री जब उसकी रुचि मेरे चश्मे में थी। वह उसे देखने के लिए मेरे नाक पर से खींच लेती थी। मैं कोई प्रतिवाद न करता। शब्दों या दृष्टि से कोई नाराज़गी ज़ाहिर न करता। उसकी रुचि जल्दी ही खत्म हो गई और उसने बाद में मेरे चश्मे को कभी नहीं छुआ। अगर मैं उस समय डाँटता या पीटता तो उसकी जिज्ञासा लगातार बनी रहती साथ ही उसमें मेरे प्रति भय और विद्रोह पनपता।

मेरी पत्नी ज़ोई को टूटने वाली चीज़ों से खेलने देती थी। ज़ोई हमेशा सावधानी बरतती। बिरले ही उसके हाथों कोई चीज़ टूटी हो। उसने तमाम चीज़ों की खुद तहकीकात और छानबीन की।

ज़ाहिर है कि स्वनिर्देशन की भी सीमा है। हम छः माह के बच्चे को खुद यह तलाशने नहीं दे सकते हैं कि जलती हुई सिगरेट से हाथ जल सकते हैं। ऐसी स्थिति में शोर करना उचित नहीं है। बिना शोर-शराबे के बच्चे के सामने से खतरा हटा लिया जाना चाहिए।

बच्चा अगर मानसिक रूप से कमज़ोर न हो तो वह जल्दी ही वे चीज़ें तलाश लेता है जिसमें उसकी रुचि हो। अगर वह उत्तेजित चीख-पुकार और नाराज़ आवाज़ों

से मुक्त रहे तो हर तरह की सामग्री को आश्चर्यजनक सूझ-बूझ के साथ उठाता-धरता है। जो माँ चूल्हे के पास खड़ी चिन्ता से मर रही हो कि न जाने उसके बच्चे क्या कर रहे होंगे, उसने दरअसल अपने बच्चों पर कभी भरोसा नहीं किया है। ''देखना नन्हा क्या कर रहा है, उससे कहना ऐसा नहीं करते।'' ये शब्द आज भी तमाम घरों में दोहराए जाते हैं।

जब कोई माँ मुझे यह लिखती है कि जब वह रसोई में खाना बनाने में व्यस्त होती है तब उसके बच्चे बेहद धमा-चौकड़ी मचाते हैं। मेरा जवाब यही हो सकता है कि आपने उन्हें बड़ा ही ऐसे किया है।

एक दम्पति ने मेरी चन्द किताबें पढ़ीं और उनके मन में यह अपराधबोध जागा कि उन्होंने अपने बच्चों को जिस तरह से पाला-पोसा उससे न जाने उनको कितना नुकसान पहुँचाया होगा। सो तत्काल परिवार की बैठक की। बच्चों से कहा, ''हमने तुम्हारा पालन-पोषण गलत तरीके से किया है। अब से तुम सब जो करना चाहो उसकी तुम्हें आज़ादी है।'' यह तो याद नहीं आ रहा कि उन्होंने इसके नतीजतन होने वाली टूटफूट की लागत क्या लिखी थी, पर तत्काल ही दूसरी बैठक बुलाई गई और पिछला निर्णय पलट दिया गया।

बच्चों की आज़ादी के विरुद्ध जो तर्क सामान्यतः रखा जाता है, वह यह है: *जीवन बड़ा कठिन है। हमें बच्चों को शुरू से ही बाद के जीवन से समझौता करने के लिए तैयार करना चाहिए। इसलिए उन्हें अनुशासित करना चाहिए। अगर उन्हें अपनी इच्छा का करने की अनुमति दी गई तो वे बड़े होकर किसी बॉस के मातहत चाकरी कैसे कर सकेंगे? वे उन लोगों से स्पर्धा कैसे करेंगे, जिन्हें अनुशासन की आदत है? वे खुद पर आत्म-अनुशासन कैसे लागू कर सकेंगे?*

जो लोग बच्चों की आज़ादी का विरोध इस तर्क से करते हैं वे यह नहीं समझते कि वे जिस मान्यता से शुरुआत कर रहे हैं, वह निराधार है, सिद्ध ही नहीं हुई है। वे यह मानकर चलते हैं कि अगर बच्चे पर बढ़ने या विकसित होने का दबाव न हो तो वह न बढ़ेगा न विकसित होगा। समरहिल का उंचालीस वर्षों का अनुभव इस मान्यता को गलत सिद्ध करता है। सैंकड़ों उदाहरणों में से एक मर्विन का ही उदाहरण लें। वह दस साल तक समरहिल में रहा। सात से सत्रह की उम्र तक। वह कभी कक्षा में उपस्थित ही न रहा। सत्रह साल की उम्र में भी ठीक से पढ़ना-लिखना तक नहीं जानता था। पर स्कूल छोड़ने के बाद मर्विन ने तय किया कि वह वाद्ययंत्र बनाने वाला बनना चाहता है। उसने खुद को पढ़ना सिखाया और कुछ ही समय में खुद-ब-खुद आवश्यक तकनीकी जानकारी पा ली। अपने प्रयासों से उसने खुद को प्रशिक्षु बनाने के लिए तैयार किया। आज वह पूर्णतः साक्षर है, अच्छा वेतन कमाता है और अपने समुदाय का नेता है। जहाँ तक स्व-अनुशासन

का सवाल है, उसने अपने मकान का काफी हिस्सा खुद अपने हाथों बनाया है, और अपनी मेहनत मज़दूरी से वह तीन बच्चों के परिवार को खुद पालता है।

इसी तरह हर साल समरहिल के कई लड़के-लड़कियाँ, जो उस वक्त तक पढ़ने में कोई रुचि नहीं लेते थे, खुद ही यह तय करते हैं कि उन्हें कॉलेज़ में दाखिल होने के लिए परीक्षाएँ देनी हैं। और तब वे इसके लिए मेहनत मशक्कत करते हैं। वे ऐसा क्योंकर करते हैं?

आम धारणा यह है कि अगर बचपन से ही अच्छी आदतें न सिखाई गईं तो बाद में जीवन भर वे हममें विकसित ही नहीं होंगी। हम इसी धारणा को लेकर बड़े हुए हैं और इसे बिना सवाल उठाए स्वीकारते हैं। इसलिए, क्योंकि किसी ने इसको चुनौती ही नहीं दी है। मैं इस धारणा से असहमत हूँ।

बच्चे के लिए आज़ादी इसलिए ज़रूरी है क्योंकि आज़ादी में ही वह स्वाभाविक तरीके से बढ़ता है - जो अच्छा तरीका है। मैं निजी स्कूलों से आए अपने नए छात्रों में बन्धन का नतीजा देखता हूँ। वे पाखण्ड, बनावटी, शिष्टता और आचरण से भरे होते हैं।

आज़ादी पाकर उनकी प्रतिक्रिया तुरन्त भड़कती है। बेहद थकाने वाली होती है। प्रारम्भिक एक-दो सप्ताह तक वे शिक्षकों के लिए दरवाज़े खोलते हैं, और मुझे 'सर' कहकर सम्बोधित करते हैं, बड़े साफ-सुथरे रहते हैं। मेरी ओर श्रद्धा से देखते हैं, उस दृष्टि में भय पहचाना जा सकता है। कुछ सप्ताह आज़ादी पाने पर वे अपने असली रूप में आ जाते हैं। वे उद्दण्ड, दुर्व्यवहारी और गन्दे बन जाते हैं। वे वह सब करते हैं जिसकी उन्हें पहले मनाही थी। वे गाली देते हैं, सिगरेट पीते हैं और खूब तोड़फोड़ करते हैं। और इस दौरान उनकी आँखों और आवाज़ों में वही विनम्र और बनावट भरा भाव झलकता है।

इस बनावटीपन से उबरने में उन्हें कम से कम छह महीने लगते हैं और तब से वे जिसे अधिकारी मानते रहे थे, उसके प्रति सम्मान त्याग देते हैं। छह महीने में वे ऐसे स्वाभाविक स्वस्थ बच्चे बन जाते हैं जो अपने विचार घबराहट या घृणा के बिना सामने रख सकें। जब बच्चा कम उम्र में आज़ादी से परिचित होता है तो उसे बनावटीपन का नाटक नहीं करना पड़ता। समरहिल की सबसे बड़ी खासियत है उसके छात्र-छात्राओं की पूर्ण निष्कपटता।

जीवन में, और जीवन के प्रति ईमानदार होना बेहद ज़रूरी है। दरअसल यही दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण काम है। अगर आप में सच्चाई है तो दूसरी चीज़ें खुद-ब-खुद जुड़ती जाती हैं। मसलन अभिनय में ईमानदारी का मूल्य सब पहचानते हैं। हम अपने राजनेताओं से (मानव किस कदर आशावादी होता है), न्यायाधीशों

से, शिक्षकों और चिकित्सकों से ईमानदारी की अपेक्षा रखते हैं। पर हम बच्चों को इस तरह शिक्षित करते हैं कि वे ईमानदार होने की हिम्मत तक नहीं कर सकें।

समरहिल में सबसे बड़ा अनुसंधान कोई हुआ है तो वह यह कि बच्चा एक ईमानदार जीव के रूप में जन्मता है। हम उन्हें इसलिए आज़ाद छोड़ते हैं ताकि वे खुद यह तलाश सकें कि वे कैसे हैं। बच्चों को पालने का यही एक मात्र तरीका है। भावी स्कूलों को अगर बच्चों के विषय में अपना ज्ञान बढ़ाना है, अगर उनकी प्रसन्नता में इज़ाफा करना है, तो उन्हें यही रास्ता पकड़ना होगा।

जीवन का उद्देश्य है आनन्द। जीवन में जो कुछ इस आनन्द को सीमित या नष्ट करता है वह अनिष्टकारी है। आनन्द का अर्थ हमेशा अच्छाई ही होता है। अप्रसन्नता अपने चरम पर यहूदियों से घृणा, अल्पसंख्यकों को यातना या युद्ध का रूप लेती है।

मैं मानता हूँ कि कई बार ईमानदारी अटपटे क्षण पैदा करती है। हाल में एक तीन साल की लड़की ने एक दढ़ियल मेहमान को देख कर कहा, ''मुझे आपकी शक्ल पसन्द नहीं आ रही।'' मेहमान ने माकूल जवाब दिया, ''पर मुझे तुम्हारी शक्ल अच्छी लग रही है।'' और वह बच्ची मुस्कुरा दी।

पर मैं बच्चों की आज़ादी की बहस नहीं करूँगा। किसी भी आज़ाद बच्चे के साथ आज घण्टा बिताना, तर्कों से भरी एक किताब से कहीं बेहतर है। देखने से ही विश्वास होता है।

बच्चों को आज़ादी देना आसान नहीं है। इसका मतलब है हम उन्हें धर्म, राजनीति या वर्ग चेतना के बारे में कुछ न सिखाएँ। जब बच्चा अपने पिता को किसी राजनीतिक दल के प्रति या माँ को नौकरी के प्रति भड़ास निकालते सुनता है तो बच्चे को वास्तविक आज़ादी नहीं मिलती। यह असम्भव है कि हम अपने बच्चों को जीवन के प्रति हमारे नज़रिए को अपनाने से रोक सकें। एक कसाई का बेटा शायद ही कभी शाकाहार का प्रचारक बने, जब तक कि उसके पिता की सत्ता का विद्रोह ही उसे दूसरे खेमे में न खदेड़ दे।

समाज की प्रकृति ही आज़ादी के प्रतिकूल होती है। समाज या भीड़ हमेशा ही रूढ़िवादी होती है और नए विचारों से घृणा करती है।

फैशन, इस कथन को चरितार्थ करता है कि भीड़ को आज़ादी नापसन्द है। भीड़ समानता की माँग करती है। हमारे कस्बे के लोग मुझे सिरफिरा कहते हैं क्योंकि मैं सैण्डल पहने घूमता हूँ। गाँव में अगर मैं लम्बा टोप पहनकर निकलूँ तो लोग मुझे सिरफिरा कहेंगे। यही कारण है कि *जो कुछ सही माना जाता है* उस लीक से हटने की ज़ुर्रत कम ही लोग कर पाते हैं।

इंग्लैण्ड का एक नियम है - भीड़ का नियम - जो रात आठ बजे के बाद सिगरेट की बिक्री निषिद्ध करता है। मैं एक भी ऐसे इन्सान को नहीं जानता जो इस कानून को पसन्द करता हो। पर हम व्यक्तिगत स्तर पर भीड़ के निहायत बेवकूफी भरे फैसले भी स्वीकारते चलते हैं।

बिरले ही व्यक्ति होंगे जो किसी हत्यारे को फाँसी या अपराधी को आजीवन कारावास की सज़ा सुनाना पसन्द करें। पर भीड़ के रूप में फाँसी या आजीवन कारावास हमारी आत्मा को नहीं कचोटता। भीड़ के लिए अपराधी खतरनाक हैं, उनसे बचाव का सबसे आसान तरीका है अपराधी को मार डालना या बन्दी बना देना। हमारी पुरातनपंथी दण्ड संहिता मूलतः भय पर आधारित है। और हमारी दमनकारी शिक्षा व्यवस्था भी भय पर ही आधारित है। यह भय है नई पीढ़ी का।

सर मार्टिन कॉनवे ने अपनी आनन्ददायक पुस्तक *द क्राउड इन पीस एण्ड वॉर* में लिखा है कि भीड़ को बड़े-बूढ़े पसन्द हैं। युद्ध के समय भीड़ हमेशा वृद्ध सेनानायकों को चुनती है और शान्ति में वृद्ध चिकित्सकों को। भीड़ वृद्धों से इसलिए चिपकती है क्योंकि वह युवाओं से डरती है।

भीड़ की आत्मरक्षा की सहज भावना नई पीढ़ी में खतरा देखती है। उसे इस बात का डर रहता है कि उसकी स्पर्धा में एक नई भीड़ न पनप जाए। ऐसी भीड़ जो पुरानी भीड़ का खात्मा कर दे। भीड़ के सबसे छोटे रूप, परिवार में भी इसी कारण आज़ादी नहीं दी जाती। वयस्क पुराने मूल्यों - पुराने *भावनात्मक* मूल्यों से चिपके रहते हैं। इस बात का कोई तार्किक आधार नहीं है कि कोई पिता अपनी बीस वर्षीया बेटी को सिगरेट पीने से रोके। यह निषेध भावनात्मक स्रोत से उपजता है, रूढ़िवादिता से उपजता है। निषेध के पीछे दरअसल भय है। *वह आगे क्या करेगी?* भीड़ नैतिकता की ठेकेदार है। वयस्क युवाओं को आज़ादी इसलिए नहीं देता क्योंकि वह डरता है कि युवक-युवतियाँ वह सब करेंगे जो वह स्वयं युवावस्था में करना चाहता था। बच्चों पर लगातार वयस्कों के विचार लादना बाल्यावस्था के विरुद्ध भारी पाप है।

आज़ादी देने का अर्थ है बच्चे को उसकी ज़िन्दगी जीने देना। यूँ कहने से बात कितनी आसान लगती है। पर सिखाने, गढ़ने, भाषण देने और दबाव डालने की हमारी अनर्थकारी आदत हमें सच्ची आज़ादी की सहजता का अहसास तक नहीं होने देती।

आज़ादी के प्रति बच्चों की क्या प्रतिक्रिया होती है? चतुर बच्चे और वे बच्चे जो इतने चतुर न हों, वह पाते हैं जो उन्हें पहले मिली ही न थी। ऐसा कुछ, जो परिभाषित तक न किया जा सके। इसका मुख्य बाहरी लक्षण यह होता है कि उनमें ईमानदारी और औदार्य बढ़ता है। उनमें दूसरों के प्रति आक्रामकता घटती है। जब

बच्चे अनुशासन के भय के साये में नहीं होते तो वे आक्रामक नहीं रहते। समरहिल के उंचालीस सालों में मैंने एक ही झगड़ा देखा था जिसमें किसी के नाक से खून बहा। हमारे यहाँ भी हमेशा ही एक छोटा-मोटा दादा ज़रूर होता है, क्योंकि स्कूल में दी गई प्रचुर आज़ादी भी एक खराब परिवार के प्रभाव खत्म नहीं कर सकती। जीवन के प्रारम्भिक महीनों या सालों में जो चरित्र गठन होता है, उसे आज़ादी से कुछ ढाला तो जा सकता है, पर पूरी तरह बदला नहीं जा सकता। आज़ादी का सबसे बड़ा दुश्मन है भय। यदि हम बच्चों को सेक्स के बारे में बताते हैं तो क्या वो दुराचारी नहीं बन जाएँगे? अगर नाटकों को सेंसर न करें तो क्या लोग अनैतिक बन जाएँगे?

जो वयस्क डरते हैं कि युवक भ्रष्ट हो जाएँगे वे खुद ही भ्रष्ट होते हैं। उसी तरह जैसे गन्दे दिमाग वाले यह मांग करते हैं कि सभी श्लील स्वीमिंग कॉस्ट्यूम पहनें। व्यक्ति उसी चीज़ से अचम्भित रह जाता है जिसमें स्वयं उसकी रुचि होती है। सेक्स से दूरी बरतने वाले लोग एक व्यसनी की तरह होते हैं जो अपने गिरेबान में झांकने की हिम्मत नहीं रखते।

स्वतंत्रता का अर्थ है अज्ञानता पर विजय पाना। मुक्त लोग वही हैं जिन्हें नाटक सेंसर करने की ज़रूरत महसूस नहीं होती। अचम्भित करने वाली चीज़ों में उनकी रुचि नहीं रहती क्योंकि मुक्त लोग अचम्भित हो ही नहीं सकते। समरहिल के छात्र ऐसे ही हैं - इसलिए नहीं कि वे पाप करने में माहिर हैं - बल्कि इसलिए कि उन्होंने अचम्भित करने वाली चीज़ों का शौक पूरा कर लिया है और अब वे उसे बातचीत या हंसी मज़ाक तक का विषय नहीं समझते।

लोग मुझसे पूछते हैं, "आपके आज़ाद बच्चे जीवन की नीरसता से समझौता कैसे करेंगे?" मेरी आशा है कि वे जीवन से नीरसता को *हटाने* में अग्रणी सिद्ध होंगे।

हमें बच्चों को स्वार्थी बनने की छूट देनी होगी - ऐसा बनने देना होगा, जो कुछ देता न हो। बचपन भर अपनी बचकानी रुचियों के पीछे भागने की अनुमति देनी होगी। जब उसकी व्यक्तिगत रुचियाँ और सामाजिक रुचियाँ टकराएँ, तो उसकी व्यक्तिगत रुचियों को प्राथमिकता देनी होगी। समरहिल का समग्र विचार मुक्ति का है। जहाँ बच्चा अपनी स्वाभाविक रुचियों को जी सके।

स्कूल को दरअसल बच्चे की ज़िन्दगी को ही खेल बना देना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि उसकी राह फूलों से पटी हुई बना दी जाएँ। सब कुछ आसान बनाना उसके चरित्र के लिए खतरनाक होगा। दरअसल जीवन खुद-ब-खुद इतनी कठिनाइयाँ पेश करता है कि हमारे द्वारा बनाई गई कृत्रिम कठिनाइयाँ बिल्कुल अनावश्यक हैं।

मैं मानता हूँ कि सत्ता के माध्यम से कुछ भी थोपना गलत है। बच्चे को तब तक कुछ नहीं करना चाहिए जब तक उसे करने की राय वह खुद न बना ले। मानवता का श्राप, बाहरी दबाव, फिर चाहे वह किसी धर्मगुरु, राज्य, शिक्षक या माता-पिता द्वारा ही क्यों न डाला गया हो, यही अपनी *समग्रता* में फासीवाद है।

अधिकतर लोग चाहते हैं कि एक ईश्वर हो। यह स्थिति इससे भिन्न हो भी नहीं सकती, जब घर में मिट्टी के 'देवी-देवता' विराजे हों, जो सम्पूर्ण सच और नैतिक आचरण की माँग करते हों। आज़ादी का मतलब है वह करना जो व्यक्ति खुद चाहे। पर केवल उस सीमा तक जहाँ वह दूसरों की आज़ादी में खलल न डाले। इस संतुलन का परिणाम होता है स्व-अनुशासन।

हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हम दूसरों को चैन से जीने नहीं देते। हम भय के सहारे सबकी सहमति ले लेते हैं। पर बच्चे को पत्थर फेंकने से रोकने और लैटिन भाषा सीखने पर बाध्य करने में अन्तर है। पत्थर फेंकने में दूसरे लोग भी होते हैं, जिन्हें चोट पहुँच सकती है। पर लैटिन सीखने में सिर्फ बच्चा ही होता है। किसी असामाजिक लड़के के मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार समुदाय को है। पर किसी को लैटिन सीखने पर बाध्य करने का नहीं। क्योंकि लैटिन सीखना निहायत व्यक्तिगत मामला है। बच्चे को सीखने पर बाध्य करना ठीक वैसा होगा मानो एक संसदीय कानून द्वारा किसी पर कोई धर्म अपनाने का दबाव डाला जाए। सच तो यह है कि यह उतना ही बेवकूफी भरा कृत्य भी है।

मैंने छुटपन में लैटिन सीखी। बल्कि कहूँ कि मुझे किताबें दी गईं जिससे मैं लैटिन सीखूँ। पर लड़कपन में मेरी रुचियाँ दूसरी थीं। मैं लैटिन नहीं सीख पाया। इक्कीस वर्ष की आयु में मुझे पता चला कि लैटिन सीखे बिना विश्वविद्यालय में दाखिला नहीं होगा। प्रवेश परीक्षा लायक लैटिन मैंने साल भर के अन्दर सीख ली। मेरी रुचि ने मुझे लैटिन सिखाई।

प्रत्येक बच्चे को ऐसे कपड़े पहनने का अधिकार है जिन्हें वह जितना चाहे गन्दा करे। हर बच्चे को अभिव्यक्ति का अधिकार है। मैंने सालों किशोर - किशोरियों के मुँह से उन गालियों को सुनते गुज़ारे हैं जो उन्हें बचपन में नहीं देने दी गईं।

जिस यौन नफरत और भय के साथ करोड़ों लोग पलते-बढ़ते हैं उससे यह आश्चर्य ही हो सकता है कि दुनिया मानसिक रूप से और बीमार क्यों नहीं है। मेरे लिए इसका अर्थ है कि प्राकृतिक मानवता में ऐसी आन्तरिक ताकत है कि वह बाहर से लादी गई तमाम बुराइयों पर काबू कर सके।

हम धीमे-धीमे आज़ादी - यौन सम्बंधी व अन्य - की ओर बढ़ रहे हैं। मेरे बचपन में महिलाएँ लम्बे मोजे और पूरे कपड़े पहनकर ही नहा सकती थीं। आजकल वे

अपने शरीर का प्रदर्शन कर सकती हैं। हर पीढ़ी के साथ बच्चों को अधिक आज़ादी मिल रही है। आज ऐसे चन्द ही पागल होंगे जो बच्चे को अँगूठा चूसने से रोकने के वास्ते मिर्च का लेप लगाएँ। कुछ ही देश ऐसे होंगे जहाँ बच्चों को अब भी स्कूलों में पीटा जाता है।

आज़ादी का असर धीमे होता है। कई बार इसे समझने में बच्चों को सालों लग जाते हैं। जो तात्कालिक परिणाम की अपेक्षा करते हैं वे लाइलाज आशावादी होते हैं। आज़ादी चतुर बच्चों के लिए सबसे अच्छी सिद्ध होती है। काश मैं यह कह पाता कि चूँकि आज़ादी मूलतः भावनाओं को छूती है, इसलिए सभी बच्चे - कुशाग्र और मंद - दोनों की प्रतिक्रिया समान होती है। पर यह मैं कह नहीं सकता।

यह बात पढ़ाई के विषय में साफ नज़र आती है। वैसे तो सभी आज़ाद बच्चे साल भर अपना अधिकांश समय खेलने में बिताते हैं। पर समय आने पर जो चतुर हैं वे सरकारी परीक्षाओं के विभिन्न विषयों से निपटने की तैयारी भी कर लेते हैं। जिस पढ़ाई को अनुशासित बच्चे आठ साल में करते हैं, वही पढ़ाई, वह एक आज़ाद लड़का या लड़की दो साल या उससे कुछ अधिक में पूरी कर लेता है।

रूढ़िवादी शिक्षक मानते हैं कि परीक्षा तभी पास की जा सकती है जब परीक्षार्थी लगातार भिड़ा रहे। हमारे परीक्षा परिणाम सिद्ध करते हैं कि चतुर बच्चों के सन्दर्भ में यह बात भ्रामक है। आज़ादी के वातावरण में, जहाँ तमाम विरोधी आकर्षण मौजूद हों, बुद्धिमान बच्चे ही जमकर पढ़ाई कर सकते हैं।

मैं जानता हूँ कि अनुशासन के तहत कमज़ोर छात्र-छात्राएँ भी परीक्षाएँ पास कर लेते हैं। पर उनका बाद में क्या हश्र होता होगा यह शायद किसी को न पता हो। अगर सभी स्कूल मुक्त हों और सभी विषयों को पढ़ना ऐच्छिक हो, तो मेरा विश्वास है कि बच्चे स्वयं अपना स्तर तलाश लेंगे।

एक सताई हुई माँ की आवाज़ मैं सुन सकता हूँ, जो खाना पकाने में लगी है और उसकी नन्हीं घुटनों के बल रेंगती हुई चौतरफ फैलावड़ा कर रही है। वह खीझ से पूछ सकती है, ''यह आत्म-अनुशासन कौन सी बला है? एक अमीर माँ जिसके पास नौकर चाकर हों उसके लिए ठीक होगा। पर मेरी जैसी साधारण औरत के लिए यह केवल शब्द और भ्रम-जाल है।''

पर कोई दूसरी माँ शायद यह कहे, ''हाँ मैं आज़ादी देना चाहती हूँ पर शुरू कहाँ से करूँ। मैं इस पर कौन सी किताबें पढ़ूँ?''

जवाब यह है कि इसकी कोई किताबें नहीं हैं, कोई वेदवाक्य नहीं हैं, कोई शास्त्री नहीं है। बस चन्द माता-पिता, चिकित्सकों और शिक्षकों का अल्पसंख्यक समुदाय है। जिसे हम बालक कहते हैं उसके चरित्र में इन लोगों का विश्वास है। वे

कृतसंकल्प हैं कि वे गलत हस्तक्षेपों द्वारा उसके चरित्र को बाँधने या शरीर को जड़ बनाने का विरोध करेंगे। हम सब मानवता के ऐसे सत्यशोधक हैं जो तानाशाही पसन्द नहीं करते। हमारे इस विश्वास के प्रमाण के नाम पर आज़ादी में जी रहे बच्चों के अवलोकन ही हैं, जो हम दे सकते हैं।

प्रेम और अनुमोदन

बच्चों की खुशी और उनकी खुशहाली उन्हें दिए गए प्रेम और अनुमोदन पर निर्भर करती है। हमें बच्चों के पक्ष में होना होगा। उनके पक्ष में होने का मतलब है उन्हें प्रेम देना। मालिकाना प्रेम नहीं, भावुकता भरा प्रेम भी नहीं। बस हमारा व्यवहार ऐसा हो जिससे बच्चे को पता चले कि हम उसे प्यार करते हैं, उसका अनुमोदन करते हैं।

ऐसा करना सम्भव है। मैं दर्जनों माता-पिता को जानता हूँ जो बच्चों के पक्ष में हैं। जो बदले में कुछ नहीं चाहते और इसलिए ही बहुत कुछ पाते हैं। वे समझते हैं कि बच्चे नन्हें वयस्क नहीं होते।

जब कोई बेटा घर में चिट्ठी लिखता है - 'प्यारी माँ मुझे पचास रुपए भेजो। आशा है तुम ठीक होगी। पापा को प्यार देना।' अगर बच्चा ईमानदार हो और खुद को अभिव्यक्त करने से डरता न हो तो माँ मुस्कुराती है। क्योंकि वह जानती है कि दस साल का बच्चा ऐसी ही चिट्ठी लिख सकता है। जो गलत तरह के माता-पिता हैं वे कहेंगे, *''देखो, यह जानवर सिर्फ़ अपने स्वार्थ के बारे में सोच सकता है। हमेशा कुछ न कुछ चीज़ की माँग करता रहता है।''*

मेरे स्कूल के अच्छे माता-पिता कभी भी अपने बच्चों का हालचाल नहीं पूछते। वे स्वयं आकर पता करते हैं। बुरे पालक हमेशा उतावले सवाल करते रहते हैं। *क्या वो अब पढ़ सकता है? वो कब साफ सुथरा रहना सीखेगा? क्या वो कक्षा में जाती है?*

यह दरअसल बच्चों पर विश्वास करने की बात है। कुछ करते हैं; ज़्यादातर नहीं। बच्चे इस अविश्वास को तुरन्त महसूस कर लेते हैं। वो समझ जाते हैं यह सतही प्यार है अन्यथा उनपर विश्वास किया जाता। जब बच्चों का अनुमोदन किया जाता है तो उनसे किसी भी विषय पर बात की जा सकती है क्योंकि अनुमोदन संकोचों को हवा कर देता है।

लेकिन सवाल उठता है कि क्या बच्चों का अनुमोदन सम्भव है, जब हम खुदी को अनुमोदित नहीं कर पाते हैं? यदि आप अपने बारे में जागरूक नहीं हैं तो आप खुद का अनुमोदन नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में यह कि आप स्वयं अपने और

अपनी मंशाओं के प्रति जितना सचेत होते हैं, खुद को अनुमोदित करने की सम्भावना उतनी ही ज़्यादा होती है।

मेरी दिली इच्छा है कि पालक अपने और अपने बच्चों के स्वभाव के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा ज्ञान रखें। तभी वे अपने बच्चों को मानसिक तनावों से दूर रख पाएंगे। मैं ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि पालक अपने बच्चों पर पुराने और रूढ़िवादी विचार, आचरण तथा नैतिक मूल्य ज़बरदस्ती लाद कर उन्हें बिगाड़ रहे हैं। वे अपने बच्चों को बीते समय की वेदी पर बली चढ़ा रहे हैं। यह खास तौर पर उन पालकों के संदर्भ में सही ठहरता है जो अपने बच्चों पर आज्ञाकारी धर्म थोपते हैं। ठीक वैसे ही जैसे कभी उनपर थोपा गया था।

मैं जानता हूँ कि अहम चीज़ों को त्यागना सबसे मुश्किल काम है। लेकिन इसी त्याग से ही हम जीवन, तरक्की और खुशी खोज पाते हैं। पालकों के लिए त्याग ज़रूरी है। उस नफरत का त्याग जो आलोचना और अधिकार का रूप धर लेती है।

उस असहनशीलता का त्याग जो भय से उपजती है। जीर्ण नैतिकी और भीड़ के निर्णयों का त्याग। सरल शब्दों में पालकों का इंसान बनना ज़रूरी है। उन्हें यह समझना चाहिए कि वो कौन हैं और कहाँ खड़े हैं। यह आसान नहीं है। क्योंकि व्यक्ति आखिर खुद ही नहीं होता। वह जितने लोगों से मिलता है उन सबका मिश्रित रूप होता है। वह उनके कई मूल्य अपना लेता है। माता-पिता अपने माता-पिता की सत्ता बच्चों पर लादते हैं क्योंकि हर पुरुष में उसका पिता और हर स्त्री में उसकी माँ बसती है। यह कठोर सत्ता ही नफरत उपजाती है और साथ लाती है समस्यात्मक बच्चे। यह बच्चों के अनुमोदन के ठीक विपरीत है।

कुछ किशोरियों ने मुझसे कहा है, ''मैं अपनी माँ को खुश करने के लिए कुछ नहीं कर सकती। वह सब कुछ मुझसे बेहतर करती है। सिलाई या बुनाई में गलती हुई तो वह नाराज़ हो जाती है।''

बच्चों को शिक्षण की उतनी दरकार नहीं जितनी प्यार व समझ की है। उन्हें स्वाभाविक रूप से अच्छे बने रहने के लिए अनुमोदन और आज़ादी दरकार है। जो सच में मजबूत और स्नेही माता-पिता होते हैं उनमें ही बच्चों को अच्छे बनने की आज़ादी देने की ताकत होती है।

दुनिया अति-निन्दा से त्रस्त है। दरअसल यही बात सीधे-सीधे कही जा सकती है कि दुनिया नफरत से त्रस्त है। माता-पिता की नफरत बच्चों को एक समस्या में बदल देती है। ठीक उसी तरह जैसे समाज की घृणा एक अपराधी को समस्या में बदल देती है। छुटकारा प्रेम में निहित है, पर कठिनाई यह है कि प्रेम को कोई *बाध्य* नहीं कर सकता।

समस्यात्मक बच्चे के माता-पिता को बैठकर खुद से ये सवाल पूछना चाहिएः *क्या मैंने बच्चे को वास्तविक अनुमोदन दिया है? क्या मैंने उसमें विश्वास दर्शाया है? क्या मैंने उसके प्रति समझ जताई है?* मैं सिद्धान्त नहीं बखान रहा। मैं जानता हूँ कि कोई समस्यात्मक बच्चा हमारे स्कूल में आकर एक प्रसन्न और सामान्य बच्चा बन सकता है। इस इलाज प्रक्रिया की तह में है बच्चे को अनुमोदन देना, उस पर भरोसा करना, उसे समझना।

अनुमोदन की जितनी ज़रूरत समस्यात्मक बच्चों को होती है उतनी ही सामान्य बच्चों को भी होती है। जिस धर्मादेश का पालन हरेक माता-पिता और शिक्षक को करना चाहिए वह है - *तू हमेशा बच्चों के पक्ष में होगा*। यही धर्मादेश समरहिल को एक सफल स्कूल बनाता है। हम निश्चित रूप से बच्चे के पक्ष में हैं और बच्चा यह बात अवचेतन रूप से समझता है।

मैं यह नहीं कहता कि हम फरिश्तों की टोली हैं। ऐसे भी मौके आते हैं जब हम नाराज़ होकर चीखते-चिल्लाते हैं। अगर मैं दरवाज़ा रंग रहा होउँ और रॉबर्ट आकर गीले रंग पर मिट्टी उछाल जाए तो मैं ज़रूर नाराज़ होउँगा। और क्योंकि वह एक अर्से से हमारे साथ है, मेरी नाराज़गी उसे डराएगी नहीं। पर अगर रॉबर्ट किसी घृणास्पद स्कूल से ताज़ा-ताज़ा आया हो और मिट्टी उछालना उसके लिए सत्ता से लड़ने का प्रतीक हो, तो मैं भी उसके साथ मिलकर मिट्टी उछालूँगा। क्योंकि उसका बचाव दरवाज़ों के बचाव से अधिक महत्वपूर्ण है। मैं जानता हूँ कि जब तक वह अन्दरूनी नफरत निकाल नहीं लेता मुझे उसके पक्ष में ही होना चाहिए, ताकि वह फिर से दोस्ताना व्यवहार अपना सके। यह काम आसान नहीं है। मैंने एक लड़के को मेरी कीमती खराद पर गुस्सा निकालते देखा है। पर मैं चुप रहा। क्योंकि मैं जानता था कि अगर उस समय मैं प्रतिवाद करता तो वह मुझे अपने पिता के रूप में देखने लगता, जो उसे हमेशा औज़ारों को छूने पर पिटाई की धमकी देता था।

मज़े की बात यह है कि कई बार डाँटने-फटकारने के बावजूद आप बच्चे के पक्ष में हो सकते हैं। क्योंकि अगर आप उसके पक्ष में हैं तो उसे इस बात का अहसास होता है। आलुओं या औज़ारों को लेकर छोटा-मोटा मतभेद उस मूल सम्बंध को नहीं तोड़ता। जब बच्चे के साथ व्यवहार में आप सत्ता या नैतिकता को नहीं लाते हों तो बच्चे यह समझ पाते हैं कि आप उसके पक्ष में हैं। क्योंकि इससे पहले की ज़िन्दगी में सत्ता और नैतिकता ही वे चौकीदार थे जो लगातार उसकी गतिविधियों को बाधित करते थे।

जब कोई आठ साल की बच्ची मेरे पास से यह कहते हुए गुज़रती है 'नील बड़ा बेफकूफ है।' मैं जानता हूँ कि यह मेरे प्रति प्रेम दर्शाने का एक नकारात्मक तरीका है। वह मुझे यह जताती है कि वह मुझे लेकर सहज है। बच्चे उतना प्यार नहीं

देते, जितना वे स्वयं चाहते हैं। हरेक बच्चे के लिए बड़ों का अनुमोदन ही प्यार है और उनकी नापसन्दगी नफरत। बच्चे समरहिल के शिक्षकों को भी उसी नज़ारिए से देखते हैं, जिससे मुझे। बच्चों को यह अहसास हमेशा रहता है कि शिक्षक उनके पक्ष में हैं।

मैंने मुक्त बच्चों की ईमानदारी का पहले भी उल्लेख किया है। यह ईमानदारी अनुमोदन का नतीजा है। उनके पास कृत्रिम आचरण के कोई मानदण्ड नहीं होते जिन्हें उन्हें अपनी ज़िन्दगी में उतारना हो। कोई प्रतिबंध नहीं होते जो उन्हें जकड़े। उन्हें ज़िन्दगी को झूठ के रूप में जीने की कोई ज़रूरत नहीं होती।

नए छात्र, जिन्हें दूसरे स्कूलों में सत्ता के प्रति श्रद्धा सिखाई गई हो, मुझे 'सर' कह कर सम्बोधित करते हैं। पर जब उन्हें पता चल जाता है कि मैं सत्ता का प्रतीक नहीं हूँ, वे 'सर' कहना बन्द कर देते हैं और मुझे नील कहने लगते हैं। वे व्यक्तिगत स्तर पर मुझ से अनुमोदन नहीं चाहते। वे पूरे स्कूल समुदाय का अनुमोदन चाहते हैं। जब पुराने दिनों में मैं स्कॉटलैण्ड के गाँव में स्कूलमास्टर था, कई बच्चे कक्षाओं के बाद कमरे की सफाई में, झाड़ियों की बाड़ या बागड़ को काटने में मेरी मदद करते थे। यह सब ईमानदारी से नहीं किया जाता था। यह किया जाता था मुझसे अनुमोदन और प्रशंसा पाने के लिए क्योंकि मैं बॉस था।

समरहिल का कोई बच्चा मेरी प्रशंसा पाने के लिए कुछ नहीं करता है, यद्यपि लड़के-लड़कियों को खरपतवार निकालते देखकर बाहर से आए मेहमान यही सोचते हैं। उस काम को करने की प्रेरणा का मुझसे व्यक्तिशः कोई लेना-देना नहीं होता। इस घटना के समय बच्चे इसलिए खरपतवार निकाल रहे थे क्योंकि आम सभा में तय किया गया था कि बारह साल से बड़े सभी बच्चे सप्ताह में दो घण्टे बाग में काम करेंगे। बाद में यह नियम उन्होंने वापस भी ले लिया।

फिर भी किसी भी समाज में प्रशंसा पाने की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। अपराधी वह व्यक्ति होता है जो समाज के अधिकांश लोगों की प्रशंसा पाने की इच्छा को खो देता है। या फिर उसे उसकी उलट दिशा में बदलने पर बाध्य हो जाता है - यानी समाज के प्रति तिरस्कार। अपराधी हमेशा एक नम्बर का अहंकारी होता है। *मैं रातों रात अमीर बनना चाहता हूँ और दुनिया जाए भाड़ में।* जेल की सज़ा उसके अहम् के लिए बख्तर का काम करती है। वह इससे अकेला पड़ जाता है। खुद के बारे में, बेरहम समाज के बारे में सोचता है, जिसने उसे सज़ा दी है। सज़ाएँ और बंदीगृह किसी अपराधी को नहीं सुधार सकते हैं क्योंकि वे उसके लिए समाज की नफरत का सबूत हैं। समाज वे मौके ही समाप्त कर देता है जिनके ज़रिए वह फिर से सामाजिक बन सके, दूसरों की प्रशंसा पा सके। कैद करने की यह पागल व अमानवीय व्यवस्था ही निरर्थक है क्योंकि वह बंदी की मानसिकता को छू तक नहीं पाती।

इसलिए मैं कहता हूँ कि किसी भी सुधारक स्कूल में पहली ज़रूरत है सामाजिक अनुमोदन पाने का अवसर। जब तक बच्चों को निरीक्षक को सलाम ठोकना होगा, सेना जैसी कतारों में खड़े रहना होगा, सुप्रिन्टेंडेंट के कमरे में घुसते ही उछलकर खड़े होना होगा, तब तक वास्तविक आज़ादी नहीं होगी। अर्थात सामाजिक अनुमोदन पाने का अवसर भी नहीं होगा। होमर लेन ने पाया था कि जब भी कोई नया लड़का *लिटिल कॉमनवैल्थ* में आता तो वह दूसरों की प्रशंसा पाने के लिए उन्हीं तकनीकों को काम में लाता जो वह अपनी बस्ती की गलियों में इस्तेमाल करता रहा था। वह अपने कारनामों की डीगें हाँकता, दुकानों से वह किस सफाई से चीज़ें उड़ाता यह बताता, पुलिस को कैसे चकमा देता था इसकी गाथाएँ सुनाता। पर जब उसे पता लगता कि युवक प्रशंसा पाने के इस तरीके से उबर चुके हैं, तो वह हतप्रभ रह जाता। वह अपने नए साथियों को 'जनानियाँ' कह कर कमतर सिद्ध करने की कोशिश करता। पर क्रमशः प्रशंसा पाने की स्वाभाविक वृत्ति उसे साथियों की प्रशंसा पाने पर बाध्य करती और तब लेन द्वारा व्यक्तिगत मनोविश्लेषण के बिना ही वह खुद को अपने नए साथियों के अनुरूप ढालने लगता। चन्द महीनों में वह एक सामाजिक जीव बन चुका होता था।

साधारण, शालीन, संवेदनशील पति को भी मैं सम्बोधित करना चाहता हूँ जो हर शाम साढ़े पाँच की ट्रेन से घर लौटता है।

मैं तुम्हें जानता हूँ जॉन ब्राउन। मैं जानता हूँ कि तुम अपने बच्चों से प्यार करना चाहते हो, बच्चों का प्यार चाहते हो। जब रात दो बजे तुम्हारा पाँच साल का नन्हा अकारण ही रो-रोकर जगा देता है, तो उस पल तुम्हारे मन में खास प्रेम नहीं उमड़ता। पर याद रखना कि उसके रोने का कोई कारण ज़रूर है, चाहे वह कारण तुम्हें उस वक्त पता न चले। अगर तुम्हें गुस्सा आ रहा है, तो कोशिश करो कि तुम उसे न जताओ। पुरुष की आवाज़ बच्चे के लिए स्त्री की आवाज़ की तुलना में ज़्यादा डरावनी होती है। तुम जान भी नहीं सकोगे कि गलत समय उठी एक नाराज़ आवाज़ शिशु के मन में ताउम्र के लिए कौन से भय बसा जाएगी।

माता-पिता को दिए गए निर्देशों वाला पैम्फ्लेट कहता है, 'बच्चे को बिस्तर में साथ लेकर मत सोओ।' इस निर्देश को भूल जाओ। नन्हे को जितना चिपटा दुलरा सको, दुलार करो। दूसरों के सामने प्रदर्शन के लिए अपने बच्चे का इस्तेमाल मत करो। उसकी प्रशंसा और आलोचना दोनों में सावधानी बरतो। उसकी मौजूदगी में उसका गुणगान सही नहीं है। *जी हाँ, केटी बढ़िया कर रही है! पिछली बार अपनी कक्षा में अव्वल रही थी। बड़ी चतुर है, हमारी केटी।* कहने का मतलब यह नहीं कि बच्चे की तारीफ हीं नहीं करनी चाहिए। बच्चे से ज़रूर कहें *तुमने जो पतंग बनाई, वह बहुत बढ़िया है।* पर किसी मेहमान के सामने कुछ सिद्ध करने के लिए की गई प्रशंसा गलत है। जब हर ओर प्रशंसा तैरती है तो बत्तखें भी खुद को हंस

मानने लगती हैं। बच्चा खुद के बारे में अवास्तविक बन जाता है। सच्चाई से दूर भागने में, बच्चे की मदद मत करो। दूसरी ओर अगर बच्चा फेल होता है, तो यह बात बार-बार दोहराकर उसे ज़लील मत करो। स्कूल की रिपोर्ट में नम्बर कम हों तो उसे मत फटकारो। और अगर आपका बिली पिटकर रोता हुआ लौटे तो उसे नामर्द मत कहो।

अगर तुम यह कहते हो, *जब मैं छोटा था...* तो तुम एक भारी गलती कर रहे हो। संक्षेप में तुम्हें अपने बच्चे को वह जैसा है, उसी रूप में स्वीकारना है। उसे अपना प्रतिबिम्ब बनाने की कोशिश बेकार है।

घर और जीवन में मेरा एक ही उसूल है। वह यह कि *ईश्वर के लिए दूसरों को उनकी ज़िन्दगी जीने दो।* यह दृष्टिकोण हरेक स्थिति में अपनाना ज़रूरी है।

यही अकेला नज़रिया है जो सहिष्णुता पनपाता है। आश्चर्य है कि इससे पहले मुझे *सहिष्णुता* शब्द ही नहीं सूझा था। एक मुक्त शाला के लिए यह शब्द बिलकुल सही है। हम बच्चों के प्रति सहनशीलता जताकर उन्हें सहिष्णु बना रहे हैं।

भय

मैंने अपना काफी समय उन बच्चों की मरहम-पट्टी में बिताया है जो दूसरों द्वारा आहत हुए हैं। जिनके मन में भय बैठाया गया है। बच्चे के जीवन में भय एक भयानक चीज़ है जिसे जड़ से हटाना चाहिए। बड़ों का भय, नापसन्दगी का भय, सज़ा का भय, भगवान का खौफ। भय के माहौल में केवल नफरत पनपती है।

हम तमाम चीज़ों से डरते हैं - गरीबी से, मखौल उड़ने से, भूतों से, चोरों से, दुर्घटना से, लोगों की राय से, बीमारियों से, मौत से। किसी भी इन्सान की कहानी उसके डरों की कहानी है। लाखों वयस्क हैं जो अंधेरे में चलने से डरते हैं। हज़ारों ऐसे हैं जो पुलिस को अपने दरवाज़े की घण्टी बजाते पाकर व्यग्र हो जाते हैं। अधिकांश यात्री जहाज़ डूबने या हवाई जहाज़ की दुर्घटना की दुश्कल्पना करते हैं। रेलों की यात्रा करने वाले बीच के डब्बों में बैठना पसन्द करते हैं। लोगों का पहला सरोकार है 'सुरक्षा'।

मानव इतिहास में वह समय भी होगा जब व्यक्ति मौत के डर से भागता और छुपता होगा। आज का जीवन पहले से कहीं सुरक्षित है। आज आत्मरक्षा के लिए भय की ज़रूरत नहीं है। फिर भी आज इन्सान पाषाण युग के मानव से अधिक भय महसूस करता है। हमारे पूर्वजों के सामने तो केवल विशालकाय दानवों का ही भय

था। पर हमारे सामने तो तमाम दानव हैं - ट्रेन, जहाज़, हवाई-जहाज़, चोर, मोटर गाड़ियाँ और इन सबसे बड़ा है पकड़े जाने का डर। हमारे लिए भय अब भी ज़रूरी है। भय के चलते ही मैं सावधानी से सड़क पार करता हूँ।

प्रकृति में भय किसी प्रजाति के संरक्षण के लिए मिलता है। खरगोश और घोड़े इसलिए बचे रहे, क्योंकि भय उन्हें खतरों से बचाने के लिए भागने पर मजबूर करता रहा। जंगल कानून में भय बेहद महत्वपूर्ण है।

भय हमेशा आत्मकेन्द्रित होता है। हमें अपनी जान की या अपने चहेतों की जान की फिक्र होती है। पर ज़्यादा फिक्र खुद की जान की होती है। जब मैं छोटा था तब शाम को अंधेरे में फॉर्म तक जाकर दूध लाने से डरता था। पर जब मेरे साथ मेरी बहन होती तो मुझे यह डर नहीं सताता था कि कोई उसे मार डालेगा। भय हमेशा आत्मकेन्द्रित होता है क्योंकि अन्ततः वह मौत का ही डर होता है।

असली हीरो वह व्यक्ति है जो अपने भय को सकारात्मक ऊर्जा में बदल सकता है। हीरो भय पर काबू पाता है। एक सिपाही को जो चीज़ सबसे ज़्यादा परेशान करती है वह है भय। एक भीड़ अपने डर को सकारात्मक काम में नहीं बदल सकती। साहस से कहीं व्यापक है कायरता।

हम सभी कायर हैं। कुछ अपनी कायरता छुपा पाते हैं। दूसरे जता देते हैं। वैसे कायरता हमेशा सापेक्ष होती है। कुछ चीज़ों में आप बड़े साहसी हो सकते हैं, तो दूसरों में बिल्कुल डरपोक। रंगरूट के रूप में बम फेंकने का पहला पाठ याद आता है। एक रंगरूट उसे गढ्ढे में नहीं फेंक पाया। वह फटा और कुछ लोग उस धमाके से गिरे। भाग्य से कोई मरा नहीं। उस दिन की बमबारी बन्द कर दी गई। दूसरी सुबह हम वापस वहीं पहुँचे। जब मैंने पहला बम उठाया तो मेरे हाथ काँप रहे थे। सार्जेंट ने हिकारत से मेरी ओर देखा और कहा कि मैं कायर हूँ। मैंने यह स्वीकारा।

सार्जेंट बड़ा बहादुर था। उसके कारनामों पर उसे विक्टोरिया क्रॉस मिल चुका था। वह शारीरिक भय जानता तक न था। काफी दिनों बाद उसने मुझे बताया, "नील मुझे उस टुकड़ी को कवायद करवाना पसन्द नहीं, जिसमें तुम होते हो। मुझे बड़ी घबराहट होती है।" मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने जानना चाहा कि ऐसा क्यों है?

"क्योंकि तुम्हारे पास एम.ए. की डिग्री है और मैं तो व्याकरण तक का खून कर देता हूँ।" उसने कहा। मनोविज्ञान का अध्ययन हमें यह नहीं बता पाता कि क्यों एक बच्चा साहसी तो दूसरा दब्बू पैदा होता है। सम्भव है कि माता-पिता की परिस्थितियों की इसमें भूमिका हो। अगर माँ बच्चा चाहती न हो, तो सम्भव है कि वह अपनी चिन्ताएँ गर्भ के समय अपने बच्चे को दे देती हो। सम्भव है कि अनचाहा बच्चा दब्बू चरित्र के साथ इस वजह से पैदा होता हो क्योंकि वह माँ के गर्भ की सुरक्षा में ही दबे रहना चाहता हो।

यद्यपि पारिवारिक प्रभावों पर हमारा कोई बस नहीं है, फिर भी इतना निश्चित है कि कई बच्चे अपने प्रारम्भिक पालन-पोषण के कारण डरपोक बन जाते हैं। इस तरह की कायरता ज़रूर रोकी जा सकती है।

एक जाने माने मनोचिकित्सक ने मुझे एक नौजवान के बारे में बताया था। छः साल की उम्र में उस लड़के ने एक सात साल की लड़की में रुचि जताई। उसके पिता ने उसकी जमकर ठुकाई की और यूँ उसे उम्र भर के लिए डरपोक बना दिया। उसने अपनी तमाम उम्र उसी अनुभव के दोहराए जाने की दहशत में, पिटाई और सज़ा की आशंका में बिताई। वह हमेशा किसी विवाहित या सगाई की हुई लड़की की और आकर्षित होता और डरता कि कहीं महिला का पति या मंगेतर उसकी पिटाई न कर डाले। यही भय दूसरे मामलों में भी समा गया। वह बेहद नाखुश इन्सान में बदल गया। उसकी आत्मा दब्बू बन गई, वह हमेशा हीन भावना से ग्रसित रहा। हमेशा किसी खतरे की सम्भावना से आशंकित रहा। छोटी-छोटी बातों में उसका खौफ झलकता। चटख खिली धूप में भी अगर उसे दस कदम चलना होता तो वह बरसाती और छाता लेकर ही निकलता। वह जीवन को लगातार *नकारता* रहा।

बच्चों में बालसुलभ यौन रुचि के लिए दण्ड देना उसे शर्तिया डरपोक बना देगा। वैसे ही है उसमें नरक का डर डालना।

फ्रॉयड के सिद्धान्तों को मानने वाले *बधियाकरण ग्रन्थि* का उल्लेख करते हैं। ऐसी बधियाकरण ग्रन्थि होती ही है। समरहिल में एक नन्हा बालक था जिसे बताया गया था कि उसका लिंग काट दिया जाएगा अगर वो उसे छूता है। यह लड़के-लड़कियों में एक आम भय है। यह भयानक परिणामों का डर है। क्योंकि डर और चाह कभी दूर नहीं होते। कभी-कभार नपुंसक बनने का डर नपुंसक बनने की इच्छा का एक स्वरूप है - हस्तमैथुन की सज़ा के बतौर या सेक्स की लालसा से मुक्ति पाने का तरीका।

डरे हुए बच्चे के लिए सेक्स *ही* सब कुछ है। वो सेक्स को एकमात्र खूँटी के रूप में देखता है जिसपर उसके डर को टांगा जा सकता है। क्योंकि उसे कहा गया है कि सेक्स दुष्ट है। डरावने सपने देखने वाला बच्चा अक्सर वही होता है जो सेक्स के विचार से डरता है। उसे डर है कि शैतान उसे नरक में ले जाएगा। क्योंकि वो एक पापी बालक है जिसे सज़ा मिलनी ही चाहिए। हव्वा, भूत-प्रेत, शैतान के ही रूप हैं। अपराधबोध से भय उपजता है। पालकों की अज्ञानता ही बच्चों में यह अपराधबोध भर देती है।

पालकों के कमरे में सोना भय उपजने का एक आम कारण है। चार साल का बच्चा ऐसा बहुत कुछ सुनता और देखता है जो उसे समझ नहीं आता। उसकी निगाह

में पिता माँ को परेशान करने वाला एक बदमाश बन जाता है। बच्चे में कामक्रूरता का पनपना उसकी बाल्यावस्था की गलतफहमियों और भय का नतीजा है। बच्चा खुद को अपने पिता के रूप में देखने लगता है और युवा होने पर सेक्स को पीड़ा से जोड़ता है। भय के कारण वो अपने प्रेमी के साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसा उसकी कल्पना में पिता माँ के साथ करते थे।

मैं भय और आशंका में अन्तर करने की कोशिश करता हूँ। शेर से डरना स्वाभाविक है और स्वस्थ भी। खराब कार चालक द्वारा चलाई जाने वाली गाड़ी में बैठने से डरना भी स्वाभाविक और स्वस्थ है। अगर यह भय नहीं होता तो हम सब बसों द्वारा कबके कुचले गए होते। पर एक मकड़ी, चूहे या भूत का डर अस्वाभाविक और अस्वस्थ है। इस तरह का भय दरअसल महज़ आशंका है। वह फोबिया है। फोबिया में जिस चीज़ का भयानक व निर्रथक भय होता है वह दरअसल उतनी खतरनाक होती नहीं। वह प्रतीक मात्र होती है। जबकि उससे जन्मी आशंका वास्तविक होती है।

ऑस्ट्रेलिया जैसे देश में मकड़ी का भय तार्किक है। वहाँ मकड़ियाँ जानलेवा हो सकती हैं, पर इंग्लैण्ड या अमरीका में यह महज़ फोबिया ही है। यहाँ मकड़ी उस चीज़ का प्रतीक बन जाती है जिसका भय हमारे अन्दर बैठा है। इसी प्रकार बच्चों में भूत का डर फोबिया है। भूत उस चीज़ का प्रतीक है जिससे बच्चा असल में डरता है। यह मौत हो सकता है अगर उसे शुरू से ईश्वर से डरना सिखाया गया है। या फिर उनकी यौन उत्तेजनाएँ भी जिन्हें पाप समझकर दबाना उसे बचपन से ही सिखाया गया है।

एक दफा मेरे पास एक ऐसी लड़की भेजी गई जिसे केंचुओं का फोबिया था। मैंने उसे केंचुए का चित्र बनाने को कहा। उसने लिंग का चित्र बनाया। फिर उसने मुझे बताया कि स्कूल के रास्ते में एक सैनिक उसे अपना लिंग दिखाया करता था। जिसे देखकर वो बहुत डर गई। यह डर केंचुए में विस्थापित हो गया। लेकिन फोबिया विकसित होने के बहुत पहले ही वह लड़की उस फोबिया के मूल कारण में अत्यधिक रुचि रखती थी - उन्मादी रुचि। उसमें यह रुचि उसकी यौन शिक्षा से - या उसके अभाव से - जगी थी। यह असाधारण रुचि इसलिए विकसित हुई क्योंकि बड़ों ने इस विषय को हमेशा रहस्यमयी और गोपनीय ढंग से प्रस्तुत किया। हाँ यह सही है कि उसे ऐसे कामप्रदर्शन का मुहरा नहीं बनना चाहिए था लेकिन बेहतर यौन शिक्षा ने उसे इस समस्या से निपटने का ऐसा विकृत तरीका अखतियार न करने दिया होता। उसमें लिंग के प्रति ऐसी गहरी उत्सुकता न पनपी होती।

कई बार छोटे बच्चों में भी फोबिया देखा जा सकता है। एक कठोर पिता के पुत्र में घोड़े, शेर, या पुलिसवाले का फोबिया घर कर सकता है। जिस भी चीज़ को

पिता-प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है उसके प्रति फोबिया पैदा हो सकता है। यहाँ भी हम बच्चे के जीवन में सत्ता के प्रति भय जगने का खतरा साफ तौर पर देख सकते हैं।

बच्चे के जीवन में सबसे खतरनाक भय 'नरक' का हो सकता है। मैं अक्सर सड़क पर किसी माँ को यह कहते सुनता हूँ, ''फौरन बन्द करो। देखो पुलिसवाला आ रहा है।'' इसका एक गौण असर तो यह पड़ता है कि बच्चा जल्दी ही यह समझ जाता है कि माँ झूठ बोलती है। पर इसका महत्वपूर्ण और खतरनाक परिणाम यह होता है कि बच्चे के लिए पुलिसवाला *ही* शैतान का रूप ले लेता है। वह, जो बच्चों को उठा लेता हो, उन्हें अँधेरी कोठरी में बन्द कर देता हो। बच्चा यह भय हमेशा अपने सबसे गलत कामों से जोड़ता है। यही वजह है कि जब कोई पुलिसवाला हस्तमैथुन के आदी बच्चे को पत्थर फेंकते हुए पकड़ता है तो वह एकदम भयभीत हो जाता है। वह भय दरअसल सज़ा देने वाले खुदा और सज़ा देने वाले शैतान का भय है।

अपने पिछले अपराधों के कारण भी भय पनपते हैं। हम अपनी कल्पना में कई हत्याएँ करते हैं। मेरा विश्वास है कि मैं जब किसी पाँच साल के बच्चे की इच्छा के आड़े आता हूँ तो वह कल्पना में मेरा खून कर डालता है।

मेरे छात्र-छात्राएँ कई बार पिचकारी बन्दूक लेकर चीखते हैं, ''हाथ उठाओ। तुम्हें मार डाला।'' और यूँ वे सत्ता के प्रतीक का खात्मा करते हैं और भयमुक्त हो जाते हैं। मैंने कई बार जानबूझकर तानाशाहीपूर्ण निर्णय लिए हैं ताकि मैं बन्दूकों के खेल पर उसका असर देख सकूँ। ऐसे दिनों में मुझे दसियों बार मार गिराया गया है। इस कल्पना के बाद भय आता है। *मान लो नील सच में मर जाए। तब मैं ही अपराधी होउँगा, मैंने ही उसकी मौत चाही थी।*

हमारी छात्राओं में एक लड़की तैरते समय दूसरों को पानी में नीचे खींचा करती थी। उसे बड़ा मज़ा आता था। बाद में उसके मन में पानी का फोबिया बैठ गया। वह अच्छी तैराक थी पर कभी गहरे पानी में न जाती। हुआ यह कि उसने अपनी कल्पना में खुद से टक्कर लेने वाले दूसरे तमाम तैराकों को डुबा दिया था। उसके मन में न्याय का भय था - *मेरे बुरे विचारों की सज़ा के रूप में मैं खुद ही डूब जाऊँगी।*

नन्हा एल्बर्ट अपने पिता को तैरते देख तट पर खड़े-खड़े ही डर जाता था। डरता इसलिए था कि उसने अक्सर मन में चाहा था कि पिता मर जाए। वह अपने अपराधबोध से ही डरता था। बच्चे कल्पना में लोगों को मारते हैं। यह बात उस वक़्त इतनी भयावह नहीं लगती जब हम यह समझ लेते हैं कि बच्चे केवल उस

व्यक्ति को रास्ते से हटाना चाहते हैं जिससे वे बेहद डरते हैं।

मैं ऐसे वयस्कों से मिला हूँ जो अवचेतन रूप से स्वयं को अपनी माता या अपने पिता की मौत का ज़िम्मेदार मानते हैं। ऐसे भय को रोका जा सकता है। बशर्ते माता-पिता मार-पिटाई या डाँट-फटकार द्वारा बच्चे में लगातार घृणा और उससे उपजे अपराधबोध को न पनपने दें। सैकड़ों स्कूल जो आज भी शारीरिक दण्ड या दूसरी तरह की कठोर सज़ाएँ देते हैं वे बच्चों को स्थाई नुकसान पहुँचा रहे हैं।

वयस्कों के मन में कहीं यह बात गहराई तक घर कर गई है कि *अगर बच्चों को कोई डर नहीं होगा तो वे अच्छे कैसे बनेंगे?* जो अच्छाई नरक के डर या पुलिसवाले के डर या सज़ा के डर पर टिकी हो वह अच्छाई है ही नहीं। वह तो कायरता है। जो अच्छाई प्रशंसा या इनाम या स्वर्ग पाने की आशा पर टिकी है, वह घूंसखोरी है। क्योंकि वह उन्हें जीवन से डरना सिखाती है। आज की नैतिकता बच्चों को कायर बनाती है। क्योंकि यह उनमें जीवन के प्रति *भय* पैदा करती है। यही अनुशासित बच्चों की 'अच्छाई' है। हज़ारों शिक्षक सज़ा का भय जगाए बिना भी अपना काम बखूबी कर सकते हैं। जिन्हें डर के इस्तेमाल की ज़रूरत है वे अक्षम हैं, उन्हें शिक्षा-व्यवसाय से खदेड़ देना चाहिए।

बच्चे हम से डरकर हमारे मूल्य स्वीकार सकते हैं। और हम वयस्कों के मूल्य भला क्या हैं? इस सप्ताह मैंने तीन पाउड एक कुत्ता खरीदने में, दस पाउड औज़ार खरीदने में और पाँच गिनी तम्बाकू खरीदने में खर्चे। मैं वैसे तो सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध हूँ फिर भी मैंने ये पैसे गरीबों में नहीं बाँटे। यही कारण है कि अब मैं किसी से यह नहीं कहता कि झुग्गी-झोपड़ियाँ समाज का कलंक हैं। पहले कहता था। उस वक़्त तक, जब-तक मुझे यह नहीं पता चला कि मैं फरेबी हूँ।

सबसे सुखी घर वह है, जहाँ माता-पिता नैतिकता का उपदेश झाड़े बिना अपने बच्चों के साथ ईमानदारी बरतते हैं। इन घरों में भय नहीं घुसता। वहाँ बाप-बेटा, दोस्त होते हैं। वहाँ प्यार पनपता है। दूसरे घरों में प्यार, भय के नीचे कुचल दिया जाता है। दिखावटी गरिमा और माँगकर चाही गई श्रद्धा, प्रेम को दूर ही रखती हैं। जब इज़्ज़त करने के लिए बाध्य किया जाता है तो इसका अर्थ *हमेशा* होता है, भय।

समरहिल में जो बच्चे अपने माता-पिता से डरते हैं, वे शिक्षकों के कमरे में मँडराया करते हैं। मुक्त माता-पिता के बच्चे हमारे पास नहीं फटकते। डरे हुए बच्चे हमें लगातार जाँचते हैं। एक ग्यारह साल का लड़का जिसके पिता बड़े सख्त हैं, दिन में बीसियों बार मेरा दरवाज़ा खोलता है। वह झाँकता है, कुछ कहता नहीं है, फिर दरवाज़ा भेड़ देता है। मैं कभी-कभार उसे कहता हूँ, "ना, मैं अभी मरा नहीं हूँ।" उसने मुझे वह प्यार दिया है, जो उसका पिता स्वीकार नहीं सका। उसे यह डर

सताता है कि उसका नया और आदर्श पिता कहीं गायब न हो जाए। उसके भय के पीछे यह भी इच्छा निहित है कि उसका असन्तोषजनक पिता गायब हो जाता तो अच्छा होता।

उन बच्चों के साथ रहना आसान होता है जो हम से डरते हैं, उनकी बनिस्बत जो हमें प्यार करते हैं। डरने वाले बच्चों के साथ ज़िन्दगी शान्त होती है। क्योंकि वे डरते हैं, वे दूर रहते हैं। मुझे, मेरी पत्नी और समरहिल के तमाम शिक्षकों को बच्चे प्यार करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि हम उनका अनुमोदन करते हैं। उन्हें इससे अधिक कुछ चाहिए भी नहीं। उन्हें पता है कि हम उनकी कारगुज़ारियों पर नाक-भौं नहीं चढ़ाएँगें, इसलिए वे हमारे आस-पास रहना पसन्द करते हैं।

हमारे नन्हें-मुन्ने बिजली के कड़कने या बादलों के गरजने से नहीं डरते। वे छोटे-छोटे तम्बुओं में भयानक तूफान में भी सो सकते हैं। उनमें अँधेरे का डर भी कम नज़र आता है। कभी-कभार कोई आठ साल का बच्चा कई रात अकेले सोता है। आज़ादी हमेशा निर्भय बनाती है। मैंने अक्सर दब्बू बच्चों को निर्भीक युवक-युवतियों में बदलते देखा है। फिर भी सामान्यीकरण करना गलत होगा। क्योंकि कई अन्तर्मुखी बच्चे कभी भी साहसी नहीं बन पाते। कई लोगों के मन में बसे भूत-दानव ताउम्र उनके साथ रहते हैं।

अगर किसी बच्चे को बिना डराए पाला-पोसा गया है, पर उसमें फिर भी डर समाया है, तो सम्भव है कि वह भय जन्मजात हो। इस प्रकार के भय से निपटने में हमारे सामने सबसे बड़ी बाधा है, हमें बच्चे के जन्म के पहले की स्थितियों का ज्ञान न होना। आज तक यह स्पष्ट नहीं है कि गर्भवती माताएँ अपने डर कोख में पल रहे बच्चे को देती हैं या नहीं।

पर यह सब जानते हैं कि आसपास की दुनिया से बच्चा कई तरह के डर सीखता है। छोटे से छोटा बच्चा आज सम्भावित युद्धों और भयावह एटम बमों के बारे में सुनता है। ऐसी चीज़ों के डर के साथ नरक का भय जुड़ जाता है और वह एक फोबिया का रूप धर लेता है। लेकिन अगर सेक्स और नरक के प्रति कोई अचेतन भय न हो जो बम के भय को और बड़ा बना दे, तो यह डर साधारण होता न कि एक फोबिया या सर्वव्यापि चिन्ता। स्वस्थ और स्वतंत्र बच्चे भविष्य से डरते नहीं। वे खुशी से उसकी राह तकते हैं। उनके बच्चे भी कल के डर से थर्राते नहीं हैं।

विलियम राइक ने कहा है कि आकस्मिक भय के क्षणों में हम अपनी सांस रोक लेते हैं लेकिन डर के साए में जीने वाला बच्चा ज़िन्दगी भर सांस थामे रखने में लगा रहता है। भली प्रकार से पोषित बच्चे की निशानी है उसकी उन्मुक्त, खुली सांस। यह जीवन के प्रति उसके निडर भाव को दर्शाती है।

मुझे उस पिता से कुछ कहना है जो अपने बच्चे को अपंग बनाने वाले भय, घृणा

या अविश्वास के बिना बड़ा करना चाहता हैः

कभी भी बॉस, निरीक्षक या राक्षस बनने की कोशिश मत करो। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी पत्नी बच्चों को धमकी दे सके, ''आने दो, पापा को।'' यह मत सहो। इसका मतलब होगा कि जो घृणा उस पल माँ की ओर लक्षित होनी थी, वह तुम्हारे हिस्से आएगी।

खुद को ऊँचे आसन पर मत बिठालो। अगर तुम्हारा बच्चा यह जानना चाहे कि क्या तुमने बचपन में कभी बिस्तर गीला किया था, हस्तमैथुन किया था, तो उसे ईमानदारी से जवाब दो। अगर तुम बॉस बने रहोगे तो तुम्हें इज़्ज़त तो मिलेगी, पर गलत तरह की इज़्ज़त। उसमें हमेशा भय का पुट होगा। पर अगर तुम उनके स्तर पर उतरोगे और यह बता सकोगे कि तुम भी बचपन में डरपोक थे, तो तुम्हें सच्ची इज़्ज़त मिलेगी। ऐसी इज़्ज़त, जिसमें प्यार और समझ शामिल हो और डर का नामोंनिशान न हो।

बच्चे में ग्रंथियाँ पैदा किए बिना पालना इतना कठिन भी नहीं है। बच्चे को कभी डराना नहीं चाहिए, उसमें अपराधबोध नहीं जागना चाहिए। हर तरह का डर हटाना सम्भव भी नहीं हो सकता। अचानक ज़ोर से दरवाज़ा बन्द होते ही हम चौंक जाते हैं। पर बच्चे पर बाहर से थोपा गया अस्वास्थ्यकर डर तो हम हटा ही सकते हैं। सज़ा का डर हटा सकते हैं, नाराज़ खुदा का डर हटा सकते हैं, नाराज़ माता-पिता का भय हम हटा सकते हैं।

हीन भावना और कल्पना लोक

वह क्या है जो बच्चे में हीन भावना जगाता है? बच्चा बड़ों को वह सब करते देखता है, जो वह खुद कर नहीं सकता या जिसे करने की उसे अनुमति नहीं होती।

लिंग का हीन भावना से गहरा सम्बंध है। नन्हें बालक अपने लिंग की लम्बाई को लेकर अक्सर शर्म महसूस करते हैं और लड़कियाँ लिंग के अभाव में खुद को हीन महसूस करती हैं। मेरा विचार है कि लिंग को सत्ता के प्रतीक के रूप में देखना उस नैतिक शिक्षा का परिणाम है जो इसे हमेशा गोपनीयता और प्रतिबंधों के साथ जोड़ती है। लिंग बाबत दबे हुए विचार आम तौर पर कल्पना के रूप में उभरते हैं। एक रहस्यमयी चीज़ जिसपर माँ और नर्स ने इतने जतन से निगाह रखी वह अतिरेक महत्व की चीज़ बन जाती है। हम इसी चीज़ को लिंग की अदभुत शक्ति वाली कहानियों में देखते हैं। अल्लादीन के चिराग रगड़ने से जो दुनिया की तमाम खुशियाँ उस तक आ जाती हैं वह हस्तमैथुन का सुख दर्शाता है। इसी तरह बच्चों

की कल्पनाएँ मल को महत्व की चीज़ बना देती हैं।

बच्चों की कल्पनाएँ अहम को केन्द्र में रखती हैं। वे ऐसे सपने होते हैं जिसमें सपना देखने वाला ही हीरो या हीरोइन होता है। यह दुनिया की वह कहानी होती है, जैसी वह दरअसल होनी चाहिए। यह वही दुनिया है, जिसमें हम जैसे वयस्क व्हिस्की के गिलास थामे घुसते हैं, या उपन्यासों या चलचित्रों के माध्यम से घुसते हैं। बच्चा इस दुनिया में कल्पना के सहारे प्रवेश पाता है। कल्पना वास्तविकता से भागने की कोशिश होती है। वह इच्छापूर्ति की दुनिया में ले जाती है। ऐसी दुनिया में जहाँ कोई सीमाएँ न हों। पागल भी वहाँ सैर करने जाते हैं। सामान्य बच्चे भी कल्पनाएँ करते हैं। कल्पना जगत सपनों की दुनिया से अधिक आकर्षक होता है। सपनों में दुःस्वप्न भी शामिल होते हैं। पर काल्पनिक दुनिया पर हमारा कुछ नियंत्रण होता है। हम उसी की कल्पना करते हैं जो हमारे अहम को तुष्ट करे।

जब मैं जर्मनी के एक स्कूल में पढ़ाता था तो मेरी एक दस वर्षीया यहूदी छात्रा थी। उसके मन में तमाम डर थे। पहले दिन वह एक बड़े से बस्ते में किताबें लाई। मेज़ पर बैठकर वह पुराने किस्म के हिसाब करने लगी : 4 जमा 563, जमा 207 को 4 जमा 379 से भाग दो। तीन दिनों तक यह सिलसिला चला। मैंने जानना चाहा कि क्या उसे ऐसे हिसाब करना पसन्द है। उसने धीमे से जवाब दिया, ''हाँ।''

चौथे दिन उसे त्रस्त हो गुणा-भाग करते पाकर मैंने फिर पूछा, ''क्या तुम्हें सच में ऐसे हिसाब करना पसन्द है?'' वह फफक पड़ी। मैंने किताब छीनी और कमरे के दूसरे कोने में फेंक दी। मैंने कहा, ''यह मुक्तशाला है। तुम जो चाहो वह कर सकती हो।'' वह अचानक खुश दिखने लगी। उसने पूरे दिन कोई काम नहीं किया, सिर्फ़ सीटी बजाती रही।

कई महीनों बाद मैं जंगल में टहलने गया हुआ था। अचानक एक आवाज़ कानों में पड़ी और तब स्लोविया दिखी। वह भी टहल रही थी, हँस और बोल रही थी। ज़ाहिर था कि वह कई चरित्रों की भूमिका अदा कर रही थी। उसने मुझे पास से गुज़रते तक देखा।

अगले दिन मैंने उससे कहा कि मैंने उसे जंगल में खुद से बतियाते सुना था। वह अचकचा गई और भाग खड़ी हुई। दोपहर वह मेरे दरवाज़े के पास खड़ी मिली। अन्ततः उसने साहस जुटाया, अन्दर आई और बोली, ''बताना बड़ा मुश्किल है। फिर भी मैं क्या कर रही थी, यह बताना चाहती हूँ।''

एक खूबसूरत-सी कहानी पता चली। सालों से स्लोविया सपनों के एक गाँव में रहती थी। उसने गाँव का नाम ग्रूनवाल्ड रखा था। उसने गाँव के नक्शे दिखाए, घरों की बसाहट बताई। उसने हर घर में अलग-अलग लोग बसाए थे। वह हरेक

को गहराई से जानती थी और जो मैंने उस दिन जंगल में सुना था, वह गाँव के दो लड़कों - हान्स व हेल्मुट - की बातचीत थी।

इस कल्पना के पीछे क्या है, यह जानने में मुझे कुछ सप्ताह लगे। स्लोविया अपने माता-पिता की इकलौती औलाद थी। साथ खेलने वाले संगी-साथी थे नहीं, सो उसने कल्पना में एक गाँव ही बना लिया, जिसमें उसके संगी-साथी बसते थे।

मैंने उसके कल्पना जगत को तोड़ने का निर्णय लिया और उसे उसके पीछे की सच्चाई बता दी। दो दिन तक वह बड़ी दुखी रही। उसने मुझे रोते-रोते बताया, ''मैंने कल रात ग्रूनवाल्ड जाने की कोशिश की, पर जा नहीं सकी। तुमने वह सब बिगाड़ दिया है जो मुझे ज़िन्दगी में सबसे प्यारा था।''

पर दस दिन बाद एक शिक्षक ने टिप्पणी की, ''स्लोविया को क्या हुआ? वह सारा दिन गुनगुनाती फिरती है। और बेहद खूबसूरत भी लगने लगी है।'' यह सच था। वह सच में खिल उठी थी। अचानक तमाम चीज़ों में वह रुचि लेने लगी थी। वह पाठों के लिए जा रही थी, अच्छी तरह पढ़ रही थी। उसने चित्रकारी करनी शुरू की और कुछ सुन्दर चित्र बनाए। संक्षेप में वह फिर से वास्तविकता से जुड़ सकी। उसके अकेलेपन ने ही उसे एक काल्पनिक जगत की रचना पर मजबूर किया था।

एक और बच्ची थी जो काल्पनिक जगत में एक बेहतरीन अभिनेत्री थी। दर्शकों की भीड़ तालियों की गड़गड़ाहट से उसका स्वागत करती थी। उसे दर्शकों ने सोलह बार मंच पर फिर-फिर बुलाया था।

जिम एक ऐसा लड़का है जिसे गुस्से के दौरे पड़ते रहते हैं। उसकी कल्पना में हमेशा पेशाब और मल शीर्ष पर रहता है। वह सेक्स को ताकत के बतौर लेता है।

एक नौ साल का बच्चा है, जो रेलगाड़ी को लेकर कल्पनाएँ करता है। वह हमेशा रेल का चालक बनता है और अमूमन राजा-रानी; माता-पिता आदि उसकी रेल में सवार होते हैं।

नन्हें चार्ली के कल्पना जगत में ढेरों हवाई जहाज़ और गाड़ियाँ हैं।

जिम अपने अमीर चाचा के बारे में बातें किया करता जिसने उसे छोटी रोल्स रॉयस भेंट की थी। जिम का कहना है कि उसे अपनी नई गाड़ी चलाने के लिए लाइसेंस की ज़रूरत नहीं। एक बार जिम ने उसके कुछ साथियों को उकसाया और वे सब चार मील दूर के स्टेशन जाने को तैयार हो गए। उनको कहा गया था कि चाचा ने रेल से रोल्स रॉयस भेजी है। मैंने उनको रोकने का निर्णय लिया क्योंकि मैं जानता था कि बच्चे इतनी दूर जाने के बाद निराश होने वाले हैं। ऐसा इसलिए कि गाड़ी केवल जिम की कल्पना की उड़ान है। मैंने उनको कहा कि जाने पर उन्हें दोपहर का खाना नहीं मिलेगा। जिम पहले ही बेचैन था। तुरन्त बोल उठा, ''हाँ

हमें खाने के लिए रुकना ही होगा।" उनकी मेट्रन ने तुरन्त कहा वे स्टेशन तक की यात्रा के एवज़ में बच्चों को सिनेमा दिखाने ले जाएँगी। बच्चे बड़े उत्साह से तैयार हो गए और जिम ने चैन की सांस ली। क्योंकि वह बखूबी जानता था कि उपहार में गाड़ी देने वाला उसका चाचा, काल्पनिक था।

जिम की कल्पना सेक्स से नहीं जुड़ी थी। जब से वो समरहिल आया वो दूसरों पर रौब गाँठने की कोशिश में लगा रहता। और डींगें हांकना ही उसका तरीका था। एक बार जिम ने अपने दोस्तों को बताया कि उसके एक और चाचा दो समुद्री जहाज़ों के मालिक थे। सो बच्चों ने उसे कहा कि वह चाचा को चिट्ठी लिखे और उनसे एक मोटरयुक्त नाव उपहार में माँग ले। कई दिनों तक वे लाइम बन्दरगाह की ओर ताकते रहे। इस उम्मीद में कि जहाज़ उस मोटरबोट को खींचता हुआ वहाँ पहुँचेगा। जिम इसी तरह से अपना कद ऊँचा करता। वह एक छोटे कद का लड़का था जिसे माँ बाप ने बोर्डिंग स्कूल में भेजा था। इस हीन भावना से उबरने की कोशिश में कल्पनाएँ करता था।

अगर सभी कल्पनाओं को नष्ट कर दिया जाए तो जीवन कितना नीरस और उबाऊ बन जाए। रचना के हरेक कर्म के पहले कल्पना ज़रूरी होती है। क्रिस्टफर रेन ने सेंट पॉल्स केथीड्रल की नींव डालने से पहले ही उसे अपनी कल्पना में बनाया होगा।

वही सपना सँजोने लायक है जिसे वास्तविकता में उतारा जा सके। दूसरी तरह का सपना, कल्पना जगत में उड़ानें भरते रहने वाला सपना, सम्भव हो तो तोड़ना चाहिए। अगर बच्चा हमेशा कल्पना जगत में ही जीता जाए तो उसमें ठहराव आ सकता है। अधिकांश स्कूलों में जिन बच्चों को ढोर-शंख (बुद्धू) कहा जाता है वे दरअसल अपनी काल्पनिक दुनिया में खोए रहते हैं। कोई बच्चा गणित में उस समय कैसे रुचि ले सकता है जब उसका चाचा उसे रोल्स रॉयस भेजने वाला हो?

कई बार नन्हें बच्चों के माता-पिता से पढ़ने-लिखने को लेकर मेरी झड़पें हुई हैं। एक माँ ने लिखा, "मेरा लड़का ऐसा हो, जो समाज में फिट बैठे। आप उसे ज़बरदस्ती पढ़ना-लिखना सिखाएँ।" अमूमन मेरा जवाब यह होता है, "आपका बच्चा काल्पनिक दुनिया में रहता है। उसे वहाँ से निकालने में, उस दुनिया को तोड़ने में तकरीबन साल भर लगेगा। उस पर इस वक्त पढ़ने-लिखने का दबाव डालना अपराध होगा। जब तक काल्पनिक जगत से उसकी रुचि नहीं हट जाती, पढ़ने में उसकी रत्ती भर रुचि नहीं होगी।"

यह सम्भव है कि मैं बच्चे को अपने कमरे में ले जाऊँ और फटकारूँ, कहूँ, "दिमाग से चाचाओं और गाड़ियों के फितूर निकालो। ये सब मनगढ़न्त बातें हैं और तुम यह जानते हो। कल सुबह पढ़ने जाना, नहीं तो तुम्हें मैं दूसरी तरह बात समझा

दूँगा।'' यह कहना एक अपराध होगा। जब तक उस कल्पना की जगह कुछ दूसरा स्थापित करने का विकल्प सामने न हो, उसे तोड़ना गुनाह है। अच्छा तो यह रहे कि हम बच्चों को उस बारे में बोलने को प्रोत्साहित करें। दस में से नौ बच्चे धीरे-धीरे खुद ही उस कल्पना में रुचि लेना बन्द कर देते हैं। केवल उस स्थिति में जब बच्चा वास्तविकता से कटकर सालों-साल काल्पनिक जगत में रहता हो, तब ही उसे झटके से तोड़ने की बात सोची जा सकती है।

मैंने कहा कि कल्पना की जगह कुछ दूसरा स्थापित किया जाना चाहिए। अपने स्वास्थ्य के लिए हरेक बच्चे, हरेक वयस्क के पास, एक ऐसा क्षेत्र ज़रूर होना चाहिए, जहाँ वह दूसरों से श्रेष्ठ साबित हो सके। किसी भी कक्षा में श्रेष्ठ होने के दो रास्ते हैंः या तो कोई बच्चा सर्वाधिक अंक पाए या जो सबसे कमज़ोर हो, उस पर हावी हो सके। इन दोनों में से श्रेष्ठ साबित होने का दूसरा तरीका अधिक आकर्षक लगता है। यह आसान तरीका है जिसे बहिर्मुखी बच्चे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अपनाते हैं।

जो बच्चे अन्तर्मुखी होते हैं वे अपनी श्रेष्ठता पाने के लिए कल्पना जगत का सहारा लेते हैं। वास्तविक जगत में उनकी श्रेष्ठता कहीं नहीं होती। वह लड़ नहीं सकता, वह खेल में अच्छा नहीं है, वह अभिनय नहीं कर सकता, या अच्छा गा-नाच नहीं सकता। पर अपनी काल्पनिक दुनिया में वह बच्चा मुक्केबाज़ी में विश्व चैम्पियन होता है। अहम को तुष्ट करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक महत्वपूर्ण ज़रूरत है।

विध्वंसकता

वयस्कों को यह बात समझना कठिन लगता है कि बच्चों में किसी की सम्पत्ति के प्रति सम्मान नहीं होता। वे जानबूझकर तोड़-फोड़ नहीं करते। *वे अनजाने में ही तोड़-फोड़ करते हैं।*

एक बार मैंने एक सामान्य, खुश व सन्तुलित बच्ची को हमारे शिक्षक-कक्ष में रखी कीमती लकड़ी की अलमारी में गरमा-गरम सलाख से छेद करते देखा था। जब मैंने उसे टोका तो वह चौंक-सी गई। उसने पूरी ईमानदारी से जवाब दिया, ''मैंने यह बिना सोचे कर डाला।'' उसका यह काम प्रतीकात्मक था। चेतन दिमाग के नियंत्रण से परे था।

सच्चाई यह है कि वयस्कों में कीमती चीज़ों को लेकर मिल्कियत की भावना होती है, लेकिन बच्चों में नहीं। ज़ाहिर है कि जहाँ बच्चे और बड़े साथ-साथ रहते हों, वहाँ तमाम चीज़ों के बारे में झगड़ा हो सकता है। समरहिल में बच्चे सोने के पाँच

मिनट पहले अलाव जलाते हैं। वे उसमें ठूँस-ठूँसकर कोयला भरते हैं। क्योंकि उनके लिए कोयला काला पत्थर भर है, पर मेरे लिए इसका मतलब है 300 पाउण्ड का सालाना खर्च। बच्चे बत्तियाँ जली छोड़ते हैं क्योंकि वे उसे बिजली के बिलों से जोड़कर नहीं देखते।

बच्चों के लिए फर्नीचर का कोई महत्व ही नहीं है। इसलिए समरहिल में हम पुरानी गाड़ियों और बसों की सीटें खरीदते हैं। वे एक दो महीने में चूर-चूर हो जाती हैं। खाने के दौरान किसी चीज़ को दूसरी बार लेने के इंतज़ार में खड़े बच्चे अपने काँटों को तोड़-मरोड़ देते हैं। यह सब वे अचेतन या अर्धचेतन अवस्था में करते हैं। बच्चे केवल स्कूली सम्पत्ति का ही नुकसान नहीं करते। वे अपनी खुद की तीन सप्ताह पहले आई नई साइकिल को भी, नयापन खत्म होने के बाद, आँधी-बरसात में बाहर पड़ी रहने देते हैं।

आठ-नौ साल की उम्र में बच्चों में जो विध्वंस नज़र आता है, वह बुराई या असामाजिकता के कारण नहीं होता। उस वक़्त तक उनमें व्यक्तिगत सम्पत्ति का भाव ही नहीं होता। कल्पना जगत में विचरते समय वे चद्दरों और कम्बलों से अपने कमरों में जहाज़ बनाते हैं। इस प्रक्रिया में चद्दर काली हो सकती हैं और कम्बल फट सकते हैं। पर काली चद्दर का उस वक़्त क्या मतलब हो सकता है जब समुद्री डाकू एक-दूसरे के जहाज़ों पर तोप के गोले बरसा रहे हों?

सच, जो व्यक्ति बच्चों को आज़ादी से बड़ा करना चाहे उसे धन्ना सेठ होना चाहिए। क्योंकि बच्चों की स्वाभाविक असावधानी हमेशा खर्चीली सिद्ध होती है।

अनुशासन के पक्ष में बोलने वाले कहते हैं कि बच्चों को सम्पत्ति का सम्मान करने पर *बाध्य* करना चाहिए। यह बात मुझे जँचती नहीं है क्योंकि इससे उसे अपने खेल की ज़िन्दगी में काफी कुछ त्यागना पड़ता है। मेरा मानना है कि चीज़ों की कीमत बच्चों में समय के साथ स्वतः ही उपजनी चाहिए। बच्चे किशोरावस्था में आते-आते सम्पत्ति का सम्मान करने लगते हैं। जब उन्हें सम्पत्ति के प्रति उदासीन रहने की स्थिति में जीने दिया जाता है, तब वे फायदा उठाने वाले या शोषक नहीं बनते।

लड़कियाँ उतनी तोड़-फोड़ नहीं करतीं, जितनी लड़के करते हैं। शायद इसलिए क्योंकि उनकी काल्पनिक दुनिया में समुद्री डाकुओं के जहाज़ और गुण्डा समूहों की ज़रूरत नहीं होती। फिर भी लड़कियों के कमरे भी उतने ही बेतरतीब होते हैं, जितने लड़कों के। मैं यह स्पष्टीकरण नहीं मानता कि लड़के आकर वहाँ गड़बड़ कर जाते हैं।

कुछ साल पहले हमने बच्चों के सोने के कमरों में एक खास तरह के बोर्ड लगवाए

ताकि सर्दियों में कमरे गरम रहें। छोटे बच्चे उसे देखते ही उसमें छेद करने लगते हैं। पिंग-पौंग खेलने वाले कमरे में लगा बोर्ड ऐसा लगता है, मानों बमबारी के बाद का बर्लिन शहर हो। बच्चे उसी तरह बोर्ड में छेद करते हैं, मानों नाक में ऊँगली घुसेड़ रहे हों। अमूमन यह पूर्णतः अवचेतन कृत्य होता है जैसे दूसरी तरह की तोड़-फोड़। उसका छुपा या रचनात्मक उद्देश्य भी हो सकता है। अगर किसी लड़के को जहाज़ का तल बनाने के लिए धातु के टुकड़े की ज़रूरत हो और उसे कील मिले तो वह उसे काम में ले लेगा। अगर कील न मिले तो वह कोई भी कीमती छोटा औज़ार, अगर उसका आकार सही हो तो, इस्तेमाल कर लेगा। बच्चों के लिए छेनी और कील दोनों ही धातु का एक टुकड़ा भर हैं। और एक चतुर लड़के ने एक महँगा रंगाई ब्रश तारकोल पोतने के काम में ले लिया था।

हमने सीखा है कि बच्चों और वयस्कों के मूल्यों में अन्तर होता है। अगर कोई स्कूल बच्चों को सुधारने के लिए सुन्दर चित्र टाँगता है या कमरों में खूबसूरत फर्नीचर रखता है, तो वह शुरुआत ही गलत सिरे से करता है। बच्चे दरअसल काफी जंगली होते हैं और जब तक वे संस्कृति की माँग नहीं करते, उन्हें आदिम और अनौपचारिक वातावरण में ही रहने देना चाहिए।

कुछ साल पहले जब हम इस घर में आए-आए ही थे, तो हमने सुन्दर दरवाज़ों पर बच्चों को चाकू-छुरियाँ फैंकते देखा था। हमने दो पुराने रेल के डिब्बे खरीदे और उनसे एक बंगला बनाया। यहाँ हमारे जंगली बच्चे जी भरकर चाकू-छुरे फैंक सकते थे। आज चालीस साल बाद भी उनकी हालत इतनी खराब नहीं है। उनमें अब बारह से सोलह साल के लड़के रहते हैं। इनमें से अधिकांश उस उम्र में पहुँच गए हैं जहाँ उन्हें आरामदेह चीज़ें और सजावट पसन्द आती हैं। वे अपने डिब्बों को साफ-सुथरा रखते हैं। बाकी बच्चे अस्तव्यस्त रहते हैं। अस्तव्यस्त रहने वाले बच्चे हाल में निजी स्कूलों से आए हैं।

समरहिल में निजी स्कूल के पूर्व छात्र हमेशा अलग से पहचाने जा सकते हैं। वे सबसे गन्दे रहते हैं, नहाते-धोते नहीं हैं और मैले-कुचैले कपड़े पहनते हैं। अपनी आदिम प्रवृत्तियों को जी भर के जी लेने में उन्हें समय लगता है। ये प्रवृत्तियाँ निजी स्कूल में पढ़ने के दौरान दबाई गई होती हैं। आज़ादी के माहौल में भी सामाजिक जीव बने रहने में उन्हें वक़्त लगता है।

आज़ाद स्कूल में सबसे ज़्यादा झमेला वर्कशॉप में होता है। शुरुआती दिनों में हमारी वर्कशॉप सबके लिए हर समय खुली रहा करती थी। परिणामस्वरूप उसके सारे औज़ार या तो खो गए या टूट-फूट गए। नौ साल के लड़के छेनी को स्क्रू-ड्राइवर की तरह काम में लेते या फिर साइकिल सुधारने के लिए पाना लेते और उसे सड़क पर छोड़ आते।

तब मैंने अपनी निजी वर्कशॉप को मुख्य वर्कशॉप से अलग करने का निर्णय लिया और एक दीवार चिनवा दी। पर मेरी आत्मा मुझे कचोटती रही। मुझे लगा कि मेरा व्यवहार स्वार्थी और असामाजिक है। अन्ततः मैंने बीच की दीवार तुड़वा दी। अगले छह माह में मेरी निजी वर्कशॉप में एक भी औज़ार साबुत न बचा। एक बच्चे ने सारे तार अपनी मोटर साइकिल सुधारने में इस्तेमाल कर लिए। दूसरे ने मेरी खराद तोड़ डाली। ताम्बे और चाँदी का काम करने वाली हथौड़ियों को पत्थर तोड़ने के काम में लिया गया। कुछ औज़ार गायब हुए तो वापस ही नहीं मिले। पर इससे भी बुरा यह हुआ कि हस्तकला में रुचि पूरी तरह मर गई। बड़े छात्रों ने कहा, "वर्कशॉप में जाने का मतलब ही क्या है? वहाँ तो सारे औज़ार बेकार पड़े हैं।" और सच में औज़ार बर्बाद हो चुके थे।

मैंने स्कूल की आमसभा में प्रस्ताव रखा कि मेरी वर्कशॉप पर फिर से ताला लगाया जाए। प्रस्ताव मंजूर हुआ। पर जब भी मेहमान आते और मुझे ताला खोलकर वर्कशॉप दिखाना पड़ता तो मुझे बेहद शर्म आती। *क्या कहा? आज़ादी और तालाबन्द दरवाज़ा?* सच यह बड़ा अजीब नज़र आता था। मैंने तय किया कि स्कूल में एक और वर्कशॉप हो जो हमेशा खुली रहे। मैंने उसमें सभी ज़रूरी चीज़ें रखवाईं। बेंच, बाँके, आरियाँ, छेनियाँ, रन्दे, हथौड़ियाँ, प्लायर, पाने आदि, आदि।

तकरीबन चार महीने बाद मैं कुछ मेहमानों को स्कूल दिखा रहा था। जब मैंने अपनी वर्कशॉप का ताला खोला तो एक ने टिप्पणी की, "यह तो आज़ादी-सा नहीं लगता।"

मैंने जल्दी से जोड़ा, "बच्चों की वर्कशॉप *दूसरी* है। वह दिन भर खुली रहती है। आइए मैं आपको दिखाता हूँ।" वहाँ जाने पर वर्कशॉप में बेंच के अलावा कुछ न था। बाँका तक गायब था। हमारी बारह एकड़ ज़मीन के किस कोने में छेनियाँ और हथौड़ियाँ बिखरी पड़ी हैं, यह मुझे कभी पता नहीं लगा।

वर्कशॉप की स्थिति शिक्षकों को परेशान करती रही। मुझे सबसे ज़्यादा परेशान करती रही, क्योंकि औज़ार मेरी नज़र में बेहद कीमती थे। लगा कि समस्या इस बात में है कि सारे औज़ार पूरे समूह के लिए हैं। अगर हम इसमें मिल्कियत का भाव डालें तो स्थिति शायद सुधरे। हरेक बच्चे का, जिसे औज़ार चाहिए हों, अपना एक निजी सेट हो।

मैंने बात आम सभा में उठाई। विचार का स्वागत हुआ। अगले सत्र में कुछ बड़े बच्चे घरों से अपने औज़ार लेकर आए। वे औज़ारों को सावधानी से काम में लेते रहे और उन्हें अच्छी तरह रखने लगे।

सम्भव है कि समस्या इस बात से पैदा होती है कि समरहिल में आयु का काफी अन्तर है। छोटे लड़कों-लड़कियों के लिए औज़ार कोई मायने ही नहीं रखते,

इसलिए हमारे हस्तकला शिक्षक आजकल वर्कशॉप पर ताला लगाते हैं। मैं कुछ बड़े छात्रों को उदारता से अपनी वर्कशॉप में जब वे चाहें, काम करने देता हूँ। वे औज़ारों को सावधानी से काम में लेते हैं क्योंकि वे उस आयु में पहुँच चुके हैं, जहाँ वे यह समझते हैं कि सावधानी से ही अच्छा काम होता है। साथ ही वे आज़ादी और उच्छृंखलता का अन्तर भी समझते हैं।

फिर भी समरहिल में तालाबन्दी की संस्कृति बढ़ती नज़र आती है। मैंने यह बात एक शनिवारीय आम सभा में उठाई, ''मुझे यह पसन्द नहीं। मैं आज सुबह कुछ मेहमानों को लेकर गया तो मुझे वर्कशॉप, प्रयोगशाला, कुम्हारगिरी वाला कमरा और रंगमंच खोलने पड़े। मेरा सुझाव है कि सभी सार्वजनिक कमरे दिन भर खुले रहें।''

मतभेद की आँधी उमड़ी। कुछ बच्चों ने कहा, ''प्रयोगशाला इसलिए बन्द रहती है क्योंकि वहाँ ज़हर और खतरनाक रसायन हैं और कुम्हारगिरी का कमरा उससे सटा हुआ है, उसे भी बन्द रखना ज़रूरी है।''

''वर्कशॉप हम खुली नहीं छोड़ेंगे। पिछली बार क्या हुआ था, याद है न,'' दूसरों का कहना था।

मैंने गुहार की, ''कम से कम रंगमंच तो खुला छोड़ा जा सकता है, उसे उठाकर तो कोई नहीं ले जाएगा।''

नाटकों के लेखक, अभिनेता, अभिनेत्रियाँ, स्टेज और लाइट प्रबन्धक सब एक साथ उछल पड़े। लाइट प्रबन्धक ने कहा, ''हम रंगमंच खुला छोड़ गए और किसी गधे ने सारी बत्तियाँ जलाईं और भाग गया। तकरीबन तीन किलो वॉट की लाइटें पूरे समय जलती रहीं। खर्चे का हिसाब खुद लगाओ।'' फलस्वरूप ताले हटाने के मेरे प्रस्ताव पर कुल दो हाथ उठे। एक मेरा और दूसरा एक सात साल की लड़की का। बाद में पता चला कि वह समझी कि इससे पहले जो प्रस्ताव था, उस पर मतदान जारी है। उसमें सात साल के बच्चों को सिनेमा देखने जाने देने की बात हुई थी। बच्चे खुद अपने अनुभव से समझने लगे थे कि निजी सम्पत्ति का सम्मान करना चाहिए।

पर दुखद सच्चाई यह है कि अक्सर हम वयस्कों को चीज़ों की सुरक्षा की फिक्र, बच्चों की सुरक्षा से अधिक होती है। किसी व्यक्ति का पियानो, उसके औज़ार, उसके कपड़े, सैंकड़ों चीज़ें उसका हिस्सा बन जाती हैं। रन्दे को बुरी तरह इस्तेमाल करते देखने से व्यक्तिगत स्तर पर तकलीफ होती है। अपनी चीज़ों के लिए प्यार, अक्सर बच्चों के लिए प्यार से अधिक होता है। जब-जब हम *खबरदार! उसे हाथ न लगाना* कहते हैं हम बच्चों की तुलना में उस वस्तु के प्रति प्यार जताते हैं।

बच्चा हमारे लिए परेशानी का कारण बन उठता है क्योंकि उसकी इच्छाओं का वयस्कों की अहंकारी इच्छाओं के साथ टकराव होता है।

तीन छोटे लड़कों ने एक बार मेरी महँगी इलैक्ट्रिक टॉर्च उधार ली। वह कैसे बनी है यह देखने में उसे बर्बाद कर डाला। यह कहना कि उनकी जिज्ञासा से मुझे बड़ी खुशी हुई, गलत होगा। मुझे जिज्ञासा का मनोवैज्ञानिक अर्थ जानते-समझते हुए भी गुस्सा आया। पिता का टॉर्च लिंग का प्रतीक था।

मेरा एक दिवास्वप्न है कि एक करोड़पति बाप का बेटा हमारा छात्र बने। अपनी कल्पना में मैं उस पर तमाम व्यापक प्रयोग करता हूँ, *जिसका सारा खर्च उसके पिता वहन करते हैं।* क्योंकि एक मनोरोगी बच्चे को आज़ादी देना महँगा धँधा है। कोई भी स्वस्थ बच्चा रोज़मर्रा के नाश्ते की तरह, टेलीविज़न पर कीलें नहीं ठोकता।

यह सब हमें उस सवाल पर लाता है जो हमेशा मेरे भाषणों के दौरान उठाया जाता है। *आप उस वक़्त क्या करेंगे, जब कोई लड़का आपके पियानो पर कीलें ठोकने लगे?* अब मैंने इतनी महारत हासिल कर ली है कि मैं पहले से यह सवाल पूछने वाले व्यक्ति की पहचान कर लेता हूँ। अमूमन वे सामने की सीट पर बैठे मिलते हैं और भाषण के दौरान नाक चढ़ाकर मतभेद ज़ाहिर करते हैं।

सवाल का सबसे अच्छा जवाब यह हैः *अगर बच्चों के प्रति आपका दृष्टिकोण सही हो तो आप क्या करते हैं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।* अगर आप कील ठोकने को लेकर उसमें अपराधबोध नहीं जगाते तो आप बेशक उसे पियानो से जबरन दूर कर सकते हैं। अपने व्यक्तिगत अधिकारों पर अड़ने में कोई हर्ज़ नहीं है, बशर्ते आप उसमें सही-गलत की नैतिकता न जोड़ें। *शैतान, गन्दा, बुरा* ऐसे शब्दों का प्रयोग ही नुकसान करता है।

नन्हें हथौड़ेबाज़ की ओर लौटते हैं। ज़ाहिर है उसे कीलें ठोकने के लिए पियानो की जगह लकड़ी की पट्टी चाहिए। हरेक बच्चे को वे औज़ार पाने और इस्तेमाल करने का अधिकार है, जो उसे स्वयं को अभिव्यक्त करने का मौका देते हैं। ये औज़ार उसके अपने भी होने चाहिए। पर यह ध्यान रखिएगा कि वे उसकी कीमत पैसों में नहीं आकेंगे।

एक समस्यात्मक बच्चे द्वारा की गई तोड़-फोड़ और एक साधारण बच्चे की तोड़-फोड़ में फर्क होता है। सामान्य बच्चे नफरत या चिन्ता से प्रेरित हो तोड़-फोड़ नहीं करते। उनकी काल्पनिक रचनात्मकता के दौरान जो तोड़-फोड़ होती है, वह विद्वेष से नहीं उपजती।

वास्तविक विध्वंस घृणा का रूप है। इसका सांकेतिक अर्थ है कत्ल करना। यह

केवल समस्यात्मक बच्चों में ही नज़र नहीं आता। बल्कि युद्ध के दौरान जिन लोगों के घरों पर कब्ज़े किए गए हों वे जानते हैं कि सैनिक बच्चों से ज़्यादा विनाश करते हैं। यह स्वाभाविक है, क्योंकि उनका काम ही विध्वंस है। रचना जीवन के समान है और विनाश मृत्यु के। विनाशकारी समस्यात्मक बच्चा जीवन-विरोधी होता है।

आशंकित बच्चों की विनाशकता के कई कारण हो सकते हैं। उनमें से एक है - भाई या बहन के प्रति जलन। क्योंकि बच्चा मानता है कि उसके भाई या बहन को ज़्यादा प्यार मिलता है। दूसरा कारण सीमित करने वाली सत्ता के विरुद्ध विद्रोह भी हो सकता है और यह भी हो सकता है कि बच्चा उस वस्तु के अन्दर क्या है, यह जानने में उत्सुक हो।

हमारा सरोकार तोड़ी गई वस्तु से न होकर उस दबी हुई नफरत से होना चाहिए जो तोड़-फोड़ के कृत्य से अभिव्यक्त की गई है। कुछ परिस्थितियों में यही नफरत बच्चे को दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में मज़ा लेने वाला इन्सान बना डालती है।

यह सवाल महत्वपूर्ण है। इसका ताल्लुक हमारे समाज की बीमारी से है, जहाँ बालवाड़ी से कब्र तक घृणा पनपती है। सच, दुनिया में काफी प्रेम भी है। अगर वह न होता तो मानवता खत्म हो जाती। हरेक माँ-बाप, हरेक शिक्षक को अपने अन्दर दबे प्रेम की तलाश करनी चाहिए।

झूठ

अगर आपका बच्चा झूठ बोलता है तो या तो वह आपसे डरता है या फिर आपकी नकल कर रहा है। जो माँ-बाप झूठ बोलते हैं उनके बच्चे ज़रूर झूठ बोलेंगे। अगर आप अपने बच्चे से सच्चाई की अपेक्षा करते हैं, तो उससे झूठ न बोलें। इस वक्तव्य में नैतिकता का उपदेश नहीं है, क्योंकि हम सब कभी न कभी झूठ बोलते हैं। कभी-कभार हमारा झूठ दूसरों की भावना को ठेस न पहुँचाने के लिए होता है। जब हमें कोई अहंकारी या दम्भी कहे तो भी हम अपने बचाव में झूठ बोलते हैं। "माँ का सिर दुख रहा है, चुप रहो।" कहने के बदले शायद ज़ोर से यह कहना बेहतर है कि "यह शोरगुल अब बिल्कुल बन्द करो।" यह आप केवल तब कह सकते हैं, जब बच्चा आपसे थर्राता न हो।

कई बार माता-पिता अपने सम्मान की सुरक्षा में झूठ बोलते हैं। "पापा, तुम छह लोगों से एक साथ लड़ सकते हो, है न?" इस सवाल का जवाब देने में साहस की ज़रूरत होती है, "ना, बेटा, मेरी तोंद और शिथिल शरीर से, अब मैं एक अकेले बौने तक से नहीं लड़ सकता।"

कितने पिता अपने बच्चों से यह कह सकते हैं कि उन्हें बिजली कड़कने से या पुलिस वाले से डर लगता है? किसी का जिगर इतना बड़ा होगा कि वह कह सके कि स्कूल में उसके साथी उसे 'रोंदू' कहते थे।

पारिवारिक झूठ के दो मकसद होते हैं। पहला तो बच्चे के आचरण को नियमित रखना और दूसरा बच्चे को माता-पिता की श्रेष्ठता से प्रभावित करना। कितने पिता या शिक्षक बच्चे के इन प्रश्नों का ईमानदार जवाब देंगेः *क्या तुम कभी नशे में धुत्त हुए थे? तुमने कभी गाली दी?* बच्चों के प्रति यह भय ही वयस्कों को दोगला बनाता है।

बचपन में मैं अपने पिता को इस बात के लिए माफ नहीं कर पाया कि वे एक जंगली साँड से बचने के लिए एक दीवार फाँदकर भागे थे। बच्चे अपनी कल्पना में हमें हीरो बना डालते हैं और हम उस छवि को जीने की कोशिश में लगे रहते हैं। पर एक न एक दिन हम पकड़े जाते हैं। बच्चा एक दिन साफ-साफ यह देख पाता है कि उसके माता-पिता और शिक्षकों ने उससे झूठ बोला है, उसे छला है।

शायद हरेक युवा-जीवन में एक वह समय आता है जब माता-पिता की पुरातनपंथी होने के नाम पर खूब आलोचना की जाती है। यह समय तब आता है जब बच्चा माँ-बाप के असली रूप को पहचानने लगता है। यह तिरस्कार दरअसल बच्चे के काल्पनिक आदर्श माता-पिता की छवि टूटने से उपजता है। सपनों में बसी माँ-बाप की छवि और वास्तविक माँ-पिता में भारी अन्तर होता है। बाद में बच्चा फिर से संवेदनशीलता और समझ के साथ माता-पिता की ओर लौटता है। तब उसके मन में उन्हें लेकर कोई भ्रम नहीं होते। पर इस गलतफहमी से बचा जा सकता है अगर माता-पिता बच्चों को पहले से ही अपना सच बता दें।

आज तक लिखी गई सभी आत्मकथाएँ झूठ से भरी पड़ी हैं। हम इसलिए झूठ बोलते हैं क्योंकि हमें शुरू से नैतिकता के न पहुँच सकने वाले मानदण्डों के अनुसार जीने की बात सिखाई जाती है। हमारा प्रारम्भिक प्रशिक्षण हमें ताउम्र कमियों को छुपाने पर बाध्य करता है।

जो वयस्क बच्चों से झूठ बोलता है, फिर चाहे वह अप्रत्यक्ष झूठ ही क्यों न हो, उसमें बच्चों की मानसिकता की समझ नहीं होती। यही कारण है कि हमारी शिक्षा प्रणाली झूठ से पटी पड़ी है। हमारे स्कूल यह झूठ परोसते हैं कि आज्ञाकारिता और परिश्रम गुण हैं और इतिहास और भाषा शिक्षा है।

मेरे छात्र-छात्राओं में एक भी पक्का या आदतन झूठ बोलने वाला नहीं है। जब वे पहले-पहल समरहिल आते हैं तो वे झूठ का सहारा लेते हैं क्योंकि सच्चाई बयान करने से वे डरते हैं। जब उन्हें पता चलता है कि स्कूल में कोई थानेदारी नहीं होती तो झूठ की ज़रूरत नहीं रहती। बच्चों के झूठ डर से उपजते हैं। जब

भय गायब हो तो झूठ भी कमतर हो जाता है। मैं यह नहीं कहता कि झूठ पूरी तरह से गायब हो जाता है। कोई बच्चा आकर यह तो बता देगा कि उससे खिड़की का काँच टूट गया है पर यह नहीं कि उसने फ्रिज से खाना चुराया था या कोई औज़ार पार कर लिया था। झूठ के पूरी तरह से गायब होने की अपेक्षा करना असम्भव की अपेक्षा करना होगा।

बच्चों के काल्पनिक जगत के झूठ आज़ादी से दूर नहीं हो सकते। अक़्सर माता-पिता इस छोटी-सी राई का पहाड़ बना डालते हैं। जब नन्हे जिमी ने आकर मुझे कहा कि डैडी ने उसके लिए एक सचमुच की रोल्स बेंटली गाड़ी भेजी थी तो मैंने जवाब दिया, "मुझे पता है। मैंने दरवाज़े पर गाड़ी खड़ी देखी थी। क्या शानदार गाड़ी है।" इस पर वह बोला, "चलो, हटो! मैं तो झूठमूठ ही कह रहा था।"

लोगों को यह बात विरोधाभास से भरी और तर्कहीन लग सकती है कि मैं झूठ बोलने और बेईमान होने में अन्तर करता हूँ। आप ईमानदार होकर भी झूठ बोल सकते हैं। मतलब यह कि जीवन की तमाम बड़ी बातों में ईमानदारी बरतने के बावजूद आप चन्द छोटी-छोटी बेईमानियाँ कर सकते हैं। हमारे कई झूठ दूसरों को ठेस न पहुँचाने के कारण बोले जाते हैं। सत्यवादिता अगर मुझे किसी को यह लिखने पर बाध्य करे कि "महोदय, आपका पत्र इतना लम्बा और उबाऊ था कि मैंने उसे पढ़ने तक की ज़हमत नहीं उठाई है" तो यह एक बुराई ही होगी। या आपको किसी भावी संगीतकार को यह कहने पर बाध्य करे कि "धन्यवाद, पर तुमने इस राग का खून कर दिया।" वयस्कों के कई झूठ दूसरों का हित ध्यान में रखकर बोले जाते हैं पर बच्चों के झूठ स्थानीय व व्यक्तिगत होते हैं। किसी बच्चे को जीवन भर के लिए झूठ बोलने वाला बनाना हो तो आप यह माँग करें कि वह हमेशा सच बोले और सच के सिवा कुछ न बोले।

हमेशा ईमानदार बने रहना कठिन ज़रूर है पर जब कोई यह तय कर ले कि मैं बच्चे से या उसके सामने झूठ नहीं बोलूँगा तो इसे निभाना इतना कठिन भी नहीं होता। केवल एक ही स्थिति में झूठ की अनुमति हो सकती है - जब सच किसी की जान खतरे में डालता हो। जैसे किसी गम्भीर रूप से बीमार बच्चे को यह न बताया जाए कि उसकी माँ की मृत्यु हो चुकी है।

हमारा अधिकांश मशीनी शिष्टाचार जीवन्त झूठ होता है। हम 'धन्यवाद' कहते हैं, पर मन में वह भाव नहीं होता। हम उन लोगों को भी नमस्कार करते हैं जिनके प्रति हमारे मन में कोई श्रद्धा नहीं होती।

झूठ बोलना एक छोटी कमज़ोरी है पर झूठ को जीना जीवन की बड़ी आपदा है। जो माता-पिता झूठ को जीते हैं वे बेहद खतरनाक होते हैं। एक सोलह साल के चोरी करने वाले लड़के के पिता ने कहा, "मैंने अपने बेटे से एक ही चीज़ चाही

कि वह हमेशा-हमेशा सच बोले।" वह व्यक्ति अपनी पत्नी से नफरत करता था और पत्नी से बदले में नफरत पाता था। यह बात *डार्लिंग* और *प्रियतम* जैसे शब्दों के पर्दे में छुपाई जाती थी। बेटा यह ताड़ चुका था कि घर में कुछ न कुछ गड़बड़ है। ऐसे व्यक्ति का बेटा बड़ा होकर आदतन झूठा होने के अलावा क्या हो सकता है जब उसका पारिवारिक जीवन एक जीता जागता झूठ हो। बच्चे को घर में कभी प्यार न मिला था। इसी कमी को पूरा करने का तरीका उसने चोरी में तलाशा था।

कई बार बच्चे माता-पिता के झूठ की नकल में भी झूठ बोलते हैं। जिस घर में माता-पिता के बीच प्रेम न हो वहाँ बच्चे में ईमानदारी नहीं पनप सकती। पति-पत्नी के बीच का ढोंग बच्चे को छलता नहीं है। वह ऐसे में अवास्तविक कल्पना जगत की ओर धकेला जाता है। क्योंकि बच्चे कई बातें जानते न भी हों, तो भी *महसूस* ज़रूर करते हैं।

हमारे गिरजे यह झूठ प्रतिपादित करते हैं कि इन्सान पाप के साथ जन्मा है और उसे उद्धार की ज़रूरत है। हमारे कानून यह झूठ फैलाते हैं कि मानवता को सज़ा रूपी घृणा से सुधारा जा सकता है। डॉक्टर व दवा कम्पनियाँ यह झूठ प्रचारित करती हैं कि स्वास्थ्य अजैविक दवाएँ चूसने पर निर्भर करता है।

जिस समाज में झूठ का बोलबाला हो वहाँ माता-पिता के लिए ईमानदार बने रहना मुश्किल है। वो बच्चे से बोलते हैं, "यदि तुम हस्तमैथुन करते हो तो पागल हो जाओगे।" माता-पिता द्वारा बोले गए झूठ में इस बात की अनभिज्ञता भी है कि बच्चे को इससे कितना नुकसान होता है।

मेरा मानना है कि माता-पिता को झूठ बोलने की ज़रूरत नहीं है। बल्कि मैं तो कहना चाहूँगा कि उन्हें *कतई* झूठ नहीं बोलना चाहिए। कई घर बिना झूठ के सहारे भी चलते हैं जहाँ चमकदार आँखों वाले ईमानदार बच्चे फल-फूल रहे हैं। वहाँ माँ-बाप बच्चे के हरेक सवाल-बच्चे कैसे पैदा होते हैं से लेकर माँ की असली उम्र क्या है तक - का ईमानदार जवाब दे सकते हैं।

पिछले चालीस सालों में मैंने किसी भी छात्र से जानबूझकर झूठ नहीं बोला है। इसकी इच्छा भी नहीं हुई है। पर यह बात बिल्कुल सच नहीं है क्योंकि एक सत्र में मैंने एक भारी झूठ बोला था। एक लड़की ने, जिसका दुखद इतिहास मैं जानता था, एक पाउण्ड चुराया। चोरी सम्बंधी समिति के तीन लड़कों ने उसे ऑइसक्रीम और सिगरेट पर पैसे खर्चते देखा और उससे पूछताछ की। उसने उन्हें कहा, "मुझे नील ने पैसे दिए थे।" वे उसे मेरे पास लाए और पूछा, "क्या तुमने इसको एक पाउण्ड दिया था?" मैं स्थिति भाँप गया। मैंने बेफिक्री से कहा, "हाँ मैंने दिए थे।" अगर उस वक़्त मैं उस झूठ का पर्दाफाश करता तो उस लड़की का मुझ पर से विश्वास ही उठ जाता। उसकी चोरी प्यार की चोरी का प्रतीक था। उसे

पकड़वाना उसे और पीछे धकेलना होता। मुझे सिद्ध करना था कि मैं पूरी तरह उसके पक्ष में हूँ। मुझे पता है कि अगर उसका परिवार ईमानदार और मुक्त होता तो यह स्थिति ही पैदा नहीं होती। मैंने एक उद्देश्य से, *उपचार* के उद्देश्य से झूठ ज़रूर बोला था। पर किसी दूसरी स्थिति में मैं झूठ बोलने की जुर्रत तक नहीं करता।

जब बच्चे आज़ाद होते हैं तो उन्हें ज़्यादा झूठ बोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती। हमारे गाँव का थानेदार एक बच्चे को यह कहते सुन चौंक गया, ''नील, मुझसे बाहरी बैठक की खिड़की का काँच टूट गया है।'' बच्चे अधिकतर झूठ खुद को बचाने के लिए बोलते हैं। जिस घर में भय पलता है वहाँ झूठ भी पनपता है। डर को निकाल फेंको तो झूठ भी मुरझा जाता है।

फिर भी एक तरह का झूठ है जो डर के कारण नहीं बोला जाता। यह है काल्पनिक जगत का झूठ - माँ, मैंने गाय जितना बड़ा कुत्ता देखा, उसी स्तर का झूठ है जैसा झूठ शौकिया मच्छीमार उस मछली के बारे में हाँकते हैं जो बंसी छुड़ाकर चली गई। दोनों उदाहरणों में बोला गया झूठ बोलने वाले के व्यक्तित्व को विस्तार देता है। इनको लेकर हमारी प्रतिक्रिया खेल में शरीक होने की ही होनी चाहिए। इसलिए जब बिली आकर कहता है कि उसके पिता के पास बड़ी सी रोल्स रॉयस है, तो मैं कहता हूँ, ''मुझे पता है। खूबसूरत है ना? क्या तुम भी उसे चला सकते हो?'' इस प्रकार के रूमानी झूठ शायद उन बच्चों को ज़रूरी नहीं लगते जो बचपन से स्वनिर्देशित होते हों। शायद उन्हें झूठी कहानियाँ गढ़कर अपनी हीनभावना से जूझने की ज़रूरत नहीं पड़ती हो।

नाजायज़ औलाद यह नहीं जानती कि उसके माता-पिता विवाहित नहीं थे, फिर भी वह यह महसूस ज़रूर करती है कि वह दूसरों से भिन्न हैं। पर अगर वह बच्चा सच्चाई जानता और उन लोगों के बीच पलता-बढ़ता जिन्हें उसके जन्म की सच्चाई से कोई फर्क नहीं पड़ता होता, तो स्थिति भिन्न होती। क्योंकि अहसास, ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है। अज्ञानी माता-पिता अपने झूठ और अपनी वर्जनाओं के कारण बच्चों को बेहद नुकसान पहुँचाते हैं। यह नुकसान दिमाग को नहीं दिल को पहुँचता है। *पर मनोरोग भी दिमाग से नहीं दिल से जन्मते हैं।*

जो माता-पिता बच्चे को गोद लेते हैं उन्हें बच्चे को यह सच्चाई बतानी चाहिए। जो सौतेली माँ बच्चे को यह विश्वास दिलाना चाहे कि बच्चा उसका ही बेटा या बेटी है, उसे बाद में परेशानी हो सकती है। किशोरावस्था में जब बच्चा अचानक छुपी सच्चाई से रूबरू होता है तो बाद के जीवन में उसे कई तरह के धक्के लगते हैं। बच्चों को द्वेषपूर्ण सच्चाई बताने को आतुर लोग तो हमेशा ही मौजूद होते हैं।

ऐसे द्वेषी नाक-घुसेड़ने वालों से बच्चों की रक्षा करने के लिए यह तय कर लें कि

कभी खुद के या दूसरों के बच्चे से झूठ नहीं बोलेंगे। बच्चे के लिए हमारे सामने यही एक रास्ता है। अगर पिता मुजरिम रह चुके हों तो उसे बेटे को यह बताना चाहिए। यदि माँ दारू की दुकान में काम करने वाली महिला हो तो बेटी को पता होना चाहिए।

ज़ाहिर है कि उस वक्त सच्चाई हमारे लिए परेशानी का कारण बनती है जब कोई पूछता है, "माँ, हम सब भाई-बहनों में तुम सबसे ज़्यादा प्यार किसे करती हो?" अमूमन माता-पिता एक बेहद मीठा पर झूठा जवाब देते हैं "मैं तुम सबको बराबर प्यार करती हूँ।" सवाल का जवाब क्या होना चाहिए मैं नहीं जानता। शायद यहाँ झूठ बोलने का औचित्य भी है। क्योंकि अगर उससे जवाब में कहा जाए, "सबसे ज़्यादा प्यारा मुझे टॉमी है," तो उसके परिणाम घातक हो सकते हैं।

जो पालक सेक्स के बारे में इमानदार हों वो किसी और चीज़ में बेइमान नहीं हो सकते। पुलिस वाले शैतान बच्चों को सज़ा देते हैं, कम उम्र में सिगरेट पीने से बच्चे की बढ़त रुक जाती है, माँ को जब माहवारी की तकलीफ हो तो सिर दर्द का बहाना करना, ऐसे ही लाखों-लाख झूठ घर-घर में बोले जाते हैं।

हाल में समरहिल की एक शिक्षिका लंदन की बालवाड़ी में पढ़ाने के लिए गईं। एक रोज़ एक नन्हीं बच्ची ने जानना चाहा कि बच्चे कहाँ से आते हैं। उसके स्पष्टीकरण के अगले दिन आधा दर्ज़न नाराज़ माताएँ स्कूल पहुँचीं। उन्होंने शिक्षिका को 'गन्दी कुतिया' जैसी गालियाँ दीं और उसे हटाने की माँग की।

जो बच्चा आज़ादी के वातावरण में पला-बढ़ा है वह जानबूझकर झूठ नहीं बोलता, क्योंकि इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती। सज़ा के डर से खुद को बचाने की ज़रूरत उसे नहीं पड़ती। पर फिर भी वह कल्पना की तरंग में झूठ बोल सकता है। वह ऐसी घटनाओं के किस्से गढ़ सकता है, जो कभी घटी ही न हों।

जहाँ तक डर से उपजे झूठ की बात है, मैं एक ऐसी नई पीढ़ी को देख रहा हूँ जिसे किसी चीज़ को छुपाने की दरकार न होगी। यह पीढ़ी हर बात में स्पष्टवादी और ईमानदार होगी। उसे अपनी शब्दावली में 'झूठ' शब्द की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। झूठ बोलना हमेशा कायरता की निशानी होती है। और कायरता अज्ञान से उपजती है।

ज़िम्मेदारी

कई घरों में बच्चे के अहम का इसलिए दमन होता है क्योंकि माता-पिता हमेशा ही उसे शिशु मानते हैं। मैं चौदह साल की ऐसी लड़कियों को जानता हूँ जिनके माँ-बाप उन पर आग जलाने तक का भरोसा नहीं करते। माता-पिता अक़्सर अपने

नेक इरादों के चलते बच्चों से ज़िम्मेदारियाँ दूर रखते हैं।

"बेटे स्वेटर साथ ले लेना, लगता है बारिश होगी।"

"रेल-लाइन के पास न जाना।"

"मुँह धो लिया है न?"

एक बार समरहिल में एक नई छात्रा आई। उसकी माँ ने मुझे बताया कि उसकी बड़ी गन्दी आदतें हैं। उसे नहाने के लिए दिन में दस बार कहना पड़ता है।

पर जिस दिन से बच्ची समरहिल में आई वह हर सुबह ठण्डे पानी से नहाती और सप्ताह में दो बार गर्म पानी से। उसके मुँह और हाथ हमेशा साफ रहते। सम्भव है घर में गन्दे रहने की शिकायत उसकी माँ की कल्पना हो। यह भी सम्भव है कि घर में उसके साथ होने वाले शिशु जैसे व्यवहार के विरोध में वह गन्दी रहती हो।

बच्चों को असंख्य ज़िम्मेदारियों की अनुमति दी जानी चाहिए। मॉण्टेसरी पद्धति से प्रशिक्षित बच्चे गरम सूप के बड़े-बड़े डोंगे ले जाते हैं। एक सात वर्षीय बच्चा हर तरह के औज़ार का उपयोग कर लेता है। छेनी, कुल्हाड़ी, आरा, चक्कू सभी कुछ। मैं ही अपनी उँगलियाँ उनसे ज़्यादा बार काटता हूँ।

परन्तु दायित्व और ज़िम्मेदारी को एक मानने की भूल भी नहीं करनी चाहिए। दायित्व भाव, अगर सीख सके तो बच्चा अपनी ज़िन्दगी में बाद में सीख जाता है। *दायित्व* के साथ तमाम खतरनाक स्थितियों का विचार उठता है। मैं हमेशा उन औरतों की कल्पना करने लगता हूँ जो अपने वृद्ध माता-पिता की देखभाल के दायित्व के बोझ के कारण जीवन और प्रेम से वंचित रह गईं। मैं उन दम्पतियों के बारे में सोचता हूँ जो एक-दूसरे से प्रेम करना बन्द कर चुके हैं पर अनिच्छा और कष्ट के बावजूद दायित्व बोध के चलते साथ-साथ जिए जा रहे हैं। छात्रावासों और ग्रीष्म शिविरों में रहने वाले कई बच्चे घर पर पत्र लिखना अपना दायित्व मानते हैं। इस दायित्व से उन्हें खीझ आती है खासकर जब उन्हें हर इतवार की दोपहर पत्र लिखने बैठना पड़े।

यह एक भ्रांति है कि ज़िम्मेदारी उम्र के हिसाब से होनी चाहिए। इसी भ्रांति के चलते हम नौजवानों का जीवन उन कमज़ोर बूढ़ों को सौंप देते हैं जिन्हें हम राजनेता कहते हैं। उन्हें अगर निश्चल नेता कहें तो शायद बेहतर हो। यह भ्रांति भी प्रचलित है कि परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने से छोटे का संरक्षक और मार्गदर्शक होता है। माता-पिता यह समझते ही नहीं कि उनका छह वर्षीय बच्चा ऐसे वाक्यों का तर्क नहीं समझ सकेगा, "तुम नन्हीं से बड़ी हो न। अब तुम्हें अपनी उम्र में इतना तो समझना ही चाहिए कि उसे सड़क पर दौड़ने नहीं दिया जा सकता है।"

जिस ज़िम्मेदारी का सामना करने के लिए बच्चा तैयार न हो उसे निभाने को बच्चे से नहीं कहना चाहिए। न ही उस पर ऐसे निर्णय डालने चाहिए जिन्हें लेने लायक वह न हो। हमें हमेशा सामान्य-बुद्धि काम में लेनी चाहिए।

हम समरहिल में अपने पाँच साल के छात्र-छात्राओं से यह नहीं पूछते हैं कि उन्हें अग्निशामकों की ज़रूरत है या नहीं। हम एक साल के बच्चे को यह तय नहीं करने देते कि बुखार के बावजूद वह बाहर जाना चाहता है या नहीं। न ही हम किसी थके-माँदे बच्चे से पूछते हैं कि वह अब सोना चाहता है या नहीं। न ही कोई बीमार बच्चे से चिकित्सक द्वारा बताई गई दवाएँ खिलाने की अनुमति हम चाहते हैं।

ज़रूरत पड़ने पर बच्चे पर सत्ता का उपयोग - आवश्यक सत्ता का उपयोग - इस विचार के विरुद्ध नहीं जाता कि बच्चे पर जितनी उसकी उम्र में वह ले सकता हो, उतनी ज़िम्मेदारियाँ डालनी चाहिए। बच्चे को ज़िम्मेदारियाँ सौंपते समय माता-पिता को अपनी अन्तरात्मा से सलाह करनी चाहिए। उन्हें पहले खुद को जाँचना चाहिए। उदाहरण के बतौर जो माता-पिता बच्चों को खुद अपने कपड़े नहीं चुनने देते, वे अमूमन इस डर से त्रस्त होते हैं, कि कहीं वह माता-पिता की सामाजिक स्थिति पर बट्टा न लगा दे।

जो माता-पिता अपने बच्चों की पढ़ने की किताबों, सिनेमा देखने या मित्रों को सेंसर करते हैं वे अपने विचार अपने बच्चों पर लादते हैं। वे अमूमन खुद को यह तर्क दे लेते हैं कि बच्चे के लिए क्या अच्छा या बुरा है यह वे ही तय कर सकते हैं। जबकि दरअसल सच्चाई अक़्सर यह होती है कि उनके मन में अपनी सत्ता का उपयोग करने की लालसा होती है।

जहाँ तक सम्भव हो माता-पिता को बच्चे पर ज़िम्मेदारियाँ डालनी चाहिए। हाँ, ज़िम्मेदारियाँ सौंपते समय उसकी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखना चाहिए। यही एक मात्र तरीका है जिससे वे बालक में आत्मविश्वास जगा पाएँगे।

आज्ञा पालन और अनुशासन

एक विधर्मी सवाल अक्सर सिर उठाता हैः किसी बच्चे को आज्ञा क्यों माननी चाहिए? मेरा जवाब हैः इसलिए ताकि वह वयस्कों की सत्ता की लालसा पूरी करे। अन्यथा बच्चा आज्ञा क्यों मानेगा भला।

आप कहेंगे, "अगर बच्चा जूते पहनने की आज्ञा न माने तो उसके पैर गीले हो सकते हैं। अगर वह अपने बाप की डाँट न सुने तो पहाड़ी से नीचे गिर सकता

है।" जी हाँ, ज़रूर। यह बात बिल्कुल सही है कि ज़िन्दगी और मौत के सारे मसलों में बच्चे को आज्ञा पालन करना ही चाहिए। पर बच्चे को हम कितनी बार जीवन-मरण के मसले पर कहा न मानने की सज़ा देते हैं? शायद ही कभी। उस वक्त हम उसे गले से लगाते हैं। कहते हैं, "मेरी आँख का तारा! भगवान का लाख-लाख शुक्र है उसने तुम्हें बचा लिया!" बच्चे को अमूमन सज़ा मिलती है छोटी-छोटी बातों पर।

ऐसा घर भी ठीक से चल सकता है जहाँ आज्ञा पालन की ज़रूरत ही न हो। अगर मैं किसी बच्चे से कहूँ, "चलो किताबें निकालो और अँग्रेज़ी का पाठ पढ़ो" तो सम्भव है वह मना करे क्योंकि अँग्रेज़ी में उसकी रुचि ही न हो। ऐसे में आज्ञा न मानना महज़ उसकी अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति है। ऐसी इच्छाएँ न किसी दूसरे की बाधा बनती हैं और न ही किसी को चोट पहुँचाती हैं। पर अगर मैं कहूँ, "बाग के बीच वाले हिस्से में बीज बोए गए हैं। उस पर कोई दौड़ेगा नहीं।" सभी बच्चे इस आज्ञा का पालन करते हैं। ठीक उसी तरह जैसे डेरिक की यह आज्ञा कि, "मुझसे पूछे बिना कोई मेरी गेंद को हाथ नहीं लगाएगा।" आज्ञा पालन असल में एक दो-तरफा, लेन-देन का रिश्ता है। समरहिल में यदाकदा स्कूल की आमसभा में बनाए गए नियम तोड़े भी जाते हैं। ऐसे में बच्चे खुद ही उचित कार्यवाही करते हैं। फिर भी समरहिल सामान्यतः बिना सत्ता और आज्ञापालन के बखूबी चलता है। हरेक बच्चा वह जो चाहे करने को स्वतंत्र है, *बशर्ते वह दूसरों की आज़ादी में बाधा न डालता हो।* और यह ऐसा लक्ष्य है जो किसी भी समुदाय में हासिल किया जा सकता है।

स्व-नियंत्रण के तहत घर में कोई सत्ता नहीं होती। मतलब वहाँ कोई ऊँची आवाज़ में यह घोषणा नहीं करता, "मैं कह रहा हूँ ना। तुम्हें मेरी बात माननी होगी।" ऐसे व्यवहार में दरअसल सत्ता ही तो होती है। उसे आप चाहें तो सुरक्षा के लिए देखभाल या वयस्क ज़िम्मेदारी का नाम दे सकते हैं। पर ऐसी सत्ता कहीं आज्ञा पालन की माँग करती है तो कहीं आज्ञा का पालन भी करती है। इसलिए मैं अपनी बेटी से कह सकता हूँ, "दीवानखाने में पानी और मिट्टी तुम नहीं ला सकतीं" और मेरा यह कहना उसके यह कहने जैसा है, "पापा, मेरे कमरे से निकलो। मुझे अभी तुम्हारी मौजूदगी नहीं चाहिए।" और उसकी इस इच्छा का पालन मैं बिना किसी प्रतिवाद के करता हूँ।

माता-पिता की यह इच्छा भी सज़ा जैसी ही है कि बच्चे को जितना वह चबा पाए उससे ज़्यादा बड़ा कौर नहीं लेना चाहिए। क्योंकि सच में यह शब्दशः सच है कि बच्चे की आँखें उसके पेट से कहीं बड़ी होती हैं और वह थाली में उतना परोस बैठता है जितना वह खा नहीं सकता है। बच्चे को थाली में रखा सब कुछ खाने पर बाध्य करना गलत है। अच्छे माता-पिता होने का मतलब है कि अपने बच्चे

के साथ तादात्म्य, उसकी मंशाओं को समझना, बिना किसी छुपे मकसद या नाराज़गी के उसकी सीमाओं को पहचानना।

एक माँ ने मुझे पत्र डाला कि वे अपनी बच्ची को आज्ञाकारी बनाना चाहती हैं। इधर मैं उनकी बेटी को सिखा रहा था कि वह *खुद की* आज्ञा का पालन करे। माँ को लगता है कि वह कहा नहीं मानती, पर मुझे वह *हमेशा* आज्ञाकारी लगती है। वह पाँच मिनट पहले मेरे कमरे में कुत्तों और उनके प्रशिक्षण पर बहस करने आई थी। मैंने कहा, ''अभी फूटो। इस वक्त मैं लिखने में व्यस्त हूँ।'' वह बिना एक चूँ के लौट गई।

आज्ञाकारिता एक सामाजिक शिष्टाचार है। वयस्कों को बच्चों से आज्ञाकारिता पाने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। यह भीतर से उपजना चाहिए, बाहर से नहीं लादना चाहिए।

अनुशासन किसी लक्ष्य तक पहुँचने का माध्यम है। सेना का अनुशासन लड़ाई में कुशलता के लिए होता है। ऐसा अनुशासन व्यक्ति को किसी मकसद के अधीन बना डालता है। अनुशासित देशों में लोगों की जान की कोई कीमत नहीं होती।

पर एक दूसरी तरह का अनुशासन भी होता है। एक वाद्यवृन्द में साज़ बजाने वाले संगीत निर्देशक की आज्ञा का पालन करते हैं क्योंकि उनकी भी एक उम्दा प्रदर्शन की उतनी ही इच्छा होती है जितनी उनके निर्देशक की। पर फौज का जवान सावधान होकर जब सलाम बजाता है तो वह सेना की कार्यकुशलता को लेकर चिन्तित नहीं होता। सभी सेनाएँ भय से शासित होती हैं और सैनिक यह जानता है कि अगर वह हुक्म नहीं मानेगा तो उसे सज़ा मिलेगी। अगर शिक्षक अच्छे हों तो स्कूली अनुशासन वाद्यवृन्द के अनुशासन-सा भी हो सकता है। परन्तु ज़्यादातर वह सेना के अनुशासन जैसा ही नज़र आता है। यही बात घर पर भी लागू होती है। एक खुश घर वाद्यवृन्द-सा होता है, उसमें समूह में साझेदारी की भावना होती है। पर दुखी घर सेना के बैरकों जैसा होता है जहाँ नफरत और अनुशासन का राज़ होता है।

अजीब बात यह है कि सहयोगी अनुशासन वाले घर अक्सर सैनिक अनुशासन वाले स्कूलों को स्वीकार लेते हैं। इन स्कूलों में लड़के शिक्षकों से पिटते हैं - वे लड़के भी जो घरों में कभी नहीं पिटे। हमारी दुनिया के परे अगर कोई अधिक पुराना और बुद्धिमान ग्रह हो तो वहाँ का निवासी यह सुनकर धरती के निवासियों को बेवकूफ ही समझेगा कि हमारी प्रारम्भिक शालाओं में बच्चों को जोड़ या वर्तनी की गलतियाँ करने पर पीटा जाता है। जब मानवतावादी माता-पिता पिटाई की वारदातों की शिकायतें ले अदालत पहुँचते हैं, तो ज़्यादातर अदालतें सज़ा देने वाले शिक्षक का ही पक्ष लेती हैं।

माता-पिता कल ही शारीरिक दण्ड बन्द करवा सकते हैं, अगर वे सच में ऐसा चाहें। ज़ाहिर है कि अधिकांश माता-पिता यह चाहते ही नहीं। यह व्यवस्था, दरअसल उन्हें भी रास आती है। इसके चलते ही तो उनके बेटा-बेटी अनुशासित होते हैं। और तो और इससे बच्चों के मन में बसी नफरत भी बड़ी सिफत से शिक्षकों की ओर मुड़ जाती है। शिक्षक माता-पिता के लिए किराए का टट्टू है, जो उनके गन्दे काम करता है। यह व्यवस्था माता-पिता को इसलिए पसन्द आती है क्योंकि उन्हें भी कभी इच्छानुसार जीने और प्यार करने नहीं दिया गया था। उन्हें भी सामूहिक अनुशासन का गुलाम बनाया गया था और वे बेचारे कभी आज़ादी की कल्पना तक न कर पाए थे।

यह सच है कि घर में अनुशासन की ज़रूरत है। सामान्यतः यह ऐसा अनुशासन है जिससे परिवार के हरेक सदस्य की आज़ादी की रक्षा हो सके। उदाहरण के लिए मैं अपनी बेटी ज़ोई को अपने टाइपराइटर से खेलने नहीं देता पर एक खुश परिवार में इस तरह का अनुशासन खुद-ब-खुद आ जाता है। वहाँ का जीवन आपसी लेन-देन पर टिका होता है। माता-पिता और बच्चे दोस्त होते हैं, सहकर्मी होते हैं।

पर दुखी परिवार में अनुशासन का उपयोग घृणा के अस्त्र के रूप में होता है और आज्ञा पालन एक अनुकरणीय आदर्श बन जाता है। वहाँ बच्चे चल-सम्पत्ति जैसे होते हैं, जिनपर माता-पिता का मालिकाना हक हो और जिन्हें हमेशा अपने मालिक के लिए यश कमाना हो। मेरा मानना है कि जो माता-पिता अपने बच्चे की पढ़ाई-लिखाई को लेकर बेहद व्यग्र रहते हैं, वे स्वयं को ज़िन्दगी में असफल मानने वाले होते हैं। उन्हें लगता है कि शिक्षा के अभाव के कारण वे पीछे रह गए हैं।

जो माता-पिता खुद को अस्वीकार करते हैं वे ही कठोर अनुशासन में विश्वास करते हैं। जो पिता स्वयं भद्दे मज़ाक करता है या किस्से सुनाता है, वही अपनी बेटी को टट्टी या पाद की कहानी सुनाने पर डपटता है। जो माँ खुद झूठ बोलती है वह अपने बेटे को झूठ बोलने के लिए पीटती है। मैंने मुँह में पाइप ठूँसे पिता देखे हैं जो अपने बेटे को सिगरेट पीने पर धुनकर रख देते हैं। मैंने एक पिता को अपने बारह वर्षीय बेटे को यह कहकर ठोकते सुना, ''गाली बकता है? हरामी! मैं तेरी गाली-वाली भुला दूँगा।'' जब मैंने उन्हें टोका तो उनका जवाब था, ''मेरी बात और है। मैं गाली दूँ तो दूँ, पर वह तो अभी बच्चा है।''

घर में घोर अनुशासन खुद से नफरत का परिचायक है। जो वयस्क ताउम्र श्रेष्ठता पाने की कोशिश करते रहे पर उसे पाने में असफल रहे, वे ही बाद में अपने बच्चों के माध्यम से उसे तलाशने में जुटते हैं। और यह महज़ इसलिए, क्योंकि वे प्यार करना ही नहीं जानते। महज़ इसलिए, क्योंकि वे आनन्द से उतना ही डरते हैं मानो वह शैतान हो। दरअसल शैतान *ईजाद* भी इसलिए किया गया होगा क्योंकि

शैतान वह है जिसके पास सबसे मीठा गाना है, जीवन, आनन्द और सेक्स से प्यार करता है। उत्कृष्टता का लक्ष्य है शैतान पर विजय पाना। और इसी लक्ष्य से उपजता है रहस्यवाद, अतार्किकता, धर्म और तपस्या। शरीर को सूली पर चढ़ाना भी इसी की देन है। और यह पिटाई, सम्भोग-त्याग और नपुंसकता का रूप धारण कर लेता है।

बृहद रूप में घर के कठोर अनुशासन का लक्ष्य है बन्ध्याकरण, जीवन का बन्ध्याकरण। कोई भी आज्ञा पालक बच्चा एक स्वतंत्र आदमी या औरत नहीं बन सकता। हस्तमैथुन के लिए दण्डित बच्चे कभी पूर्ण रूप से मैथुन में सक्षम नहीं हो सकते।

माता-पिता चाहते हैं कि बच्चे वह बनें जो वे खुद नहीं बन पाए। केवल इतना ही नहीं वे यह भी नहीं चाहते कि बच्चों को उनके जीवन में उतना आनन्द मिल सके जितना उन्हें खुद नहीं मिल पाया था। जो माता-पिता स्वयं जीवन्त नहीं हैं वे अपने बच्चों को भला क्यों जीवन्त रहने देंगे। उनके मन में भविष्य की दुश्चिन्ताएँ बसती हैं। वे सोचते हैं कि अनुशासन बच्चों को बचा लेगा। स्वयं में आस्था की यही कमी उसे एक ईश्वर में विश्वास करना भी सिखाती है। ऐसे ईश्वर में जो अच्छाई और सत्य को *ज़बरदस्ती* लादता है। दरअसल अनुशासन धर्म की ही एक शाखा मात्र है।

समरहिल व अन्य स्कूलों में अन्तर यही है कि समरहिल में हम बच्चे के व्यक्तित्व में आस्था रखते हैं। हम मानते हैं कि अगर टॉमी को डॉक्टर बनना है तो वह स्वेच्छा से प्रवेश परीक्षाएँ देगा। अनुशासित स्कूल यह मानकर चलते हैं कि अगर उसे ठोका-पीटा न जाए, उस पर तयशुदा घण्टों तक पढ़ने का दबाव न बनाए रखा जाए, तो फिर टॉमी कभी भी डॉक्टर नहीं बन सकता है।

मैं यह स्वीकारता हूँ कि सामान्यतः स्कूल से अनुशासन हटाना, घर से उसे हटाने से कहीं आसान है। समरहिल में अगर कोई सात साल का बच्चा सबकी नाक में दम करे तो पूरा समुदाय उसकी आलोचना करता है। और क्योंकि सबको ही दूसरों का अनुमोदन चाहिए होता है इसलिए बच्चा अपने व्यवहार को सुधारना सीखता है। अनुशासन की ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

घर में जहाँ तमाम भावनात्मक घटक व दूसरी परिस्थितियाँ भी जुड़ी होती हैं, वहाँ चीज़ें इतनी आसान नहीं होतीं। एक गृहणी जो खाना बनाने में उलझी हो, वह अपने चिड़चिड़े बच्चे की सामाजिक निन्दा नहीं कर सकती और न ही थका-माँदा घर लौटा पिता अपनी रौंदी हुई क्यारी को देख अपना पारा सम्भाल सकता है। मेरा कहना सिर्फ़ इतना है कि *जिस घर में शुरू से बच्चे स्व-नियंत्रित होते हैं, वहाँ अनुशासन की ज़रूरत पैदा ही नहीं होती है।*

कुछ साल पहले मैं अपने मित्र विलहैल्म राईख के मेन स्थित घर गया था। उसका बेटा पीटर उस वक़्त तीन साल का था। घर के ठीक सामने एक गहरा तालाब था। विलहैल्म और उसकी पत्नी ने बच्चे को समझा रखा था कि उसे तालाब की ओर नहीं जाना है। पीटर का अपने माता-पिता के प्रति पूरा विश्वास था क्योंकि उसके पालन-पोषण में घृणा का स्थान था ही नहीं। वह कभी पानी की ओर नहीं गया। उसके माता-पिता भी *जानते थे* कि उन्हें बच्चे को लेकर बहुत चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। डर और सत्ता में विश्वास करने वाले माता-पिता तालाब के किनारे अगर रहते तो उनका जीवन ऐसा होता मानो सिर पर तलवार लटकी हो। बच्चों को माँ-बाप से इतना झूठ सुनना पड़ता है। जब उन्हें कहा जाता है कि गहरा पानी उनके लिए खतरनाक हो सकता है, वे उसका विश्वास तक नहीं करते। उनके मन में एक विद्रोह जनित इच्छा जागती है कि पानी की ओर ज़रूर जाया जाए।

अनुशासित बच्चा अपनी घृणा जताने के लिए माँ-बाप को परेशान करता है। बच्चों की बदतमीज़ी अक्सर उसके साथ किए गए दुर्व्यवहार का सबूत होती है। अगर घर में प्यार हो तो एक औसत बच्चा अपने माता-पिता के अनुभवों और ज्ञान पर कान देता है। परन्तु अगर घर में नफरत हो तो वह कुछ नहीं स्वीकारता। या सभी बातों को नकारात्मक रूप में लेता है। ऐसा बच्चा तोड़-फोड़ करने वाला ढीठ और बेईमान होता है।

बच्चे बुद्धिमान होते हैं। वे प्रेम के बदले प्रेम देते हैं और घृणा के बदले घृणा। वे समूह का अनुशासन आसानी से स्वीकार लेते हैं। मेरा मानना है कि बुराई मानवीय स्वभाव का मूलभूत हिस्सा नहीं है। ठीक उसी तरह जैसे वह किसी खरगोश या शेर के स्वभाव का हिस्सा नहीं होती। पर अगर किसी अच्छे कुत्ते को लगातार बाँधे रखो तो वह खूँखार बन जाता है। इसी तरह अगर किसी अच्छे और मिलनसार बच्चे को अनुशासित करो तो वह बुरा, कपटी और घृणा करने वाला बन जाता है। दुख की बात यह है कि अधिकतर लोग यह मानते हैं कि कोई खराब बच्चा खराब बनना चाहता है। उनका विश्वास यह होता है कि भगवान या मोटे डण्डे की मदद से बच्चे को अच्छा और सही रास्ता चुनने की ताकत मिल सकेगी। और अगर वह इस ताकत के इस्तेमाल से इन्कार करता है तो वे यह सुनिश्चित करेंगे कि बच्चा अपने दुराग्रह की सज़ा भुगते।

इस तरह से देखें तो पुराने स्कूल की भावना अनुशासन का प्रतीक है। एक बड़े लड़कों के स्कूल के प्रधानाचार्य से कुछ समय पहले सवाल किया गया था कि उनके स्कूल के बच्चे कैसे हैं? उनका जवाब था, "ऐसे जो बिना विचारों और आदर्शों के स्कूल से निकलते हैं। वे किसी भी युद्ध में तोप का शिकार बनने को तैयार रहते हैं। पर वे ठहर कर यह विचार तक नहीं करते कि युद्ध लड़ा किसलिए जा रहा है? वे स्वयं क्यों लड़ रहे हैं?"

पिछले साठ सालों में मैंने किसी बच्चे पर हाथ नहीं उठाया है। पर जब मैं एक नौजवान शिक्षक था तब मैं बिना सोचे-विचारे अपना हाथ उठा बैठता था। अब मैं किसी बच्चे को छूता तक नहीं क्योंकि मैं जानता हूँ कि पिटाई के क्या खतरे हैं। मैं पिटाई के पीछे छुपी नफरत की बात भी आज बखूबी समझता हूँ।

समरहिल में हम बच्चों को वयस्कों के समान मानते हैं। हम बच्चे के व्यक्तित्व और उसके चरित्र का भी कमोबेश सम्मान करते हैं। ठीक वैसे ही जैसे हम किसी वयस्क के व्यक्तित्व और चरित्र का सम्मान करते हैं। हम चचा बिल से यह नहीं कहते हैं कि उन्हें चाहे गाजर पसन्द हो या न हो, परन्तु थाली में परोसी पूरी सब्ज़ी उन्हें खत्म करनी ही है। न हम पापा से कहते हैं कि खाने बैठने से पहले वे हाथ ज़रा ठीक से धो आएँ। बच्चों को लगातार टोकने से उनमें हीन भावना पनपती है। हम उसके स्वाभाविक आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाते हैं। यह तुलनात्मक मूल्यों का प्रश्न है। आखिर इसमें गलत क्या है अगर टॉमी बिना हाथ धोए खाना खाने बैठ जाता है?

गलत तरह के अनुशासन में पले बच्चे ताउम्र एक झूठ जीते हैं। वे कभी अपना सहज रूप नहीं धर पाते। वे स्थापित रीति-रिवाज़ों और व्यवहार के गुलाम बन जाते हैं। वे बिना सवाल उठाए इतवार को चर्च जाते वक्त बेवक़ूफी भरे कपड़े पहनते हैं। इसलिए क्योंकि अनुशासन की जड़ में आलोचना का भय होता है। पर खेलने वालों से दण्ड मिलना डर की बात नहीं होती। लेकिन अगर कोई वयस्क सज़ा दे तो डर स्वतः पैदा होता है। क्योंकि वे बड़े होते हैं, ताकतवर होते हैं और उन्हें देख बच्चे सकते में आ जाते हैं। इस सबसे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वे डरावने पिता या डरावनी माँ का भी प्रतीक होते हैं।

चालीस सालों में मैंने बराबर बदमिज़ाज, बदतमीज़ और नफरत से भरे बच्चों को समरहिल के आज़ाद वातावरण में कदम रखते देखा है। हरेक बच्चे में क्रमशः एक बदलाव आते भी देखा है। समय के साथ ये बिगड़ैल बच्चे खुशमिज़ाज़, मेलजोल रखने वाले, ईमानदार और दोस्ताना व्यवहार करने वाले बच्चों में बदले हैं।

मानवता का भविष्य नए माता-पिता के हाथों में है। अगर वे अपने बच्चों पर निरंकुश अनुशासन लादकर अपने बच्चे की सारी जीवन ऊर्जा खत्म कर डालते हैं तो अपराध, युद्ध और दुख ही पनपेगा। अगर वे अपने अनुशासन प्रिय माता-पिता के पदचिन्हों पर चलते रहेंगे तो वे अपने बच्चों का स्नेह और प्यार खो देंगे। जिससे कोई डरे, उसे प्यार कैसे कर सकता है?

मनोरोग माता-पिता के अनुशासन से जन्मता है। अनुशासन, जो माता-पिता के प्रेम का विलोम है। घृणा, सज़ा और दमन के वातावरण में अच्छी मानवता नहीं पनपती। इसका एक ही रास्ता है, वही प्यार का।

बचपन की अधिकांश समस्याओं का समाधान ऐसे प्रेममय वातावरण से ही हो सकता है जिसमें माता-पिता का अनुशासन न हो। मैं चाहता हूँ कि यह बात सभी माता-पिता समझें। अगर उनके बच्चों को घर में प्यार और अनुमोदन का वातावरण मिलेगा तो बदमिज़ाजी, घृणा और नष्ट करने की इच्छा कभी नहीं जन्मेगी।

इनाम और सज़ा

बच्चे को पुरस्कृत करने में उतना खतरा नहीं है जितना उसे सज़ा देने में है। पर पुरस्कार देना बच्चे के मनोबल को तोड़ने का सूक्ष्म तरीका है। पुरस्कार सतही होते हैं और नकारात्मक भी। किसी काम को करने के लिए पुरस्कार देने का अर्थ यह भी निकलता है कि वह काम अपने-आप में करने लायक नहीं है।

कोई भी कलाकार विशुद्ध रूप से पैसे के लिए काम नहीं करता। उसका एक पुरस्कार होता है - रचनात्मकता का सुख। साथ ही पुरस्कार स्पर्धात्मक प्रणाली की सबसे खराब बातों को उभारते हैं। दूसरे को पछाड़ना एक घटिया उद्देश्य है।

पुरस्कार देने का बच्चों पर बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इससे उनमें जलन पैदा होती है। अक्सर कोई लड़का अपने छोटे भाई को इसलिए नापसन्द करने लगता है क्योंकि उसकी माँ टिप्पणी करती है, ''तुमसे अच्छी तरह तो तुम्हारा छोटा भाई ही यह काम कर लेता है।'' बच्चे के लिए माँ की यह टिप्पणी छोटे भाई को बेहतर होने के नाम पर दिए गए पुरस्कार के समान ही होती है।

जब हम चीज़ों में बच्चों की स्वाभाविक रुचियों पर विचार करते हैं तो हमें सज़ा और पुरस्कार दोनों के खतरे साफ नज़र आते हैं। पुरस्कार और दण्ड बच्चों पर ऐसा दबाव डालते हैं कि वह जबरन किसी चीज़ में रुचि लेने लगता है। पर वास्तविक रुचि ही पूरे व्यक्तित्व की जीवन ऊर्जा होती है और वह रुचि बिल्कुल स्वतःस्फूर्त होती है। किसी का ध्यान ज़बरदस्ती आकर्षित किया जा सकता है क्योंकि ध्यान देना सचेत होकर किया जाने वाला काम है। यह पूरी तरह सम्भव है कि श्यामपट पर खिंची रेखाओं पर ध्यान देते हुए भी किसी की रुचि डाकुओं में बनी रहे। ध्यान तो ज़बरदस्ती खींचा जा सकता है पर रुचि जबरन पैदा नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए कोई मुझे टिकट-संग्रहण में रुचि लेने पर बाध्य नहीं कर सकता है। मैं खुद भी अपने आपको इसमें रुचि लेने पर बाध्य नहीं कर सकता। फिर भी पुरस्कार और दण्ड दोनों ही रुचि को बाध्य करने की कोशिश करते हैं।

मेरा एक बड़ा-सा बगीचा है। जिस समय खरपतवार निकालने का मौसम आता है, उस वक्त नन्हें लड़के और लड़कियों की टोली मेरे लिए बेहद मददगार सिद्ध

हो सकती हैं। यह सम्भव है कि मैं उन्हें आज्ञा दे डालूँ कि वे मेरे काम में मेरी मदद करें। पर आठ-नौ-दस साल की उम्र में खरपतवार निकालने की आवश्यकता पर उन्होंने अपनी राय नहीं बनाई होती। इस काम में उनकी कतई रुचि नहीं होती।

एक बार मैं छोटे लड़कों के एक झुण्ड के पास गया और पूछा, ''कोई खरपतवार निकालने में मदद करना चाहेगा?'' सबने मना कर दिया।

मैंने जानना चाहा, ''क्यों?'' तुरन्त जवाब मिला, ''बिल्कुल उबाऊ काम है।''''उन्हें उगने दो ना।'' ''मैं फिलहाल शब्द-पहेली में व्यस्त हूँ।'' ''मुझे बागवानी नापसन्द है।''

मुझे भी खरपतवार निकालना उबाऊ लगता है, मुझे भी शब्द-पहेलियाँ बूझना पसन्द है। पर बच्चों के प्रति इन्साफ करना हो तो कहना होगा कि आखिर खरपतवार निकालने से उनका क्या लेना-देना? आखिर बगीचा *मेरा* है। जब मिट्टी से मटर का पौधा निकलता है तो गर्व से *मेरा* ही सीना फूलता है। साग-सब्ज़ियाँ खरीदने पर *मेरा* ही खर्च कम होता है। संक्षेप में बाग मेरे स्वार्थ से जुड़ा है। पर जब बच्चों की इसमें रुचि ही नहीं है तो मैं ज़बरदस्ती रुचि कैसे पैदा कर सकता हूँ? मेरे सामने अकेला रास्ता यह है कि मैं उन्हें हर घण्टे के हिसाब से मज़दूरी दूँ। तब ही हम दोनों एक स्तर पर होंगे। मेरी रुचि बागवानी में और उनकी रुचि कुछ जेब खर्च कमाने में होगी।

रुचि मूलतः अहम से जुड़ी होती है। चौदह वर्षीय मॉड अक़्सर खरपतवार निकालने में मेरी मदद करती है। यद्यपि उसका कहना है कि उसे इससे घृणा है। पर वह *मुझसे* नफरत नहीं करती है। वह इसलिए खरपतवार निकालती है ताकि वह मेरे साथ कुछ समय बिता सके। उस वक्त खरपतवार निकालने से उसका स्वार्थ भी सधता है।

जब डेरिक, जिसे खरपतवार निकालना नापसन्द है, खुद आगे बढ़कर अपनी सेवाएँ देता है तो मुझे मालूम होता है कि वह फिर से मेरा जेबी चाकू मुझसे माँगेगा। उसकी वही रुचि है।

अगर कोई पुरस्कार हो भी तो वह आत्मगत होना चाहिए। उस काम को करने में आत्म-संतुष्टि का। दुनिया में तमाम अरुचिकर काम होते हैंः कोयला खोदकर निकालना, इक्यावन नम्बर के बोल्ट में पचास नम्बर का नट बैठाने की कोशिश करना, नालियाँ खोदना, संख्याएँ जोड़ना। दुनिया ऐसे कामों से भरी पड़ी है जिन्हें करने में कोई मज़ा आ ही नहीं सकता। लगता है कि हम अपने स्कूलों को जीवन की नीरसता के अनुकूल बनाना चाहते हैं। हम अपने बच्चों का ध्यान उन तमाम विषयों पर ज़बरदस्ती केन्द्रित करवाते हैं, जिनमें उनकी कोई रुचि न हो, या

दरअसल हम उन्हें उन कामों के लिए अनुकूलित करते हैं जिन्हें करने में उन्हें कोई मज़ा न आए।

अगर केट लिखना या गिनना सीखती है तो इसलिए क्योंकि उसकी इन विषयों में रुचि है। इसलिए नहीं कि अगर उसके अच्छे अंक आएँगे तो उसे साइकिल मिलेगी, या माँ बड़ी खुश होगी।

एक माँ ने अपने बेटे को वादा किया कि अगर वह अँगूठा चूसना बन्द कर देगा तो उसे रेडियो मिलेगा। किसी भी बच्चे के लिए यह कितनी अन्यायपूर्ण दुविधा उपस्थित करता है। अंगूठा चूसना एक अवचेतन रूप से किया गया काम है, जो बच्चे की इच्छाशक्ति के बस में नहीं है। सम्भव है कि बच्चा बड़ी बहादुरी से सचेत हो इस आदत पर काबू पाने की कोशिश करे। पर वह इसमें बार-बार असफल होगा। परिणाम यह होगा कि उसके मन में लगातार अपराधबोध की भावना जागेगी और वह दुखी होता जाएगा।

भविष्य को लेकर माता-पिता के मन में जो भय है वह उस वक्त बड़ा खतरनाक बन उठता है जब उसमें घूस का सुझाव जुड़ जाता है। ''जब तू पढ़ना सीख लेगा तो डैडी तुझे साइकिल दिला देंगे।'' ऐसे सुझाव हमारी संस्कृति के स्वार्थी पक्ष को स्वीकृति प्रदान करते हैं। मुझे खुशी है कि एकाधिक बच्चे चमचमाती साइकिल के बदले निरक्षर रहना ही पसन्द करते हैं।

ऐसी घूस का एक दूसरा रूप तब नज़र आता है जब बच्चे की भावनाओं को छूने की कोशिश होती है। ''अगर तुम अपनी कक्षा में हमेशा सबसे नीचे रहे तो माँ को बड़ा दुख होगा।'' घूस के ये दोनों ही तरीके बच्चे की वास्तविक रुचियों को अनदेखा करते हैं।

जब हम बच्चों से अपना काम करवाते हैं तब भी मुझे सख़्त आपत्ति होती है। अगर हमें उनसे अपने काम करवाने हों तो हमें उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार पैसे देने चाहिए। अगर मैं टूटी दीवार की मरम्मत करना चाहूँ तो कोई भी बच्चा ईंट इकट्ठा करने में रुचि नहीं लेता। पर मैं एक हाथ-ठेली भर ईंटें लाने के लिए कुछ पैसे देने की बात करूँ तो शायद वह खुशी-खुशी करे। क्योंकि तब मैं उसके स्वार्थ को जगाता हूँ। पर मुझे बच्चे के साप्ताहिक खर्च को कुछ काम करने से जोड़ना भी पसन्द नहीं आता। माता-पिता को उसके बदले में अपेक्षा रखे बिना ही वह सौंपना चाहिए।

सज़ा कभी न्यायपूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि कोई व्यक्ति न्यायपूर्ण नहीं हो सकता। न्याय का निहितार्थ है 'पूरी समझ'। न्यायाधीशों की नैतिकता किसी कूड़ा-कचरा इकट्ठा करने वाले से अधिक नहीं होती। जो न्यायाधीश बेहद

रूढ़िवादी और सैन्यवादी हो, वह एक शान्ति चाहने वाले ऐसे व्यक्ति जो 'सेना, हाय! हाय!' का नारा लगा रहा हो, के प्रति न्याय कैसे करेगा।

जो शिक्षक चेते या अचेते उस बच्चे के प्रति क्रूर हो जाता है जिसने कोई यौन अपराध किया है, उसमें निश्चित ही सेक्स के प्रति कोई गहरी अपराधबोध की भावना है। वह जज जिसके अचेतन मन में समलिंगी भावनाएँ हों, वह समलिंगी आपराध के आरोपी को कड़ी सज़ा देता है।

हम इसलिए न्याय नहीं कर पाते क्योंकि हम खुद को नहीं जानते, अपनी दमित आकांक्षाओं को नहीं पहचानते। बच्चे पर इस कारण बड़ी ज़्यादतियाँ होती हैं। कोई भी वयस्क अपनी कुण्ठाओं के परे जाकर बच्चों की शिक्षा-दीक्षा नहीं कर सकता। जब हम खुद ही अपने दमित भयों से त्रस्त हैं, तो हम बच्चों को मुक्त कैसे बना सकते हैं? हम बच्चों पर बस अपनी कुण्ठाएँ लाद सकते हैं।

अगर हम खुद को समझने की कोशिश करें तो बच्चों को सज़ा देना कठिन बन जाए। उन पर किसी दूसरे का गुस्सा उतारना मुश्किल हो जाए। सालों पहले मेरे प्रथम स्कूल में मैं बच्चों को बार-बार ठोकता था। निरीक्षक के आने की चिन्ता हो, या अपने मित्र से झगड़ा हो गया हो। दरअसल मैं खुद किस बात से नाराज़ हूँ, यह जानने के बदले मैं किसी भी बहाने अपनी नाराज़गी बच्चों पर निकालता। आज मैं अपने अनुभव से यह जानता हूँ कि सज़ा देना निरर्थक है। मैं किसी बच्चे को सज़ा नहीं देता, सज़ा देने का लोभ भी मन में नहीं जागता।

हाल में मैंने अपने एक नए छात्र से, जो बेहद असामाजिक व्यवहार कर रहा था, कहा, ''तुम ये सारी बेवकूफी भरी हरकतें इसलिए कर रहे हो ताकि मैं तुम्हारी पिटाई करूँ क्योंकि तुम ताउम्र पिटते ही आए हो। पर तुम अपना समय बरबाद कर रहे हो, तुम जो कुछ भी करो मैं तुम्हें सज़ा नहीं दूँगा।' इसके बाद उसने तोड़-फोड़ बन्द कर दी। उसे मन में घृणा को पालते रहने की ज़रूरत न रही।

सज़ा हमेशा नफरत से उपजा काम है। सज़ा देते समय शिक्षक या माता-पिता दरअसल बच्चे से घृणा कर रहे होते हैं और बच्चे को यह बात समझ में आती है। ज़ाहिराना तौर पर पीटा गया बच्चा जो पश्चाताप कर करुणामय प्रेम अपने माता-पिता की ओर दर्शाता है, वह सच्चा प्यार नहीं होता। उसके मन में जो वास्तविक भावना है वह है नफरत की। पर अपराधबोध से बचने के वास्ते उसे उस घृणा को छुपाना पड़ता है। पिटाई उसे काल्पनिक जगत में धकेलती है। *काश, मेरे पिता इसी वक्त गिरें और मर जाएँ।* और यह कल्पना मन में तत्काल अपराधबोध जगाती है - *पिता के मरने की इच्छा मन में जागी। हाय ! कैसा पापी हूँ मैं।* इससे उपजा पश्चाताप उसे अपने पिता के पास बाहरी तौर पर प्रेम जताने की ओर ले जाता है। पर उसके मन की घृणा स्थाई तौर पर बने रहने के लिए उपजती है।

इससे भी खराब बात यह है कि सज़ा एक भयावह दुष्चक्र बनाती है। पिटाई घृणा को प्रकट करना है। और हर पिटाई से बच्चे में घृणा बढ़ती जाती है। और जब उसमें भरी हुई घृणा उसके बुरे व्यवहार में झलकती है तो और पिटाई होती है। और यह दूसरे बार की पिटाई अपने साथ और बढ़ी हुई घृणा का फल बन चुकी होती है। इतना कि वह जान बूझकर तमाम पाप करता है ताकि उसके माँ-बाप में भावनात्मक प्रतिक्रिया जागे। क्योंकि जहाँ प्रेम की भावना ही न हो वहाँ घृणा की भावना तो जगाई जा सकती है। सो बच्चा पिटता है और तब पश्चाताप जगता है। पर अगली सुबह वही चक्र फिर शुरू होता है।

जहाँ तक मैं देख पाया हूँ स्व-निर्देशित बच्चे को सज़ा की ज़रूरत ही नहीं होती और वह घृणा के दुष्चक्र से नहीं गुज़रता है। उसे कभी सज़ा नहीं मिलती और दुर्व्यवहार की ज़रूरत नहीं पड़ती। उसे झूठ बोलने की, तोड़-फोड़ करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। उसके शरीर को कभी गन्दा, या उसे कभी शैतान नहीं कहा जाता। उसे सत्ता के प्रति विद्रोह जताने की या माँ-बाप से थर्राने की ज़रूरत नहीं होती। वह भी झल्लाता है, पर उसकी झल्लाहट कुछ समय टिकती है और वह मनोरोग में नहीं बदलती।

यह सच है कि यह तय करना बड़ा मुश्किल है कि दरअसल किसे सज़ा कहा जाए और किसे नहीं। एक दिन एक लड़के ने मेरा सबसे बढ़िया आरा उधार माँगा। अगले दिन वह आरा बरसात में पड़ा मिला। मैंने उससे कहा कि मैं उसे वह आरा भविष्य में कभी नहीं दूँगा। यह सज़ा नहीं थी। क्योंकि सज़ा में हमेशा नैतिकता का विचार होता है। आरे को बरसात में छोड़ना आरे के लिए खराब ज़रूर था, पर यह काम अनैतिक काम नहीं था। बच्चे को यह तो बखूबी समझ लेना चाहिए कि वह किसी दूसरे के औज़ार माँगकर उन्हें खराब नहीं कर सकता। किसी दूसरे की सम्पत्ति को नुकसान नहीं पहुँचा सकता। *किसी दूसरे की कीमत पर* अपनी बात मनवाना या वह पा लेना जो वह चाहता है, बच्चे के लिए नुकसानदेह है। इससे बच्चे बिगड़ैल बनते हैं और बिगड़ैल बच्चे खराब नागरिक होते हैं।

कुछ समय पहले हमारे पास एक बच्चा आया। अपने पिछले स्कूल में उसने सबको चीज़ें फेंक-फेंककर आतंकित कर रखा था। यहाँ तक कि उसने बच्चे मार डालने तक की धमकी दी थी। उसने मेरे साथ भी यही खेल शुरू किया। मैंने जल्दी ही यह निष्कर्ष निकाला कि वह अपना गुस्सा दूसरों को डराने और अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए जताता है।

एक दिन खेल के कमरे में घुसते ही मैंने सब बच्चों को एक कोने में झुण्ड बनाए सिमटा हुआ पाया। कमरे के दूसरे कोने में वह आतंकवादी हथौड़ा लिए खड़ा था। जो बच्चा पास आएगा उसका वह सिर फोड़ेगा की धमकी दे रहा था।

मैंने तल्खी से कहा, ''बस, नाटक बन्द करो। हम तुम से डरते तक नहीं।''

हथौड़ा फेंककर वह मेरी ओर लपका। उसने मुझे काटा और लातें जमाईं।

मैंने शान्त आवाज़ में कहा, ''तुम जितनी बार चाहो मुझे मारो या काटो, मैं तुम्हें पलटकर मारूँगा।'' मैंने यह किया भी। कुछ समय में उसने यह स्पर्धा बन्द की और कमरे से भाग गया।

यह सज़ा नहीं थी। यह एक ज़रूरी पाठ था : उसे सिखाना था कि कोई अपने संतोष के लिए दूसरों को ठोक नहीं सकता।

अधिकांश घरों में सज़ा इसलिए दी जाती है कि आज्ञा का पालन नहीं किया गया। स्कूलों में भी कहना न मानना और बदतमीज़ी करना अपराध माना जाता है। जब मैं एक युवा शिक्षक था तो बच्चों की पिटाई करना मेरी आदत थी, क्योंकि ब्रिटेन में अधिकांश शिक्षकों को इसकी छूट होती थी। मुझे सबसे ज़्यादा गुस्सा भी उन्हीं लड़कों पर आता था जो मेरी आज्ञा की अवहेलना करते थे। मेरे नाज़ुक से आत्मसम्मान को इससे बड़ी ठेस पहुँचती थी। मैं कक्षा में खड़ा आले पर धरे भगवान सरीखा था, वैसे ही जैसे घर के आले पर धरा भगवान कोई पिता होता है। अवज्ञा की सज़ा देने का मतलब है खुद को परमेश्वर माननाः *तू मेरे सिवा किसी और को खुदा नहीं मानेगा।*

बाद में जब मैंने जर्मनी और ऑस्ट्रिया में पढ़ाया तो मुझे उस वक्त बेहद शर्म आती जब लोग पूछते कि क्या ब्रिटेन में शारीरिक दण्ड दिया जाता है। जर्मनी में जो शिक्षक बच्चे को मारते हैं उन पर हमला करने का मामला दर्ज़ होता है और उन्हें अमूमन सज़ा होती थी। ब्रिटिश स्कूलों में जो बेंत या पट्टों से पिटाई होती है वह हमारे लिए सबसे शर्मनाक बात है।

एक बड़े शहर के चिकित्सक ने एक बार मुझे कहा था, ''हमारे एक स्कूल का प्रधानाध्यापक निहायत जंगली है। वह बच्चों को बेरहमी से पीटता है। मेरे पास अक्सर उसके कारण दहशत से भरे बच्चे लाए जाते हैं। पर मैं कुछ नहीं कर सकता। लोकमत और कानून जो उसके साथ हैं।''

कुछ ही समय पहले अखबारों में एक मामला छपा जिसमें न्यायाधीश ने दो गुनाहगार भाइयों से कहा कि अगर उन्हें बचपन में दो-चार बार ठोका जाता तो शायद उन्हें अदालत में खड़ा न होना पड़ता। पर जैसे-जैसे मामले के सबूत सामने आते गए पता चला कि दोनों भाइयों के पिता हर रात उनकी धुनाई करते थे।

सॉलोमन और उसके डण्डे की कहानी ने जितना नुकसान किया है उतना फायदा उनकी सूक्तियों तक से नहीं हुआ है। अन्तर्मुखी होकर अन्दर झाँकने की ताकत रखने वाला व्यक्ति कभी भी बच्चे को पीट नहीं सकता, न ही ऐसी इच्छा कर सकता है।

फिर से दोहरा रहा हूँ कि पिटाई के द्वारा बच्चे के मन में उसी समय डर बैठता है *जब उसके साथ नैतिकता का विचार जोड़ा जाता है, जब गलती का विचार जगाया जाता है।* अगर सड़क चलता कोई छोकरा ढेला मारकर मेरी टोपी गिरा दे, और मैं उसे पकड़कर चाँटा जड़ दूँ तो वह मेरी प्रतिक्रिया को बिल्कुल स्वाभाविक मानेगा। उसकी आत्मा को मैं कोई नुकसान न पहुँचा सकूँगा। पर अगर मैं उसके स्कूल के प्रधानाध्यापक के पास जाकर उसे सज़ा दिलवाना चाहूँ तो यह बच्चे के लिए खराब होगा। क्योंकि तब यह मामला नैतिकता और सज़ा का बन जाएगा। बच्चे को लगेगा कि उसने भारी अपराध किया है।

इसके बाद के दृश्य की बखूबी कल्पना की जा सकती है। मैं एक तरफ अपने कीचड़ से सने टोप को लेकर खड़ा हूँ। प्रधानाध्यापक, अपनी कुर्सी पर जमे हैं, उनकी दुखी-सी आँखें लड़के पर गड़ी हुई हैं। बच्चा गर्दन झुकाए खड़ा है। वह आरोप लगाने वालों की गरिमा से त्रस्त है। सड़क पर उसका पीछा करते समय दोनों एक ही समान थे। सिर का टोप गिरने के बाद मेरी गरिमा भी गायब हो चुकी थी। मैं बस एक राह चलता आदमी भर था। पर मेरे चाँटे ने उसे ज़िन्दगी का एक ज़रूरी पाठ पढ़ाया था। वह यह कि अगर वह किसी व्यक्ति को ढेला मारेगा तो वह आदमी नाराज़ होगा और पलटकर झापड़ धरेगा।

सज़ा का गर्ममिजाज़ी से कोई रिश्ता नहीं होता। सज़ा तो बिल्कुल ठण्डी और सोची-समझी चीज़ होती है। सज़ा का रिश्ता नैतिकता से है। सज़ा का दावा यह रहता है कि वह गुनाहगार के हित में दी जा रही है। और अगर मौत की सज़ा है, तो वह समाज के हित में मानी जाती है। सज़ा वह क्रिया है जिसमें इन्सान खुद को भगवान की जगह बैठाता है और दूसरे पर नैतिक फैसला सुनाता है।

कई माँ-बाप इस विश्वास को ही जीवन में उतारते हैं कि क्योंकि ईश्वर पुरस्कार या दण्ड देता है इसलिए उन्हें भी अपने बच्चे को पुरस्कार या दण्ड देना चाहिए। वे ईमानदारी से न्याय करना चाहते हैं और खुद को यह विश्वास दिला देते हैं कि वे अपने बच्चों को उनके ही भले के लिए सज़ा दे रहे हैं। उनका यह कहना कि, *सज़ा देने से तुमसे अधिक तकलीफ मुझे हो रही है* उतना झूठ नहीं है जितना खुद को छलना है।

याद रखना चाहिए कि धर्म और नैतिकता *सज़ा* को प्रायः आकर्षक संस्था बना देते हैं। क्योंकि सज़ा हमारी चेतना पर मलहम लगाती है। पापी यह कह पाता है, ''मैंने अपने पापों की कीमत चुकाई है।''

मेरे भाषणों के बाद प्रश्नोत्तर के समय कोई न कोई पुरातनपंथी अक़्सर कहता है, ''मेरा बाप अपनी चप्पल से मुझे पीटा करता था, पर मुझे इसका कोई खेद नहीं है। अगर मुझे वह मार न पड़ती तो जो मैं आज हूँ, वह होता ही नहीं।'' मैंने कभी

यह पूछने की धृष्टता नहीं की, "आप आज *भला हैं क्या?*"

यह कहना कि सज़ा से *हमेशा* मानसिक या आत्मिक आघात नहीं पहुँचता, मुद्दे से बचना ही है। क्योंकि दरअसल हम यह जानते ही नहीं कि भविष्य में किसी व्यक्ति पर उसका क्या और कैसे असर होगा। अश्लील प्रदर्शन के लिए पकड़ा गया आत्मप्रदर्शक शुरूआती जीवन में अक्सर बचकानी यौन आदतों की सज़ा का शिकार रहा होगा।

अगर सज़ा देना कभी भी सफल सिद्ध होता तो उसके पक्ष में कोई तर्क किया जा सकता था। यह सच है कि सज़ा का डर किसी को कुछ करने से रोक सकता है। अगर माता-पिता इस बात से संतुष्ट हैं कि उनके बच्चे का मनोबल डर से पूरी तरह चकनाचूर हो जाए तो ऐसे माता-पिता के लिए सज़ा एक सफल हथियार है।

सज़ा पाने वाले कितने ही बच्चों का मनोबल जीवन भर के लिए टूट जाता है और कितने आजीवन अपंग बन जाते हैं, कितने विद्रोह पर आमादा होते हैं और पहले से भी अधिक असामाजिक बन जाते हैं, यह कोई नहीं बता सकता।

स्कूलों में पढ़ाने के पचास साल के अनुभव के दौरान मैंने एक भी माता-पिता को यह कहते नहीं सुना कि, "मैंने अपने बच्चे की अच्छे से पिटाई की और अब वह एक अच्छा लड़का बन चुका है।" उल्टे यह दर्ज़नों बार सुना है, "मैंने उसे पीटा है, समझाया है, हर तरह से मदद करने की कोशिश की है, परन्तु वह तो बद से बदतर बनता चला जा रहा है।"

दण्डित बच्चा सज़ा से बदतर *ही* बनता है। और तो और, बड़ा होकर वे सज़ा देने वाले पिता या माँ भी बनते हैं और यही चक्र पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

मैं अक़्सर एक सवाल अपने आपसे पूछता हूँ। "ऐसा क्यों है कि दयालु और स्नेही माता-पिता, अपने बच्चों के लिए कठोर स्कूल सहन कर लेते हैं?" ऐसे माता-पिता का सरोकार रहता है बच्चों की अच्छी शिक्षा-दीक्षा से। वे यह नहीं देखते हैं कि सज़ा देने वाला शिक्षक किसी विषय में रुचि तो बाँध सकता है, पर यह रुचि बोर्ड पर लिखे सवालों में नहीं होती, वह सज़ा में या सज़ा से बचने में होती है। हमारे स्कूलों और कॉलेजों में सर्वश्रेष्ठ छात्र आगे चलकर औसत व्यक्ति बन जाते हैं। अधिकांश छात्र-छात्राओं में अच्छी पढ़ाई करने की रुचि, उनके माता-पिता के धकियाने से जागी थी। विषय में कोई वास्तविक रुचि उनकी थी ही नहीं।

शिक्षक और सज़ा का भय, जो इन स्कूलों से बच्चों को मिलता है, दरअसल माता-पिता और बच्चे के रिश्ते को भी प्रभावित करता है। क्योंकि बच्चे के लिए प्रत्येक वयस्क, माता-पिता का प्रतीक ही होता है। और जितनी बार शिक्षक उसे सज़ा देता है, बालक के मन में उस प्रतीक के पीछे छुपे वयस्क यानी उसके माँ या पिता के

लिए घृणा जागती है। यह विचार परेशान करने वाला है। मैंने तेरह साल के बच्चे को यह कहते सुना, ''मेरे पिछले स्कूल के प्रिंसिपल साब मेरी बेंत से पिटाई करते थे, मुझे समझ नहीं आता कि मेरे माँ-बाप मुझे उस स्कूल में क्यों भेजा करते थे। उन्हें पता था कि माटसाब क्रूर-जंगली किस्म का इंसान है, पर वे इस बारे में कुछ भी नहीं करते थे।''

जब सज़ा भाषण का रूप लेती है तो वह और खतरनाक हो जाती है। भाषण कितने भयावह हो सकते हैं, ''क्या तुम्हें *पता* था कि जो तुम कर रहे हो वह भारी भूल थी?'' बच्चा सुबकते हुए हाँ में सिर हिलाता है। ''जो तुमने किया उसके लिए माफी माँगो।''

कपट और ढोंग का प्रशिक्षण देने में इस भाषण विधा का कोई सानी नहीं है। इससे भी घटिया बात है - बच्चे की उपस्थिति में उसकी भटकी हुई आत्मा के लिए प्रार्थना करना। यह बिलकुल अक्षम्य अपराध है क्योंकि यह बच्चे में गहरा अपराधबोध जगाता है।

एक दूसरे तरह की सज़ा होती है जो शारीरिक नहीं होती पर बच्चे के विकास में उतनी ही बड़ी बाधा पैदा करती है। लगातार किसी न किसी बात पर पीछे पड़े रहना। मैंने किसी दस वर्षीय बेटी के दिनभर पीछे पड़ी रहने वाली माँ को कहते सुना है, *बाहर धूप में मत जाना ... रेलिंग से दूर रहना ... आज तैरने नहीं जा सकतीं तुम, जुकाम हो जाएगा।* यह पीछे पड़ना माँ के प्यार की निशानी नहीं है। यह तो उस भय की निशानी है, जो उसकी अचेतन घृणा को छुपाती है।

काश वे सब, जो सज़ा की पैरवी करते हैं, वह फ्रेंच फिल्म देख पाते, जो एक बदमाश की ज़िन्दगी की कहानी है। वह जब एक छोटा-सा बच्चा था तो किसी शैतानी के लिए उसे सज़ा दी गई थी कि उसे रात को खाना नहीं मिलेगा। रात को खाने में खुम्बियाँ पकी थीं जो विषैली थीं। परिवार के शेष सदस्य विषैली खुम्बियाँ खाकर मारे जाते हैं। वह नन्हा बदमाश सबके ताबूत देखकर निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अच्छा बने रहने का कोई फायदा नहीं होता। यह एक ऐसी अनैतिक कहानी है जिसकी सीख सज़ा देने वाले माता-पिता समझ ही नहीं पाते।

टट्टी-पेशाब का प्रशिक्षण

समरहिल आने वाले कई लोग इस विचित्र अहसास के साथ लौटते हैं कि हम पखानों की बातचीत कुछ ज़्यादा ही करते हैं। मुझे लगता है कि यह बिल्कुल ज़रूरी है। मैंने पाया है कि *हरेक* बच्चा टट्टी में बेहद रुचि लेता है।

अपनी टट्टी-पेशाब में बच्चों की रुचि के बारे में इतना कुछ लिखा गया है कि मैंने सोचा था कि अपनी नन्हीं बेटी के अवलोकन से मैं इस बारे में बहुत कुछ सीख सकूँगा। परन्तु उसने न तो इसमें कोई रुचि दर्शाई न कोई घृणा ही। पर जब वह तीन साल की हुई तो उससे साल भर बड़ी लड़की ने उसे टट्टी का एक खेल सिखाया जिसमें फुसफुसाहट शर्म और अपराधबोध से जन्मी ठिठियाहट थी। यह खेल बड़ा थकाऊ था, पर हम इस बारे में कर भी क्या सकते थे। हमें पता था कि इसमें हस्तक्षेप करने का अर्थ होगा उसके विकास में बाधा पहुँचाना। सौभाग्य से ज़ोई कुछ समय में दूसरी बच्ची की एकल गतिविधि से ऊब गई और यह खेल खुद-ब-खुद बन्द हो गया।

वयस्कों को अक्सर यह पता नहीं होगा कि बच्चा टट्टी या बदबू से चौंकता नहीं है। चौंकने वाला दृष्टिकोण ही बच्चों को सचेत करता है। मुझे याद है कि एक ग्यारह वर्षीय लड़की समरहिल आई थी। उसकी एकमात्र रुचि शौचालयों में थी। दरवाज़ों के छेद से ताँक-झाँक करना उसे आनन्द देता था। मैंने जल्दी से उसे भूगोल के बदले शौचालयों का विषय दे डाला। वह बहुत खुश हुई। दसेक दिन बाद जब मैंने शौचालयों पर एक टिप्पणी की तो उसने ऊब की आवाज़ में कहा, "मुझे कुछ नहीं सुनना, मैं तो शौचालयों की बात करते-करते तंग आ चुकी हूँ।"

एक और छात्र था, एक लड़का जिसका पढ़ाई-लिखाई में मन ही नहीं लगता था। वह मल और उससे मिलती-जुलती चीज़ों की बातों में उलझा रहता था। मैं जानता था कि जब तक उसकी यह रुचि पूरी तरह चुक नहीं जाएगी वह गणित सीख नहीं सकेगा, और हुआ भी यही।

शिक्षक का काम दरअसल बड़ा सरल है। उसे बस इतना भर पता करना है कि बच्चे की रुचि कहाँ है और तब उस रुचि को भरपूर जी लेने का मौका उसे देना है। यही *हमेशा* होता है। किसी रुचि को दबाना, उसे चुप कर देने से रुचि मरती नहीं, सिर्फ सतह के नीचे दब जाती है।

श्रीमती नैतिकता का सवाल होगा, "आपके इस तरीके से बच्चों के दिमाग में गंदगी नहीं भर जाएगी?"

"ना, ऐसा नहीं होगा। बल्कि *आपका* तरीका ऐसा है जो बच्चों को स्थाई रूप से उस चीज़ में रुचि लेने पर मज़बूर करता है जिसे आप गन्दगी कह रही हैं। जब वह रुचि को भरपूर जी लेता है तब ही तो नई दिशा में आगे बढ़ने को वह मुक्त हो पाता है।"

"क्या आप अपने स्कूल के बच्चों को दरअसल शौचालयों की बात करने को प्रोत्साहित करते हैं?"

"बेशक, अगर मुझे लगे कि उनकी शौचालयों में रुचि है तो। जो बच्चे मनोरोगी

होते हैं उन्हें भी इस स्थिति से उबरने में सप्ताह भर से अधिक लगता है।"

कुछ सालों पहले एक ऐसा ही मनोरोगी बच्चा हमारे पास आया। उस छोटे से लड़के को इसलिए हमारे पास भेजा गया था क्योंकि वह दिन भर अपनी पैंट गन्दी करता रहता था। उसकी माँ ने उसकी आदत छुड़ाने की कोशिश में उसकी खूब धुनाई की थी और तब हताश होकर उसे अपना मल खाने पर बाध्य किया था। हमारी समस्याओं की आप कल्पना कर सकते होंगे। हमें पता चला कि उसका एक छोटा भाई भी था। उसके जन्म के बाद ही सारी परेशानियाँ शुरू हुईं थीं। कारण बड़ा ज़ाहिर-सा था। लड़के ने सोचा, *इस छोटे भाई ने माँ का प्यार चुरा लिया है। अगर मैं भी उस जैसा बन जाऊँ और जैसे वह अपने पोतड़े गन्दे करता है, अपनी पैंट गन्दी करूँ तो माँ शायद मुझे फिर से प्यार करने लगे।*

मैंने उसके लिए कुछ 'निजी-पाठ' बनाए जिसमें उसे क्रमशः बताया कि इन हरकतों के पीछे उसकी असली मंशा क्या है। पर ऐसे मामलों में बदलाव अचानक या नाटकीय तरीके से नहीं आता। सालभर तक वह बच्चा दिन में तीन-तीन बार खुद को गन्दा करता रहा। पर किसी ने उसे कडुवाहट से भरे शब्द नहीं कहे। श्रीमती कॉर्कहिल हमारी नर्स उसे बिना फटकारे साफ करती रहीं। जब वह भारी गन्दगी मचाता तो मैंने उसे ईनाम देना शुरू किया। इस पर श्रीमती कॉर्कहिल ने प्रतिवाद किया। क्योंकि ईनाम का मतलब था उसके व्यवहार का अनुमोदन करना।

इस पूरे दौर में वह लड़का एक घिनौना शैतान बना रहा। और इसमें आश्चर्य भी क्या था। उसकी तमाम समस्याएँ थीं, संघर्ष थे। पर अपने इलाज के बाद वह एक बिल्कुल साफ-सुथरा बच्चा बन गया और हमारे पास अगले तीन साल तक रहा। अन्ततः एक ऐसा बच्चा बना जिसे प्यार किया जा सकता था। उसकी माँ उसे इस नाम पर समरहिल से निकालकर एक नए स्कूल में ले गई कि वह वहाँ दरअसल कुछ *सीखे*। साल भर नए स्कूल में बिताने के बाद वह हमसे मिलने आया। बिल्कुल बदला हुआ था - पाखण्डी, भयभीत और दुखी। उसने कहा कि वह अपनी माँ को उसे समरहिल से हटाने पर कभी माफ नहीं कर सकेगा, कभी माफ करेगा भी नहीं। आश्चर्यजनक बात यह है कि इतने सालों में पैंट गन्दे करने वाला यही एक उदाहरण हमारे पास आया था। सम्भव है कि ऐसे दृष्टान्त माँ द्वारा प्रेम न मिलने से उपजी घृणा का नतीजा हो।

सम्भव है कि हम किसी बच्चे को, शारीरिक क्रियाओं में स्थिर या दमित रुचि के बिना भी, साफ रहना सिखा सकें। बिलौटियों या बछड़ों में अपने मल के प्रति कोई मनोग्रन्थि नहीं होती। बच्चों में ये ग्रन्थियाँ उसे सिखाने के तौर-तरीके से उपजती हैं। जब माँ *शैतान* या *गन्दा* या केवल 'चच्च-चच्च' कहती है तब भी सही या गलत का भाव जागता है। तब यह *नैतिकता* का प्रश्न बन जाता है, एक *भौतिक* सवाल नहीं रहता।

पखाने में रुचि रखने वाले किसी बच्चे से निपटने का यह गलत तरीका है कि उससे यह कहा जाए कि वह गन्दा काम कर रहा है। सही तरीका है कि उसे अपने मल/विष्ठा में रुचि को भरपूर जी लेने के लिए मिट्टी से खेलने देना। इससे वह अपनी रुचि का दमन करने के बदले उसे उभार सकेगा। वह उसे पूरा जिएगा और जीते हुए उसे खत्म कर सकेगा।

एक बार मैंने अखबार के लिए एक लेख लिखा जिसमें बच्चे के मिट्टी के खिलौने बनाने के अधिकार का उल्लेख किया। एक जाने-माने मॉन्टेसरी शिक्षाविद् ने प्रतिक्रिया में एक पत्र लिखा कि उनका अनुभव बताता है कि जब बच्चे को *कुछ बेहतर करने* को दिया जाए तो वह मिट्टी के खिलौने नहीं बनाएगा। पर जब किसी बच्चे की रुचि मिट्टी के खिलौनों में स्थिर हो तो उससे भला क्या कहा जा सकता है? समस्यात्मक बच्चों को *यह बताया जाना चाहिए* कि वह दरअसल क्या कर रहा है। क्योंकि इसके बिना सालों-साल तक मिट्टी के खिलौने बनाने के बावजूद वह मल में अपनी मूल-रुचि से बाहर नहीं निकल सकेगा।

मुझे जिम की याद आती है। आठ साल का जिम मल को लेकर तमाम कल्पनाएँ करता था। मैंने उसे मिट्टी के खिलौने बनाने को प्रोत्साहित किया। पर मैं उसे हमेशा यह भी बताया करता कि उसकी वास्तविक रुचि किसमें है। इस तरह उसके इलाज की प्रक्रिया त्वरित हो सकी। मैं उससे यह नहीं कहता, "तुम यह इसलिए कर रहे हो क्योंकि यह उसका विकल्प है।" मैं उससे केवल दोनों चीज़ों की समानता की बात करता था और यह प्रभावी रहा। पर इससे छोटी उम्र के बच्चे, यानी पाँचेक साल के बच्चे को यह बताना ज़रूरी नहीं है कि वह मिट्टी के खिलौने बनाते-बनाते खुद-ब-खुद अपनी कल्पनाओं को जी लेगा और उनसे मुक्त हो सकेगा।

किसी बच्चे के लिए उसकी टट्टी अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय हैं। इस रुचि को किसी भी तरह से दबाना खतरनाक और बेवकूफी भरा होगा। दूसरी तरफ मल को खास अहमियत देने की ज़रूरत भी नहीं है, बशर्ते बच्चा स्वयं अपने उत्पाद पर गर्व न करता हो। ऐसे में उसकी प्रशंसा करने में कोई हर्ज़ नहीं। अगर बच्चा गलती से गन्दगी कर दे तो उसे बिल्कुल सामान्य रूप से लेना चाहिए।

मल त्याग केवल बच्चे के लिए ही नहीं बल्कि कई वयस्कों के लिए भी एक रचनात्मक काम है। कई वयस्क इस बात पर खुश होते हैं कि उनका पेट अच्छी तरह से साफ हुआ है। प्रतीकात्मक रूप से यह बड़ी मूल्यवान बात है। जो चोर, चोरी करने के बाद कालीन पर पखाना कर जाता है, वह चोट पहुँचाने के बाद अपमान नहीं कर रहा होता। वह अपने अपराधबोध के चलते चुराई हुई चीज़ के बदले कोई कीमती चीज़ छोड़ने की कोशिश करता है।

पशु प्राकृतिक क्रियाओं के प्रति सचेत नहीं होते। कुत्ते और बिल्लियाँ स्वाभाविक रूप से अपने मल को त्यागने के बाद खुद ही उसे ढँक देते हैं। शायद वह उस वक्त की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है जब भोजन को साफ रखने के लिए यह ज़रूरी रहा होगा। मनुष्यों में अपने मल को लेकर जो नैतिकता का दृष्टिकोण है वह शायद उसके अप्राकृतिक आहार से जन्मा है। घोड़ों की लीद, भेड़ों और खरगोशों की मींगणी बिल्कुल साफ होती है। उससे घिन नहीं आती है। पर मनुष्यों का मल घिनौना होता है क्योंकि वह कृत्रिम चीज़ों को अपने आहार में शामिल करता है। मुझे कई बार लगा है कि अगर मनुष्यों का मल छूना उतना ही आसान होता जितना पशुओं के मल को छूना, तो शायद बच्चों को भावनात्मक मुक्ति के साथ बड़े होने का बेहतर मौका मिलता।

वयस्कों को मानव मल से जो घिन आती है वह बच्चों के मानस में नकारात्मक, घृणा पैदा करने वाली भावना पनपाती है। क्योंकि प्रकृति ने मल त्याग और जननांगों को पास-पास बनाया है। बच्चा इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दोनों ही गन्दे हैं। अगर माता-पिता मल के प्रति घृणा जताएँगे तो बच्चा सेक्स के प्रति भी वैसा ही दृष्टिकोण अपनाएगा। अतः सेक्स और मल के प्रति घृणा एक ही दमित भावना का हिस्सा है।

जब कोई माँ अपने बच्चे के पोतड़े धोती है तो उसके मन में घिन नहीं जागती। पर तीन साल बाद अगर वही बच्चा कालीन पर निबट आए तो उसे साफ करने में वह काफी झुँझलाती है। सभी माताओं को मल की स्थितियों से सावधानी से निपटना चाहिए। उन्हें याद रखना चाहिए कि किसी तरह का भावनात्मक गुस्सा बच्चे पर न छलके। क्योंकि वह अन्दर पैठता है और वहीं बस जाता है और उसके व्यक्तित्व पर दर्ज़ हो जाता है।

भोजन

सत्तावाद शिशुकक्ष में प्रारम्भ हुआ था और अब भी वहीं प्रारम्भ होता है। बच्चे की स्वाभाविकता में पहला हस्तक्षेप तानाशाही ही है। और यह हस्तक्षेप हमेशा खान-पान को लेकर होता है। यह उस वक़्त शुरू होता है जब हम बच्चे को एक समय सारिणी के अनुसार भूखे रहने या खाने पर बाध्य करते हैं।

इसका सतही स्पष्टीकरण तो यह दिया जाता है कि समयबद्ध तरीके से खिलाना-पिलाना वयस्कों के दैनिक कामों की सहूलियत के लिए ज़रूरी है। पर कहीं गहरे दबा है इसका सच्चा उद्देश्य। वह यह कि नवजात जीवन के प्रति, उसकी

स्वाभाविक आवश्यकताओं के प्रति हमारे मन में एक नफरत-सी बसी है। यह बात उस वक़्त नज़र आती है जब कुछ परिवार किसी भूखे बच्चे का रोना निहायत उदासीनता के साथ बड़े आराम से सुनते जाते हैं।

स्वनिर्देशन की शुरुआत जन्म से, पहले स्तनपान से ही होनी चाहिए। हरेक शिशु का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि जब वह भूखा हो उसे दूध मिले। अगर बच्चा घर पर होता है तो माँ को बच्चे की इच्छानुसार खिलाने-पिलाने में आसानी होती है पर अधिकांश अस्पतालों में मातृ-वॉर्डों में प्रसव के बाद ही बच्चे को माँ से अलग कर शिशु-वॉर्ड में ले जाया जाता है। पहले चौबीस घण्टों में माँ उसे न तो स्तनपान करा सकती है, न ही बोतल से दूध दे सकती है। इसका बच्चे पर क्या स्थाई असर पड़ता है, यह कौन जानता है?

आजकल कुछ अस्पतालों में शिशु को माँ की देख-रेख में छोड़ा जाता है। इस विषय पर पहले से बात किए बिना अगर कोई अस्पताल में दाखिल हो तो इसका मतलब है उनकी व्यवस्था को जस का तस स्वीकारना। अगर कोई माँ बच्चे के लिए आत्म-संचालन का उपयोग करना चाहती है, तो उसे ऐसे अस्पताल में जाना चाहिए जहाँ बच्चा उसके पास रह सके। यानी जहाँ शिशु स्वनिर्देशन की उपेक्षा न हो। अन्यथा यही बेहतर है कि बच्चे पर ऐसी क्रूरता करने के बदले बच्चा घर पर ही हो।

समय-सारिणी के अनुसार बच्चे को खिलाने-पिलाने की इतनी आलोचना हुई है कि कई चिकित्सकों और नर्सों ने यह सुझाव देना बन्द कर दिया है। ज़ाहिर है कि यह गलत है और खतरनाक भी। अगर कोई बच्चा चार बजे भूख से कुलबुलाते हुए रोने लगता है, पर उसे उस वक़्त तक दूध नहीं पिलाया जाता है, जब तक समय नहीं हो जाता, तो यह निहायत बेवकूफी का काम है। यह क्रूरता है, जीवन विरोधी अनुशासन है। *शिशु को उस वक़्त दूध देना चाहिए जब वह चाहे।* शुरू-शुरू में वह जल्दी-जल्दी आहार चाहेगा क्योंकि वह एक बार में भरपेट दूध नहीं पी सकता।

रात के समय बच्चे को बोतल से पानी पिलाना गलत है। रात को अगर उसे भूख लगे तो माँ का दूध ही पिलाया जाना चाहिए। दो-तीन महीनों में शिशु खुद-ब-खुद अपना संचालन करना सीख लेगा। धीरे-धीरे वह एक बार में अधिक आहार ले सकेगा और दूध पीने का अन्तराल भी बढ़ता जाएगा। तीन-चार माह का होते-होते बच्चा रात को दस-ग्यारह बजे और सुबह पाँच-छह बजे आहार की माँग करेगा। पर इस बारे में कोई पक्का नियम नहीं होता।

हरेक शिशुकक्ष में एक मूलभूत नियम तो लिखकर टाँग ही देना चाहिए। वह यह कि *बच्चे को रोते-रोते थक जाने की स्थिति में कभी नहीं आने देना चाहिए।* उसकी ज़रूरतों पर हर बार ध्यान दिया जाना चाहिए।

जब बच्चों को समय-सारिणी के हिसाब से प्रशिक्षित किया जाता है तो माँ हमेशा उससे कुछ कदम आगे रहती है। एक कुशल विशेषज्ञ की तरह उसे पता रहता है कि आगे क्या और कैसे करना है। परन्तु इस प्रकार वह एक यांत्रिक शिशु को पाल रही होगी। ज़ाहिर है कि ऐसा बच्चा वयस्कों के लिए न्यूनतम परेशानी खड़ी करेगा। पर इसकी कीमत होगी उसका स्वाभाविक विकास। लेकिन स्वनिर्देशित शिशु का मतलब होगा हर दिन, हर पल, माँ कुछ नया जानेगी, खोज पाएगी। क्योंकि तब माँ हमेशा शिशु से एक कदम *पीछे* होगी, उसे पास से देखते हुए हमेशा सीखती रहेगी। ऐसे में ठीक से दूध पीने के आधे घण्टे बाद ही अगर बच्चा रोने लगे तो उसे खुद सोचना होगा कि उसे क्या तकलीफ हो सकती है। समय-सारिणी बनाने वाले यांत्रिक जो कहते हैं उसे भूल जाना होगा। क्या बच्चा आराम से नहीं है? क्या उसके पेट में गैस बनी है? क्या वह और दूध चाहता है? या कि वह अकेलापन महसूस कर रहा है और सिर्फ़ आपका स्पर्श और ध्यान चाहता है? माँ को हमेशा अपने स्वतः जागने वाले प्रेम के आधार पर प्रतिक्रिया करनी चाहिए, किसी किताब में लिखे, बेवकूफी भरे नियम के आधार पर नहीं।

अगर शिशुओं को उनकी तरह जीने दिया जाए तो प्रत्येक शिशु अपनी खुद की समय-सारिणी बना लेगा। अर्थात उसमें स्वनिर्देशन की क्षमता है, केवल दूध पीने के बारे में ही नहीं, बल्कि आगे चलकर दूसरे ठोस आहारों के बारे में भी। कुछ बड़े होने के बाद और कभी-कभी किशोरावस्था तक भी बच्चे अँगूठा चूसते रहते हैं। यह समय-सारिणी के हिसाब से दूध पिलाने का साफ-साफ दिखाई देने वाला नतीजा है। अँगूठा चूसने के दो पक्ष हैं - खाने की भूख और चूसने में आने वाला आनन्द। जब भूख लगती है तो मौखिक आनन्द भी आता है, जो भूख शान्त होने के पहले ही शान्त हो जाता है। पर अगर बच्चे को इसलिए रोना पड़े क्योंकि घड़ी के हिसाब से उसके भूखे होने का समय नहीं हुआ है, तो ये दोनों ही पक्ष अवरुद्ध हो जाते हैं।

मैंने अस्पतालों में मातृ-वॉर्डों में माताओं को चिकित्सक के निर्देश पर बच्चे से जबरन स्तन छुड़ाते देखा है, क्योंकि घड़ी के हिसाब से उनका दूध पीने का समय पूरा हो चुका होता है। मुझे लगता है कि एक समस्याग्रस्त बच्चा तैयार करने का यह सबसे बढ़िया तरीका है।

नासमझ चिकित्सक और माता-पिता शिशु की स्वाभाविक इच्छाओं और व्यवहार में आश्चर्यजनक रूप से दखल देते हैं। शिशु को ढालने और गढ़ने में उनके बेवकूफी भरे विचारों के चलते, वे उसकी खुशी और स्वाभाविकता ही नष्ट कर डालते हैं। ऐसे लोग मानव के सार्वजनीन शारीरिक व मानसिक रोगों को जन्म देते हैं। बाद में स्कूल व गिरजे अपनी अनुशासित शिक्षा पद्धति के द्वारा उस प्रक्रिया को जारी रखते हैं जो आनन्द विरोधी और स्वतंत्रता विरोधी है।

एक माँ ने अपने स्वनिर्देशित बच्चे के बारे में लिखा कि जब वह ठोस आहार लेने लगा तो उसे अपना खाना और उसकी मात्रा चुनने की छूट दी गई। अगर वह कोई सब्ज़ी नापसन्द करता तो उसे दूसरी तरह की सब्ज़ी दी जाती, चाहता तो उसे कुछ मीठा दिया जाता। कई बार वह मीठा खाने के *बाद* वही सब्ज़ी भी खा लेता जिसके लिए उसने पहले मना किया था। कभी ऐसा भी होता कि वह कुछ भी नहीं खाना चाहता। ज़ाहिर था कि उसे उस वक्त भूख नहीं है। तब वह अगले खाने के समय भरपेट खाता।

अक़्सर माँ यह सोचती है कि वह बच्चे की ज़रूरत को बच्चे से भी ज़्यादा अच्छी तरह समझती है। पर यह सच नहीं है। बच्चों के खान-पान के बारे में तो इसे आसानी से जाँचा जा सकता है। कोई भी माँ मेज़ पर ऑइसक्रीम, टॉफी, रोटी, टमाटर, सलाद और दूसरी चीज़ें रख सकती है और बच्चे को चुनने की पूरी छूट दे सकती है। एक औसत बच्चा जिसे हस्तक्षेप का सामना नहीं करना पड़ा है हमेशा संतुलित आहार ही चुनेगा। मैंने सुना है कि अमरीका में हुए नियंत्रित प्रयोगों में भी यही परिणाम निकला है।

हम समरहिल में छोटे से छोटे बच्चे को हर दिन बने खाने में से अपनी पसन्द का खाना चुनने देते हैं। रात के खाने में भी तीन तरह की चीज़ों में से चुनने की छूट होती है। फलस्वरूप समरहिल में अधिकांश स्कूलों की तुलना में कम खाना बरबाद होता है। पर यह हमारा उद्देश्य नहीं है क्योंकि हम खाना बचाने के बदले बच्चे को ही बचाना चाहते हैं।

जब बच्चे संतुलित आहार लेते हैं तो जेबखर्च के पैसों से खरीदी मीठी गोलियाँ भी नुकसान नहीं करतीं। ये गोलियाँ इसलिए पसन्द आती हैं क्योंकि शरीर को उनकी चीनी की ज़रूरत होती है। और वह उन्हें मिलनी ही चाहिए।

बच्चे को माँस और अण्डा खाने पर बाध्य करना, खासकर जब उसे वह नापसन्द हो तो, सरासर ज़्यादती है। ज़ोई को खुद अपनी पसन्द से खाना चुनने की अनुमति दी गई थी। उसे जब भी जुकाम होता तो सिर्फ़ फल खाती और फलों का रस पीती, बिना किसी सुझाव के। ज़ोई से पहले मैंने ऐसा कोई नन्हा नहीं देखा था जो खाने-पीने के प्रति इतना उदासीन हो। चॉकलेट की थैली उसकी मेज़ पर दिनों-दिन पड़ी रहती और वह उसे हाथ तक न लगाती। दोपहर या रात के खाने में बनी स्वादिष्ट से स्वादिष्ट चीज़ तक में उसकी रुचि नहीं जागती। वह नाश्ता करने बैठती, पर अगर कोई बच्चा उसे खेलने को बुलाता तो झट भाग लेती। पर उसका शरीर हमेशा हट्टा-कट्टा रहा, हमें कभी चिन्ता नहीं हुई।

आहार के बारे में मैं कोई विशेषज्ञ नहीं हूँ। पर मेरा मत है कि इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि बच्चा माँस खाता है या नहीं। उसका भोजन संतुलित हो तो

उसका स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। समरहिल में बच्चों को दस्त लगते या कब्ज़ होते मैंने बिरले ही देखा-सुना है। हम हमेशा कच्ची हरी सब्ज़ियाँ रखते हैं। कई बार नए बच्चे उन्हें खाने से मना कर देते हैं। पर धीरे-धीरे कुछ समय बाद वे उसे पसन्द करने लगते हैं। समरहिल में बच्चे खाने को लेकर बहुत चिन्ता नहीं करते। होना भी यही चाहिए।

बचपन में खाना बच्चों को बेहद आनन्द देता है इसलिए उस आनन्द को खाने के शिष्टाचार से बाँधकर नष्ट नहीं करना चाहिए। दुखद सच्चाई यह है कि समरहिल में वे बच्चे ही सबसे खराब तरह से खाते हैं जिनके घरों में शिष्टाचार पर बड़ा ज़ोर होता है। जिनके घरों में खाने को लेकर जितना कायदा-कानून होता है, आज़ादी मिलने पर वे बच्चे ही सबसे खराब तरह से खाते हैं। इस बारे में कुछ किया नहीं जा सकता। उसे अपनी दबी कुण्ठाओं को निकालने का मौका देना होता है ताकि किशोरावस्था में वह फिर से सहज हो सके।

बच्चे के जीवन में खाना ही सबसे महत्वपूर्ण है, सेक्स से भी महत्वपूर्ण। पेट हमेशा अहमकेन्द्रित और स्वार्थी होता है। अहम बचपन का एक हिस्सा होता है। दस साल के लड़के के लिए उसकी प्लेट का गोश्त उसका इतना अपना होता है जितना कि एक राजा के लिए उसके हरम की रानी भी नहीं।

सेहत और नींद

समरहिल के चालीस वर्षों में हमारे बच्चों को बीमारियाँ बहुत कम हुई हैं। इसका मुझे जो कारण लगता है वह है कि हम जीवन प्रक्रियाओं के पक्ष में हैं, शरीर के प्रति हमारा नज़रिया सकारात्मक है। हम खानपान से अधिक महत्व बच्चों की खुशी को देते हैं। समरहिल में आने वाले मेहमान अमूमन यह टिप्पणी करते हैं कि हमारे बच्चे कितने स्वस्थ लगते हैं। मुझे लगता है कि आनन्द ही हमारी लड़कियों को सुन्दर और लड़कों को आकर्षक बनाता है।

सम्भव है कि हरी पत्तियाँ व सलाद आदि गुर्दे की बीमारियाँ ठीक करते हों। पर दमन से जन्मा आत्मिक रोग दुनिया भर के हरे पत्तों से ठीक नहीं किया जा सकता है। संतुलित आहार लेने वाला कोई व्यक्ति नैतिकता का उपदेश देकर अपने बच्चों का जीना हराम कर सकता है। पर जो व्यक्ति मनोरोगी न हो वह अपने बच्चों का अहित नहीं कर सकता। मेरा अनुभव बताता है कि मानसिक रूप से आहत बच्चों की तुलना में आज़ाद बच्चे शारीरिक रूप से अधिक स्वस्थ होते हैं।

एक बात और देखी है मैंने। समरहिल के कई लड़के छह फुटे होते हैं। तब भी जब

उनके माता-पिता तुलनात्मक रूप से नाटे हों। सम्भव है कि यह महज़ संयोग ही हो। पर यह भी सम्भव है कि मुक्ति और स्नेह का वातावरण उन्हें हर तरह से बढ़ने देता हो, इंचों में भी। मैंने यह ज़रूर देखा है कि हस्तमैथुन पर प्रतिबन्ध हटाने के बाद बच्चे और तेज़ी से बढ़ते हैं।

एक और प्रश्न है नींद का। मुझे पता नहीं कि चिकित्सकों का यह कहना कहाँ तक सच है कि एक बच्चे के लिए कम-से-कम इतने घण्टे सोना ज़रूरी है। जब बच्चे बिलकुल छोटे हों तो यह बात सच होती है। एक सात साल के बच्चे को देर रात तक जागने देने का उसके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि वह सुबह देर तक सो नहीं पाता। कुछ बच्चे सोने जाना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें लगता है इससे वे तमाम मज़ेदार चीज़ों से वंचित रह जाएँगे।

मुक्तशाला में सोने का समय बड़ा सरदर्द है। छोटे बच्चों के मामले में शायद उतना नहीं जितना बड़े बच्चों के मामले में। यौवन रतजगा पसन्द करता है। मुझे इससे हमदर्दी है क्योंकि मैं खुद भी जल्दी सोना पसन्द नहीं करता।

अधिकांश वयस्कों के लिए यह सवाल काम के कारण अपने आप हल हो जाता है। अगर सुबह आठ बजे आपको दफ़्तर में हाज़िर होना है तो देर रात तक जागने के लोभ पर काबू पाना ही पड़ता है।

कुछ दूसरे घटक जैसे खुशी, अच्छा खाना आदि नींद की कमी की पूर्ति कर देते हैं। समरहिल में बच्चे इतवार की सुबह नींद की कमी पूरी करते हैं। ज़रूरत पड़े तो दोपहर का खाना तक छोड़ देते हैं।

जहाँ तक काम और स्वास्थ्य के रिश्ते का प्रश्न है, मैं अपने काम दोहरे मकसद से करता हूँ। मैं यह जानते हुए भी आलू खोदता हूँ कि अगर वही समय मैं एक लेख लिखने में लगाऊँ और आलू किसी मज़दूर से खुदवाऊँ तो फायदे में रहूँगा। फिर भी मैं आलू खोदता हूँ क्योंकि मैं स्वस्थ रहना चाहता हूँ। और यह उद्देश्य मेरे लिए चन्द रुपयों से ज़्यादा कीमती है। मेरा एक दोस्त जो गाड़ियों का व्यापारी है, मुझे अव्वल दर्ज़े का अहमक समझता है। वह कहता है कि आज के मशीनी युग में हाथ से खुदाई करने वाले गधे ही हो सकते हैं। मैं उसे कहता हूँ कि मशीनें पूरे देश का स्वास्थ्य बरबाद कर रही हैं। उनकी वजह से आज न कोई पैदल चलता है, न खुदाई करता है। वह और मैं दोनों उम्र के उस पड़ाव पर पहुँच चुके हैं कि स्वास्थ्य की समस्याओं के बारे में सचेत हों।

पर एक बच्चा स्वास्थ्य के बारे में कोई फिक्र नहीं करता। कोई लड़का स्वस्थ रहने के लिए आलू नहीं खोदता। वह जो कुछ करता है उसके पीछे एक ही उद्देश्य होता है, उस वक्त उसकी रुचि।

समरहिल के स्वस्थ्य रहने का राज़ है आज़ादी, बढ़िया भोजन और ताज़ी हवा - ठीक इसी क्रम में।

साफ-सफाई और कपड़े

व्यक्तिगत साफ-सफाई के मामले में लड़कों की तुलना में लड़कियाँ अधिक व्यवस्थित होती हैं। समरहिल में तकरीबन पन्द्रह साल की उम्र के लड़के-लड़कियाँ अपने रंग-रूप और कपड़ों के प्रति सचेत होने लगते हैं। पर अपने कमरों की सफाई के प्रति लड़कियाँ भी उतनी ही उदासीन होती हैं, जितने लड़के। तकरीबन चौदह सालों तक वे अपनी गुड़ियों को सजाती हैं, नाटक की पोशाकें बनाती हैं और फर्श पर सब कुछ बिखरा हुआ छोड़ती हैं। पर यह गन्दगी रचनात्मक गन्दगी है।

समरहिल में बिरले ही कोई ऐसी लड़की आई होगी जो नहाती न हो। हाँ एक नौ साल की बच्ची ज़रूर आई थी जिसकी दादी को सफाई की बीमारी थी। वे उसे दिन में दसियों बार नहलाती थीं। इसी मिल्ड्रेड की आवासगृह माँ एक दिन मेरे पास यह कहते हुए आई, "सप्ताह भर से मिल्ड्रेड नहाई नहीं है। अब हाल यह है कि वो गंधाने लगी है। मैं क्या करूँ?"

मैंने कहा, "उसे मेरे पास भेज दीजिए।"

कुछ देर में मिल्ड्रेड आई, उसका चेहरा और हाथ बहुत गन्दे थे।

मैंने सख़्त आवाज़ में कहा,"देखो, यह सब नहीं चलेगा।"

उसने प्रतिवाद किया "पर मैं मुँह-हाथ धोना नहीं चाहती।"

"चुप" मैंने कहा, "नहाने-धोने की बात कौन कर रहा है? आइने में अपनी शक्ल तो देखो।" (*उसने चेहरा देखा*)"अपनी शक्ल-सूरत के बारे में क्या सोचती हो?"

"बहुत साफ तो शायद नहीं है।" उसने खिली बाँछों के साथ कहा।

"*बहुत ही* साफ है!" मैंने पलटकर कहा, "इस स्कूल में मुझे लड़कियों की साफ शक्लें नहीं चाहिए। चलो दफा हो जाओ।"

वह सीधे कोयलाघर में गई और अपना चेहरा काला कर आईं। लौटकर शान से मेरे पास आईं, "अब चलेगा?" उसने जानना चाहा।

मैंने आवश्यक गम्भीरता से उसका चेहरा निहारा तब कहा, "ना, ये देखो, गाल पर यह सफ़ेद धब्बा तो छूट ही गया।"

उस रात मिल्ड्रेड नहाई। पर मुझे समझ में नहीं आया कि उसने ऐसा क्यों किया।

मुझे एक सत्रह साल के लड़के का किस्सा याद आता है जो एक निजी स्कूल से आया था। आने के सप्ताह भर बाद ही उसने स्टेशन के उन मज़दूरों से दोस्ती कर ली जो कोयला उठाने का काम करते थे। उसने उनकी मदद करनी शुरू की। जब वह खाना खाने भोजनकक्ष में पहुँचता तो उसके हाथ और चेहरे पर कालिख पुती होती। पर किसी ने उसे एक शब्द भी नहीं कहा। किसे परवाह थी।

निजी स्कूल और घर में साफ-सफाई के लादे गए विचारों की गिरफ़्त से छूटने में उसे कई सप्ताह लग गए। जब कोयले उठाने-लादने की झक पूरी हुई तो फिर से उसका शरीर, उसके कपड़े साफ रहने लगे पर एक फर्क के साथ। अब सफाई उस पर थोपी हुई चीज़ नहीं थीं। गन्दगी सम्बंधी अपनी ग्रन्थियाँ वह खोल चुका था।

जब विली मिट्टी के टीले बनाता है तो माँ चौंकती है, आखिर बच्चे के गन्दे कपड़े देख पड़ोसी क्या कहेंगे! इस स्थिति में सामाजिक प्रतिष्ठा जो दाँव पर लगी होती है। समाज क्या सोचेगा? यानी सामाजिक दाँव व्यक्तिगत दाँव पर भारी पड़ता है। यानी खेलने और बनाने के आनन्द से कहीं ज़रूरी समाज की राय रहती है।

अक़्सर माँ-बाप साफ-सफाई पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देते हैं। सात भयंकर सद्‌गुणों में एक स्वच्छता माना जाता है। जो व्यक्ति अपनी साफ-सफाई पर बड़ा घमण्ड करता है, वह अक़्सर दूसरे दर्ज़े का इन्सान होता है, जो कभी किसी चीज़ में अव्वल न आ सका हो। जो सबसे साफ-सफाई पसन्द होते हैं, अक़्सर उनके दिमाग में बेहद उथल-पुथल होती है। मैं यह बात एक ऐसे इन्सान की तटस्थता के साथ कह रहा हूँ जिसकी मेज़ हमेशा कागज़ों के बेतरतीब ढेर से इस तरह पटी रहती है, जैसे किसी सार्वजनिक बाग में लगे, 'गन्दगी करना मना है।' के साईन बोर्ड के नीचे फैला कूड़े का ढेर।

हमारे परिवार में स्वनिर्देशन में सबसे बड़ी समस्या कपड़े लत्तों को लेकर आई। ज़ोई का बस चलता और अगर उसे ऐसा करने दिया जाता तो वह दिन भर नंगी ही घूमती। एक दूसरी स्वनिर्देशित बच्ची के माता-पिता ने बताया कि जब ठण्ड पड़ने लगती तो उनकी बिटिया अपने आप घर लौट आती और गरम कपड़े माँगती। ज़ोई के साथ हमारा यह अनुभव नहीं रहा। ज़ोई उस समय तक ठिठुरती रहती, जब तक उसकी नाक और गाल नीले न पड़ जाते। और तब भी कपड़े पहनाने की हमारी कोशिशों का वह विरोध करती।

साहसी माता-पिता कह सकते हैं, "उसका शरीर ही उसे निर्देशित करेगा। ठिठुरने दो, वह ठीक ही रहेगी।" पर हममें इतनी हिम्मत नहीं कि हम निमोनिया का ज़ोखिम उठा पाते। सो जितने ज़रूरी लगें हम उसे ज़बरदस्ती कपड़े पहनाते हैं।

छोटे बच्चे क्या पहनेंगे यह माँ-बाप को तय करना चाहिए। जब वे किशोर बन जाएँ

तो उन्हें अपने कपड़े चुनने की छूट देनी चाहिए। लाखों लड़कियाँ इस बात से तकलीफ पाती हैं क्योंकि उनकी माँ उनके कपड़े चुनने पर आमादा रहती हैं। लड़कों के कपड़ों को चुनना अमूमन आसान होता है। जिन माँ-बाप के लिए सम्भव है, उन्हें बच्चों को कपड़ों का खर्च दे देना चाहिए। अगर बच्चा वह पैसा सिनेमा देखने या गोली-चॉकलेट खाने पर खर्च करे, तो यह उसका मामला मानना चाहिए।

जो अक्षम्य अपराध है वह है अपने बच्चों को ऐसे कपड़े पहनाना जिससे वे अपने दोस्तों से अलग नज़र आएँ। किसी लड़के को जो बेहद लम्बा हो गया हो, हाफपैंट पहनाना जबकि उसके साथी लम्बी पैंटें पहनने लगे हों, बेहद क्रूरता का काम है।

बेटियों को अपने बालों को अपनी तरह से सँवारने की छूट दी जानी चाहिए। वे बाल लम्बे रखें या छोटे, या चोटियाँ गूँथें। अगर वे लिपस्टिक लगाना चाहें तो उसमें हर्ज़ क्या है? व्यक्तिगत स्तर पर मुझे उससे नफरत है पर मेरी बेटी लगाना चाहेगी तो मैं उसे मना नहीं करूँगा।

छोटे बच्चों की कपड़ों में कोई सहज रुचि नहीं होती। पर जिन बच्चों के माता-पिता कपड़ों के बारे में हमेशा फिक्रमन्द रहते हैं वे बच्चे भी कुछ समय बाद ऐसी ग्रन्थि के शिकार हो जाते हैं। वे पेड़ पर इस डर से नहीं चढ़ते कि कहीं पैंट फट न जाए।

सामान्य बच्चे अपने कपड़े इधर-उधर पटकते रहते हैं। स्वेटर उतारने के बाद भूल जाते हैं कि वह कहाँ धरा था। गर्मियों की शाम स्कूल परिसर में घूमते वक़्त मुझे ढेरों जूते और जर्सियाँ बिखरे मिलते हैं।

जो बच्चे छात्रावास में नहीं रहते, उन्हें पड़ोसियों की राय को लगातार झेलना पड़ता है। ज़रा उन हज़ारों बच्चों की बात सोचिए जिन्हें इतवारी कपड़ों के नाम पर बलि चढ़ाया जाता है। वे कलफदार कॉलरों और सफ़ेद कपड़ों में जकड़े हुए चलते दिखाई देते हैं और किसी गेंद को लतियाने या फाटक पर चढ़ने से डरते हैं। सौभाग्य से यह बेवकूफी अब धीरे-धीरे खत्म हो रही है।

समरहिल में गर्मियों में लड़के और शिक्षक खाते वक़्त बिना कमीज़ों के देखे जा सकते हैं। इस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होती। ऐसी छोटी-मोटी बातों को हम उनकी सही जगह पर रखते हैं। उनके प्रति उदासीन ही रहते हैं।

कपड़ों को लेकर माता-पिता रुपए-पैसों से जुड़ी ग्रन्थि का प्रदर्शन करते हैं। हमारे यहाँ एक किशोर चोर आया था। चार साल की कड़ी मेहनत और शिक्षकों के अथाह धीरज के बाद वह सुधर सका। जब सत्रह साल की उम्र में वह घर लौटा तो उसकी

माँ ने एक खत लिखा। "बिल घर आ गया है। उसके दो जोड़ी मोज़े गायब हैं। कृपया उन्हें लौटाने की व्यवस्था करें।"

कई बार आवासगृह माता के प्रति भी, माता-पिता अपनी जलन दर्शाते हैं। कुछ माएँ मिलने आने पर सीधे बच्चों के कपड़ों की अलमारी की ओर जाती हैं, नाक-भौं सिकोड़ती हैं और "चच्च चच्च" करती हैं। जताना चाहती हैं कि आवासगृह माता पूरी देखभाल नहीं करती। दरअसल वे बच्चे के प्रति बेहद चिन्तित रहती हैं। कपड़ों को लेकर चिन्ता दरअसल उसके सीखने और हमारे दूसरे मसलों के प्रति चिन्ता है।

खिलौने

अगर मुझमें व्यावसायिक बुद्धि होती तो मैं खिलौनों की दुकान खोलता। हरेक बालवाड़ी ढेरों टूटे-फूटे खिलौनों से भरी होती है। उनकी कोई भी देखभाल नहीं करता है। हरेक मध्यमवर्गीय बच्चे के पास हद से ज़्यादा खिलौने होते हैं। सच्चाई यह है कि महँगे खिलौने हमेशा बरबाद होते हैं।

ज़ोई को एक बार एक पुराने छात्र ने एक बहुत ही बढ़िया बोलने वाली गुड़िया लाकर दी। ज़ाहिर था कि गुड़िया बड़ी महँगी थी। ठीक उसी दौरान एक नए छात्र ने उसे एक सस्ता-सा खरगोश भी दिया। उस कीमती गुड़िया से ज़ोई कुल आठ घण्टा खेली होगी। पर उस सस्ते खरगोश से हफ़्तों तक खेलती रही। हर रात सोते समय वह खरगोश के साथ सोती रही।

ज़ोई के तमाम खिलौनों में एक ही के प्रति उसका प्यार लम्बे समय तक बना रहा। यह खिलौना था एक गुड़िया जो पेशाब करती थी। गुड़िया मैंने उसे तब दी थी जब वह डेढ़ साल की थी। गुड़िया पेशाब कैसे करती है इसमें उसकी कोई रुचि नहीं थी। जब वह चार साल की हुई तब उसने कहा, " मुझे गुड़िया अब अच्छी नहीं लगती। मैं किसी को यह दे देना चाहती हूँ।"

कुछ साल पहले बड़े बच्चों से मैंने एक सवाल पूछा था। "तुम्हें अपने छोटे भाई या बहन पर सबसे ज़्यादा गुस्सा कब आता है?" प्रायः हरेक बच्चे का जवाब समान था "जब वह मेरे खिलौने तोड़ता है।"

कोई खिलौना कैसे चलता है या काम करता है, वह बच्चों को कभी नहीं बताना चाहिए। बल्कि उसकी तब तक मदद नहीं करनी चाहिए जब तक वह उसके राज़ को खुद सुलझा ही न सके।

स्वनिर्देशित बच्चे घण्टों अपने खेल-खिलौनों में उलझे रह पाते हैं। वे उन्हें तोड़ते-फोड़ते भी नहीं, जैसे अक़्सर वयस्कों द्वारा निर्देशित बच्चे करते हैं।

कोई कारण नहीं है कि किसी निजी घर में या जिस कमरे से आवाज़ बाहर न निकलती हो, बच्चों को रसोई के शोर करने वाले बर्तनों से खेलने से रोका जाए। ढक्कन, चम्मच बजाने या ढोल पीटने में मज़ा आता है। सम्भव है कि दुकानों में बिकने वाले खिलौनों की बजाए बच्चे को उनमें ही अधिक मज़ा आए। अक़्सर बाज़ारू खिलौने बच्चे को उबाते हैं। हाँ देखा जाए तो औसत खिलौने बच्चों को उनींदा बना देते हैं।

माँ-बाप आदतन बच्चे के लिए ज़रूरत से ज़्यादा खिलौने खरीदते हैं। बच्चों ने किसी ट्रैक्टर या ज़िराफ की ओर हाथ बढ़ाया और गर्दन हिलाई कि तुरन्त, उसी दम, वे उसे खरीद लेंगे। यही कारण है कि अधिकांश बच्चों के कमरे में ऐसे ढेरों खिलौनों का अम्बार होता है जिनमें उसकी वास्तविक रुचि तक नहीं होती।

बाज़ार में आज रचनात्मक खिलौनों की भारी कमी है। धातु या लकड़ी के ऐसे कई खिलौने हैं जिनसे कुछ बनाया जा सकता है, पर ये रचनात्मक खिलौने नहीं हैं। निर्माण करने वाले खिलौने, शब्द या गणित की पहेलियों की तरह होते हैं। क्योंकि उन्हें किसी दूसरे ने बनाया होता है, इसलिए उनके समाधान पूरी तरह मौलिक हो ही नहीं सकते। मुझे स्वीकारना पड़ रहा है कि मैं कोई मौलिक खिलौना ईजाद नहीं कर पाया हूँ। न ही इस दिशा में मेरे पास कोई सुझाव ही हैं। खिलौनों की दुनिया एक ऐसे जादूगर की तलाश में है जो आज के खिलौना निर्माताओं के बजाए बच्चों के दिलों के करीब पहुँच सके।

शोर

माता-पिता को यह तथ्य स्वीकारना और उसके साथ जीना होगा कि बच्चे स्वभाव से शोरगुल मचाने वाले होते हैं। अगर बच्चे का सही व स्वस्थ विकास होना है, तो उसे काफी शोरगुल भरे खेल की छूट देनी होगी।

मैं चालीस सालों से बच्चों के शोर के साथ जी रहा हूँ। अमूमन मैं कोशिश करता हूँ कि मैं वे आवाज़ें न सुनूँ। बच्चों के शोरगुल की तुलना एक पीतल की फैक्ट्री से की जा सकती है। वहाँ लोगों को हथौड़ों की ठोक-पीट की आदत पड़ जाती है। इसी तरह जिनके घर व्यस्त सड़कों पर स्थित होते हैं वे गाड़ियों के शोर के आदी हो जाते हैं। फर्क इतना भर है कि हथौड़ों की ठोक-पीट और गाड़ियों के शोर में एक तरह की निरंतरता होती है। पर बच्चों का शोर विविध और कर्णकटु होता

है। उस शोर से सिर भन्नाने लगता है। कुछ साल पहले जब मैं मुख्य भवन से निकलकर पास के कॉटेज में रहने लगा तो पचासेक बच्चों के शोर से भरे कई सालों के बाद मुझे अपनी शामें शान्त और सुखदाई लगने लगीं।

समरहिल का भोजनकक्ष बेहद चिल्ल-पौं वाली जगह है। जानवरों की तरह बच्चे भी खाने के समय बड़ा शोर करते हैं। हम केवल उन मेहमानों को बच्चों के साथ खाने पर आमंत्रित करते हैं जिन्हें हंगामा परेशान नहीं करता। मैं और मेरी पत्नी अलग खाते हैं क्योंकि हर दिन दो घण्टे बच्चों को भोजन परोसने के बाद कुछ देर के लिए उस शोर से निजात पाना हमारे लिए ज़रूरी हो जाता है। शिक्षकों को बहुत शोर पसन्द नहीं आता पर किशोर बच्चे छोटे बच्चों के शोरगुल को आसानी से झेलते हैं। जब कभी कोई बड़े बच्चे भोजनकक्ष में छोटे बच्चों के शोर का सवाल उठाते भी हैं, तो छोटे बच्चे इसके विरोध में दूसरी सच्चाई सामने रखते हुए कहते हैं कि बड़े बच्चे भी उतना ही शोर करते हैं।

शोरगुल को दबाना या नियंत्रित करना बच्चों पर उतना भारी दमनकारी असर नहीं डालता जितना शारीरिक क्रियाओं में रुचि को दबाने का होता है क्योंकि शोर कभी *गन्दा* नहीं कहा जाता। जब पिता नाराज़ है और चीखता है "बन्द करो यह शोर!" तो यह उसके अधैर्य की ईमानदार अभिव्यक्ति होती है। पर जब माँ-बाप, "हे ईश्वर! छिः गन्दा!" कहते हैं तो उसमें नैतिक विस्मय की ध्वनि होती है।

समरहिल में कुछ बच्चे पूरे दिन सिर्फ़ खेलते हैं, खासकर जब सूरज मेहरबान होता है। उनका खेल अमूमन शोरगुल भरा होता है। अधिकांश स्कूलों में खेल की तरह शोर का भी दमन किया जाता है। हमारा एक पुराना छात्र पढ़ाई के बाद स्कॉटिश विश्वविद्यालय गया। उसने हमें लिखा कि छात्र कक्षाओं में बेहद शोर करते हैं। यह बात बड़ी थकाती है क्योंकि हम समरहिल में दस साल की उम्र में ही इस चरण को पार कर चुके थे।

मुझे *द हाउस विद द ग्रीन शटर* नामक उपन्यास की एक घटना याद आती है। उसमें एक कमज़ोर शिक्षक को चिढ़ाने और परेशान करने के लिए एडिनबरो विश्वविद्यालय के छात्र अपने पैरों से आवाज़ निकाला करते थे। शोर और खेल साथ चलते हैं, लेकिन वे सात और चौदह की उम्र के बीच ही सर्वोत्तम होते हैं।

आचरण

अच्छे आचरण का मतलब है दूसरों के बारे में सोचना, उनके बारे में महसूस करना। व्यक्ति को समूह के प्रति सचेत होना चाहिए। खुद को दूसरे की स्थिति में रख पाने

की क्षमता होनी चाहिए। शिष्ट आचरण दूसरे को तकलीफ पहुँचाने की छूट नहीं देता। भद्र होने का मतलब है सच में सुरुचिपूर्ण होना। ऐसा भद्र आचरण सिखाया नहीं जा सकता, वह तो अचेतन मानस का हिस्सा होता है।

इसके विपरीत शिष्टाचार सिखाया जा सकता है क्योंकि वह चेतन मानस का हिस्सा होता है। शिष्टाचार भद्र आचरण का मुलम्मा भर है। शिष्टाचार हमें संगीत सभा के दौरान फुसफुसाने की, दूसरों पर टीका-टिप्पणी करने और उनकी निन्दा करने की अनुमति देता है। शिष्टाचार हमें खाने के पहले कपड़े बदलने, किसी महिला के अन्दर आने पर कुर्सी छोड़ने, मेज़ से उठने पर "माफ कीजिए" कहने पर बाध्य करता है। पर यह सब बाहरी दिखावा है।

अभद्र आचरण हमेशा मन की गड़बड़ी से उपजता है। झूठ बोलना, बुराई करना, दूसरों पर टीका-टिप्पणी करना, किसी के पीठ पीछे बकवास करना, ये सब व्यक्तिगत कमज़ोरियाँ हैं। ये कमज़ोरियाँ यह बताती हैं कि वह व्यक्ति खुद से नफरत करता है। इनसे यही सिद्ध होता है कि झूठी बुराई करने वाला स्वयं दुखी है। अगर हम बच्चों को ऐसी दुनिया में ले जाएँ जहाँ वे खुश रह सकें तो घृणा करने की इच्छा भी मर जाएगी। दूसरे शब्दों में ये बच्चे सच्चे और एक गहरे अर्थ में भद्र आचरण करने वाले होंगे। यानी उनमें सच में स्नेह भरी करुणा होगी।

कुछ बच्चे काँटे-छुरी से मटर खाने में महारत हासिल कर पाते हैं पर वे ही बच्चे बीथोवन की सिम्फनी के दौरान संगीत सुनने के बदले गप्पें लड़ा सकते हैं। पर जो श्रीमती ब्राउन के सामने पड़ने पर तुरन्त टोपी उतारकर सर नहीं झुकाते, वे लौटकर यह भी नहीं बताते कि श्रीमती ब्राउन ब्राण्डी पीती हैं।

मेरे एक भाषण के दौरान एक बुजुर्ग खड़े हुए और आज के बच्चों की अभद्रता की शिकायत करने लगे। उन्होंने गर्म होकर कहा, "पिछले इतवार मैं पार्क में जा रहा था तो दो छोटे बच्चे आए। उनमें से एक बोला, 'हैलो मैन!'"

मैंने पूछा, "तो इसमें क्या हर्ज़ था? अगर वह कहता 'हलो भद्रपुरुष' तो क्या आपको बेहतर लगता? सच्चाई यह है, आपका आत्मसम्मान आहत हो गया। आपको बच्चों से भद्रता की गुलामी की अपेक्षा है।"

यह बात कई वयस्कों के बारे में सच है। यह विशुद्ध घमण्ड ही है। यह कुछ ऐसा है मानो आप सामन्ती राजा हैं और बच्चे आपकी प्रजा हैं। यह स्वार्थ है, जिसका बच्चों के स्वार्थ की तरह, कोई औचित्य भी नहीं है। बच्चों को तो स्वार्थी *होना ही* होता है, पर वयस्कों को अपने स्वार्थीपन को केवल वस्तुओं तक सीमित रखना चाहिए। व्यक्तियों को उसके दायरे में नहीं लपेटना चाहिए।

मैं देखता हूँ कि बच्चे एक-दूसरे की गल्तियाँ सुधारते हैं। मेरा एक छात्र खाते समय

काफी चपचप करता था। उसके सभी दोस्त उसे टोकते थे। पर जब एक नन्हें ने कीमा खाने के लिए चक्कू को काम में लिया तो सबको यह तरीका बड़ा पसन्द आया। वे एक-दूसरे से पूछने लगे कि खाने के लिए काँटा ही क्यों, चक्कू क्यों नहीं काम में लिया जा सकता। यह जवाब कि उससे मुँह कट सकता है, उन्हें नहीं जँचा। क्योंकि उनका मानना था कि खाने के चक्कू अक़्सर इतने भोथरे होते हैं कि उनसे कुछ भी नहीं कटता।

बच्चों को यह छूट होनी चाहिए कि वे शिष्टाचार पर सवाल उठाएँ। आखिर कोई मटर खाने के लिए काँटे-छुरी का इस्तेमाल करता है या नहीं, व्यक्तिगत मामला है। पर जिन्हें *सामाजिक आचरण* कहा जाता है उन पर सवाल उठाने की छूट उन्हें नहीं होनी चाहिए। अगर कोई बच्चा कीचड़ में सने जूते लेकर बैठक घर में घुस आए तो हम सब चिल्लाते हैं। क्योंकि बैठक का कमरा बड़ों का होता है। वहाँ वयस्कों को अधिकार होता है कि वे तय करें कि कौन-कैसे घुस सकता है, और कौन नहीं।

एक लड़के ने हमारे कसाई से बदतमीज़ी की। मैंने स्कूल की आम सभा में कहा कि कसाई ने शिकायत की है। पर मुझे लगता है कि बेहतर यह होता कि वह पलटकर उस लड़के को एक झापड़ रसीद कर देता। लोग जिन्हें अमूमन भद्रता कहते हैं, उसमें सिखाने लायक कुछ भी नहीं होता। हद से हद ये नियम-कायदे, सामाजिक तौर-तरीकों के अवशेष कहलाए जा सकते हैं। महिलाओं के आने पर सिर पर से टोपी उठाना एक अर्थहीन रिवाज़ है। मैं जब छोटा था तो मैं पादरी साहब की पत्नी को देखकर टोपी उठाता था, पर अपनी माँ या बहन को देखकर नहीं। शायद मुझे कहीं यह लगता होगा कि माँ और बहन के सामने ढोंग की ज़रूरत नहीं है। वैसे देखा जाए तो टोप उतारने का रिवाज़ कम-से-कम नुकसानदेह तो नहीं है। पर बेहतर यही है कि दस साल के बच्चों से ऐसी चीज़ें दूर ही रखी जाएँ, जिनसे ढोंग की बू आती हो।

भद्र व्यवहार सिखाया नहीं जाना चाहिए। अगर सात साल की लड़की या लड़का हाथ से खाना चाहे तो उसे इसकी छूट दी जानी चाहिए। किसी भी बच्चे को ऐसा व्यवहार करने के लिए सिर्फ़ इसलिए बाध्य नहीं करना चाहिए कि मेरी चाचीजी उसे पसन्द करती हैं। बच्चे को बेईमानी भरा शिष्टाचार सिखाने के बदले दुनिया भर के रिश्तेदारों और पड़ोसियों की तिलांजलि देना बेहतर है।

समरहिल के पुराने छात्र-छात्राओं का आचरण बेहद भद्र है। इस बात के बावजूद कि बारह साल की उम्र में उन्होंने खाते वक्त अपनी थालियाँ चाटी थीं। किसी बच्चे को 'धन्यवाद' कहने पर बाध्य नहीं करना चाहिए। बल्कि उन्हें 'धन्यवाद' कहने को प्रोत्साहित भी नहीं करना चाहिए।

वयस्कों के बनाए शिष्टाचार को काम में लेने वाले अधिकांश लोग अगर यह जानते कि सामान्य साँचे में ढले लड़के-लड़कियों की भद्रता कितनी सतही होती है, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य होता। बहुत शिष्ट आचरण वाले बच्चे भी समरहिल आते हैं तो उनका शिष्टाचार कुछ समय में पूरी तरह झड़ जाता है। शायद वे यह समझ पाते हैं कि उनका बनावटी शिष्टाचार यहाँ बहुत बेमानी लगता है। वे अपनी आवाज़ की बेईमानी, आचरण और कृत्यों की बेईमानी त्याग देते हैं। निजी स्कूलों से आए बच्चों को ही बेईमानी और बदतमीज़ी त्यागने में सबसे ज़्यादा समय लगता है। पर आज़ाद बच्चे गुस्ताखी नहीं करते हैं।

मेरे अनुसार स्कूल के मास्टर साहब के प्रति श्रद्धा एक कृत्रिम झूठ है, जिसके लिए ढोंग का सहारा लेना पड़ता है। जब कोई सच में किसी का आदर करता है तो वह अनायास ही करता है। मेरे छात्र मुझे जब चाहें 'बेवकूफ गधा' कह सकते हैं। पर वे मेरा आदर इसलिए करते हैं क्योंकि मैं भी उनका आदर करता हूँ। इसलिए नहीं कि मैं स्कूल का प्रधानाध्यापक हूँ और आले पर धरे भगवान की मूरत के समान हूँ जिसके सामने सिर झुकाना ज़रूरी है। हमारे बीच परस्पर श्रद्धा इसलिए है क्योंकि हम एक-दूसरे को पसन्द करते हैं, एक-दूसरे के प्रशंसक हैं।

एक बार एक माँ ने सवाल किया, "अगर मैं अपने बच्चे को यहाँ पढ़ने भेजूँ तो छुट्टियों में घर आने पर वह जंगली व्यवहार तो नहीं करेगा?"

मेरा जवाब था,"बेशक ! अगर आपने उसे जंगली बना दिया है तो ज़रूर करेगा।"

यह सच है कि जो बिगड़ैल समरहिल आने के बाद घर जाते हैं, तो कम-से-कम पहले साल तक वे घर लौटने पर बेहद जंगली व्यवहार करते हैं। अगर उसे शिष्टाचार सिखाकर बड़ा किया गया है तो बच्चा हर बार जंगलीपन पर उतरेगा। पर इससे यही तो सिद्ध होता है कि कृत्रिम शिष्टाचार बच्चों के गले नहीं उतरता।

कृत्रिम शिष्टाचार हमारे दिखावटीपन की सतह है जो आज़ादी के वातावरण में सबसे पहले उतार फेंकी जाती है। नए बच्चे सामान्यतः बड़ा शिष्ट आचरण करते हैं। मतलब बनावटी व्यवहार करते हैं। पर समय के साथ वे समरहिल में भद्र व्यवहार भी सीखते हैं। यह वास्तविक भद्रता होती है, इसलिए क्योंकि हम किसी तरह के शिष्टाचार की माँग नहीं करते। हम बच्चों से 'कृपया'और 'धन्यवाद' तक नहीं बुलवाते। फिर भी बाहर से आए मेहमान कहते हैं कि हमारे बच्चों का व्यवहार बहुत अच्छा है।

पीटर जो हमारे पास आठ साल की उम्र से उन्नीस साल तक रहा, बाद में दक्षिण अफ्रीका गया। वहाँ से उसकी मेज़बान महिला ने खत में लिखा, "हरेक व्यक्ति उसके भद्र आचरण से मोहित है।" पर वह समरहिल में इतने सालों तक रहा तो

मेरा ध्यान इस बात पर कभी नहीं गया कि उसका आचरण बढ़िया है या नहीं।

दरअसल समरहिल एक वर्गहीन समाज है। यहाँ किसी बच्चे का पिता धनी है या उनका ओहदा ऊँचा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस चीज़ का असर होता है वह है बच्चे का व्यक्तित्व। और जिस चीज़ का सबसे ज़्यादा महत्व है वह यह है कि बच्चा कितना मिलनसार है। यानी वह समुदाय का अच्छा सदस्य बन सकता है या नहीं। हमारे यहाँ जो आचरण नज़र आता है वह हमारे स्वशासन की उपज है। यहाँ हरेक को दूसरे के नज़रिए को देखने और समझने पर बाध्य होना पड़ता है। हम यह कल्पना तक नहीं कर सकते कि कोई तुतलाने वाले या लंगड़े बच्चे पर हँसे, उसका मखौल उड़ाए। पर अन्य नामी-गिरामी निजी स्कूलों में ये दोनों बातें अक्सर दिखती हैं। जो लड़के-लड़कियाँ हमेशा बड़ी शिद्दत से 'कृपया', 'धन्यवाद' और 'सर, ज़रा माफ करें' आदि कहते हैं उनमें दूसरों के प्रति वास्तविक सरोकार पूरी तरह नदारद हो सकता है।

भद्र आचरण दरअसल ईमानदारी का मामला है। समरहिल छोड़ने के बाद हमारा एक छात्र जैक एक फैक्ट्री में काम करने लगा। उसने पाया कि जो व्यक्ति लोगों को नट-बोल्ट दिया करता था उसका मिजाज़ हमेशा खराब रहता था। जैक ने इस पर खूब सोचा और तब इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि हरेक मैकेनिक बिल के पास जाता और चीखता, "सुन, बिल ज़रा आठ इंच वाले नट तो निकाल दे।" बिल कोट-पैंट पहनता था। जैक को लगा कि बिल सोचता है कि वह वर्दी पहनने वाले मैकेनिकों से कहीं ऊँचा है। पर दूसरे उसे अपने जैसा साधारण आदमी ही मानते हैं और जो सम्मान उसे मिलना चाहिए वह नहीं देते। इसी वजह से बिल गरमाया रहता है। सो जौक को जब भी नट-बोल्ट चाहिए होते वह बिल के पास जाता और कहता, "माफ कीजिए, मिस्टर ब्राउन, मुझे कुछ नट-बोल्ट चाहिए।"

जैक ने मुझे बताया, "मैं उनकी मस्का-पॉलिश नहीं कर रहा था। मैं तो सिर्फ मनोविज्ञान काम में ले रहा था। दरअसल मुझे उसके लिए बड़ा दुख होता था।" मैंने जानना चाहा, "इसका नतीजा क्या निकला?"

"ओह!" जैक ने कहा, "फैक्ट्री में अकेला मैं ही हूँ, जिससे वह सीधे मुँह बात करता है।"

इसे मैं भद्रता का बेहतरीन नमूना कहता हूँ। सामुदायिक जीवन बच्चों को जो बात सिखाता है, वह है - दूसरों की भावना का ख़्याल रखना।

छोटे बच्चों में अभद्र व्यवहार पर मेरी नज़र भी नहीं जाती। इसलिए, क्योंकि मैं यह तलाशता भी नहीं। पर फिर भी मैंने यह कभी नहीं देखा कि बातचीत करने वाले दो मेहमानों के बीच से कोई छोटा बच्चा भागता हुआ घुस आए। बच्चे मेरी

बैठक में आने के पहले दस्तक नहीं देते, पर घुसने पर अगर देखें कि मैं मेहमानों से बात कर रहा हूँ, तो चुपचाप, माफी माँगकर खिसक लेते हैं।

हाल में एक सौदा लाने वाले ने हमारे बच्चों की तारीफ की। उसने मुझसे कहा, "मैं पिछले तीन सालों से अपनी गाड़ियाँ लेकर आता रहा हूँ। एक मर्तबा भी किसी ने उसे न तो खरोंचा, न उनमें घुसने की कोशिश की और यह उस स्कूल की बात है जिसके बच्चों के लिए कहा जाता है कि वे दिन भर खिड़कियाँ तोड़ते रहते हैं।"

समरहिल में बच्चे मेहमानों से दोस्ताना बर्ताव करते हैं, जिस बारे में मैं पहले ही बता चुका हूँ। दोस्ताना बर्ताव भी भद्र आचरण ही की श्रेणी में आता है। जो मेहमान मन में शंकाएँ या विरोध लिए आते हैं, मैंने उनसे भी बच्चों को बदतमीज़ी करते नहीं देखा है। बशर्ते वे बच्चे हमारे पास कम से कम छह महीने रह चुके हों।

हमारे नाटकों के दौरान बच्चों का आचरण अच्छा होता है। अगर नाटक बढ़िया न भी हो तो भी कुछ तालियाँ तो बजती ही हैं - ज़ाहिर है कम बजती हैं। सब यह मानकर चलते हैं कि अभिनय करने वाले और नाटककार ने पूरी कोशिश की है, जिसकी आलोचना नहीं होनी चाहिए, उसका मज़ाक नहीं उड़ना चाहिए।

कुछ माता-पिता के लिए शिष्टाचार सबसे बड़ा कीड़ा है। एक भद्र घर का दस साल का बच्चा समरहिल आया। वह बैठक में घुसने पर दरवाज़ा खटखटाता, जाते समय दरवाज़ा धीमे से बन्द करता। मैंने घोषणा की कि यह सब ऊपरी शिष्टाचार सप्ताह भर ही चलेगा। पर मैं गलत सिद्ध हुआ, वह व्यवहार सिर्फ दो दिन ही चला।

मैं किसी बच्चे पर चिल्लाता हूँ, "दरवाज़ा बन्द करो भाई।" इसलिए नहीं कि मैं उसे भद्र आचरण सिखाना चाहता हूँ। इसलिए कि मैं खुद उठकर दरवाज़ा बन्द नहीं करना चाहता। भद्र आचरण की अवधारणा वयस्क अवधारणा है। बच्चों की, फिर चाहे वे किसी प्रोफेसर के बच्चे हों या कुली के, भद्र आचरण में कोई रुचि नहीं होती।

सभ्यता की प्रगति के लिए दुनिया से ढोंग और कपट हटाना है। हमें बच्चों को अपनी सभ्यता के दिखावटीपन से आगे बढ़ने की छूट देनी होगी। हम बच्चों को भय और घृणा से मुक्त कर सकें तो दरअसल हम भद्र आचरण को नई सभ्यता की दिशा में बढ़ाने में मददगार हो सकेंगे।

पैसा/धन

अधिकांश बच्चों के लिए पैसा प्रेम का प्रतीक है। चाचा मुझे चवन्नी देते हैं, पर बुआ मुझे रुपया। सो बुआ मुझे चाचा से ज़्यादा प्यार करती हैं। माता-पिता यह समझते हैं और इसीलिए अक़्सर अपने बच्चों को ज़रूरत से ज़्यादा पैसा दे, उन्हें बिगाड़ते हैं। जिस बच्चे को वे प्यार नहीं करते, उसकी भरपाई करने के लिए उसे ज़्यादा जेबखर्च देते हैं।

हममें से कोई भी जीवन में पैसे का मोल आँकने से बच नहीं सकता। इसका दबाव हर ओर से आता है। हम संगीत सुनने बालकनी की टिकटें खरीदकर बैठते हैं, हमारे बच्चे गर्मियों की छुट्टियों में महँगे निजी शिविरों में जाते हैं। पैसे का मूल्य सबके लिए एक खतरा है।

कोई माँ प्रतिवाद में कहती है, "अपनी बेटी को मैं दुनिया भर के सोने के बदले भी न बेचूँ।" पाँचेक मिनट बाद ही अगर बच्ची से गलती से भी पाँच रुपए की एक प्लेट टूट जाए तो उसे ठोक देती है।

माता-पिता बच्चे में पैसे की चिन्ता ठूँसते हैं। मैंने अक़्सर किसी बच्चे को दुखी हो कहते सुना है, "हाय, मेरी घड़ी गिरकर टूट गई। माँ क्या कहेगी? मुझे तो उसे बताने में भी डर लग रहा है।"

यदाकदा इसका उल्टा भी नज़र आता है। मैंने किसी लड़के या लड़की को अपने घर के प्रति नफरत ज़ाहिर करने के लिए जानबूझकर चीज़ें तोड़ते देखा है। वे सोचते हैं, "मेरे माँ-बाप मुझे प्यार नहीं करते, इसकी कीमत उन्हें चुकानी होगी।" जब उन्हें नील स्कूल से तोड़-फोड़ का बिल भेजेगा तो वे गुस्से से पागल हो जाएँगे।

कुछ माता-पिता समरहिल में पढ़ने वाले अपने बच्चों को कुछ ज़्यादा ही जेबखर्च भेजते हैं, तो कुछ बहुत कम। मेरे लिए यह हमेशा से एक बड़ी समस्या रही है, जिसका कोई समाधान नहीं है। हर सोमवार को सभी बच्चों को दो पेंस का जेबखर्च मिलता है। पर कुछ के पास डाक से काफी पैसे आते हैं, कुछ के पास बिलकुल नहीं।

स्कूल की आमसभा में मैंने कई बार यह सुझाव रखा है कि जेबखर्च का सारा पैसा एक साथ जमा कर लिया जाए और सबमें बराबर बँटे। मैंने कहा है कि किसी को

सप्ताह में पाँच रुपए मिलें और किसी को चवन्नी, यह अन्याय है। ज़्यादा पैसा पाने वाले बच्चों की संख्या बहुत कम होते हुए भी मेरा यह प्रस्ताव कभी नहीं माना गया। जो सिर्फ़ चवन्नी पाता है वही बच्चा अपने अमीर दोस्तों की आमदनी को सीमित करने को तैयार नहीं होता।

फिर भी मेरा मानना है कि बच्चे को अधिक देने के बदले कम देना ही बेहतर है। जो पिता एक बारह साल के बच्चे को पाँच डॉलर का नोट थमाता है वह नासमझी कर रहा है। यह तभी होना चाहिए जब इतनी बड़ी राशि का कोई खास उद्देश्य हो, जैसे साइकिल की बत्ती खरीदना। अधिक पैसा बच्चों के मूल्य बिगाड़ता है। किसी बच्चे को एक खूबसूरत, कीमती साइकिल देना, जिसकी वह देखभाल तक न करे या कोई रेडियो या महँगा खिलौना देना जो रचनात्मक न हो, बेमानी है।

ज़्यादा पैसा बच्चे के काल्पनिक जगत को बाधित करता है। किसी बच्चे को महँगी नाव देने पर, लकड़ी के टुकड़े से खुद अपनी नाव बनाने का रचनात्मक आनन्द भी छिन जाता है। अक़्सर कोई नन्ही खुद की बनाई कपड़े की गुड़िया को महँगी, खूबसूरत कपड़े पहने, बाज़ार में बिकने वाली, रोने या बोलने वाली गुड़िया से कहीं ज़्यादा प्यार करती है।

मैंने पाया है कि छोटे बच्चे रुपए-पैसे को कीमती नहीं मानते। पाँच साल का नन्हा या नन्ही अपनी चवन्नी, अठन्नी गिरा या फेंक देता है। इससे सीख यह मिलती है कि बच्चों को पैसे बचाना सिखाना गलत है। घरेलू बचत बैंक, बच्चे से नाजायज़ माँग रखता है। किसी सात साल के बच्चे के लिए यह बात बेमानी है कि उसके खाते में सौ-पचास रुपए जमा हैं, खासकर तब जब उसे यह शक हो कि किसी दिन उसके माँ-बाप वह पैसा निकालकर उससे कुछ ऐसी चीज़ खरीद देंगे जो वह चाहता तक नहीं।

विनोद/हास्य

हमारे स्कूलों में और शैक्षिक पत्रिकाओं में हास्य-विनोद की भारी कमी है। मैं जानता हूँ कि विनोद के अपने खतरे हैं। कुछ लोग ज़िन्दगी के अधिक गम्भीर मुद्दों को छुपाने के लिए भी विनोद का इस्तेमाल करते हैं क्योंकि किसी चीज़ का सामना करने से अधिक आसान है उसे हँसी-मज़ाक में उड़ा देना। बच्चे विनोद का इस तरह से इस्तेमाल नहीं करते। उनके लिए विनोद और मस्ती का मतलब है दोस्ती, याराना। कठोर शिक्षक यह जानते हैं इसीलिए वे अपनी कक्षा से हँसी-मज़ाक को दूर रखते हैं।

सवाल यह है कि *क्या एक सख़्त शिक्षक में विनोद की भावना हो भी सकती है?* मुझे तो इसमें शंका है। मैं अपने रोज़मर्रा के काम में दिन भर इसका इस्तेमाल करता हूँ। मैं हरेक बच्चे से हँसी-मज़ाक करता हूँ, पर उनको यह भी पता है कि ज़रूरत पड़ने पर मैं पूरी तरह से गम्भीर भी हो सकता हूँ।

आप बच्चों के माता-पिता हों या शिक्षक हों, उनसे सही तरह से निपटने के लिए आपको उनके विचार और भावनाओं को समझना होगा। और आपका स्वभाव विनोदी होना चाहिए - वह भी *बचकाना* विनोदी। बच्चे से हँसी-मज़ाक करने से उसे लगता है कि आप उसे प्यार करते हैं। ध्यान रहे यह विनोद तीखा या आलोचनात्मक न हो।

बच्चों में विनोद को विकसित होते देखना बड़ा मज़ेदार होता है। बल्कि इसे मस्ती कहना चाहिए क्योंकि बच्चों में विनोद जागने से पहले मस्ती की भावना जन्मती है। डेविड बारटन का तो जन्म ही मानो समरहिल में हुआ था। जब वह तीनेक साल का था तो मैं उससे कहता, "मैं समरहिल देखने आया हूँ और नील को तलाश रहा हूँ। बताओ ज़रा, वे कहाँ हैं?" डेविड मेरी ओर तिरस्कार से देखता और कहता, "बेवकूफ, तुम्हीं तो नील हो।"

जब डेविड सात साल का हुआ तो एक दिन मैंने उसे बाग में रोका। मैंने पूरी गम्भीरता से कहा, "डेविड बारटन से कहना कि मैं उससे मिलना चाहता हूँ। शायद वह कॉटेज में है।"

डेविड की बाँछें खिल उठीं। उसने कहा, "ठीक है!" और वह कॉटेज तक गया और दो मिनट में लौट आया।

"वह कह रहा है कि वह नहीं आएगा।" उसने एक चतुर मुस्कान के साथ कहा।

"उसने कोई कारण बताया?"

"जी हाँ, उसने कहा कि वह अपने चीते को खाना खिला रहा है।"

सात साल की उम्र में वह मज़ाक समझने लगा और मौका पड़ने पर पीछे नहीं हटा। पर जब मैंने दो साल के रेमण्ड से कहा, "क्योंकि उसने हमारा मुख्य द्वार चुरा लिया है उसके जेबखर्च के आधे पैसे सज़ा के बतौर काट लिए जाएँगे," तो वह रो पड़ा। मुझे अपनी गलती का अहसास हो गया। परन्तु दो साल बाद वह मेरे मज़ाकों का अर्थ समझने लगा।

तीन साल की सैली उस वक्त खिलखिलाती है जब मैं शहर में उसे देखकर समरहिल का रास्ता पूछता हूँ। पर सात-आठ साल की लड़कियाँ मुझे उल्टा रास्ता दिखाती हैं।

जब बाहरी मेहमान आते हैं तो मैं कॉटेज में रहने वाले लड़कों का परिचय देते हुए कहता हूँ, "ये सुअर हैं और सुअरों की-सी आवाज़ निकालते हैं।" एक बार जब मैंने यह परिचय दिया तो मैं हक्का-बक्का रह गया क्योंकि एक आठ साल की लड़की ने नाक-भौं चढ़ाते हुए कहा, "क्या यह मज़ाक बासी नहीं हो चुका है?" मुझे मानना पड़ा कि वह सही थी।

लड़कियाँ भी उतनी ही विनोदी होती हैं जितने लड़के। पर वे अपने बचाव के लिए लड़कों की तरह विनोद का उपयोग नहीं करतीं। कई लड़के अपनी रक्षा इस तरह करते हैं। मैंने डेव पर असामाजिक व्यवहार का आरोप लगते देखा है। वह अपनी गवाही इतने मज़ाकिया लहज़े में देता है कि सब प्रभावित हो जाते हैं और उसे छुटपुट सज़ा ही मिलती है। पर लड़कियाँ आसानी से खुद को गलत मान लेती हैं और अपना बचाव ऐसे नहीं करती हैं। सबसे प्रबुद्ध घरों में भी लड़कियों में एक सामान्य हीनभावना होती है, जो हमारा समाज महिलाओं पर जन्म से ही लादता है।

बच्चे के साथ गलत समय पर हँसी-मज़ाक नहीं करना चाहिए, न ही उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचानी चाहिए। अगर उसकी शिकायत वास्तविक हो तो उसे पूरी गम्भीरता से लिया जाना चाहिए। जिस बच्चे को एक सौ दो बुखार हो तो उससे मज़ाक करना सही नहीं है। पर जब वह किसी रोग से ठीक हो रहा हो तो आप डॉक्टर बन मज़ाक कर सकते हैं। तब उसे मज़ाक समझ और पसन्द आएगा। शायद बच्चों को मज़ाक इसलिए पसन्द है क्योंकि इसमें दोस्ताना अन्दाज़ और हँसी का पुट होता है। हाज़िरजवाब बच्चे कभी भी चुभने वाला मज़ाक नहीं करते।

3

सेक्स

सेक्स के प्रति नज़रिया

समरहिल आने वाले छात्र-छात्राओं में एक भी ऐसा नहीं था जो यौनिकता तथा शारीरिक क्रियाकलापों के प्रति एक बीमार नज़रिए के साथ न आया हो। आधुनिक माता-पिता के बच्चों का नज़रिया भी, जिन्हें बच्चों के जन्म का रहस्य समझा दिया गया हो, ठीक वैसा ही गुप्त होता है जैसा कि धार्मिक रूप से कट्टर माता-पिता के बच्चों का होता है। माता-पिता और शिक्षक का सबसे कठिन कार्य है सेक्स के प्रति एक नया अभिमुखीकरण तलाशना।

यौन वर्जनाओं के कारणों के बारे में हम इतना कम जानते हैं कि हम उनकी उत्पत्ति का केवल अनुमान भर लगा सकते हैं। यौन वर्जना क्यों है इससे मेरा तात्कालिक सरोकार नहीं है। पर यौन वर्जना है, यह हर किसी ऐसे व्यक्ति के लिए गहरे सरोकार का विषय है, जिस पर दमित बच्चों के उपचार की ज़िम्मेदारी हो।

हम वयस्क अपनी शैशवावस्था में ही भ्रष्ट कर दिए गए थे। हम यौन मसलों से कभी मुक्त नहीं हो सकते। *चेतन* स्तर पर हम स्वतंत्र हो सकते हैं। सम्भव है हम ऐसी किसी समिति के सदस्य हों जो बच्चों को यौन शिक्षा देने का काम करती हो। पर मुझे भय है कि *अवचेतन* रूप से हम वही बने रहते हैं जो हमें शैशव के अनुकूलन ने बना डाला है। सेक्स से घृणा करने वाले, सेक्स से डरने वाले।

मैं यह मानने को पूरी तरह तैयार हूँ कि यौन के प्रति मेरा अवचेतन नज़रिया, उस स्कॉटिश गाँव का कैल्विनिस्ट नज़रिया है जो जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में मुझ पर थोपा गया था। सम्भव है कि वयस्कों को इससे कभी मुक्ति न मिले। पर बच्चों को इससे मुक्ति मिलने की पूरी सम्भावना है। बशर्ते हम उन पर भी यौन सम्बंधी वही भद्दे विचार न लादें जो कभी हम पर लादे गए थे।

बचपन में ही बच्चे यह सीखते हैं कि यौनिक पाप, सबसे भारी पाप है। यौन नैतिकता से जुड़ी भूलों को माता-पिता कठोरतम सज़ा देते हैं। जो लोग फ्रॉयड पर यह आरोप लगाते हैं कि 'वह हरेक चीज़ में यौन ही देखता है' ठीक वे ही लोग यौन कथाएँ कहते और सुनते हैं, उन पर ठहाके लगाते हैं। जो लोग सेना से जुड़े रहे हैं, यह बखूबी जानते हैं कि सेना की भाषा यौन-भाषा है। लगभग सभी लोग इतवारी अखबारों में तलाक और यौन-अपराधों के चटपटे वर्णन पढ़ना पसन्द

करते हैं। अधिकतर पति अपने क्लबों के शराबखानों में सुने किस्से घर आकर अपनी बीबियों को सुनाते हैं।

यौन किस्सों से हमें जो मज़ा मिलता है वह यौन मसलों पर हमारी अस्वास्थ्यकर शिक्षा का ही नतीजा है। यौन में हमारी यह रुचि दमन का परिणाम है। फ्रॉयड के अनुसार सच्चाई स्वतः ही सामने आ जाती है। बच्चे में यौन जिज्ञासा की वयस्कों द्वारा निन्दा एक खालिस पाखण्ड है। यह निन्दा अपने अपराधबोध को दूसरों पर थोपने की कोशिश भर है। माता-पिता यौन सम्बंधी गल्तियों पर इसलिए कठोर दण्ड देते हैं क्योंकि वे स्वयं यौन अपराधों में बेहद रुचि रखते हैं, यद्यपि यह रुचि अस्वस्थ रुचि होती है।

ऐसा क्यों है कि शरीर सूली पर चढ़ाने की बात इतनी लोकप्रिय है? धार्मिक आस्थाओं वाले लोग कहेंगे कि शरीर ही व्यक्ति को पतन की ओर खींचता है। शरीर को घिनौना कहा जाता है, क्योंकि वही पाप की ओर बहकाता है, लुभाता है। शरीर के प्रति यही घृणा प्रसव के विषय को कक्षाओं के अँधेरे कोनों में धकेल देती है। और इस तरह जीवन के जगज़ाहिर तथ्य नम्र-वार्तालाप की आड़ में ढक जाते हैं।

फ्रॉयड यौन को इन्सानी आचरण में सबसे बड़ी ताकत मानते थे। ईमानदार अवलोकन करने वाले सभी लोग इससे सहमत होंगे। पर नैतिक-शिक्षा ने उस पर अधिकतम बल दिया है। बच्चे के अपने गुप्तांग को छूने पर माँ उसका पहला सुधार करती है। और यही टोकना गुप्तांग को दुनिया की सबसे मोहक और रहस्यमय वस्तु बनाता है। फल को वर्जित बनाना ही उसे सुस्वादु और सम्मोहक बनाना है।

बच्चे के दमन की जड़ है यौन-वर्जना। मैं *यौन* को केवल सम्भोग तक सीमित नहीं कर रहा। यह सम्भव है कि स्तनपान करता बच्चा भी इस बात से दुखी हो कि उसकी माँ अपने खुद के शरीर को नापसन्द करती है, या उस बच्चे को जो अपने खुद के शरीर में आनन्द लेता है, उसे अनुचित मान, ऐसा करने से रोकती हो।

जीवन के प्रति जितने नकारात्मक दृष्टिकोण हैं उनका आधार यौन है। जिन बच्चों में यौन को लेकर अपराधबोध नहीं होता उन्हें धर्म या रहस्यवाद की दरकार नहीं पड़ती क्योंकि यौन को भारी पाप माना जाता है। वे बच्चे जो यौन भय या यौन लज्जा से एक हद तक मुक्त हैं, ईश्वर से क्षमा या दया की भीख नहीं माँगते। ऐसा इसलिए क्योंकि वे अपराध बोध से ग्रसित नहीं होते।

जब मैं छह वर्ष का था, मैंने और मेरी बहन ने एक दूसरे के गुप्तांग तलाश लिए। स्वाभाविक था कि हम उनसे खेलने लगे। हमारी माँ ने हमें पकड़ा और जमकर धुनाई की। मुझे घण्टों तक एक अँधेरी कोठरी में बन्द रखा गया और फिर घुटनों के बल झुककर ईश्वर से क्षमा याचना करवाई गई।

इस प्रारम्भिक सदमे से उबरने में मुझे कई दशक लगे। सच तो यह है कि मैं अब तक यदाकदा यह सोचता हूँ कि मैं उससे पूरी तरह उबरा भी हूँ या नहीं।

आज के कितने वयस्कों को ठीक ऐसा ही अनुभव हुआ है? आज के कितने बच्चों के जीवन के प्रति स्वाभाविक प्रेम को ऐसे व्यवहार से घृणा और आक्रामकता में बदला जा रहा है? उन्हें बताया जाता है कि गुप्तांगों को छूना खराब काम या पाप है और नितान्त स्वाभाविक पखाना जाना घृणित है।

विल्हैल्म राइख अपनी पुस्तक *कैरेक्टर एनालिसिस* (चरित्र विश्लेषण) में बताते हैं कि नैतिकता प्रशिक्षण न केवल सोचने की प्रक्रिया को तोड़-मरोड़ देता है बल्कि शरीर संरचना तक में इस कदर उतर आता है कि व्यक्ति की भंगिमा को तनावपूर्ण बना देता है, उसके कूल्हे के हिस्से को सिकोड़ता है। मैं राइख से सहमत हूँ। समरहिल में सालों तक हर तरह के बच्चों के साथ काम करते हुए मैंने पाया है कि जब तक भय उनकी पेशियों को तान न दे वे बेहद खूबसूरती के साथ चलते, दौड़ते, कूदते और खेलते हैं।

बच्चों के यौन दमन को रोकने के लिए हम क्या कर सकते हैं? अव्वल तो यह कि शुरुआत से ही बच्चे को उसके शरीर के किसी भी हिस्से को छूने, उससे खेलने दें। मेरे एक मनोवैज्ञानिक मित्र को अपने चार वर्षीय पुत्र से कहना पड़ा, "बॉब बेटे, जब तुम अपरिचित लोगों के बीच में हो तो अपनी छुछ्छी से मत खेला करो। वे लोग इसे बुरा मानते हैं। ऐसा तुम केवल घर में या बाग में ही कर सकते हो।"

मेरे मित्र और मैंने इस बात पर चर्चा की और सहमत हुए कि बच्चों को जीवन-विरोधी, यौन-घृणा से भरे हुए लोगों से बचाना असम्भव है। केवल यह बात ही कुछ उम्मीद जगाती है कि अगर माता-पिता की जीवन में दृढ़ आस्था हो तो सम्भावना है कि बच्चा बाहरी छद्मलज्जा के बजाए माता-पिता के मानदण्डों को अपनाए। फिर भी यह तथ्य कि एक पाँच वर्षीय बालक यह समझ ले कि समुद्र में नंगे नहाना सम्भव नहीं है, उसमें एक तरह का यौन अविश्वास जगाता है। फिर चाहे यह अविश्वास गौण ही क्यों न हो। आज के कई माता-पिता हस्तमैथुन पर रोक नहीं लगाते। उन्हें लगता है कि यह स्वाभाविक है और इसके दमन के खतरों से भी वे अवगत हैं। बढ़िया! यह अच्छा है।

पर ठीक ऐसे ही माता-पिता अगले कदम से भयभीत हो जाते हैं। जब उनका बेटा दूसरे लड़कों के यौन खेल देखता है तो वे उसे भी झेल जाते हैं। पर जैसे ही एक नन्हा एक नन्ही लड़की के साथ यह खेल खेले तो वे भय से जड़ हो जाते हैं।

अगर हमारी नेकनीयत माँ ने मेरी एक साल छोटी बहन और मेरे यौन खेल को नज़रअंदाज़ कर दिया होता तो सम्भावना यह होती कि हम दोनों ही यौन के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण के साथ बढ़ पाते।

मैं अक़्सर विचार करता हूँ कि वयस्कों में पाई जाने वाली नपुंसकता और यौन-उदासीनता बचपन में इतरलिंगी (हेटरोसेक्श्युअल) यौन-खेल में किए गए पहले हस्तक्षेप का परिणाम हैं। मैं अचरज करता हूँ कि क्या समलैंगिकता, बचपन में वर्जित इतरलिंगी यौन-खेल के कारण पनपती है? मेरा मानना है कि बचपन में इतरलिंगी यौन-खेल वह पथ है जो वयस्क अवस्था में संतुलित यौन-जीवन की ओर ले जाता है। जब बच्चों को यौन सम्बंधी नीति उपदेश नहीं दिए जाते तो वे एक स्वस्थ्य किशोरावस्था तक पहुँचते हैं न कि स्वच्छन्द सम्भोग तक।

मैं युवक-युवतियों के प्रेम जीवन के बारे में एक भी ऐसा तर्क नहीं जानता, जिसमें कोई दम हो। ऐसे लगभग सभी तर्क दमित भावनाओं या जीवन के प्रति घृणा पर आधारित होते हैं। यह घृणा - धार्मिक, नैतिक, समयोचित, निरंकुश, अश्लीलतावादी - कोई भी हो सकती है। इनमें से कोई भी तर्क इस प्रश्न का जवाब नहीं देता कि अगर युवावर्ग अपने समाज में बड़े-बुजुर्गों की अनुमति के बिना उसका उपयोग नहीं कर सकते तो प्रकृति ने इन्सान को इतने ज़बरदस्त नैसर्गिक यौन आकर्षण से क्यों लैस किया है। इन्हीं बड़े-बुज़ुर्गों में कुछ ऐसे भी होंगे जिनके पास फिल्मी कम्पनियों के शेयर हों जो कामुकता से भरी फिल्में बनाते हों, या सौन्दर्य प्रसाधन की कम्पनियों के मालिक हों जो औरतों और पुरुषों को आकर्षक बनाने के लिए चीज़ें बनाते हों, या ऐसे प्रकाशक हों जो अपने पाठकों को ललचाने के लिए कामुक चित्र या कथाएँ छापते हों।

मैं जानता हूँ कि आज किशोरावस्था में यौन-जीवन व्यावहारिक नहीं है। पर मैं यह भी मानता हूँ कि भावी स्वास्थ्य का भी यही रास्ता है। मैं यह *लिख* सकता हूँ, पर अगर मैं समरहिल में अपने किशोरवय छात्र-छात्राओं को साथ सोने दूँ तो अधिकारी स्कूल ही बन्द करवा दें। मैं दूसरे ही कल की सोच रहा हूँ, उस वक्त की जब समाज यह समझ लेगा कि यौन दमन कितना खतरनाक है।

मैं यह उम्मीद नहीं करता कि समरहिल का प्रत्येक छात्र स्नायुरोगहीन होगा, क्योंकि आज के समाज में भला कौन मनोग्रन्थियों से मुक्त रह सकता है? पर मुझे यह उम्मीद ज़रूर है कि कृत्रिम यौन वर्जनाओं से मुक्त भावी पीढ़ियाँ अन्ततः एक ऐसी दुनिया रच सकेंगी जो जीवन प्रेमी हो।

समय के साथ गर्भनिरोधकों की खोज एक नई यौन-नैतिकता को जन्म देगी। इसलिए क्योंकि यौन-नैतिकता का सबसे महत्वपूर्ण घटक है परिणामों का भय। मुक्त होने के लिए ज़रूरी है कि प्रेम सुरक्षा का अहसास कराए।

आज युवावर्ग को सही अर्थ में प्रेम करने के अवसर नहीं मिलते। माता-पिता अपने बेटे-बेटियों को तथाकथित पाप में लिप्त नहीं देख सकते। यही कारण है कि नौजवान प्रेमी अब जंगलों या बागों या गाड़ियों में शरण लेते हैं। आज सब कुछ

हमारे नौजवानों के विरुद्ध है। इस प्रकार जो खूबसूरत और आनन्ददायक होना चाहिए वह बदशक्ल और पापमय वस्तु में, अश्लील, कुदृष्टि और शर्म भरी हँसी में परिवर्तित हो जाता है।

जो वर्जनाएँ और भय यौन आचरण को गढ़ते हैं वे ही उस विकृत व्यक्ति को भी रचते हैं जो बागों में नन्हीं बालिकाओं का बलात्कार कर उनका गला घोंट देते हैं, जो यहूदियों और नीग्रो लोगों को यातना देते हैं।

यौन वर्जनाएँ यौन को परिवार में स्थिर कर देती हैं। हस्तमैथुन वर्जना बच्चे के मन में माता-पिता के प्रति रुचि जगाती है। जब-जब माँ अपने बेटे को गुप्तांग छूने पर चपत लगाती है, बच्चे की नैसर्गिक कामुकता माँ की ओर केन्द्रित होती जाती है। और माँ के प्रति उसका गुप्त नज़रिया कामना और जुगुप्सा, प्रेम और घृणा का बन जाता है। दमन एक अमुक्त परिवार में फलता-फूलता है। दमन वयस्कों की सत्ता ज़रूर स्थापित करता है पर विविध प्रकार के स्नायुरोगों की कीमत पर।

अगर सेक्स को यह अनुमति दे देते हैं कि वह बाग की बाड़ पार कर पड़ोसी लड़के या लड़की तक पहुँच जाए तो घर की सत्ता को खतरा पैदा हो जाएगा। बच्चे पर माँ-बाप का शिकंजा ढीला पड़ जाएगा और स्वतः ही भावनात्मक रूप से वह परिवार को छोड़ देगा। सुनने में यह हास्यास्पद लग सकता है पर ये भावनात्मक बन्धन राज्य सत्ता के आधार स्तम्भ हैं। ठीक उसी तरह से जिस तरह वेश्यावृत्ति भले घरों की अच्छी लड़कियों को बचाने का एक आवश्यक तरीका है। यौन दमन को त्यागने का अर्थ होगा युवावर्ग को सत्ता की गिरफ़्त से खो देना।

माता-पिता वही करते हैं जो उनके माता-पिता ने उनके साथ किया था। वे बच्चों को ऐसे पालते-पोसते हैं कि वे लोक-लज्जाशील, काम-संयत बच्चे बने रहें। वे अपने बचपन की लुक-छुपकर चलने वाली कामक्रीड़ा और अश्लील कथाओं को, अपने माता-पिता के प्रति अपने कटु विद्रोह और अपराधबोध से उसे दबाने की अपनी कोशिशों को आसानी से भूल जाते हैं। वे यह जानते तक नहीं कि वे अपने ही बच्चों में ठीक वैसा ही अपराधबोध जगा रहे हैं जिसने उनको सालों पहले, बचपन में, त्रस्त किया था।

प्रारम्भ में गुप्तांग छूने की वर्जना के साथ ही इन्सान में गम्भीर मनोरोगों का सूत्रपात होता है। खबरदार जो हाथ लगाया! बाद के जीवन में परेशान करने वाली नपुंसकता, काम-उदासीनता और तनावों का सूत्रपात भी उसी समय ही हो जाता है जब गुप्तांग छूने का दण्ड हाथ झटककर या खींचकर तमाचों के साथ दिया जाता है। जिस बच्चे को गुप्तांग छूने की अनुमति मिलती है उसमें यौन के प्रति एक वास्तविक व प्रसन्न दृष्टिकोण पनपने की सम्भावना रहती है। छोटे बच्चों में यौन खेल एक स्वाभाविक और स्वस्थ क्रिया है जिस पर नाक-भौंह नहीं सिकुड़नी

चाहिए। बल्कि स्वस्थ किशोरावस्था और वयस्कावस्था के प्राक्कथन के रूप में उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। अगर माता-पिता इस बात से अनभिज्ञ हैं कि उनके बच्चे अँधेरे कोनों में यौन-खेल खेला करते हैं तो वे उस शुतुरमुर्ग के समान हैं जो खतरे से बचने के लिए अपना सिर रेत में घुसा लेता है। इस प्रकार की गुप्त, लुक-छिपकर खेली जाने वाली यौन क्रीड़ा, ऐसे अपराधबोध को जगाती है जो बाद के जीवन में भी बनी रहती है। यह अपरोधबोध बड़े होने पर, खुद माँ-बाप बनने पर अपने बच्चों की यौन क्रीड़ा को अनुचित मानने में झलकती है। उपाय एक ही है - यौन खेल को प्रकाश में लाना। दुनिया में यौन अपराधों की संख्या उस स्थिति में निश्चित रूप से कम हो जाएगी जब यौन खेल को स्वाभाविक मान लिया जा सकेगा। नैतिकतापरस्त माता-पिता यह देख नहीं पाते, या देखने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं कि हर प्रकार का यौन अपराध और हर प्रकार की यौन विकृति बचपन में, यौन को हेय दृष्टि से देखने का ही प्रत्यक्ष परिणाम है।

प्रख्यात मानवशास्त्री मैलिनोवस्की बताते हैं कि जब तक स्तम्भित मिशनरियों ने लड़के-लड़कियों को अलग-अलग छात्रावासों में रखना नहीं शुरू किया तब तक ट्रोब्रियैंडरों में समलैंगिकता का नामोनिशान तक नहीं था। बलात्कार व यौन अपराध जैसी चीज़ें उनमें नहीं थीं। क्यों भला? क्योंकि वहाँ छोटे बच्चों में यौन को लेकर कोई दमन नहीं किया जाता था। आज के माता-पिता के सामने सवाल यह है कि क्या हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे हमारी तरह हों? अगर हाँ, तो क्या समाज ऐसे ही बलात्कार और यौन हत्या, दुखी विवाहों और मनोरोगी बच्चों के साथ चलता रहे? अगर पहले प्रश्न का जवाब हाँ है तो दूसरे प्रश्न का भी हाँ ही होगा। ये दोनों ही उत्तर अणुविनाश का प्राक्कथन हैं क्योंकि दोनों इस घृणा की पूर्वमान्यता पर और युद्धरूपी घृणा की अभिव्यक्ति पर आधारित हैं।

मैं नैतिकतावादी माता-पिता से सवाल करता हूँः क्या आप उस वक़्त अपने बच्चों की यौन क्रीड़ा की खास चिन्ता करेंगे जब एटम बम गिर रहे हों? जब आणविक ऊर्जा के बादल जीवन को असम्भव बना रहे हों, उस वक़्त क्या आपको अपनी बेटी के कौमार्य की चिन्ता सताएगी? जब आपके पुत्रों को महामृत्यु के लिए सेना में भर्ती किया जा रहा हो उस वक़्त भी क्या आप अपने नन्हे गिरजाघर की उस आस्था से चिपके रहेंगे जो बचपन की सारी अच्छाइयों का दमन करती हो? क्या इस समय आपका ईश्वर, जिसकी आप आराधना करते हैं, आपकी और आपके बच्चों की जान बचाएगा?

शायद आपमें से कुछ यह जवाब दें कि यह जीवन तो शुरुआत है। पारलौकिक दुनिया में न घृणा होगी, न ही युद्ध और न ही सेक्स। अगर ऐसा है तो किताब बन्द कर दें - क्योंकि हमारा सम्पर्क ही स्थापित नहीं हुआ है।

मेरे लिए चिरजीवन एक स्वप्न है - समझ आ सकने वाला स्वप्न - क्योंकि मशीनी आविष्कारों के अलावा मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में असफल रहा है। पर यह सपना पर्याप्त नहीं है। मैं स्वर्ग को धरती पर देखना चाहता हूँ, ऊपर बादलों में नहीं। त्रासदी यह है कि अधिकतर लोग भी ठीक यही चाहते हैं। वे चाहते ज़रूर हैं, पर उस तक पहुँचने की इच्छाशक्ति नहीं है। क्योंकि यह इच्छाशक्ति पहले तमाचे, पहली यौन वर्जना के साथ विकृत हो चुकी है।

दरअसल माता-पिता मुंडेर पर नहीं बैठे रह सकते। तटस्थ नहीं रह सकते। उन्हें अपराध-बोध से ग्रसित गुप्त यौन और खेल या स्वस्थ और आनन्ददायी यौन में से किसी एक को चुनना होगा। अगर वे सामान्य नैतिक मानदण्डों को चुनते हैं तो फिर उन्हें यौन विकृत समाज की शिकायत भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह समाज इसी नैतिक आचारसंहिता का नतीजा है। फिर माता-पिता युद्ध से घृणा भी नहीं कर सकते क्योंकि वे अपने बच्चों को आत्म घृणा का पाठ पढ़ाते हैं, वही तो युद्ध में अभिव्यक्त होता है। मानवता रोगग्रस्त है, भावनात्मक रूप से बीमार है। बचपन में सीखे अपराधबोध और दुश्चिंताओं के कारण बीमार है। समाज का भावनात्मक घुन हर कोने में व्याप्त है।

जब ज़ोई छह वर्ष की थी तो वह मेरे पास आई और बोली, "छोटे बच्चों में विली की छुछ्छी सबसे बड़ी है, परन्तु श्रीमती क (एक अतिथि) कहती हैं कि छुछ्छी कहना बुरी बात है।" मैंने उसे एक बार यह बताया था कि यह कोई बुरी बात नहीं है। मैंने मन ही मन उस महिला की अनभिज्ञता और बच्चों के बारे में उनकी नासमझी को गाली दी। मैं राजनीति या शिष्ट-आचरण के प्रचार को झेल सकता हूँ पर जब कोई व्यक्ति बच्चों पर हमला कर उनमें यौन अपराधबोध को जगाता है तो मैं पूरी ताकत से पलटकर लड़ता हूँ।

सेक्स के प्रति हमारे अश्लील दृष्टिकोण, संगीत सभागारों में हमारे ठहाके और पेशाबघरों में लिखी अश्लील बातें बचपन में हुए हस्तमैथुन और कोनों में खेले गए पारस्परिक यौन खेलों के दमन से उपजे अपराधबोध का नतीजा हैं। हरेक परिवार में गुप्त रूप से यौन क्रीड़ा चलती है। इसी गुप्तता और अपराधबोध के कारण भाई-बहनों के बीच ऐसे स्थिर भाव-बंधन बनते हैं जो आजीवन बने रहते हैं और मधुर विवाह असम्भव बना देते हैं। अगर पाँच वर्ष की आयु में भाई-बहनों के बीच यौन खेलों को स्वाभाविक मान स्वीकार कर लिया जाए तो वे क्रमशः परिवार के बाहर के व्यक्ति में अपनी भावनाएँ केन्द्रित करने से आज़ाद हो सकेंगे।

यौन घृणा का निकटतम रूप सैडिज़्म में दिखाई पड़ता है। जिस व्यक्ति का यौन-जीवन खुशियों भरा है वह किसी को यातना नहीं देता और न ही कारागारों के पक्ष में होता है। यौन-तृप्त महिला नाजायज़ बच्चे की माँ को अपराधी नहीं मानती।

यह सब कहकर मैं खुद पर इसी लांछन की सम्भावना बढ़ा रहा हूँ कि इस आदमी के सिर पर सेक्स का भूत सवार है। जीवन में यौन ही तो सब कुछ नहीं है। यहाँ दोस्ती, काम-काज, आनन्द और दुख भी तो हैं। फिर यौन ही की बात क्यों?

मेरा उत्तर हैः सेक्स ही जीवन का श्रेष्ठतम आनन्द है। प्रेममय सेक्स परमानन्द का श्रेष्ठतम रूप है। ऐसा इसलिए क्योंकि यही देने और पाने का श्रेष्ठतम रूप है। फिर भी यौन से ज़ाहिराना तौर पर घृणा की जाती है। क्योंकि ऐसा न होता तो कोई भी माँ हस्तमैथुन को वर्जित क्यों करती, कोई पिता विवाह के बाहर के यौन सम्बंध को वर्जित क्यों करता? अगर वर्जनाएँ न होतीं तो विविध मनोरंजन सभागारों में अश्लील मज़ाक क्यों होते और जनसामान्य प्रेमकथाओं की फिल्में क्यों देखते, प्रेम कथाएँ क्यों पढ़ते, वे सीधे प्रेम आचरण ही करते।

यह तथ्य कि तकरीबन हरेक चलचित्र में प्रेम प्रसंग दिखाया जाता है यह सिद्ध करता है कि जीवन का सबसे महत्वपूर्ण घटक - प्रेम है। इन चलचित्रों में लोगों को रुचि इसलिए होती है क्योंकि लोगों में मनोविकार हैं। यह रुचि अपराधबोध और यौन दमन से ग्रसित लोगों की रुचि है। क्योंकि वे स्वाभाविक प्रेम नहीं कर पाते - वे सिनेमाघरों में उन कथाओं को देखते हैं जो प्रेम को रूमानी और सुन्दर बनाकर प्रस्तुत करते हैं। यौन दमन के शिकार लोग यों दूसरों के माध्यम से अपनी यौन रुचियों को शान्त करते हैं। जिस स्त्री या पुरुष का प्रेम जीवन संतोषजनक हो वह सप्ताह में दो दिन उन घटिया फिल्मों पर क्योंकर बर्बाद करेगा जो वास्तविकता की नकल पेश करती हैं।

ठीक यही बात लोकप्रिय उपन्यासों के बारे में भी कही जा सकती है। ये उपन्यास अमूमन यौन या अपराध या इन दोनों के मिश्रण को सामने रखती हैं। *गॉन विद द विंड* नामक लोकप्रिय उपन्यास इसलिए प्रसिद्ध नहीं हुआ था क्योंकि उसकी पृष्ठभूमि अमरीकी गृहयुद्ध या गुलामों की थी, बल्कि इसलिए क्योंकि वह एक थकाऊ, आत्मकेन्द्रित लड़की के प्रेम प्रसंगों पर केन्द्रित था।

फैशन पत्रिकाएँ, सौन्दर्य प्रसाधन, अंग प्रदर्शन, सम्भ्रान्त-कृत्रिम समीक्षाएँ, काम कथाएँ - सभी यही दर्शाते हैं कि जीवन में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है सेक्स। पर वे सब यह भी शिकायत करते हैं कि यौन के बाहरी आवरण को ही सामाजिक अनुमोदन है - अर्थात शब्दों को, काल्पनिक कथाओं को, चलचित्रों को, अंग प्रदर्शन को।

विख्यात लेखक डी एच. लॉरेंस ने यौन चलचित्रों के उपन्यास की ओर संकेत किया था, जहाँ यौन दमन का शिकार एक नौजवान अपनी परिचितों में से किसी लड़की में रुचि लेने से डरकर अपनी मनोभावनाएँ हॉलीवुड की किसी अभिनेत्री पर उँडेलता है और फिर घर लौटकर हस्तमैथुन करता है। लॉरेंस यह नहीं कह रहे थे कि हस्तमैथुन गलत है, बल्कि वे यह कह रहे थे कि अस्वस्थ मानसिकता

ही हस्तमैथुन की मदद से एक फिल्मी अभिनेत्री के साथ काल्पनिक कामक्रीड़ा पर उसे मजबूर करती है। स्वस्थ यौन में वह निश्चित रूप से अपने परिवेश में ही किसी संगिनी को तलाशता। यौन-दमन के कारण फलने-फूलने वाले निहित-स्वार्थ की ज़रा कल्पना तो कीजिए, फैशन से जुड़े लोग, लिपस्टिक व्यापारी, चर्च, थियेटर, सिनेमाघर, चलचित्र, लोकप्रिय उपन्यास लेखक और स्टॉकिंग उत्पादक।

मैं अगर यह कहूँ कि यौन मुक्त समाज में सुन्दर वस्त्र नहीं होंगे तो बेवकूफी होगी। प्रत्येक महिला अपने प्रेमी के समक्ष सुन्दर लगना चाहती है। प्रत्येक पुरुष अपनी महिला मित्र के सामने सुरुचिपूर्ण तरीके से सज्जित होना चाहता है। मतलब मुक्त समाज में जो गायब होगा वह है वस्त्रों की कामोत्तेजकता। वास्तविकता वर्जित होने के कारण छाया को मूल्यवान मानना समाप्त हो जाएगा। काम-दमित पुरुष अन्दरूनी वस्त्र खरीदती औरतों को नहीं घूरेंगे। यह अफसोस की बात है कि काम रुचियाँ इस कदर दमित की जाती हैं। दुनिया में सबसे अच्छा आनन्द अपराधबोध के साथ ही उपलब्ध होता है। यह दमन मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। जीवन को संकीर्ण, दुखद और घृणा से भरपूर बना डालता है।

यौन से घृणा का अर्थ है जीवन से घृणा करना। यौन से घृणा करने का अर्थ है अपने पड़ोसी से प्रेम न कर पाना। अगर आप यौन से घृणा करते हैं तो आपका निजी यौन-जीवन नपुंसकता या यौन उदासीनता से ग्रस्त होगा, वह अपूर्ण होगा। यही कारण है कि जिन महिलाओं के बच्चे हो चुके हैं वे कहती हैं, "मन बहलाने के तरीके के रूप में सेक्स की कीमत ज़रूरत से ज़्यादा आँकी जाती है।" नैसर्गिक कामेच्छा ज़बरदस्त होती है। ज़ाहिर है कि अगर निजी यौन अनुभव असन्तोषजनक हो तो इस नैसर्गिक भावना को कोई दूसरा रास्ता तलाशना पड़ता है। ऐसे में वह दुश्चिन्ता और घृणा की राह पकड़ती है।

अधिकतर वयस्क यौन को देने की क्रिया के रूप में नहीं देखते, ऐसा करते तो नपुंसकता और यौन उदासीनता से ग्रसित लोगों की संख्या सत्तर फीसदी नहीं होती, जैसा कई विशेषज्ञ बताते हैं। कई पुरुषों के लिए सम्भोग शिष्ट बलात्कार ही है, कई महिलाओं के लिए एक ऐसी रीति जिसे झेलना ज़रूरी है। हज़ारों विवाहित महिलाएँ ऐसी हैं जिन्होंने अपने जीवन में कभी कामोत्ताप (ऑरगैज़्म) का अनुभव ही नहीं किया है। और तो और कई सुशिक्षित पुरुष भी यह नहीं जानते कि महिलाओं में कामोत्ताप की क्षमता भी होती है। ऐसी व्यवस्था में देना तो न्यूनतम ही होता है और ज़ाहिर है कि यौन-सम्बंध भी बर्बर और अश्लील ही होंगे। जिन विकृत लोगों को यौन सन्तोष के लिए औरतों को कोड़ों से या फिर छड़ियों से पीटना पड़ता है, वे तो यौन कुशिक्षा के अतिवादी उदाहरण भर हैं। वे केवल तब ही प्रेम दे पाते हैं जब उसे घृणा के बाने में ढँक दें।

समरहिल में पढ़ने वाला प्रत्येक बड़ा छात्र मेरी बातचीत और मेरी पुस्तकों से यह जानता है कि मैं उन सबके सम्पूर्ण यौन जीवन का अनुमोदन करता हूँ, जिनमें इसकी चाहत है। फिर चाहे वह किसी भी आयु का क्यों न हो। अपने भाषणों के दौरान मुझसे अक्सर पूछा गया है कि क्या मैं समरहिल में छात्र-छात्राओं को गर्भनिरोधक उपलब्ध करवाता हूँ, अगर नहीं तो क्यों नहीं? यह एक ऐसा टेढ़ा सवाल है जो हम सबकी गहनतम भावनाओं को छूता है। मैं गर्भनिरोधक उपलब्ध नहीं करवाता और यह मेरे लिए विवेक विरोधी मसला है। क्योंकि किसी भी प्रकार का समझौता मुझे कठिन और चिन्ताजनक लगता है। पर दूसरी और बालिग या नाबालिग बच्चों को गर्भनिरोधक उपलब्ध करवाना स्कूल बन्द करवाने का सुनिश्चित रास्ता होगा। व्यक्ति कानून को लाँघकर अपने सिद्धान्तों को अमल में नहीं ला सकता है।

बच्चों की आज़ादी के समालोचक एक आम सवाल पूछते हैं, "आप किसी छोटे बच्चे को सम्भोग क्रिया क्यों नहीं देखने देते?" यह जवाब कि उसे सदमा पहुँचेगा, मानसिक धक्का लगेगा, दरअसल गलत जवाब है। मैलिनोव्स्की के अनुसार ट्रोब्रिएंडर बालक सहज ही न केवल अपने माता-पिता की सम्भोग क्रिया देखते हैं बल्कि जन्म और मृत्यु को भी सहजता से देखते हैं। और इसका उन पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। आत्मसंचालित बच्चा अगर सम्भोग क्रिया देखता है तो उस पर विपरीत भावनात्मक प्रभाव नहीं होगा। उपरोक्त प्रश्न का सही जवाब यह है कि हमारी संस्कृति में प्रेम एक सार्वजनिक मसला नहीं है।

मैं यह नहीं भूल रहा हूँ कि कई ऐसे भी माता-पिता हैं जो यौन को धार्मिक या किसी दूसरे नकारात्मक कारण से पाप मानते हैं। उनका कुछ भी इलाज नहीं है। उनको हम अपने विचारों से सहमत नहीं कर सकते। फिर भी जब वे हमारे बच्चों की आज़ादी पर हमला करें, तो हमें उन्हें रोकना होगा। दूसरे माता-पिताओं से मैं कहता हूँ: आपका सबसे बड़ा सरदर्द तब आएगा जब आपकी बिटिया सोलह बरस की हो जाएगी और अपना जीवन जीना चाहेगी। वह देर रात लौटेगी। खबरदार, किसी भी सूरत में उससे यह न पूछना कि वह कहाँ थी। क्योंकि अगर वह आत्मसंचालित नहीं है तो वह आपसे झूठ बोलेगी, ठीक उसी तरह का झूठ जो आपने आपने माता-पिता से बोला था।

जब मेरी बिटिया सोलह साल की हो जाए और मैं उसे किसी असंवेदनशील पुरुष के प्रेम में डूबा हुआ पाऊँ तो मेरी कई चिन्ताएँ होंगी। मुझे पता है कि मैं कुछ भी करने में अशक्त होऊँगाा। मैं उम्मीद ही कर सकता हूँ कि मैं समझदारी बरतते हुए कोई कोशिश करूँ ही नहीं। क्योंकि वह आत्ममर्यादित है, मुझे यह नहीं लगता कि वह किसी अवांछनीय नौजवान के चक्कर में फँसेगी। पर इस विषय में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

मेरा विश्वास है कि अवांछनीय लोगों की संगत में रहना मूलतः माता-पिता की सत्ता के प्रति विद्रोह ही होता है। *मेरे माता-पिता मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो मुझे भी उनकी परवाह नहीं। मैं वही करूँगा जो मुझे अच्छा लगे। अगर उन्हें वह नापसन्द है तो वे भाड़ में जाएँ!*

आपको डर है कि कहीं आपकी बिटिया को कोई बहका न दे। पर सच है कि अमूमन लड़कियों को कोई बहलाता-फुसलाता नहीं है। वे बहकने की प्रक्रिया में भागीदार होती हैं। अगर आपकी बिटिया आपकी मातहत होने के बदले आपकी मित्र है तो यह सोलहवें साल की स्थिति इतनी कठिन नहीं रहती। आपको यह तथ्य स्वीकारना होगा कि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे का जीवन नहीं जीता। यह भी कि भावनात्मक मसलों जैसी अहम चीज़ों का अपना निजी अनुभव हम किसी दूसरे को नहीं सौंप सकते।

मूल प्रश्न यह है कि घर में सेक्स के प्रति दृष्टिकोण क्या है? अगर यह नज़रिया स्वस्थ है तो आप अपनी बेटी को उसके लिए निजी कमरा देंगे, मय उसकी चाबी के साथ। अगर नज़रिया अस्वस्थ है तो वह गलत तरीकों से यौन-अनुभव तलाशेगी। गलत पुरुषों की सोहबत में और आप पूरी तरह लाचार होंगे।

यही बात आपके बेटे पर लागू होती है। आप उसकी चिन्ता इसलिए नहीं करते क्योंकि वह गर्भवान नहीं बनता। पर ध्यान रहे कि गलत यौन दृष्टिकोण उसके भी जीवन को बर्बाद कर सकता है।

बिरले विवाह प्रसन्न विवाह होते हैं। शैशवावस्था में हम जिस प्रकार बच्चों को प्रशिक्षित करते हैं उससे तो आश्चर्य इसी बात में होता है कि स्वस्थ व प्रसन्न विवाह फिर भी नज़र आते हैं। क्योंकि अगर शिशुशाला में सेक्स गन्दा है तो फिर दाम्पत्य की शैय्या में वह कैसे साफ-सुथरा रह सकता है।

जिस विवाह में यौन सम्बंध असफल हो, वहाँ शेष दूसरी चीज़ें भी असफल होंगी। दुखी दम्पत्ति जिन्हें सेक्स से घृणा करने के लिए ही पाला-पोसा गया है, एक-दूसरे से घृणा ही करेंगे। उनके बच्चे इसलिए असफल रहेंगे क्योंकि उन्हें अपने जीवन के लिए घर में जो स्नेह-प्रेम की ऊष्मा चाहिए वह नामौजूद थी। माता-पिता में मौजूद यौन-दमन उन्हें भी अचेतन रूप से उसी दमन का शिकार बनाता है। ऐसे ही माता-पिता के बच्चे जटिलतम समस्याओं के शिकार होते हैं।

यौन निर्देश

अगर माता-पिता बच्चे के सवालों के उत्तर ईमानदारी के साथ बिना झिझक के दें तो यौन निर्देश, बचपन का नैसर्गिक हिस्सा बन सकता है। यौन निर्देश का अर्धवैज्ञानिक तरीका खराब है। मैं एक नौजवान को जानता हूँ जिसे इस तरीके से यौन शिक्षा दी गई थी। उसका कहना है कि जब कोई *पुंकेसर* शब्द का इस्तेमाल करता है तो उसका चेहरा शर्म से लाल हो उठता है। यौन सम्बंधी तथ्य महत्वपूर्ण हैं पर उनसे अधिक महत्वपूर्ण हैं उससे जुड़ी भावनाएँ। चिकित्सक सेक्स का शरीर विज्ञान बखूबी समझते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि वे दक्षिण समुद्र द्वीपवासियों से बेहतर प्रेमी भी हों। सम्भवतः वे उनकी बराबरी भी नहीं कर पाएँगे।

बच्चे की पिता के इस कथन में रुचि नहीं होती कि पिता अपना लिंग माँ की योनि में डालता है। वह तो यह जानना चाहता है कि आखिर *पिता ऐसा करता क्यों है*। अगर बच्चे को उसके यौन खेल की अनुमति होती तो उसे क्यों पूछने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती।

किसी आत्म-संचालित बच्चे को यौन निर्देशों की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए। क्योंकि निर्देश शब्द यह संकेत देता है कि इस विषय की पहले उपेक्षा की गई है। अगर बच्चे की स्वाभाविक जिज्ञासा को शुरू से ही खुलेपन के साथ सवालों का उत्तर देकर शान्त किया जाए तो फिर सेक्स अलग से खासतौर से सिखाए जाने वाले विषय का रूप भी न लेगा। हम बच्चे को उसके पाचनतंत्र और मलत्याग क्रिया के बारे में भी तो नहीं बताते। *यौन निर्देश* नामक शीर्षक इसी बात से उपजता है कि यौन गतिविधि को लेकर संकोच किया जाता है। उसे रहस्यमय बनाया जाता है।

पब्लिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में यौन-निर्देश का समावेश यौन दमन और नीति उपदेश को प्रोत्साहित करने का खतरनाक अवसर देता है। *यौन-निर्देश* का शीर्षक शरीर विज्ञान और शरीर क्रिया पर एक औपचारिक और भद्दे पाठ का संकेत देता है। ऐसा पाठ जो एक भीरू शिक्षक इस डर के साथ पढ़ाता है कि कहीं वह वर्जित क्षेत्र में न बहक जाए।

अधिकांश पब्लिक स्कूलों में प्रेम और जन्म के बारे में पूरा सच बताने का अर्थ होगा फौरन नौकरी से निकाल दिया जाना। माताओं द्वारा व्यक्त की गई सार्वजनिक राय

इसे सहन नहीं करेगी। मैं ऐसे कई उदाहरण जानता हूँ जब नाराज़ माता ने महिला शिक्षिका को खतरनाक नतीजों से आगाह किया है क्योंकि शिक्षिका बच्चों को 'गन्दी ईश्वरहीन अश्लील शिक्षा दे रही थी।'

दूसरी ओर मुक्त बालक को यौन सम्बंधी सभी जानकारी देने में कठिनाई यह होती है कि वह जो कुछ पूछे उसे स्पष्टता के साथ कैसे बताया जाए। क्योंकि बच्चा यह जानना चाहेगा कि हरेक नर घोड़ा या नर भेड़ अपनी मादा को गर्भवती क्यों नहीं बना पाता। ऐसे सवालों के उत्तर उन अवधारणाओं को समेटते हैं जो एक चार वर्षीय बालक की समझ के परे हैं। बधियाकरण (कैस्ट्रेशन) की प्रक्रिया उसे सरल शब्दों में समझाई नहीं जा सकती। ऐसे में प्रत्येक माता-पिता को अपनी राह खुद तलाशनी होगी यह ध्यान रखते हुए कि झूठ बोलना या टालना गलत होगा।

एक पाँच वर्षीय बच्चे को अपने पिता की जेब में निरोध का पैकिट मिला। स्वाभाविक ही था कि उसने जानना चाहा कि यह क्या है। उसके पिता ने उसे जो साफ और सरल स्पष्टीकरण दिया उसे बच्चे ने बिना उद्वेलित हुए स्वीकार लिया।

कुछ दृष्टान्तों में यह भी आपत्तिजनक नहीं लगता कि बच्चे से कहा जाए कि विषय काफी कठिन है और उसे बाद में ही समझाया जा सकेगा। क्योंकि यह उत्तर तमाम दूसरे विषयों के बारे में भी दिया जाता है। उदाहरण के लिए अगर बच्चा पूछे कि इंजन कैसे काम करता है या भगवान को किसने बनाया, तब भी माता-पिता यही कहते हैं कि बड़े होने पर ही बात समझ पाओगे।

उत्तर को फिलहाल स्थगित करना उस स्थिति से बेहतर है जब बच्चे को कुछ ज़्यादा ही बता दिया जाए। मुझे एक पन्द्रह वर्षीय स्विस लड़की याद आ रही है जिसने मुझे बताया, "इर्मगार्ट (दस वर्षीय) सोचती है कि बच्चों को डॉक्टर लाते हैं। पर मुझे तो काफी पहले से मालूम था कि बच्चे कहाँ से आते हैं। मुझे माँ ने बताया था। उसने मुझे और भी बातें बताई थीं।"

मैंने पूछा कि वह और क्या जानती है। इस पर उसने मुझे समलैंगिकता और यौन विकृतियों के बारे में बताया। यह विवेकहीन सत्य-बयानी का उदाहरण है। माँ को उन्हीं सवालों के जवाब देने चाहिए थे जो बच्चे ने पूछे थे। बाल प्रकृति की अज्ञानता ने उस बच्चे को वह सब बताने दिया जो बच्चा जज़्ब नहीं कर सकता। परिणाम था एक मनोरोगी बेटी। फिर भी यह अज्ञानी माँ उन माताओं से बेहतर थी जो जन्म के रहस्य पर सवाल करने पर अपने बच्चों से जानबूझकर झूठ कहती हैं। लेकिन बच्चे को जल्दी ही यह पता चल जाता है कि उसकी माँ ने उससे झूठ बोला था। जब उसे सच्चाई का पता चलता है, जो अमूमन उसका कोई साथी अश्लील तरीक़े से बताता है, वह यह समझ जाता है कि माँ ने झूठ क्यों बोला होगा। *आखिर इतनी गन्दी बात माँ उसे बताती भी कैसे!*

प्रसव के प्रति भी समाज का यही नज़रिया है। यह गन्दी और शर्मनाक बात है। जिस प्रकार गर्भवती माताएँ अपनी स्थिति को छुपाने की चेष्टा करती हैं, वह हमारी नैतिकता की भर्त्सना के लिए काफी है।

ऐसी भी माताएँ हैं जो अपने बच्चों को शिशुओं के बारे में सच बताती हैं। पर इन सच बताने वाली माताओं में भी ऐसी होती हैं जो प्रसव के बारे में सच बताने के बावजूद सेक्स के बारे में झूठ बोलती हैं। वे बच्चों को यह बताना टालती हैं कि सम्भोग आनन्ददायक भी होता है।

मेरी पत्नी और मुझे ज़ोई की यौन शिक्षा को लेकर सोच-विचार नहीं करना पड़ा। यह बड़ा सरल सहज और सुन्दर काम रहा है - यद्यपि इसके कई पल काफी उलझन पैदा करने वाले भी थे। एक अविवाहित महिला अतिथि को ज़ोई ने बताया कि उसका जन्म इसलिए हो पाया क्योंकि डैडी ने माँ को गर्भाधान करवाया। साथ ही उसने बड़ी रुचि से जानना चाहा, "आपको किसने गर्भाधान करवाया?"

आत्मसंचालित बच्चों के बारे में एक तथ्य हमने यह भी पाया है कि वे कम उम्र में ही व्यवहार कुशल बन जाते हैं। साढ़े तीन साल की उम्र में ज़ोई ऐसे सवाल पूछ लेती थी, पर पाँच साल की होते-होते उसे अहसास होने लगा कि कुछ बातें, कुछ लोगों के सामने नहीं की जानी चाहिए। ऐसी ही व्यावहारिक कुशलता मैंने ऐसे बच्चों में भी पाई है जो शुरू से आत्मसंचालित नहीं थे।

फ्रॉयड द्वारा छोटे बच्चों में सकारात्मक कामुकता की खोज के बाद उसके लक्षणों का अधिक अध्ययन नहीं हुआ है। शिशुओं की कामुकता पर पुस्तकें लिखी गई हैं पर आत्मसंचालित बच्चों पर किसी ने कुछ नहीं लिखा है। हमारी बेटी ने अपने, अपने माता-पिता या साथियों के सेक्स में खास रुचि कभी नहीं दिखाई। उसने हमें गुसलखाने या शौचालय में नग्नावस्था में देखा। मुझे इस बात से सन्तोष हुआ कि उसने कुछ मनोवैज्ञानिकों के इस सिद्धान्त को गलत सिद्ध कर दिया कि बच्चे में एक अंतर्निहित सलजता होती है जिसके कारण वह वयस्कों के गुप्तांग को या प्राकृतिक कार्यों को देखकर शर्म महसूस करता है। यह सिद्धान्त उतना ही बकवास है जितना हस्तमैथुन से जुड़ा अन्तर्निहित अपराध-बोध का सिद्धान्त है।

आत्मसंचालित बच्चों के माता-पिता यौन शिक्षा से जुड़ी खतरनाक व बेवकूफी भरी तमाम भूलों से सम्भवतः बच भी सकें। उन भूलों से जो सेक्स को गलत या पाप से जोड़ते हैं। परन्तु एक और खतरा है - यह खतरा आदर्शवादियों की ओर से है। आत्मसंचालन की चर्चा प्रारम्भ होने से काफी पहले कुछ माता-पिता ऐसे थे जिन्होंने अपने बच्चों को यह सिखाया था कि सेक्स पवित्र और आध्यात्मिक वस्तु है। ऐसा कुछ जिसे विस्मय से, रहस्यमय या धार्मिक श्रद्धा के साथ देखा जाना चाहिए। सम्भव है कि आधुनिक माता-पिता इस तरह के लोभ से बच जाएँ, पर

फिर भी इसके ही समान किसी दूसरी राह को पकड़ लें। वे यौन क्रिया को नवदेवता मान, उसकी आराधना करने लगें। इसे परिभाषित करना कठिन है - सम्भवतः यह परिभाषा के लिए अस्पष्ट भी है - पर मुझे यह अहसास होता है कि कुछ लोगों में सेक्स के प्रति एक अजीब-सी पवित्रता का भाव मिलता है। उसका उल्लेख करते ही उनकी आवाज़ में एक हल्का-सा बदलाव आ जाता है। यह दृष्टिकोण अश्लीलता के प्रति भय का संकेत देता है, *हे भगवान, अगर मैं सेक्स की चर्चा करते समय अपनी आवाज़ में विस्मय नहीं डालूँगा तो लोग सोचेंगे कि मैं भी उन लोगों में से एक हूँ जो सेक्स को लेकर घटिया मज़ाक करते हैं।* जब मैं नौजवान माता-पिता को उन शब्दों और स्वरों का इस्तेमाल करते पाता हूँ, जो उन पुरातन लोगों के शब्दों और सुरों से अधिक भिन्न नहीं जो शरीर के कुछ हिस्सों को पवित्र मानते थे, तो मुझे चिन्ता होती है। इतने लम्बे समय से सेक्स अश्लील मज़ाक का हिस्सा रहा है कि लोग उसकी प्रतिक्रिया के रूप में विपरीत छोर तक कूद जाते हैं, उसकी चर्चा को ही वर्जित कर देते हैं, इसलिए नहीं कि वह पाप है, बल्कि इसलिए कि वह बेहद पवित्र है। ज़ाहिर है कि ऐसा दृष्टिकोण एक नई तरह के यौन भय और दमन तक ले जाएगा। अगर हम बच्चे में सेक्स के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण और कालान्तर में उसके स्वस्थ यौन जीवन को चाहते हैं तो सेक्स को हमें धरती पर रहने देना होगा। उसमें स्वतः ही सब कुछ मौजूद है। उसे ऊपर उठाने की चेष्टा कुछ ऐसी होगी जैसे कमल में रंग भरने की।

बच्चों को यह बताना कि सेक्स पवित्र है, उसी पुरानी कथा का रूपान्तर होगा कि सभी पापी नर्क में जाएँगे। अगर आप खाने-पीने और हँसने को भी पवित्र कहने को तैयार हैं तो मैं उस समय भी आपके साथ होऊँगा जब आप सेक्स को पवित्र कहेंगे। हम *सब कुछ* को पवित्र कह सकते हैं। पर अगर हम केवल सेक्स को पवित्रता का बाना उढ़ाएँगे तो हम खुद से झूठ कह रहे होंगे और अपने बच्चों को भरमाएँगे। पवित्र तो बच्चा है - पवित्र इस अर्थ में कि वह अज्ञानी शिक्षकों द्वारा दूषित नहीं किया गया है।

जैसे-जैसे सेक्स के प्रति धार्मिक घृणा मर रही है, नए शत्रु भी पैदा हो रहे हैं। आज यौन शिक्षक उत्साही हैं जो बच्चों को तमाम चित्र दिखाकर उन्हें, मधुमक्खियों और पुंकेसर की बात बताते हैं। ऐसा करते समय वे दरअसल यह कहते हैं,"देखो, सेक्स महज़ विज्ञान है। उसमें कुछ भी तो उत्तेजक नहीं है।" यौन को लेकर हम सब इस कदर अनुकूलित हो चुके हैं कि हम उस मध्यम व स्वाभाविक मार्ग को देख तक नहीं पाते। हम या तो अति यौन समर्थक हैं या अति यौन विरोधी। यौन समर्थक होना अच्छी बात है पर बचपन में दिए गए यौन विरोधी प्रशिक्षण का विरोध करने के लिए यौन समर्थन मनोरोग की सम्भावना दर्शाता है। यौन के प्रति एक विवेकपूर्ण नज़रिया तलाशना ज़रूरी है। और ऐसा दृष्टिकोण हमें बच्चे की

स्वाभाविक यौन प्रवृत्तियों में हस्तक्षेप नहीं करने, बल्कि उसका अनुमोदन करने में ही मिलेगा।

अगर यह आपको अस्पष्ट या असम्भव लगता है तो नौजवान माता-पिताओं को मेरा सुझाव यह है कि वे यौन मसलों पर चर्चा करते समय शर्म या घृणा या नैतिक भावनाएँ दर्शाने से बचें। वे कोई उपदेश देने से, पड़ोसियों को तुष्ट करने से बचें। तब ही, केवल तब ही, एक शिशु का यौन दृष्टिकोण अपने शरीर के प्रति संकोच या घृणा के बिना, विकसित हो सकेगा। ऐसे बच्चे के लिए सेक्स न तो निर्देश, न चेतावनी या किसी अन्य वस्तु का विषय बन सकेगा।

अगर हम यौन में पाप देखने की वृत्ति से बच्चों को बचा सकें तो वह निश्चित रूप से एक नीतिवान मनुष्य बनेगा - महज़ नीति उपदेशक नहीं, मात्र दूसरों को शिक्षा देने वाला नहीं। जो डॉन जुआन यौन के आनन्द पक्ष को तो पूरा करता प्रतीत होता है पर उसके प्रेम पक्ष को नकारता है। हस्तमैथुन, डॉन जुआनवाद, समलैंगिकता आदि अनुत्पादक हैं, इसलिए क्योंकि वे समाज से परे हैं। नए नैतिक मानव को यह अहसास होगा कि उसे सेक्स के *दोनों* कार्य पूरे करने होंगे। वह पाएगा कि अगर वह प्रेम नहीं करता तो उसे यौन क्रिया में भी कोई आनंद नहीं मिल सकेगा। (डॉन जुआन स्पेन के एक दिलफेंक नायक हैं जो महिलाओं को प्रेम के रोमांच में फँसाते हैं।)

हस्तमैथुन

अधिकांश बच्चे हस्तमैथुन करते हैं। फिर भी युवावर्ग को कहा जाता है कि हस्तमैथुन पाप है। यह विकास को बाधित करता है, रोग पैदा करता है, आदि आदि। अगर विवेकवान माता अपने शिशु के शरीर के निचले हिस्सों की प्रारम्भिक तलाश को अनदेखा करे तो हस्तमैथुन की बाध्यता भी शायद इतनी न बढ़े। क्योंकि वर्जना ही बच्चे की रुचि को इस कदर केन्द्रित कर देती है। एक नन्हे शिशु के लिए गुप्तांग से अधिक कोमोत्तेजक उसका मुख होता है। अगर माताएँ मुख की क्रियाओं के प्रति भी उसी प्रकार की सदचरित्रता का दृष्टिकोण अपनातीं जैसा वे जननांगों की गतिविधियों के प्रति अपनाती हैं तो अँगूठा चूसना और चुम्बन भी अन्तःकरण का मसला बन जाते।

हस्तमैथुन आनन्द की कामना को शान्त करता है, क्योंकि वह तनाव का चरमोत्कर्ष होता है। पर जैसे ही यह क्रिया पूरी होती है नैतिक उपदेश से सराबोर अन्तःकरण चीख उठता है, "तुम पापी हो?" मेरा अनुभव यह रहा है कि अपराधबोध की

भावना हटते ही हस्तमैथुन में बच्चे की रुचि भी कम हो जाती है। शायद कुछ माता-पिता को अपने बच्चे का अपराधी होना उसके हस्तमैथुनी होने से अधिक स्वीकार्य है। मैंने हस्तमैथुन के दमन को ही कई बाल अपराधों की जड़ पाया है।

एक ग्यारह वर्षीय बच्चा समरहिल आया था। उसकी कई आदतों में से एक थी विद्रोहात्मकता। उसके पिता व शिक्षकों ने कई बार उसकी पिटाई की थी। पर इससे भी बुरी बात यह थी कि उसे नर्क की आग और क्रोधी ईश्वर के संकीर्ण धर्म में भी दीक्षित किया गया था। समरहिल आने के कुछ ही समय बाद उसने पेट्रोल की एक बोतल ली, उसे रंग और तारपिन के एक डिब्बे में डाला और फिर इस पूरे मिश्रण को आग लगा दी। दो सेवकों की मशक्कत से ही वह भवन बच पाया।

मैं उसे अपने कमरे में ले गया। "आग क्या है?" मैंने पूछा।

"वह जलती है," उसने कहा।

"इस समय किस तरह की आग के बारे में सोच रहे हो?" मैंने आगे पूछा।

"नर्क की," उसका कहना था।

"और बोतल?"

"वह लम्बी वस्तु है जिसके छोर पर छेद है," उसने जवाब दिया।

(*एक लम्बी चुप्पी।*)

"उस छेद वाली वस्तु के बारे में बताओ," मैंने आगे पूछा।

"मेरी छुछ्छी के सिरे पर छेद है।"

"अपनी छुछ्छी के बारे में बताओ," मैंने कोमलता से पूछा। "क्या तुम उसे कभी छूते हो?"

"अब नहीं, पहले छूता था, पर अब नहीं।"

"क्यों नहीं?"

"क्योंकि एक्स साब (उसके पिछले मास्टर साब) ने बताया कि यह दुनिया का सबसे बड़ा पाप है।"

मैंने निष्कर्ष निकाला कि आग लगाने का काम हस्तमैथुन की क्रिया के बदले किया गया था। मैंने उससे कहा कि उसके मास्साब गलती पर थे, उसका लिंग उसके नाक या कान जैसा ही है, न उनसे अच्छा, न बुरा। उस दिन के बाद आग में उसकी रुचि गायब हो गई।

जब प्रारम्भिक हस्तमैथुन में कोई समस्या न रही हो तो बच्चे स्वाभाविक रूप से समय के साथ विषमलैंगिक यौन सम्बंध की दिशा में बढ़ते हैं। कई वैवाहिक सम्बंध

इसलिए इतने दुखद होते हैं क्योंकि पति-पत्नी दोनों ही अवचेतन रूप से कामुकता के प्रति घृणा से भरे होते हैं। यह घृणा उपजती है उस दफनाई हुई आत्म घृणा से जो बचपन में हस्तमैथुन की वर्जना के साथ उन पर लाद दी गई थी।

शिक्षा में हस्तमैथुन का प्रश्न बेहद महत्वपूर्ण है। अगर हस्तमैथुन की समस्या का समाधान न हो तो विषयों को पढ़ाना, अनुशासन, खेल-कूद सब व्यर्थ हैं। हस्तमैथुन की स्वतंत्रता का अर्थ है प्रफुल्ल, प्रसन्न, उत्साही बच्चे जिनकी वास्तव में हस्तमैथुन में इतनी रुचि भी नहीं है। हस्तमैथुन की वर्जना का अर्थ है दुखी, अप्रसन्न बच्चे जो सर्दी-जुकाम और छूत की बीमारियों से परेशान रहते हैं। जो खुद से और इसीलिए दूसरों से घृणा करते हैं। मैं कहता हूँ कि समरहिल में प्रसन्नचित्त बच्चों का मूल कारण है यौन वर्जना से उपजे भय और आत्मघृणा का न होना।

फ्रॉयड ने हमें इस विचार से तो परिचित करा ही दिया है कि सेक्स का अस्तित्व जीवन की शुरुआत से ही होता है। बालक चूसने में यौन आनन्द पाता है। क्रमशः कामोत्तेजना का क्षेत्र मुख से हटकर गुप्तांग पर चला जाता है। अर्थात शिशु में हस्तमैथुन भी एक प्रकार की खोज होती है। और शुरुआत में इतनी महत्वपूर्ण खोज भी नहीं होती, क्योंकि उसे वहाँ से उतना सुख भी नहीं मिलता जितना उसे मुख या त्वचा से मिलता है। यह तो माता-पिता की वर्जना ही है जो हस्तमैथुन को एक भारी मनोग्रन्थि बना डालती है। जितनी कठोर वर्जना, उतना ही गहरा अपराधबोध और उतनी ही उसे बार-बार करने की बाध्यता।

सही तरह से पाले गए बच्चे को हस्तमैथुन के प्रति बिना किसी अपराधबोध के ही स्कूल आना चाहिए। समरहिल की शिशुशाला में अगर हों, तो कम ही बच्चे ऐसे हैं जिनकी हस्तमैथुन में विशेष रुचि है। उनके लिए यौन रहस्यात्मक आकर्षण नहीं रखता। हमारे पास आने पर शुरू से ही, अगर उन्हें घर में न बताया गया हो तो वे जन्म सम्बंधी तथ्यों से परिचित हो जाते हैं। वे केवल यह ही नहीं जानते कि बच्चे कहाँ से आते हैं, बल्कि यह भी कि बच्चे कैसे बनते हैं। कम उम्र में यह जानकारी वे बिना भावनात्मक प्रतिक्रिया के स्वीकारते हैं, क्योंकि यह जानकारी भी बिना भावनाएँ जताए ही दी जाती है। इसलिए पन्द्रह या सत्रह वर्ष में आते-आते समरहिल के लड़के-लड़कियाँ बिना झिझक और अपराध-बोध के, बिना अश्लीलता के यौन चर्चा कर पाते हैं।

माता-पिता छोटे बच्चों से ईश्वर की आवाज़ में बोलते हैं। माँ जो कुछ सेक्स के बारे में कहती है वह वेदवाक्य होता है। बच्चा उसके सुझाव को जस का तस स्वीकारता है। एक बच्चे से उसकी माँ ने कहा कि हस्तमैथुन तुम्हें बेवकूफ बना देगा। उसने बात मानी और उसमें कुछ भी सीखने की क्षमता नहीं रही। जब उसकी माँ को समझाया गया कि वह बच्चे से कहे कि उसने कोरी बकवास की थी

तो वह स्वतः ही बेहतर लड़के में परिवर्तित हो गया।

एक दूसरी माँ ने अपने बेटे से कहा कि अगर वह हस्तमैथुन करेगा तो सब उससे घृणा करेंगे। वह बच्चा ठीक वैसा ही बना जैसा माँ ने संकेत किया था। पूरे स्कूल में उसे कोई नहीं चाहता था। वह चोरी करता था, लोगों पर थूकता था और तोड़फोड़ करता था। माँ के सुझाव को सच साबित करने के ही ये प्रयास थे। इस दृष्टान्त में माँ को यह समझाया न जा सका कि वह बच्चे के सामने अपनी गलती कबूल कर ले। और वह बच्चा कमोबेश समाज से घृणा करने वाला ही रहा।

हमारे यहाँ ऐसे भी लड़के आए जिनसे कहा गया था कि हस्तमैथुन से वे पागल हो जाएँगे। वे सच में पागल बनने की कोशिश में जुटे रहे।

बच्चे को प्रारम्भ में माता-पिता जो सुझाव देते हैं उनको बाद में पूरी तरह काट पाना सम्भव हो, इसमें मुझे शंका है। अपने काम में मेरी कोशिश रहती है कि मैं माता-पिता से ही उनकी भूल सुधरवाऊँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि बच्चे के लिए मैं नगण्य हूँ। अक्सर मैं उसके जीवन में तब दाखिल होता हूँ जब देर हो चुकती है। अतः जब बच्चा मुझे यह कहते सुनता है कि हस्तमैथुन से लोग पागल नहीं होते हैं, तो वह मुझ पर विश्वास नहीं कर पाता है। परन्तु पाँच वर्ष की उम्र में सुनी गई पिता की आवाज़ उसके लिए खुदा की आवाज़ होती है।

जिस समय शिशु अपनी क्रीड़ा में गुप्तांग को शामिल करता है, वह माता-पिता की भारी परीक्षा होती है। गुप्तांग क्रीड़ा को अच्छा, स्वाभाविक व स्वस्थ मानना चाहिए। उसे दबाने की कोई भी चेष्टा खतरनाक होगी। इसमें मैं बच्चे का ध्यान दूसरी ओर बाँटने वाली, गुपचुप और बेईमान कोशिशों को भी शामिल करता हूँ।

मुझे एक आत्मसंचालित नन्ही की बात याद है जिसे एक अच्छी-सी दिवसशाला में भेजा गया। वह दुखी नज़र आने लगी। उसने अपनी गुप्त क्रीड़ा को *सटना* नाम दिया हुआ था। जब उसकी माँ ने जानना चाहा कि उसे शाला जाना क्यों पसन्द नहीं आता, उसका जवाब था, "जब मैं सटना चाहती हूँ तो वे मुझे ऐसा करने से मना तो नहीं करते, पर तुरन्त कहते हैं, *यह देखो* या *यहाँ आकर यह तो करो*। सो मैं शिशुशाला में सट नहीं पाती।"

शैशवावस्था की गुप्तांग क्रीड़ा इसलिए समस्या है क्योंकि लगभग सभी माता-पिता अपने पालकों से ही यौन विरोधी तौर तरीकों से अनुकूलित किए गए हैं और वे शर्म, पाप और जुगुप्सा की भावनाओं से उबर नहीं पाते। यह सम्भव है कि कोई पिता बौद्धिक स्तर पर यह स्वीकार ले कि गुप्तांगों से खेलना बुरा नहीं, अच्छा है, स्वस्थ है। पर साथ ही वह अपनी ध्वनि या दृष्टि से बच्चे को यह भी जता दे कि अपने गुप्तांग से खेलने के बच्चे के अधिकार को भावनात्मक रूप से वह नहीं स्वीकारता है। सम्भव यह भी है कि कोई माता या पिता बच्चे द्वारा गुप्तांग छूने

का अनुमोदन भी करते हों। पर जैसे ही उनकी बुजुर्ग ताई मिलने आएँ तो वे परेशान हो उठते हों। कहीं बच्चा उनके सामने कुछ न कर डाले। दरअसल वह बुजुर्ग ताई, आपके दमित स्व के यौन विरोधी तत्व का ही प्रतिनिधित्व करती है पर यह कहने से न तो बच्चे की कोई मदद होती है, न ही माता-पिता की।

माता-पिता के मन का यह भय काफी व्यापक है कि शैशवावस्था का गुप्तांग खेल बच्चे में समय से पूर्व यौनेच्छा तो नहीं जगाएगी। सच तो यह है कि यह महज़ तार्किक व्याख्या है। यौनांग से खेलना समय से पहले परिपक्व नहीं बनाता, और अगर बनाता भी हो तो क्या? अगर किसी बच्चे को किशोरावस्था में यौन में असामान्य रुचि रखने वाला बनाना हो तो सबसे सुनिश्चित उपाय है पालने में ही उसे गुप्तांग से खेलने से रोक देना।

जब बच्चा समझने की स्थिति में आ जाए तो उसे यह कहना पड़ सकता है कि उसे सार्वजनिक रूप से सबके सामने अपने गुप्तांग से नहीं खेलना चाहिए। सम्भव है कि बच्चा इस सुझाव को कायरता से भरा और अन्यायपूर्ण सुझाव माने, पर इसका विकल्प और भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है। क्योंकि अगर बच्चे को विद्वेष से भरे वयस्कों की नाराज़गी और कड़े विरोध का सामना करना पड़े तो वह कहीं खतरनाक सिद्ध होगा। इस स्थिति से कहीं बेहतर यह है कि बच्चे को प्यार करने वाले माता-पिता उसे तर्क देकर समझा-बुझा दें।

जब किसी छोटे बच्चे को उसका जीवन समग्रता से, बिना दण्ड, निर्देश और वर्जनाओं के जीने दिया जाता है तो उसकी रुचियाँ मात्र उसके यौनांग की क्रिया तक सीमित नहीं रह पातीं। वे व्यापक हो उठती हैं।

मुझे इस बात का व्यक्तिगत अनुभव नहीं है कि आत्मसंचालित बच्चे गुप्तांग खेल में एक दूसरे के प्रति कैसी प्रतिक्रिया करते हैं। जिन लड़कों को शुरू से यह सिखाया जाता है कि यौन पाप है, वे गुप्तांग खेल को दूसरों को सताने के साथ जोड़ लेते हैं। परन्तु क्योंकि आत्मसंचालित बच्चों में आक्रामक घृणा तुलनात्मक रूप से कम होती है, शायद उनका गुप्तांग खेल अन्य साथियों के प्रति अधिक कोमल होता होगा।

आत्मनिन्दा का भाव हममें मुख्यतः शैशवावस्था के अनुभवों से ही जन्मता है। इसका अधिकतर हिस्सा हस्तमैथुन के कारण जगे अपराधबोध का ही है। मैं अक्सर उन बच्चों को अधिक दुखी पाता हूँ जिनका मन हस्तमैथुन को लेकर भारी रहता है। एक समस्याग्रस्त बच्चे को एक प्रसन्नचित्त बच्चे में बदलने की दिशा में सबसे बड़ा कदम है उसके मन से अपराध-बोध को बाहर निकाल देना।

नग्नता

कई दम्पत्ति, खासकर श्रमजीवी वर्ग के दम्पत्ति, एक-दूसरे के शरीर को तब तक नहीं देखते, जब तक उनमें से एक अपने जीवनसाथी के शव को अन्तिम संस्कार के लिए तैयार न कर रहा हो। एक खेतिहर महिला, जिससे मैं परिचित था, नग्नता प्रदर्शन के एक मामले में गवाह थीं। वह सच में सदमे में थीं। मैंने उन्हें झिड़कते हुए कहा, "चलो छोड़ो जी, आखिर तुमने भी तो सात बच्चों को जना है।"

उसने पूरी गम्भीरता से उत्तर दिया, नील साब, "मैंने अपने पूरे वैवाहिक जीवन में आदमी को बिना कपड़ों के नहीं देखा।"

नग्नता को कभी-भी हतोत्साहित नहीं करना चाहिए। शिशु को शुरू से ही अपने माता-पिता को नग्न देखना चाहिए। पर साथ ही जब वह समझने की स्थिति में आ जाए तो उसे बता देना चाहिए कि कई लोग बच्चों को नंगा देखना पसन्द नहीं करते। ऐसे लोगों के सामने कपड़े पहनना सही रहता है।

एक महिला थीं जिनकी शिकायत थी कि हमारी बेटी समुद्र में अपनी *प्राकृतिक अवस्था* में नहाती है। उस वक्त ज़ोई मात्र एक वर्ष की थी। यह दृष्टान्त हमारे समाज के जीवन-विरोधी नज़रिए को समेटता है। हम जानते हैं कि समुद्र तट पर नहाते समय तथाकथित गुप्तांगों को छिपाने का प्रयास अक्सर उलझन भरा सिद्ध होता है। आत्मसंचालित बच्चों के माता-पिता अपने तीन-चार वर्षीय बच्चे को यह समझाने में कठिनाई महसूस करते हैं कि उसे सार्वजनिक स्थलों पर नहाने वाले कपड़े (बेदिंग-सूट) का उपयोग करना ज़रूरी है।

क्योंकि यौनांगों का प्रदर्शन कानूनन ज़ुर्म है इसलिए ज़ाहिर है कि बच्चों का मानव शरीर के प्रति दृष्टिकोण इस नज़रिए से प्रभावित होता है। बच्चों में नग्नता के साथ जुड़ी पाप की भावना को तोड़ने के लिए मैं खुद निर्वस्त्र होकर नहाया हूँ। इतना ही नहीं मैंने अपने साथ काम करने वाली एक शिक्षिका को भी बच्चों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए निर्वस्त्र नहाने के लिए प्रोत्साहित किया है। पर यह भी भूल होगी कि बच्चों को निर्वस्त्र होने के लिए बाध्य किया जाए। वे सवस्त्र सभ्यता की उपज हैं। उनके लिए निर्वस्त्रता वह चीज़ है जिसकी कानून अनुमति नहीं देता।

कई साल पहले, जब हम लाइस्टन आए ही थे, हमारे पास एक बत्तख-ताल था।

मैं सुबह पहले उसमें डुबकी लगाया करता था। कुछ शिक्षक-शिक्षिकाएँ और छात्र-छात्राएँ भी यही किया करते थे। तब हमारे पास निजी स्कूल के लड़कों की टोली आई। जब लड़कियाँ बेदिंग-सूट पहनने लगीं तो मैंने एक स्वीडिश लड़की से जानना चाहा कि वह ऐसा क्यों करने लगी है।

नये लड़कों के कारण, उसने साफ किया, "पुराने लड़कों के लिए नग्नता स्वाभाविक-सी बात थी। पर ये नए लड़के घूरते हैं - मुझे यह अच्छा नहीं लगता।" इसके बाद सामूहिक रूप से बिना वस्त्रों के नहाने की परिपाटी उन शामों तक सीमित रह गई जब हम समुद्र तट पर जा पाते थे।

समरहिल के मुक्त वातावरण में यह उम्मीद की जा सकती थी कि गर्मियों में बच्चे निर्वस्त्र घूमते होंगे। पर यह वे नहीं करते। नौ साल तक की आयु की बच्चियाँ किसी बेहद गर्म दिन में निर्वस्त्र नज़र आ जाती हैं पर छोटे लड़के ऐसा बिरले ही करते हैं। यह बात कुछ समझ नहीं आती। खासकर फ्रॉयड के इस कथन के सन्दर्भ में कि लड़कों में अपने गुप्तांग को लेकर गर्व का भाव होता है और लड़कियों में उसके न होने के कारण शर्म।

हमारे नन्हे लड़कों में प्रदर्शन की भावना नज़र नहीं आती, बड़े लड़के और लड़कियाँ भी कभी कपड़े नहीं उतारते। गर्मियों में लड़के और पुरुष सिर्फ़ नेकर पहनते हैं, कमीज़ नहीं। और लड़कियाँ बेदिंग-सूट पहनती हैं। नहाने को लेकर कोई गुप्त भाव नहीं है। हाँ कुछ लड़कियाँ खेतों में धूप स्नान करती हैं पर उनको लुक-छिपकर ताकने की कोशिश कोई लड़का नहीं करता।

एक दिन हमारे अँग्रेज़ी शिक्षक को हॉकी फील्ड में, नौ से पन्द्रह वर्ष की आयु की लड़कियों व लड़कों की मदद से गड्ढा खोदते देखा गया। वह दिन गर्म था और उन्होंने कपड़े उतार दिए थे। दूसरी मर्तबा हमारे कार्यकर्ताओं में से एक निर्वस्त्र टेनिस खेलता नज़र आया। उससे कहा गया कि स्कूल की बैठकों में वह पैंट पहनकर आए ताकि अगर कोई अकस्मात आ पहुँचे तो उसे उलझन न हो। ये सभी दृष्टान्त समरहिल में नग्नता के प्रति पूर्णतः नैसर्गिक नज़रिए को स्पष्ट करते हैं।

पोर्नोग्राफी (अश्लील साहित्य)

सभी बच्चे अश्लील होते हैं, कभी खुल्लम-खुल्ला तो कभी गुप्त रूप से। केवल उनमें अश्लीलता की भावना कम होती है जिन्हें शैशवावस्था या बाल्यावस्था में सेक्स के प्रति नैतिक वर्जनाओं का सामना नहीं करना पड़ा हो। मेरा पक्का विश्वास है कि कालान्तर में समरहिल के छात्र-छात्राओं में अश्लीलता के प्रति उतना रुझान

नहीं होगा जितना कि उन बच्चों में होता है जिन्हें गुपचुप तरीकों से पोषित किया जाता है। विश्वविद्यालय में पढ़ रहा हमारा एक पूर्व छात्र छुट्टियों में आया। उसकी टिप्पणी थी, "समरहिल एक तरह से सबको बिगाड़ देता है। अपनी उम्र के लड़के इतने उबाऊ लगने लगते हैं। वे बस उन्हीं-उन्हीं बातों में मशगूल रहते हैं, जिनसे मैं सालों पहले उबर चुका हूँ।"

"अश्लील किस्से?" मैंने पूछा।

"हाँ, कमोबेश वही सब। मुझे भी कभी-कभार अश्लील किस्से अच्छे लगते हैं, पर जो वे सुनाते हैं वे किस्से फूहड़ और सारहीन होते हैं। पर बात सिर्फ सेक्स की नहीं है। बाकी सब कुछ भी - मनोविज्ञान, राजनीति। अजीब बात यह है कि मेरी दोस्ती उन लोगों से होने लगी है जो मुझसे दस साल बड़े हैं।"

समरहिल में आए एक नए लड़के ने, जो प्राथमिक शाला के लिजलिजे चरण से उबरा नहीं था, अश्लील बातें करने की कोशिश की। दूसरों ने उसे चुप करवा दिया। इसलिए नहीं कि वह अश्लील बात कह रहा था। बल्कि इसलिए कि वह एक रोचक बातचीत को बहका रहा था।

कुछ साल पूर्व समरहिल में तीन छात्राएँ थीं जो वर्जित विषयों के सामान्य चरण को पार कर चुकी थीं। कुछ समय बाद एक लड़की समरहिल आई। उसे इस त्रिमूर्ति के कमरे में ठहराया गया। एक दिन वह नई लड़की मुझसे शिकायत करने लगी कि तीनों बेहद उबाऊ लड़कियाँ हैं। "मैं रात को जब सेक्स वगैरह की बातें छेड़ती हूँ तो वे मेरा मुँह बन्द करवा देती हैं। कहती हैं कि इस बकवास में उनकी रुचि नहीं है।"

यह बात सच थी। इस त्रिमूर्ति की भी सेक्स में रुचि थी पर उसके गुप्त पक्ष में नहीं। उनके मन में यह भावना टूट चुकी थी कि सेक्स गन्दगी भरा विषय है। लड़कियों के स्कूल से आई सेक्स की गुपचुप चर्चा से भरी उस छात्रा को वे नैतिकता से ओतप्रोत लगीं। और सच भी यही था कि वे बेहद नैतिक *थीं*। इसलिए क्योंकि उनकी नैतिकता ज्ञान पर आधारित थी, अच्छे व बुरे के किसी झूठे मानदण्ड पर नहीं।

जिन बच्चों को यौन मसलों के बारे में स्वतंत्रता से पाला-पोसा जाता है वे तथाकथित अश्लीलता को लेकर मानसिक रूप से खुले होते हैं। एक अर्सा पहले लंदन के मनोरंजन स्थल में एक विविध मनोरंजक कार्यक्रम सुना। मुझे तत्काल लगा कि अगर वह समरहिल में अपने किस्से सुनाता तो श्रोता इस कदर नहीं हँसते। पर जब-जब वह महिलाओं के अंतर्वस्त्रों की बात करता लंदन की महिलाएँ चीख-चीखकर लोटपोट हुई जा रही थीं। समरहिल के बच्चों को उसकी ये बातें पसन्द नहीं आतीं।

एक बार मैंने शिशुशाला के बच्चों के लिए एक नाटक लिखा। नाटक काफी घटिया था। कहानी एक लकड़हारे के बेटे की थी जिसे सौ पाउण्ड का नोट मिला था। उसने नोट परिवार के हरेक सदस्य को दिखाया, अपनी गाय तक को भी। गाय उस नोट को चबा गई। परिवार ने नोट निकालने की बहुतेरी कोशिश की पर असफल रहे। लड़के को एक बेहतरीन विचार सूझा कि परिवार वाले मेले में एक बूथ खोलें और हर आने वाले से दो मिनट के दो शिलिंग लें। अगर दर्शक की मौजूदगी में गाय वह नोट बाहर निकाल दे, तो नोट दर्शक को ईनाम में मिलेगा।

मुझे मालूम था कि अगर वह नाटक वेस्ट एण्ड में खेला जाता तो बड़ा लोकप्रिय होता। पर हमारे बच्चों को उसमें कोई खासियत नहीं लगी। बल्कि कलाकारों को, जो छह से नौ वर्ष की उम्र के थे, उसमें कुछ मज़ाकिया नज़र ही नहीं आया। एक आठ वर्षीय बालिका ने मुझसे कहा कि नाटक में उचित शब्द का इस्तेमाल न करना बेवकूफी है। दरअसल उसका इशारा उस शब्द की ओर था जो लोगों को *अनुचित* लगता।

समरहिल में मुक्त बच्चों में दृश्यतिकता (कामुकता) की बीमारी नहीं मिलेगी। किसी फिल्म में अगर पखाने को दर्शाया जाए या प्रसव की बात हो, तो हमारे छात्र-छात्राएँ न तो ठिठियाते हैं न उन्हें शर्म आती है। पखाने की दीवारों पर लिखने का बुखार उन्हें भी बीच-बीच में चढ़ता है। एक बच्चे के लिए किसी भी घर का सबसे रोचक कमरा टॉयलेट होता है। वह उसके मन के लेखक और चित्रकार को प्रेरित करता है। जो स्वाभाविक है क्योंकि वह रचनात्मकता की जगह है।

यह कहना भ्रान्ति है कि महिलाओं का दिमाग पुरुषों की तुलना में अधिक साफ-सुथरा होता है। फिर भी पुरुषों के शराबखानों में महिलाओं के क्लब की तुलना में कहीं अधिक अश्लीलता की सम्भावना होती है। पर घटिया किस्से सुनाने का चलन महज़ इसलिए है क्योंकि वे समाज में अकथनीय माने जाते हैं। जिस समाज में यौन-दमन न हो वहाँ अकथनीयता का विचार भी गायब हो जाएगा। समरहिल में ऐसा कुछ भी नहीं जिसे अकथनीय माना जाता हो और कोई भी व्यक्ति, किसी भी कथन से सकते में नहीं आता। क्योंकि *सकते में आने का अर्थ यह होता है कि जो वस्तु आपको सकते में लाती है उसमें आपकी अश्लील रुचि है।*

जो लोग भय से चीखते हैं कि बच्चों से उनका अबोधपन छीनना भारी जुर्म है, वे उस शुतुरमुर्ग के समान ही हैं जो बचने के लिए रेत में अपना सिर छुपा लेता है। बच्चे कभी पूर्णतः अबोध नहीं होते पर अक्सर अज्ञानी होते हैं। और इन शुतुरमुर्गों की भयातुरता, बच्चों से अज्ञानता छीनने के विरुद्ध है।

जो बच्चे सबसे ज़्यादा दबाए गए हैं वे भी दरअसल पूर्णतः अज्ञानी नहीं होते। दूसरे बच्चों से सम्पर्क द्वारा उन्हें वह भयावह 'ज्ञान' अन्धेरे कोनों में, गुपचुप प्राप्त हो

जाता है। जो बच्चे कम उम्र से समरहिल आ चुके हैं, उनके लिए अन्धेरे कोने नहीं हैं। इन बच्चों की भी यौन मसलों में रुचि है, पर यह रुचि अस्वस्थ रुचि नहीं है। जीवन के प्रति उनका नज़रिया एक स्वच्छ नज़रिया है।

समलैंगिकता

हाल में एक समलैंगिक व्यक्ति ने पत्र द्वारा मुझसे यह बताने का अनुरोध किया कि कौन सा देश उसे कानूनी रूप से समलैंगिक बने रहने का अधिकार देगा। मेरा उत्तर था कि मैं ऐसी कोई जगह के बारे में जानता तक नहीं। इस घटना के बाद मुझे पता चला कि हॉलैण्ड और डेनमार्क में समलैंगिकता को कानूनी स्वीकृति है। सच तो यह है कि मैं ऐसे किसी देश को भी नहीं जानता जो किसी को इतरलैंगिक सम्बंध भी काँटों पर चले बिना बनाने देता हो।

समरहिल में समलैंगिकता नहीं है। परन्तु समरहिल आने वाले बच्चों के सभी सामान्य समूहों की ही तरह उनके विकास के कुछ चरणों में अवचेतन समलैंगिकता मिलेगी।

हमारे नौ-दस वर्ष के लड़कों की लड़कियों में रत्ती भर रुचि नहीं है। वे अपनी ऐसी टोलियाँ बनाते हैं जिनकी दूसरे लिंग में कोई रुचि नहीं है। वे किसी को घेरकर 'हाथ खड़े करो' कहने में मज़ा लेते हैं। इस उम्र की लड़कियाँ भी हमउम्र लड़कियों की टोलियों में ही खुश रहती हैं। वयःसन्धि के बाद भी वे लड़कों के पीछे नहीं मँडरातीं। लगता यह है कि लड़कों की तुलना में लड़कियों में अवचेतन समलैंगिकता की अवस्था अधिक लम्बे समय तक बरकरार रहती है। वे दोस्ताना तरीके से लड़कों को चुनौती ज़रूर देती हैं, पर अपने गुटों में बने रहना पसन्द करती हैं। सच तो यह है कि इस उम्र में वे अपने अधिकारों के प्रति बेहद सजग होती हैं। लड़कों के शारीरिक बल में श्रेष्ठता और रुखाई लड़कियों में नाराज़गी जगाती है। उनकी यह उम्र पौरुष की खिलाफत करने की होती है।

पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु के पहले, सामान्यतः लड़के और लड़कियाँ एक दूसरे में रुचि नहीं लेते। उनमें एक-दूसरे के साथ युगल बनाने की स्वाभाविक वृत्ति भी नज़र नहीं आती। बल्कि विपरीत लिंगों में उनकी रुचि आक्रामक रूप ले लेती है।

विकास के क्रम में गुप्त समलैंगिकता चरण की अस्वस्थ प्रतिक्रिया समरहिल के बच्चों में इसलिए नज़र नहीं आती क्योंकि वे हस्तमैथुन को लेकर अपराधबोध से ग्रसित नहीं होते। कुछ साल पहले निजी स्कूल से ताज़ा-ताज़ा आए एक लड़के ने परपीड़न कामुकता (सोडोमी) को समरहिल में घुसाने की कोशिश की। वह

असफल रहा। उसे यह जानकर हैरानगी और चिन्ता हुई कि उसकी कोशिशों को पूरे स्कूल ने पहचान लिया था।

कुछ अर्थों में समलैंगिकता, हस्तमैथुन से जुड़ी है। आप किसी साथी के साथ हस्तमैथुन करते हैं और वह आपके अपराधबोध में भागीदार बनता है, आपका भार कुछ हल्का बना देता है। पर जहाँ हस्तमैथुन पाप न हो, वहाँ अपराधबोध बाँटने का प्रश्न भी नहीं उठता।

मैं नहीं जानता कि कौन-सा प्रारम्भिक दमन समलैंगिकता का कारण है। फिर भी इतना ज़रूर स्पष्ट लगता है कि यह दमन शैशवावस्था में शुरू हुआ होगा। आजकल समरहिल में पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चे दाखिल नहीं किए जाते। अतः अक्सर ऐसे बच्चों से भी हमें निपटना पड़ता है जिन्हें शिशुशाला में गलत तौर-तरीकों से रखा गया था। फिर भी समरहिल के चालीस से अधिक वर्षों में यहाँ का एक भी बच्चा समलैंगिक नहीं बना। कारण यह है कि आज़ादी स्वस्थ बच्चों को पोषित करती है।

उच्छृंखलता, अवैधता और गर्भपात

उच्छृंखलता एक मनोरोग है। अन्ततः सही जीवन साथी ढूँढ पाने की तलाश में लगातार साथी बदलते जाने का उपक्रम है। पर यह सही साथी कभी नहीं मिलता क्योंकि कमी वास्तव में उस नपुंसक रोगवृत्ति वाले पुरुष या स्त्री में ही है।

मुक्त प्रेम का अगर कोई भयावह अर्थ है तो वह इसलिए क्योंकि वह ऐसी कामुकता को परिभाषित करता है जो रोगग्रस्त है। उच्छृंखल सम्भोग - जो प्रत्यक्ष दमन का नतीजा है - हमेशा ही दुखद और शर्मनाक होता है। जो लोग वास्तव में मुक्त हैं उनमें मुक्त प्रेम का अस्तित्व ही नहीं होगा।

दमित कामुकता स्वयं को किसी भी वस्तु से जोड़ देती हैः दस्ताना, रुमाल, शरीर से जुड़ी कोई भी वस्तु। यही कारण है कि मुक्त प्रेम उच्छृंखल होता है, इसमें कोई कोमलता, कोई ऊष्मा, वास्तविक स्नेह नहीं होता।

एक युवती ने कई उच्छृंखल सम्बंधों के बाद मुझसे कहा, "बिल के साथ पहली बार कामोत्तेजक रिश्ता बन सका है।"

मैंने जानना चाहा कि ऐसा रिश्ता पहली बार क्यों रहा।

"क्योंकि मैं उससे *प्यार* करती हूँ, और दूसरों से नहीं करती थी।"

जो बच्चे बड़ी उम्र में, तेरह वर्ष या उसके बाद समरहिल आते हैं, उनमें हमेशा

वास्तविकता में नहीं तो कामना में उच्छृंखलता की वृत्ति ही नज़र आती है। उच्छृंखलता की जड़ें बच्चे के जीवन में पीछे तक छिपी होती हैं। हम एक ही मुख्य बात जानते हैं, वह यह कि ये जड़ें बीमार जड़ें हैं। ऐसा व्यवहार विविधता ज़रूर दे सकता है पर सन्तोष बिरले ही और आनन्द तो कभी नहीं। प्रेम में वास्तविक आज़ादी कभी उच्छृंखलता की ओर नहीं ले जाती। यह सच है कि प्रेम हमेशा-हमेशा बरकरार नहीं रहता। पर स्वस्थ लोगों के लिए *प्रेम* चिरस्थाई न भी हो तो भी निष्ठामय और आनन्दमय होता है।

अवैध बच्चों की राह अक्सर बेहद कठिन होती है। पर कुछ माताओं की तरह उनसे यह कहना गलत होगा कि उसका पिता युद्ध में या रोग से मर गया। जब वह दूसरे लड़कों को उनके पिता के साथ देखता है तो आहत होता है। साथ ही नाजायज़ संतान होने की सामाजिक प्रताड़ना किसी न किसी तरह उस तक पहुँच ही जाती है। समरहिल में भी कुछ अविवाहित माताओं के बच्चे हैं, पर उनसे किसी को रत्ती भर का फर्क नहीं पड़ा है। आज़ादी के माहौल में ऐसे बच्चे, वैवाहिक सम्बंधों से जन्मे बच्चों की ही तरह प्रसन्नचित्त फलते-फूलते हैं।

बाहरी दुनिया में नाजायज़ बच्चा कई बार अपनी माँ को दोषी मानता है, उससे दुर्व्यवहार करता है। या फिर अपनी माँ से इतना प्यार करता है कि इस बात से डरने लगता है कि कहीं, किसी रोज़ वह ऐसे किसी इन्सान से शादी न कर ले जो उसका पिता न हो।

यह दुनिया भी कितनी अजीब है! एक ओर गर्भपात गैर-कानूनी है तो दूसरी ओर नाजायज़ संतान को सामाजिक प्रताड़ना सहनी पड़ती है। यह सन्तोष की बात है कि आज कई महिलाएँ विवाहेत्तर संतानों की सामाजिक निन्दा की परवाह नहीं करतीं। वे खुल्लम-खुल्ला प्रेम सम्बंध से जन्मे बच्चों को स्वीकारती हैं, उन पर गर्व करती हैं, उनके लिए काम करती हैं, उनकी परवरिश करती हैं, और तो और वे यह सब खुशी-खुशी करती हैं। जहाँ तक मैंने पाया है, उनके बच्चे भी संतुलित और ईमानदार इन्सान बन पाते हैं।

किसी भी निजी शाला में ऐसी किसी महिला की नौकरी नहीं बच पाती जिसकी नाजायज़ संतान हो। मैंने न जाने कितनी बार पादरियों की बीबियों को घरेलू नौकरानी को काम से इसलिए निकाल देने के किस्से सुने हैं, क्योंकि वे गर्भवती हो गईं थीं।

मानवता के रोगग्रस्त होने का जो सबसे कुत्सित और दोगला लक्षण है, वह है गर्भपात का सवाल। न्यायाधीशों, पादरियों, चिकित्सकों या समाज के स्तम्भ कहलाए जाने वालों में ऐसा एक भी इन्सान नहीं होगा जो अपनी बेटी को

नाजायज़ संतान की माता बनाने के बदले उसका गर्भपात करवाना नहीं पसन्द करेगा।

सम्पन्न लोग ऐसी उलझन भरी पेचीदगी से बचने के लिए अपनी बेटियों को उम्दा नर्सिंग होम में भेज देते हैं। कहने के लिए वे उसे माहवारी की अनियमितता या किसी दूसरे रोग के इलाज के नाम पर भेजते हैं। पर, निम्न मध्यम वर्ग या गरीब तबके के लोगों को नाजायज़ संतानों का बोझा उठाना पड़ता है। उनके पास कोई दूसरा विकल्प होता ही नहीं है। कोई मध्यवर्गीय लड़की बहुतेरी कोशिश करे तो उसे कोई चिकित्सक मिल जाता है, जो मोटी फीस लेकर गर्भपात करवा दे। पर उसकी गरीब बहनें किसी अप्रशिक्षित और अनैतिक चिकित्सक का सहारा लेने पर या फिर नाजायज़ बच्चा पैदा करने को मजबूर हैं।

लंदन में कई चिकित्सालय हैं जहाँ गर्भनिरोधक लगवाए जा सकते हैं। पर वह भी तब जब वे अपने विवाहित होने का सबूत पेश करें। अपनी विवाह की अँगूठी दिखाएँ। यह बात और है कि किसी दूसरे की विवाह की अँगूठी उधार लेना कोई जुर्म नहीं है।

यह पूरा मामला सार्वजनिक मूत्रालयों की दीवारों पर लिखी अश्लील बातों की याद दिलाता है। यह उस सभ्यता का प्रतीक है जिसकी विद्वेष भरी नैतिकता की कीमत उसे इस रूप में चुकानी पड़ती है। यह कीमत है शरीर के प्रति रोगग्रस्त नज़रिया, दुख और आशाहीनता।

4

धर्म और नैतिकता

धर्म

हाल ही में एक महिला मेहमान ने मुझसे कहा, "आप अपने बच्चों को यीशू के जीवन की बात क्यों नहीं पढ़ाते, जिससे वे प्रेरित हों और उनके पदचिन्हों पर चलें?" मेरा जवाब था कि किसी के जीवन के बारे में *सुनकर* व्यक्ति वैसा नहीं बनता, उसके लिए वैसी ज़िन्दगी *जीनी* पड़ती है; क्योंकि शब्द कृत्यों से कहीं कम महत्वपूर्ण होते हैं। कई लोग समरहिल को इसलिए एक धार्मिक स्थल कहते हैं क्योंकि यहाँ बच्चों को स्नेह और प्यार मिलता है।

यह बात सच होगी पर मुझे यह विशेषण नापसन्द है, क्योंकि धर्म का जो आज प्रचलित अर्थ है वह है स्वाभाविक जीवन का विरोध। मुझे आपत्ति इस बात पर है कि कोई मनुष्य यह दावा करे कि *उसका* ईश्वर ही वह सत्ता है जो मानवीय विकास और आनन्द पर बंधन लगाता है। यह लड़ाई आध्यात्म में विश्वास रखने वालों और अविश्वास करने वालों की लड़ाई नहीं है। यह लड़ाई है मानवीय स्वतंत्रता में विश्वास करने वालों और मानवीय स्वतंत्रता का दमन करने वालों के बीच।

शायद किसी दिन यह नया धर्म हमारे पास हो। आप मुँह बाकर चीखेंगे, "क्या? एक *नया* धर्म?" सारे ईसाई उठ खड़े होंगे। प्रतिवाद करेंगे। क्या ईसाई धर्म शाश्वत नहीं है? यहूदी उठेंगे और प्रतिवाद करेंगे। क्या यहूदी धर्म शाश्वत नहीं है? यही दूसरे धर्म वाले भी कहेंगे।

नहीं कोई धर्म शाश्वत नहीं है, जैसे कोई देश शाश्वत नहीं है। धर्म - *कोई* भी धर्म - जन्म, यौवन, जरा और मरण के चक्र से गुज़रता है। सैकड़ों धर्म दुनिया में आए और गए हैं। लाखों मिस्रवासी, चार हज़ार वर्षों तक एमॉन रा के उपासक रहे। पर आज उनमें से एक भी उपासक धरती पर नहीं है। ईश्वर का विचार संस्कृति के साथ बदलता है। पशुपालक समाज में ईश्वर एक दयालु गड़रिया था। युद्ध के समय ईश्वर समर का देवता था। जिस काल में व्यापार-वाणिज्य फल-फूल रहा था तो ईश्वर न्याय का देवता था, जो समता और दया तोल-तोलकर बाँटता था। आज के युग में, जब मनुष्य की रचनात्मकता भी मशीनी है, हमारा ईश्वर एच. जी. वैल्स की तर्ज़ पर एक अविद्यमान ताकत ही हो सकता है। क्योंकि जब मनुष्य खुद अपना ऍटम-बम बना सके, उस युग में किसी रचनात्मक ईश्वर की ज़रूरत नहीं है।

कोई ऐसा दिन भी होगा जब नई पीढ़ी आज के पुरातन धर्म और मिथकों को

अस्वीकार करेगी। जब यह नया धर्म आएगा तब वह इस विचार का विरोध करेगा कि मनुष्य की रचना पाप से हुई है। यह नया धर्म मानव को खुश रखकर ईश्वर का गुणगान करेगा।

यह नया धर्म शरीर और आत्मा को परस्पर विरोधी नहीं मानेगा। वह मानेगा कि शरीर पापों का पुंज नहीं है। यह धर्म स्वीकारेगा कि इतवार की सुबह तैरना, गिरजे में प्रार्थनाएँ गाने से अधिक पवित्र काम है। क्योंकि ईश्वर को खुश रखने के लिए प्रार्थनाएँ गाना ज़रूरी नहीं है। इस नए धर्म का ईश्वर आकाश में नहीं, बागों-चारागाहों में मिलेगा। कल्पना कीजिए कि जितने घण्टे गिरजे जाने वाले प्रार्थना में बिताते हैं, उसका दस प्रतिशत भी अच्छे दयालू व सहायक कामों में बिताएँ, तो क्या कुछ हासिल न हो जाए।

मेरा अखबार हर दिन मुझे बताता है कि हमारा आज का धर्म किस कदर मर चुका है। हम लोगों को जेलों में ठूसते हैं। हमसे मतभेद रखने वालों की आवाज़ों को दबाते हैं। गरीबों का शोषण करते हैं। युद्ध के लिए हथियारों से लैस होते हैं। एक संगठन के रूप में गिरजा निहायत कमज़ोर है। वह युद्ध नहीं रोक सकता। हमारी अमानवीय दण्ड संहिता को बदल नहीं सकता। शोषणकर्ताओं के विरुद्ध खड़ा तक नहीं होता।

आप ईश्वर और धनलोलुपता की सेवा एक साथ नहीं कर सकते। आज के शब्दों में कहें तो इतवार को गिरजा और सोमवार को बन्दूक चलाने का अभ्यास नहीं चल सकता। शायद ईश्वर निन्दा का इससे बड़ा कथन दूसरा नहीं होगा, जब युद्ध के दौरान विभिन्न गिरजों में यह कहा गया है कि ईश्वर हमारे साथ है? ईश्वर दोनों पक्षों को सही कैसे मान सकता है? ईश्वर एक तरफ प्रेम की मूर्ति और दूसरी तरफ विषैली गैस बरसाने वाला कैसे हो सकता है?

कई लोगों के लिए व्यवस्थित परम्परागत धर्म, व्यक्तिगत समस्याओं से निकलने का आसान रास्ता होता है। रोमन कैथोलिक व्यक्ति अगर पाप करे और उसे अपने पादरी के सामने स्वीकार करे तो पादरी उसे उन पापों से मुक्ति देता है।

धार्मिक व्यक्ति अपने बोझ ईश्वर के मत्थे डाल सकता है। उसे विश्वास होता है कि वह ज़रूर महिमा के पथ पर बढ़ेगा। ऐसे में व्यक्तिगत क्षमता और आचरण के बदले इस कथन पर ज़ोर दिया जाता है कि, "ईश्वर में विश्वास करो, वे तुम्हारा उद्धार करेंगे।" इसका अर्थ दरअसल यह लिया जाता है कि तुम बस विश्वास की घोषणा कर दो, तुम्हारी आध्यात्मिक समस्याएँ खुद-ब-खुद खत्म हो जाएँगी। स्वर्ग का टिकट तुम्हारे लिए पक्का है।

मूलतः धर्म जीवन के प्रति भयभीत होता है। वह जीवन से दूर भागने का कृत्य

है। वह इहलौकिक जीवन को गौण बताता है। यह कहता है कि इस जीवन के परे एक बेहतर जीवन है। रहस्यवाद और धर्म का अर्थ है कि यह जीवन असफल है। स्वतंत्र व्यक्ति निर्वाण नहीं पा सकता। पर स्वतंत्र बालक जीवन को व्यर्थ या असफल नहीं मानते। क्योंकि उन्हें किसी ने जीवन को नकारना नहीं सिखाया है।

धर्म और रहस्यवाद अवास्तविक विचार और आचरण को पनपाते हैं। सच्चाई यह है कि हम अपने टेलीविज़न और जेट विमानों के बावजूद *वास्तविक* जीवन से एक अफ्रीकी आदिवासी से भी ज़्यादा दूर हैं। यह सच है कि उस आदिवासी का धर्म भी भय से जन्मा है, पर वह प्रेम में नपुंसक नहीं है, न ही कुंठित है।

उसी तथाकथित 'जंगली' आदिवासी की तरह हम भी भय के कारण धर्म की शरण लेते हैं। पर उस जंगली की तुलना में हम नपुंसक बनाए जा चुके हैं। हम अपने बच्चे को धर्म तब ही सिखा सकते हैं जब हम उसे नपुंसक न बनने दें, उसकी आत्मा को भय से टूटने से बचाएँ।

मेरे पास तमाम ऐसे बच्चे आए हैं जो धार्मिक प्रशिक्षण द्वारा नष्ट कर दिए गए हैं। उनका उदाहरण देने से किसी को फायदा नहीं होगा। दूसरी ओर कोई धार्मिक व्यक्ति भी तमाम उदाहरण देगा जहाँ लोग धर्म के सहारे बचा लिए गए हैं। अगर हम यह मानकर चलें कि मनुष्य पापी है और उसे बचाना ज़रूरी है तो आज के धार्मिक लोग सही हैं।

पर मैं माता-पिता से एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की गुज़ारिश करता हूँ। ऐसा दृष्टिकोण जो उनके आसपास के लोगों से परे हो। मैं कहता हूँ कि वे एक ऐसी सभ्यता को पनपाएँ जो जन्म से बच्चों पर पाप का बोझ न लादे। मेरी गुज़ारिश है कि माता-पिता बच्चों से कहें कि वह *पाप के साथ नहीं जन्मा है,* वह अच्छे इन्सान की तरह जन्मा है। उसे पापों से मुक्ति की दरकार नहीं है। मैं माता-पिता से कहता हूँ कि वे अपने बच्चों को बताएँ कि वे *इसी जीवन* को बेहतर बना सकते हैं। उन्हें इसी को बेहतर बनाना चाहिए। सो वे अपनी सारी ऊर्जा यहाँ और इस जीवन में लगाएँ। मौत के बाद किसी शाश्वत जीवन को सुधारने में नहीं।

किसी बच्चे पर धार्मिक रहस्यवाद नहीं लादना चाहिए। क्योंकि रहस्यवाद उसे सच्चाई व वास्तविकता से बचना सिखाता है, पर एक खतरनाक रूप में। हम सबको यदा-कदा सच्चाई से दूर भागने की ज़रूरत पड़ती है। अन्यथा हम कभी कोई उपन्यास नहीं पढ़ते, कोई फिल्म नहीं देखते, कभी शराब का जाम न उठाते। पर हमारा भागना, खुली आँखों के साथ होता है, और हम जल्दी ही वास्तविक दुनिया में लौट आते हैं। पर एक रहस्यवादी हमेशा अपनी आध्यात्मिकता और धार्मिकता में अपनी कामेच्छा को डालकर एक भगोड़े का जीवन जीता है ।

कोई भी बच्चा स्वभाव से रहस्यवादी नहीं होता। समरहिल में एक स्वतःस्फूर्त अभिनय कक्षा के दौरान इस बात का सबूत मिला कि अगर बच्चों को भय का जामा न उढ़ाया जाए तो उनमें वास्तविकता का सहज-स्वाभाविक ज्ञान होता है। एक रात मैं कुर्सी पर बैठा और मैंने कहा, "मैं स्वर्ग के स्वर्ण द्वार का रखवाला संत पीटर हूँ। तुम सब स्वर्ग में घुसना चाहने वाले लोग हो। चलो अभिनय कर इसी बात को आगे बढ़ाओ।"

उन्होंने स्वर्ग द्वार में घुसने के तमाम कारण बताए। एक लड़की तो उल्टे रास्ते आई और बाहर जाने का बहाना बनाने लगी। पर उनमें सबसे उम्दा काम रहा एक चौदह साल के लड़के का जो सीटी बजाता हुआ आया और जेब में हाथ घुसाए अन्दर घुसने लगा।

"अरे!" मैं ज़ोर से बोला, "तुम अन्दर नहीं जा सकते।"

वह पलटा और मुझ पर नज़र डाली। फिर बोला, "ओह! तुम इस काम पर नए-नए आए हो न?"

"क्या मतलब" मैंने पूछा।

"तो तुम्हें पता नहीं कि मैं कौन हूँ?"

"कौन हो भला?" मैंने जानना चाहा।

"ईश्वर!" उसने जवाब दिया और सीटी बजाता हुआ स्वर्ग में दाखिल हो गया।

बच्चे दरअसल प्रार्थना भी नहीं करना चाहते। बच्चों की प्रार्थनाएँ ढोंग भरी होती हैं। मैंने दर्ज़नों बच्चों से पूछा है, "प्रार्थना करते समय तुम क्या सोचते हो?" हरेक एक ही कहानी कहता हैः हमेशा उसके दिमाग में तमाम दूसरी बातें सूझती हैं। बच्चा दूसरी बातें सोचेगा *ही*, क्योंकि उसके लिए प्रार्थना के कोई मायने नहीं हैं। वह तो उस पर लादी गई बाहरी चीज़ है।

दस लाख लोग हरेक भोजन से पहले प्रार्थना करते होंगे, उनमें से नौ लाख नब्बे हज़ार नौ सौ निन्यानवे अपनी प्रार्थना मशीनी तरीके से बोलते हैं, ठीक वैसे जैसे हम किसी के आगे बढ़ने के पहले कहते हैं, "ज़रा माफ कीजिएगा।" अपनी मशीनी प्रार्थनाएँ और मशीनी आचरण हम नई पीढ़ी को क्यों दें? यह तो बेईमानी होगी? किसी निरीह बच्चे पर धर्म लादना भी ईमानदारी नहीं है। जब वह बड़ा हो, खुद अपनी राह चुनने लायक हो जाए, तब अपना मन बनाने की छूट उसे मिलनी चाहिए। बच्चों को रहस्यवादी बनाने से भी बड़ा खतरा है उसे नफरत करने वाला इन्सान बनाना। अगर बच्चे को शुरू से यह सिखाया जाता है कि कुछ चीज़ें पाप हैं, तो जीवन के प्रति उसका प्रेम नफरत में बदल जाता है। जब बच्चे आज़ाद होते हैं तो वे किसी दूसरे बच्चे को पापी नहीं मानते। समरहिल में अगर कोई बच्चा

चोरी करता है, और उसके साथियों की जूरी उसके काम पर विचार करती है, तो वे उसे चोरी की सज़ा नहीं देते। वे उसे वह कर्ज़ चुकाने भर को कहते हैं। बच्चों को सहज ही यह पता होता है कि चोरी करना एक तरह की बीमारी है। वे वास्तविकता से जुड़े होते हैं सो एक गुस्सैल ईश्वर की या एक लालच देकर लुभाने वाले शैतान की कल्पना नहीं करते। गुलाम मानव अपने ईश्वर की कल्पना अपने ही प्रतिरूप में करता है। पर मुक्त बच्चा जो जीवन का उम्मीद व बहादुरी से स्वागत करता है, उसे किसी ईश्वर की ज़रूरत नहीं होती।

अगर हम चाहते हैं कि बच्चों की आत्मा स्वस्थ रहे तो हमें उन्हें झूठे मूल्य देने से बचना चाहिए। तमाम लोग जो खुद तो ईसाई धर्मशास्त्र पर सवाल उठाते हैं, अपने बच्चों को ईसाई विश्वास देने से नहीं हिचकते। ऐसी कितनी माँएँ होंगी जो सच में एक आग से सुलगते नरक या स्वर्णिम स्वर्ग को शब्दशः स्वीकारती होंगी? पर ऐसी हज़ारों माँएँ अपने बच्चों को पौराणिक कथाएँ सुनाकर उनकी आत्मा को तोड़-मरोड़ देती हैं।

धर्म इसीलिए पनपता है क्योंकि इन्सान अपनी अवचेतन सच्चाई का सामना *नहीं* कर सकता। धर्म अवचेतन को शैतान बना डालता है और उसके द्वारा दिए गए प्रलोभनों से भागने और बचने की बात कहता है। पर अगर अवचेतन को चेतना के स्तर पर ले आया जाए, तो धर्म की कोई भूमिका रहेगी ही नहीं।

बच्चे के लिए अमूमन धर्म का अर्थ होता है केवल डर। ईश्वर एक महामानव है जिसकी पलकों में भी छेद हैं और जो तुम्हें हर जगह, हर समय, देख सकता है। यानी ऐसा ईश्वर चादर के नीचे किए जा रहे कृत्य को भी देख सकता है। बच्चे के जीवन में ऐसे भय को घुसाना सबसे बड़ा गुनाह है। क्योंकि तब वह हमेशा जीवन को नकारेगा, हमेशा कमतर रहेगा, हमेशा के लिए डरपोक बनेगा।

जिस किसी को बचपन में मृत्यु के बाद नरक का डर दिखाया गया हो वह *इस* जीवन के प्रति कभी भी आश्वस्त नहीं हो सकता। फिर चाहे वह व्यक्ति तार्किक रूप से यह समझता क्यों न हो कि स्वर्ग और नर्क की धारणाएँ मानवीय आशाओं व भय की बचकानी परिकल्पनाओं पर गढ़ी गई हैं। जो भावनात्मक लबादा हमें बचपन में उढ़ाया जाता है वह ताउम्र स्थाई रूप से लदा रहता है। वह कठोर ईश्वर जो स्वर्ग में संगीत के स्वरों से आपको पुरस्कार देता है या नरक की आग में जलाकर दण्डित भी करता है उसे इन्सान ने हूबहू अपनी ही शक्ल दी है। वह हमारी ही कल्पना की मूरत है। ईश्वर इच्छा-पूर्ति और शैतान भय-पूर्ति है।

इसलिए जो कुछ हमें खुशी से मज़ा दे, वही बुराई बन जाता है। ताश खेलना, नाटक देखना, नाचना आदि शैतानी बातें हैं। और धार्मिक होने का अर्थ अक्सर आनन्दहीन होना है। इतवार को गिरजा जाते वक्त कस्बों में बच्चों को ज़बर्दस्ती

पहनाए जाने वाले कड़क कपड़े धर्म के दण्ड देने वाले स्वरूप का प्रतीक हैं। धार्मिक संगीत भी अक्सर रुदन भरा होता है। अधिकांश लोगों को गिरजा जाने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ती है। वहाँ जाना एक फर्ज़ ही होता है। और धर्म का मतलब होता है दुखी दिखना और दुखी होना।

पर नया धर्म स्व के ज्ञान और उसे स्वीकारने पर आधारित होगा। दूसरों को प्यार करने की शर्त यह होती है, पहले खुद को प्यार किया जाए। यह बात मूल पाप के साथ पैदा होने के कलंक से अलग होगी, क्योंकि वहाँ इन्सान खुद से नफरत करता है और फलस्वरूप दूसरों से भी। कवि कॉलरिज ने नए धर्म की परिभाषा देते हुए कहा था कि, वही बेहतरीन प्रार्थना कर सकता है जो छोटी-मोटी सभी चीज़ों को ढेर प्यार करता है। *नए* धर्म में इन्सान तभी सर्वोत्तम प्रार्थना करेगा, जब वह *स्वयं में निहित* तमाम छोटी और बड़ी चीज़ों से प्यार कर सकेगा।

नैतिक शिक्षा

ज़्यादातर माता-पिता सोचते हैं कि अगर वे अपने बच्चों को नैतिक मूल्य नहीं सिखाएँगे तो वे अपनी फर्ज़ अदायगी नहीं कर पाएँगे। इसलिए वे लगातार बताते रहते हैं कि क्या सही है, क्या गलत। लगभग सभी माता-पिता मानते हैं कि बच्चे की भौतिक ज़रूरतों को पूरा करने के अलावा नैतिक मूल्यों का सबक सिखाना उनकी प्रमुख ज़िम्मेदारी है। और ऐसे उपदेश के बिना बच्चा जंगली, व्यवहार में अनियंत्रित और दूसरों के प्रति असंवेदनशील बन जाएगा। यह मान्यता उस विश्वास से उपजती है जिसे हमारी संस्कृति में ज़्यादातर लोग स्वीकारते हैं, कम से कम परोक्ष रूप से तो। वे स्वीकारते हैं कि मनुष्य जन्म से ही पापी है, स्वाभाविक रूप से ही खराब है। और अगर उसे अच्छा बनाने के लिए प्रशिक्षित नहीं किया जाए तो वह हिंसक, क्रूर और खूनी बन सकता है।

ईसाई चर्च इस विश्वास को साफ-साफ सामने रखते हुए कहता है, "हम अभागे पापी हैं।" अतः पादरी और स्कूली शिक्षक यह मानते हैं कि बच्चे को प्रकाश की ओर ले जाना है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह प्रकाश क्रॉस का है या नैतिक संस्कृति का। उनकी नज़र में दोनों का मकसद एक ही है - 'ऊपर उठाने का'।

अब क्योंकि चर्च और स्कूल दोनों ही यह मानते हैं कि बच्चा पाप में जन्मा है तो भला माता-पिता से यह उम्मीद कैसे की जाए कि वे इन दोनों महान सत्ताओं से असहमत हों। चर्च कहता है, "अगर इहलोक में पाप करोगे तो परलोक में सज़ा मिलेगी।" माता-पिता इसी से सबक लेते हुए कहते हैं, "यह फिर से किया तो मैं

तुम्हें *अभी ही* सज़ा दूँगा।" अर्थात दोनों ही भय के सहारे उत्थान करना चाहते हैं।

बाइबल में लिखा है, "ईश्वर का भय ही प्रज्ञा या समझदारी का प्रारम्भ है।" दरअसल अधिकाँश दृष्टान्तों में यह मानसिक असंतुलन का प्रारम्भ सिद्ध होता है। क्योंकि बालमन में किसी भी प्रकार का भय नुकसानदेह होता है।

अक्सर माता-पिता मुझसे कहते हैं, "मुझे समझ में नहीं आता कि मेरा बेटा बिगड़ कैसे गया है। मैंने उसे कठोर दण्ड भी दिया है और हमारे घर में कभी भी हमने गलत आदर्श उपस्थित नहीं किए हैं।" पर मेरा काम ज़्यादातर ऐसे आहत बच्चों के साथ रहा है जिन्हें पिटाई के भय या ईश्वर के भय के साथ पाला-पोसा या शिक्षित किया गया है। ऐसे बच्चों के साथ जिन्हें ऐसे धमकाकर अच्छा बनने पर *बाध्य* किया गया है।

बिरले ही माता-पिता ऐसे होंगे जिन्हें यह अहसास होगा कि वर्जनाओं, दण्ड, उपदेश तथा नैतिक आचरण की सतत् झरने वाली धारा का बच्चे पर कितना भयावह असर पड़ता है। और यह वह धारा है जिसके लिए बच्चा तैयार तक न हो, जिसे उसने समझा तक नहीं हो और इसलिए उसे स्वीकारा न हो।

समस्यात्मक बच्चे के परेशान माता-पिता कभी भी अपनी नैतिक संहिता पर सवाल नहीं उठाते। वे आश्वस्त होते हैं कि उन्हें अच्छे-बुरे का पूरा और सही ज्ञान है। और धर्मग्रंथों में आचरण के उपयुक्त मानक सदा-सर्वदा के लिए दर्ज़ कर दिए गए हैं। माता-पिता अपने माता-पिता की, अपने शिक्षकों की या समाज सम्मत संहिता की शिक्षा पर कभी सवाल नहीं उठाते। वे अपनी संस्कृति के समूचे मत को जस का तस स्वीकार लेते हैं। इन आस्थाओं पर विचार करना, उनका विश्लेषण करना एक बेहद कठिन और बौद्धिक काम है। उनको चुनौती देने का अर्थ है भारी आघात।

अतः परेशान माता-पिता यह मान लेते हैं कि दोष बच्चे का ही है। वे मान लेते हैं कि बच्चा अपनी इच्छा से, चाहकर बुरा बना है। मैं पूरे विश्वास से कहता हूँ कि *बच्चा कभी गलत नहीं होता*। मैंने जिन समस्यात्मक बच्चों के साथ काम किया है, उनमें से हरेक बच्चा भ्रमित प्रारम्भिक शिक्षा या गलत प्रारम्भिक प्रशिक्षण का परिणाम था। बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षण-प्रशिक्षण प्रक्रिया में मनोविज्ञान के कई मूलभूत सिद्धान्तों को पूरी तरह से भुला दिया जाता है।

हम शुरुआत इसी विश्वास से करें कि प्रायः सभी यह मानते हैं कि मानव इच्छाशक्ति से युक्त है - वह सब कुछ कर सकता है जो वह करना चाहता है। इस विश्वास से सभी मनोवैज्ञानिक असहमत होंगे। मनोचिकित्सा ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य द्वारा किए गए कर्म काफी हद तक उसके अवचेतन मन द्वारा नियंत्रित

होते हैं। क्रिप्पेन नामक व्यक्ति अगर अपनी इच्छाशक्ति का उपयोग कर पाता, तो शायद हत्यारा न होता। हमारे अपराध सम्बंधी कानून इस भ्रामक विश्वास पर आधारित हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ज़िम्मेदार व्यक्ति है, और अच्छा या बुरा चुनने की क्षमता रखता है। हाल में लंदन में एक व्यक्ति को महिलाओं के वस्त्रों पर स्याही फेंकने के जुर्म में गिरफ्तार किया गया। समाज की नज़र में स्याही फेंकने वाला व्यक्ति एक ऐसा दुष्ट था जो कोशिश करता तो अच्छा इन्सान भी बन सकता था। पर मनोवैज्ञानिकों की नज़र में वह एक लाचार, मनोरोगी है जो एक ऐसी प्रतीकात्मक क्रिया करता है जिसका अर्थ वह स्वयं भी नहीं जानता। प्रबुद्ध समाज उसे जेल के बदले, कोमलता से एक मनोचिकित्सक के पास ले जाता।

अवचेतन मन के मनोविज्ञान ने यह दिखाया है कि हमारे अधिकतर कर्मों का एक गुप्त स्रोत होता है जहाँ तक पहुँचने के लिए विस्तृत विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। और तो और मनोविश्लेषण भी हमारे गहनतम अवचेतन तक नहीं जाता। हम कर्म करते हैं, पर हम यह नहीं जानते कि हम ऐसा *क्यों* कर रहे हैं।

कुछ समय पहले मैंने मनोविज्ञान की पुस्तकें परे हटाकर रख दीं और खपरैल लगाने के काम में जुट गया। पर अगर यह करने के बदले मैं स्याही छिड़कने लगता, तो मुझे यह पता नहीं होता कि मैं ऐसा क्यों कर रहा हूँ। परन्तु, क्योंकि खपरैल लगाना एक सामाजिक गतिविधि है, मैं सम्मानित नागरिक हूँ, और क्योंकि स्याही छिड़कना असामाजिक कृत्य है, वह स्याही छिड़कने वाला एक घृणित अपराधी है। फिर भी मुझमें और उस स्याही छिड़कने वाले में एक अन्तर है। अन्तर यह है कि मुझे चेतन रूप से हाथों से काम करना पसन्द है, पर वह अपराधी चेतन रूप से स्याही छिड़कना पसन्द नहीं करता। जब मैं हाथों से कुछ काम करता हूँ, तो मेरा चेतन और अवचेतन समन्वित रूप से काम कर रहा होता है। पर स्याही छिड़कने के कृत्य में चेतन और अवचेतन टकराते हैं। असामाजिक कृत्य इसी टकराव का नतीजा है।

कुछ वर्षों पूर्व, समरहिल में एक छात्र आया। ग्यारह साल का तेजस्वी, मेधावी, प्यारा सा लड़का। वह चुपचाप बैठा पढ़ता रहता। तब अचानक उछलकर उठता, कमरे से बाहर भागता और घर में आग लगाने की कोशिश में जुट जाता। उसे एक मनोवेग जकड़ लेता, ऐसा मनोवेग जिस पर नियंत्रण कर पाना उसके बस में नहीं था।

उसके पूर्ववर्ती शिक्षकों ने उसे समझा-बुझाकर और दण्ड देकर इस बात के लिए प्रोत्साहित किया था कि *वह इच्छाशक्ति का उपयोग कर* इस मनोवेग को नियंत्रित करे। पर आग लगाने की अवचेतन प्रेरणा इतनी तीव्र थी कि नियंत्रण से परे थी। लोग उसे बुरा न समझें - इस चेतन प्रेरणा से आग लगाने की अवचेतन प्रेरणा कहीं

तीव्र थी। यह लड़का *खराब* लड़का नहीं था। वह *बीमार* लड़का था। वे कौन से प्रभाव थे जिन्होंने उसे *बीमार* बना डाला था? वे कौन से प्रभाव हैं जो लड़कों और लड़कियों को बाल अपराधी बना डालते हैं? मैं समझाने की कोशिश करता हूँ।

जब हम किसी शिशु को देखते हैं, हम यह जान लेते हैं कि उसमें कोई दुष्टता नहीं है। वह उतना ही निर्मल है जितना पत्ता गोभी का फूल या शेर का छौना होता है। नवजात शिशु अपने साथ एक जीवन शक्ति लाता है। उसकी इच्छा, उसकी अचेतन इच्छा *जीने* की होती है। जीने की इच्छा उसे खाने, अपने शरीर और अंगों को तलाशने, अपनी इच्छाओं को पूरा करने को प्रेरित करती है। उसके सभी कृत्य वैसे होते हैं, जैसे कृत्य करने के लिए प्रकृति ने उसे *बनाया* है। पर वयस्कों की नज़र में - बच्चों में निहित ईश्वर इच्छा, उनमें निहित प्रकृति की इच्छा - शैतानी इच्छा है। व्यावहारिक रूप से प्रत्येक वयस्क यह मानता है कि बच्चे के स्वभाव को बेहतर बनाना ज़रूरी है। और होता यह है कि प्रत्येक माता-पिता नन्हें से बच्चे को यह सिखाने में जुट जाते हैं कि वह कैसे जिए।

काफी जल्दी ही बच्चे को प्रतिबंधों की एक पूरी व्यवस्था का सामना करना पड़ता है। *यह* बदमाशी है, *वह* गन्दा है, और *यों* करना स्वार्थी है। बालक के मूल स्वर, उसके नैसर्गिक जीवन शक्ति को निर्देश के स्वरों का सामना करना पड़ता है। चर्च प्रकृति की आवाज़ को शैतान की आवाज़ कहेगा और निर्देश के स्वर को ईश्वर की आवाज़। मेरा पक्का विश्वास है हमें इस तुलना को उलट देना चाहिए।

मैं मानता हूँ कि नैतिक निर्देश ही बच्चे को खराब बनाते हैं। मैं पाता हूँ कि जैसे ही मैं खराब बच्चे को दिए गए नीति उपदेश को खण्डित कर देता हूँ, वह एक अच्छा बच्चा बन जाता है।

सम्भव है कि वयस्कों के लिए नीति-निर्देशों की कोई सार्थकता हो, यद्यपि मुझे तो इसमें शंका है। पर बच्चों के लिए नीति-निर्देशों की आवश्यकता की कोई सार्थकता है ही नहीं। यह तो मनोवैज्ञानिक रूप से ही गलत है। बच्चे से कहना कि वह स्वार्थी न बने, गलत होगा। हरेक बच्चा आत्मकेन्द्रित होता है, और दुनिया उसकी होती है। अगर उसके पास एक सेब है, उसकी एकमात्र इच्छा उस सेब को खाने की ही होती है। और माँ उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित करती है कि वह उसे अपने भाई के साथ बाँटकर खाए। इसका मुख्य परिणाम होता है कि वह अपने छोटे भाई से ही घृणा करने लगता है। परमार्थ का भाव बाद में आता है - स्वाभाविक रूप से आता है, पर केवल तब ही *जब उसे निस्वार्थ बनना सिखाया न गया हो।* पर जिसे निस्वार्थी बनने पर बाध्य किया गया हो, वह बच्चा परमार्थ कभी सीखता ही नहीं है। बच्चों में स्वार्थ की भावना का दमन कर माँ उसे हमेशा-हमेशा के लिए स्वार्थी बना देती है।

ऐसा भला कैसे हो जाता है? मनोरोग विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अपूर्ण इच्छाएँ अवचेतन मन में बस जाती हैं। जिस बच्चे को निस्वार्थ बनना सिखाया गया हो वह अपनी माँ को खुश करने के लिए उसकी माँग के अनुरूप आचरण करता है। पर वह अचेतन रूप से अपनी वास्तविक इच्छाएँ, स्वार्थी कामनाएँ दफन करता चलता है। पर इसी दमन के कारण उसकी बचकानी इच्छाएँ ताउम्र उसके साथ बनी रहती हैं। यों नैतिक निर्देश अपने ही उद्देश्य को विफल कर डालता है।

यही बात सेक्स के क्षेत्र में भी होती है। बाल्यावस्था की नैतिक वर्जनाएँ यौन में बचकानी रुचि को स्थाई बना डालती हैं। जो लोग बचकानी यौन हरकतों के लिए गिरफ्तार होते हैं - जो लड़कियों को अश्लील चित्र दिखाते हैं या सार्वजनिक रूप से अपने गुप्तांग का प्रदर्शन करते हैं - वे ऐसे पुरुष होते हैं जिनकी माताएँ नैतिकता से ओतप्रोत थीं। बाल्यावस्था की निरीह-सी रुचि को घोर पाप का शीर्षक दे डाला जाता है।

बच्चा उस समय अपनी इच्छाएँ दबा देता है। पर ये ही इच्छाएँ उसके अवचेतन में बनी रहती हैं और कालान्तर में अपने मूल स्वरूप या फिर अपने सांकेतिक स्वरूप में उभरती हैं। इसी प्रकार जो महिला दुकानों से बटुए चुराती है, वह भी एक ऐसा सांकेतिक कृत्य ही होता है जिसका सूत्र बाल्यावस्था में नैतिक उपदेश के कारण हुए दमन में ढूँढा जा सकता है। उसका यह आचरण दरअसल बचपन में दमित यौन रुचि की तुष्टि की कोशिश भी हो सकता है।

दरअसल ये लाचार लोग बेहद दुखी लोग हैं। चोरी करने का अर्थ होता है अपने समूह की नापसन्दगी को झेलना और समूह प्रवृत्ति हममें बड़ी मज़बूत होती है। अपने पड़ोसियों का सम्मान पाना मानव जीवन का एक वास्तविक उद्देश्य होता है। असामाजिकता मानव प्रकृति का हिस्सा है ही नहीं। अहंकार ही सामान्य लोगों को सामाजिक बनाने के लिए पर्याप्त होता है। अहंकार से बड़ा कारक ही व्यक्ति को असामाजिक बना सकता है।

यह बड़ा कारक भला क्या है? दो स्व के बीच का संघर्ष बेहद कड़वा होता है - वह स्व जिसे प्रकृति ने रचा था और वह दूसरा स्व जिसे नैतिक शिक्षा ने गढ़ा है। इस टकराव से अहंकार अपने बचकाने चरण में पलट जाता है। और तब भीड़ की राय गौण बन जाती है।

ऐसे में वह चोरी का रोगी जो कचहरी में उपस्थित होने की, अखबारों में लिखे जाने की शर्म को बखूबी जानता है, पर इसके बावजूद उसमें अपनी बचकानी इच्छा की पूर्ति की भावना जनता की राय के भय से कहीं बलवान होती है। हमारे पिछले विश्लेषण के अनुसार, चोरी का उन्माद खुशी तलाशने की इच्छा का प्रतीक है।

परन्तु क्योंकि वह मूल इच्छा इस सांकेतिक कृत्य से संतुष्ट नहीं हो पाती, वह व्यक्ति अपने प्रयास बार-बार दोहराता है।

एक उदाहरण से अपूर्ण इच्छा और बाद में उसके द्वारा ली गई राह स्पष्ट हो सकेगी। जब सात वर्षीय बिली को समरहिल लाया गया, तो उसके माता-पिता ने मुझे बताया कि वह चोर है। उसे आए सप्ताह भर भी नहीं गुज़रा होगा कि हमारे शिक्षकों में से एक ने मुझे बताया कि उनके कमरे में रखी मेज़ पर से उनके सोने की घड़ी गायब हो गई है। मैंने आवास-गृह माता से पूछा कि उसे इस बारे में कोई जानकारी है क्या।

उन्होंने कहा, "मैंने बिली को घड़ी के पुर्ज़ों के साथ ज़रूर देखा था। जब मैंने पूछा कि उसे वे कहाँ से मिले तो उसने बताया कि वे उसे घर के बाग में एक गहरे गड्ढे में मिले थे।"

मुझे पता था कि बिली अपना सारा सामान एक सन्दूक में रखता है। मैंने सन्दूक के ताले को अपनी एक चाबी से खोला। उसमें सोने की घड़ी के अंजर-पंजर रखे थे। ज़ाहिर था उस पर हथौड़े और छेनी का इस्तेमाल किया गया था। मैंने सन्दूक बन्द की और बिली को बुलाया।

"तुमने एण्डरसन साहब की घड़ी देखी है?" मैंने पूछा।

अपनी बड़ी और निर्दोष आँखों से ताकते हुए उसने जवाब दिया, "नहीं," और जोड़ा, "कौन-सी घड़ी?"

मैंने आधे मिनट उसे घूरा। तब कहा, "बिली तुम्हें पता है बच्चे कहाँ से आते हैं?"

उसने रुचि से नज़रें उठाते हुए कहा, "हाँ, आकाश से।"

"बिल्कुल नहीं," मैं मुस्कुराया। "तुम अपनी माँ के पेट में पलते रहे। और जब तुम बड़े हो गए तो तुम बाहर आए।" वह चुपचाप अपनी सन्दूक तक गया और टूटी घड़ी लाकर उसने मुझे थमा दी। उसकी चोरी के रोग का इलाज हो गया, क्योंकि वह तो सच को चुरा रहा था। उसके चेहरे पर जो चिन्ता का भाव था वह गायब हो गया। वह अब पहले जैसा प्रसन्न दिखने लगा।

पाठकों को लग सकता है कि बिली का नाटकीय इलाज जादुई था। ना, ऐसा कुछ नहीं था। जब बच्चा घर में किसी गहरे गड्ढे की बात करता है, तो सम्भव है कि वह अवचेतन रूप से उस गहरी गुहा की बात कर रहा हो, जहाँ उसका जीवन प्रारम्भ हुआ था। साथ ही मैं यह भी जानता था कि बिली के पिता के पास कई कुत्ते थे। मेरा अनुमान था कि उसने पिल्लों को जन्मते देखा होगा। और तब जोड़ लगाते हुए उसने शिशुओं के जन्म की बात का अन्दाज़ लगाया होगा। पर माँ के कमज़ोर से झूठ ने उसे अपने द्वारा तलाशे सिद्धान्त को दबाने पर मजबूर कर

दिया। सच्चाई जानने की उसकी इच्छा ने सांकेतिक तुष्टि का रूप लिया। संकेत रूप में वह माता को चुराता, यह जानने के लिए कि भीतर क्या है, उसे खोलता। मेरा एक और छात्र था जो इसी कारण हरेक दराज़ खोलता रहता था।

माता-पिता को समझाना यह होगा कि आप बच्चे को उस चरण में नहीं धकेल सकते जिसके लिए वह तैयार न हो। जो लोग अपने बच्चे को स्वाभाविक रूप से रेंगने के चरण से चलने के चरण तक विकसित नहीं होने देते, उसे जल्दी चलाने की कोशिश में टाँगों पर खड़ा कर देते हैं, उनके बच्चे की टाँगें इतनी मज़बूत नहीं होतीं कि वे उसका वज़न सम्भाल सकें। बच्चे से यह माँग ही समय पूर्व की जा रही होती है। परिणाम भयावह होता है। अगर वे उस समय तक इंतज़ार करते जब बच्चा *स्वाभाविक* रूप से चलने के लिए तैयार हो जाता तो बच्चा स्वयं ही, सहज ही ऐसा करता। इसी तरह समय से पूर्व बच्चे को टट्टी-पेशाब के लिए प्रशिक्षित करने का नतीजा भी निराशाजनक सिद्ध हो सकता है।

नैतिक निर्देशों पर भी यही बात लागू होती है। बच्चे को उस समय उन मूल्यों को अपनाने को बाध्य करना जिनके लिए वह स्वाभाविक रूप से तैयार न हो, न सिर्फ सही समय आने पर उन मूल्यों को अपनाने की सम्भावना को अवरुद्ध करता है, बल्कि मनोरोग भी उत्पन्न करता है।

छह साल के बच्चे से यह माँग करना कि वह छड़ से झूले और शरीर को हाथों से ऊपर उठाकर चार बार छड़ से अपनी ठुड्डी टिकाए, नाजायज़ होगा। उसकी माँसपेशियाँ ऐसी वर्जिश के लिए तैयार नहीं हैं। पर अगर इसी बच्चे को स्वाभाविक रूप से विकसित होने दिया तो वह अठारह साल का होने तक ऐसा आसानी से कर सकेगा। ठीक इसी तरह हमें बालक के नीतिबोध के विकास में भी जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। माता-पिता को धीरज रखना होगा। उन्हें यह विश्वास रखना होगा कि अनुचित हस्तक्षेप द्वारा उसे अपंग बनाए बिना अगर उसे स्वाभाविक रूप से विकसित होने दिया जाए तो वह ज़रूर एक नेक इन्सान बन सकेगा।

बच्चों के साथ समरहिल में वर्षों का मेरा अनुभव मुझे विश्वास दिलाता है कि *बच्चों को सही आचरण सिखाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। क्या सही है और क्या गलत वह बच्चा समय के साथ खुद ब खुद सीखता है - बशर्ते उस पर कोई दबाव न डाला गया हो।*

सीखना दरअसल अपने आसपास के वातावरण से मूल्यों को पाने की ही प्रक्रिया है। अगर माता-पिता स्वयं ईमानदार और नीतिवान हैं तो समय के साथ उनके बच्चे भी उसी राह को अपनाएँगे।

बच्चों पर प्रभाव डालना

बच्चे को प्रभावित करना सभी अभिभावक व शिक्षक अपना फर्ज़ और धंधा मानते हैं। इसलिए, क्योंकि उनका मानना है कि वे यह जानते हैं कि बच्चों के पास क्या-क्या होना चाहिए, उन्हें क्या सीखना चाहिए, उन्हें क्या बनना चाहिए। मैं इससे सहमत हूँ। मैं कभी बच्चों पर अपने विश्वास और पूर्वाग्रह नहीं लादता। मैं स्वयं किसी धर्म का अनुयाई नहीं हूँ, पर मैंने धर्म के विरुद्ध उनसे एक भी शब्द नहीं कहा है। न ही मैं हमारी बर्बर अपराध संहिता के विरुद्ध, यहूदियों के प्रति भयबोध के विरुद्ध, न ही साम्राज्यवाद के विरुद्ध कुछ कहता हूँ। मैंने कभी भी बच्चों को सायास शान्तिवादी, शाकाहारी, सुधारक या कुछ और बनने के लिए दबाव नहीं डाला है। मैं यह जानता हूँ कि किसी भी प्रकार का उपदेश बच्चों की नज़र में बेईमानी होता है। मैं आज़ादी की ताकत में विश्वास करता हूँ। मेरा विश्वास है कि आज़ादी की ताकत युवा वर्ग को हर तरह के छल-छद्म, कट्टरता और वाद से बचा सकेगी।

बच्चे पर लादा गया हरेक मत उसके विरुद्ध अपराध है। बच्चा एक नन्हा वयस्क नहीं है और वह वयस्कों के नज़रियों को किसी हालत में समझ नहीं सकता।

एक उदाहरण देता हूँ। एक रात मैंने पाँच से ग्यारह वर्ष की आयु वाले पाँच बच्चों से कहा, "सुश्री 'क' को इंफ्लुऐंज़ा हुआ है, इसलिए कोशिश करना कि सोने जाते समय शोर-शराबा न हो।" उन्होंने शान्त रहने का वादा किया। पाँच ही मिनट गुज़रे होंगे कि उनमें धुआँधार तकिया-युद्ध शुरू हो गया। खूब शोर मचाया। सम्भावना है कि उनके अवचेतन मन में सुश्री 'क' का जीना हराम करने की इच्छा हो। पर इस सम्भावना को परे रखकर मेरा मानना है कि भूल उनकी उम्र की ही थी। सच है कि कड़क आवाज़ और हंटर उस वक्त सुश्री 'क' के लिए अमन-चैन की स्थिति पैदा कर सकते थे, पर यह शान्ति तब बच्चों के जीवन में भय को घुसाने की कीमत पर खरीदी गई शान्ति होती। बच्चों को सिखाने का सार्वभौमिक तरीका है उन्हें हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल लेना। यह तरीका गलत है। बिरले ही माता-पिता या शिक्षक ऐसे होंगे जो इस सच्चाई को पहचानते हैं कि बच्चों पर उपदेश झाड़ना बेकार है। ऐसा कोई बच्चा नहीं होगा जिस पर, बिल्ली की पूँछ खींचने पर झाड़े गए उपदेश, "कोई *तुम्हारा* कान खींचे तो कैसा लगेगा *तुम्हें*", का कोई असर हुआ हो। न ही बच्चे को उस स्थिति में माता-पिता की बात समझ आती है जब वे, "नन्हें को पिन चुभाई तुमने? मैं बताता हूँ कि पिन से कितना

दर्द होता है, मैं भी चुभाता हूँ।'' (*बच्चे की चीख*) ''अब शायद तुम ऐसी हरकत नहीं दोहराओगे।'' बच्चा शायद भविष्य में पिन न चुभाए, पर उसके नतीजे हमें मनोचिकित्सकों की क्लिनिकों में ज़रूर दिखेंगे।

मैं माता-पिता को यह समझाने की कोशिश कर रहा हूँ कि बालक कार्य-कारण सिद्धान्त नहीं समझते। बच्चे से कहना, ''तुमने इतनी शैतानी की है कि अब तुम्हें शनिवार को मिलने वाली चवन्नी नहीं मिलेगी'', बिल्कुल गलत है। क्योंकि जब शनिवार को उसे उसकी शैतानियों की और उसकी सज़ा की याद दिलाई जाती है तो वह बेहद नाराज़ होता है। सोमवार की घटना उसके लिए इतिहास बन चुकी होती है। उस घटना का शनिवार को मिलने वाली चवन्नी से क्या लेना-देना है। उसके मन में रत्तीभर भी पश्चाताप नहीं जगता। जगती है वंचित करने वाली सत्ता के प्रति घृणा।

माता-पिता को हमेशा खुद से एक सवाल पूछना चाहिए। वह यह है कि बच्चों को दिये जा रहे निर्देश कहीं अपनी सत्ता स्थापित करने की इच्छा के कारण तो नहीं है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आन्तरिक इच्छा ही उन्हें बच्चे को बदलने को मजबूर कर रही हो। हरेक व्यक्ति चाहता है कि पड़ोसी उसे भला समझे। अगर कोई दूसरी ही ताकतें बच्चे को असामाजिक व्यवहार करने पर मजबूर न करें, तो स्वाभाविक रूप से बच्चा वही करना चाहेगा जिससे उसके प्रति सबकी राय अच्छी रहे। पर दूसरों को खुश रखने की उसकी यह इच्छा उसके निजी विकास के एक निश्चित चरण में नहीं पनपेगी। उस चरण तक जल्दी से जल्दी पहुँचने के माता-पिता या शिक्षकों द्वारा किए गए प्रयास बच्चों को अपूर्णीय क्षति पहुँचाएंगे।

मैं एक बार एक आधुनिक शाला में गया जहाँ तकरीबन सौ लड़के-लड़कियाँ प्रातःकालीन सभा में एक पादरी का भाषण सुनने को एकत्रित हुए थे। पादरी साहब ने जोशीला भाषण दिया, उन्होंने आह्वान किया कि वे यीशू की पुकार पर गौर करें। बाद में प्राचार्य महोदय ने मुझसे इस सम्भाषण पर राय माँगी। मैंने उत्तर दिया कि मुझे वह नितान्त अनुचित लगा था। क्योंकि वहाँ दर्ज़नों बच्चे थे जिनके मन में यौन या दूसरी चीज़ों को लेकर अपराधबोध था। पादरी साहब के भाषण से हरेक का अपराधबोध और गहराया ही होगा।

एक दूसरा प्रगतिशील स्कूल है जहाँ बच्चों को हर सुबह नाश्ते से पहले जबरन, आधे घण्टे तक बाख का संगीत सुनाया जाता है। बच्चों के स्तर को उठाने के लिए उनके समक्ष नैतिक मानदण्ड रखने के ऐसे प्रयासों का ठीक वही मानसिक प्रभाव पड़ता है जो नरक की आग का भय दिखाने पर पड़ता है। क्योंकि तब बच्चा उस सबका दमन करता है जिसे घटिया रुचि का दर्ज़ा दिया जाता है।

जब कोई प्राचार्य मुझसे कहता है कि उसके छात्र जैज़ संगीत के बदले बीथोविन

सुनना पसन्द करते हैं, तो मुझे लगता है कि उन्होंने अपने दबाव का इस्तेमाल किया है। इसलिए क्योंकि मेरे अधिकाँश छात्र-छात्राएँ जैज़ ही पसन्द करते हैं। मुझे व्यक्तिगत स्तर पर जैज़ की चीख-पुकार सख्त नापसन्द है। फिर भी मैं जानता हूँ कि भला और ईमानदार होने के बावजूद वह प्राचार्य गलत है।

जब एक माँ बच्चे को अच्छा बनना सिखाती है, वह बच्चे की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को दबाती है। वह बच्चे से कहती है, ''जो तुम करना चाहते हो, वह गलत है।'' यह कहना उसे खुद से घृणा करने को कहने के ही समान है। खुद से नफरत करने वाला इन्सान दूसरों से प्रेम करे, यह असम्भव है। हम तभी न दूसरों से प्यार कर सकते हैं, जब हम स्वयं से प्यार करें। अपने बच्चे को किसी नगण्य सी यौन आदत पर दण्डित करने वाली माँ, हमेशा वही महिला होती है जिसका यौन के प्रति दृष्टिकोण घटिया और अश्लील हो। न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठा एक शोषणकर्ता उस व्यक्ति से सच में नाराज़ होता है, जिस पर एक बटुआ चुराने का आरोप है। हममें अपने गिरहबान में झाँककर अपनी नंगी आत्मा को देखने का साहस ही नहीं होता, इसीलिए हम नैतिकतावादी बनते हैं। बच्चों को हम जो मार्गदर्शन देते हैं वह परोक्ष रूप से खुद हमारे लिए ही होता है। हम अवचेतन रूप से उस बच्चे की जगह खुद को देखते हैं। हमें वही बच्चा सबसे खराब लगता है जो हमें हमारे जैसा लगता है। हम दूसरों में उसी चीज़ से नफरत करते हैं, जिसे हम खुद में नापसन्द करते हैं। अब चूंकि हम सब आत्मश्लाघा से त्रस्त हैं, इसलिए बच्चों को इसका नतीजा चपतों, झापड़ों, डाँटों, वर्जनाओं और उपदेशों के रूप में झेलना पड़ता है। हम खुद से नफरत भला क्यों करते हैं? यही तो दुष्चक्र है। हमारे माता-पिता ने भी प्रकृति द्वारा प्रदत्त हमारे स्वभाव को सुधारने की कोशिश की थी।

बुरे काम करने वाले बच्चे या व्यक्ति से निपटते समय माता-पिता, शिक्षकों, न्यायाधीशों को स्वयं अपने भावनात्मक घटकों का सामना करना पड़ता है। वह वास्तव में क्या है, एक नैतिकतावादी नफरत करने वाला, परपीड़ा में आनन्द लेने वाला, अनुशासक? क्या वह युवाओं की काम-भावनाओं का दमन करने वाला है? क्या उसे मनोविज्ञान की गहराइयों का इल्म भी है? क्या वह परिपाटियों के अनुरूप और अपने पूर्वाग्रहों द्वारा फैसले कर रहा है? संक्षेप में कहें तो वह स्वयं कितना आज़ाद है?

हममें से कोई भी भावनात्मक रूप से स्वतंत्र नहीं है क्योंकि हमारा अनुकूलन पालने में ही शुरू हो चुका था। सम्भवतः जो सवाल हमें खुद से पूछना चाहिए वह यह है: *क्या हम इतने आज़ाद हैं कि हम किसी दूसरे की ज़िन्दगी में दखल देने से खुद को रोक सकें? क्या हम इतने स्वतंत्र हैं कि हम निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ बन सकें?*

कसमें खाना और गालियाँ बकना

समरहिल की हमेशा एक आलोचना यह रहती है कि यहाँ के बच्चे गालियाँ बकते हैं। यह सच है कि वे गालियाँ देते हैं। अगर पुरानी अँग्रेज़ी के शब्दों का इस्तेमाल करना गाली बकना है, तो वे यह करते हैं। और यह भी सच है कि हमारे नए बच्चे ज़रूरत से कहीं ज़्यादा गालियाँ देते हैं।

स्कूल की आमसभा में कॉन्वेंट से आई एक तेरह वर्षीय लड़की पर हमेशा यह आरोप लगाया जाता था कि वह जब भी समुद्र तट पर तैरने जाती है तो ज़ोर-ज़ोर से *हरामज़ादा* कहती है। उसे यह अहसास करवाया गया था कि वह सार्वजनिक स्थल पर, अपरिचित लोगों के समक्ष ही ऐसा करती थी। अर्थात दरअसल वह इस नुमाइश द्वारा शान बघारने की कोशिश करती थी। एक लड़के ने उससे कहा, ''तुम निहायत बेवकूफ हो। तुम दूसरों के सामने शेखी बघारने के लिए ही गालियाँ बकती हो और दावा यह करती हो कि समरहिल के आज़ाद वातावरण पर तुम्हें गर्व है। पर करती तुम ठीक इसका उल्टा हो। तुम लोगों की नज़र में स्कूल का नाम डुबाती हो।''

मैंने उसे समझाया कि वह वास्तव में स्कूल को नुकसान पहुँचाती रही थी क्योंकि वह स्कूल से नफरत करती थी। ''पर मैं समरहिल से नफरत नहीं करती'' उसने सुबकते हुए कहा। ''यह तो बहुत बढ़िया जगह है।''

''हाँ,'' मैंने कहा, ''जैसा तुमने कहा, समरहिल अच्छा स्कूल है। पर तुम तो यहाँ हो ही नहीं। तुम तो अब भी अपने कॉन्वेंट में ही हो। कॉन्वेंट और उसमें पढ़ाने वाली ननों की नफरत तुम अपने साथ उठा लाई हो। तुम घृणित कॉन्वेंट और समरहिल को एक ही मान बैठी हो। तुम समरहिल को नहीं, अपने पुराने कॉन्वेंट को नुकसान पहुँचाने की कोशिश कर रही हो।'' पर इसके बावजूद वह अपनी तकिया-कलाम गाली का उपयोग करती रही। तब तक, जब तक समरहिल उसके लिए एक प्रतीक के बदले एक वास्तविक जगह न बन गई। तब जाकर उसकी गाली-गलौज बन्द हुई।

गालियाँ तीन तरह की होती हैंः सेक्स, धर्म और मल-मूत्र से जुड़ी। समरहिल में धर्म सम्बंधी गालियों की समस्या नहीं है क्योंकि उन्हें धर्मउपदेश दिया ही नहीं जाता। ज़्यादातर बच्चे और अधिकांश वयस्क, सभी गालियाँ देते हैं। सेना भी ऐसे

विशेषणों के लिए प्रसिद्ध है। अधिकांश विश्वविद्यालयों और क्लबों में छात्र-छात्राएँ सेक्स या मल-मूत्र से सम्बंधित गालियाँ बकते हैं। स्कूली छात्र भी गुपचुप गालियाँ देते हैं, अश्लील कहानियाँ कहते हैं। समरहिल और दूसरे स्कूलों में अन्तर बस इतना ही है कि एक में बच्चे खुले आम कोसते हैं और दूसरों में गुपचुप।

समरहिल में गाली-गलौज को एक समस्या बनाने वाले हमेशा ही नए छात्र-छात्राएँ रहे हैं। ऐसा नहीं कि पुराने छात्रों के मुँह से सिर्फ संत-वचन ही झरते हों, पर कहा जा सकता है कि वे सही समय पर ही गालियों का सहारा लेते हैं। वे स्वयं को सायास नियंत्रित करते हैं और ख्याल रखते हैं कि बाहरी लोगों को ठेस न पहुँचे।

हमारे छोटे छात्रों की टट्टी के पुरातन पर्यायवाचियों में रुचि है। वे उन शब्दों को खूब काम में लेते हैं, कम से कम वे जो शिष्ट घरों के बच्चे हैं। मेरा आशय उन घरों से है जो *दो नम्बर* की बात करते हैं। इन बच्चों को ऐंग्लो-सैक्सन शब्द अच्छे लगते हैं। एकाधिक बच्चे ने मुझसे जानना चाहा है कि सबके सामने ''टट्टी'' (शुद्ध शब्द) कहना क्यों गलत है, जबकि *मल*, *फीसिस या एक्स्क्रीमेंट* कहना सही है। मैं इस मसले पर स्वयं ही उलझन में हूँ।

शिशुशाला के बच्चे जब गढ़ने के प्रयासों से मुक्त होते हैं तो उनकी शब्दावली अधिकतर मल-मूत्र भरी होती है। हमारे चार से सात साल की उम्र के बच्चों को *टट्टी* या *मुत्ती* कहने में मज़ा आता है। मुझे अहसास है कि उन सबको शैशव में कठोर टॉयलेट-प्रशिक्षण दिया गया होगा। और सम्भवतः इसी कारण उनके मन में इन नितान्त प्राकृतिक कार्यों को लेकर मनोग्रंथियाँ होंगी। पर इनमें से एक-दो बच्चे ऐसे भी हैं जिन्हें आत्म संचालन के परिवेश में पाला-पोसा गया था। उन्हें सफाई के लिए अनुशासित नहीं किया गया था, न ही उन्हें वर्जनाएँ झेलनी पड़ीं थीं, न उनसे कहा गया था *गलत बात* या *छिः गन्दी बात*। उन पर शारीरिक नग्नता या प्राकृतिक मल-मूत्र क्रियाओं का हौव्वा सवार नहीं किया गया था। पर लगता यह है कि इन आत्मसंचालित बच्चों को भी इन शब्दों के इस्तेमाल में उतना ही मज़ा आता है जितना उनके अनुशासित दोस्तों को। ज़ाहिर है कि यह दावा झूठा है कि गाली बकने की आज़ादी स्वतः ही भद्दे या अश्लील शब्दों का आकर्षण खत्म कर देगी। हमारे नन्हें-मुन्ने इन शब्दों का खुलकर, बिना संदर्भ समझे, इस्तेमाल करते हैं, जबकि बड़े लड़के-लड़कियाँ, वयस्कों की तरह ही गालियों का उपयुक्तता के साथ उपयोग करते हैं।

यौन शब्दों का उपयोग मल-मूत्र शब्दों से अधिक किया जाता है। हमारे बच्चों को मल-मूत्र के उल्लेख मज़ाकिया नहीं लगते। इनका उल्लेख दबाया नहीं जाता है इसलिए वह कुछ उबाऊ और तथ्यात्मक बन जाता है। पर यौन के साथ ऐसा नहीं है। सेक्स जीवन का इतना महत्वपूर्ण हिस्सा है कि उससे जुड़ी शब्दावली हमारे

पूरे जीवन में व्याप्त है। स्वीकृत रूप में वह हमारे हर नाच व गाने में झलकती है - *मेरी गर्मागर्म छबीली हो* या *जब रात में तुझे अकेला पाऊँ* हो।

बच्चे गाली-गलौज को भाषा का स्वाभाविक हिस्सा मानते हैं। वयस्क इसकी भर्त्सना इसलिए करते हैं क्योंकि उनकी अश्लीलता बच्चों से कहीं ज़्यादा होती है। अश्लील व्यक्ति ही अश्लीलता की भर्त्सना करता है। मैं तो यह कल्पना भी कर सकता हूँ कि अगर माता-पिता बच्चे को यह विश्वास दिला दें कि नाक गन्दी और खराब वस्तु है, तो बच्चा अँधेरे कोने में छुपकर *नाक* शब्द ही फुसफुसाने लगेगा।

माता-पिता को खुद से पूछना चाहिए कि, ''क्या मैं अपने बच्चों को खुल्लम-खुल्ला गालियाँ देने दूँ या उन्हें अँधेरे कोनों में गाली बकने की अनुमति दूँ?'' बीच का कोई रास्ता है ही नहीं। बड़े होने पर गुपचुप तरीका उन घटिया किस्सों का रूप ले लेता है जिन्हें शहर-गाँव में घूम-घूमकर बिक्री करने वाले लोग सुनाते हैं। खुलापन समूचे जीवन में स्पष्ट और स्वच्छ रुचि तक ले जाता है। मैं पूरे साहस के साथ दावा करता हूँ कि हमारे बच्चों के दिमाग पूरे इंग्लैण्ड में सबसे साफ हैं।

फिर भी बच्चों को जीवन विरोधी सम्बंधियों और पड़ोसियों की नाराज़गी का सामना कभी न कभी करना ही पड़ता है। ज़ोई के दृष्टान्त में हमने पाया है कि वह बाहरी व्यक्तियों के आचरण का तार्किक स्पष्टीकरण स्वीकार लेती है। किसी बच्चे ने उसे एक ऐसा शब्द सिखाया, जिसे छापने की अनुमति कानून हमें नहीं देता। एक बार हम एक भावी अभिभावक से, जो एक परम्परागत व्यवसायी थे, साक्षात्कार कर रहे थे। ज़ोई किसी खिलौने को जोड़ने में व्यस्त थी। हर बार असफल होने पर वह कहती - 'तेरी...तो।' हमने उससे बाद में कहा (अब लगता है ऐसा करना गलत था) कि कुछ लोगों को वह शब्द नापसन्द है और मेहमानों की मौजूदगी में उसे वह शब्द नहीं बोलना चाहिए। उसने कहा, 'ठीक है।'

सप्ताह भर बाद वह कुछ ऐसा काम कर रही थी जो कठिन था। उसने ऊपर देखा और शिक्षिका से पूछा, ''क्या तुम मेहमान हो?''

शिक्षिका ने कहा, ''बिल्कुल नहीं।''

ज़ोई ने चैन की साँस ली और चीखकर कहा ''तेरी..... तो।''

मैंने अनेकों ऐसे बच्चे देखे हैं, जिन्हें घर में कुछ भी कहने की छूट होती है, पर जिन्हें दूसरे घरों में आलोचना सहनी पड़ती है। *भई टॉमी को पार्टी में नहीं बुलाया जा सकता, वह हमारे बच्चों को भी बिगाड़ देगा।* बहिष्कार सबसे दुखदाई सज़ा है। इसलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि हम बाहरी दुनिया की वर्जनाओं पर ध्यान दें, और अपने बच्चों का उसके हिसाब से मार्गदर्शन करें। पर यह मार्गदर्शन निन्दापूर्ण दण्ड के बिना ही होना चाहिए।

सेंसरशिप/रोक-टोक/नियंत्रण

बच्चे जो कुछ पढ़ते हैं उसे किस हद तक नियंत्रित करना चाहिए? मेरे दफ्तर की अल्मारियों में मनोविज्ञान तथा यौन पर अनेकों किताबें हैं। कोई भी बच्चा उनमें से किसी भी किताब को जब चाहे पढ़ने के लिए ले जा सकता है। पर मुझे शक है कि उनमें से एकाध के अलावा शेष बच्चों ने उनमें विशेष रुचि जताई है। किसी भी लड़की या लड़के ने *लेडी चैटरलीस लवर* या *यूलिसीस* या *क्राफ्ट-एबिंग* की प्रति नहीं माँगी है। एक-दो बड़े बच्चों के अलावा किसी ने *इंसायक्लोपीडिया ऑफ सेक्स नॉलेज* की प्रति भी नहीं चाही है।

एक बार एक चौदह वर्षीया नई छात्रा ने *अ यंग गर्ल्स डायरी* की प्रति मेरी अल्मारी में से उधार ली। मैंने उसे वह पुस्तक पढ़ते और ठिठियाते देखा। छह माह बाद उसने एक बार फिर वही किताब चाही। उसने किताब दूसरी बार पढ़ी और लौटाते समय बताया कि उसे किताब उबाऊ लगी। जो पुस्तक अज्ञान को मसालेदार और चटपटी लगी थी, वही ज्ञान को साधारण और उबाऊ लगी। यह लड़की जब समरहिल आई तो उसकी पृष्ठभूमि कक्षा के अँधेरे कोनों में फुसफुसाई गई तथ्यहीन अश्लीलता थी। मैंने उसे यौन मसलों पर जानकारी दी। वर्जना बच्चों को मजबूर करती है कि वे चोरी-छिपे किताबें पढ़ें।

बचपन में हम जो पढ़ते थे उस पर कड़ा नियंत्रण था। यही कारण था कि हमारी सबसे बड़ी महत्वाकाँक्षा थी *टेस ऑफ द डी'उरबरविलेस* या *रॉबेलैस* या फ्रेंच में लिखी अश्लील प्रेम कथाओं की प्रति हथिया पाना। दूसरे शब्दों में कहें तो सबसे रोचक पुस्तक चुनने का हमारा मानदण्ड ही यह था कि उसके पढ़ने पर प्रतिबंध है या नहीं।

पढ़ने पर सेंसर इस अर्थ में बेमानी है कि यह किसी की सुरक्षा नहीं करता। जेम्स जॉयस की पुस्तक *यूलिसीस* का उदाहरण ही लें, जो एक समय में इंग्लैण्ड और अमरीका में प्रतिबंधित थी। लेकिन उसकी प्रतियाँ पेरिस या वियेना में खरीदी जा सकती थीं। पुस्तक में ऐसे शब्द थे जिन्हें सामान्यतः अश्लील कहा जाता है। भोले पाठक इन शब्दों को समझते नहीं थे और जो पहले ही इनके अर्थ जानते थे, वह उनसे भला कैसे भ्रष्ट हो सकते थे। मुझे याद आता है कि एक स्कूल के प्राचार्य ने मेरी इसलिए आलोचना की क्योंकि मैंने पुस्तकालय में *द प्रिज़नर ऑफ ज़ेंदा*

की प्रति मँगवा ली। मुझे आश्चर्य हुआ, सो मैंने नाराज़गी का कारण जानना चाहा। उनका कहना था कि पुस्तक के प्रारम्भिक अध्यायों में नाजायज़ औलाद का उल्लेख है। मैं किताब दो बार पढ़ चुका था, पर इस तथ्य पर मेरा ध्यान ही नहीं गया था।

बच्चों के दिमाग अधिकांश वयस्कों की तुलना में अधिक साफ होते हैं। सम्भव है कि वे *टॉम जोन्स* को पूरा पढ़ जाएँ, पर उसके अश्लील भागों पर गौर ही न करें। अगर हम बच्चे को यौन सम्बंधी अज्ञानता से मुक्त कर दें तो हम किसी भी किताब में निहित खतरे को भी निरस्त कर सकेंगे। मैं किसी भी उम्र में किताबों के पढ़ने पर प्रतिबंध के खिलाफ हूँ।

किताबों पर प्रतिबंध उस समय समस्या बनता है जब हम सेक्स को छोड़ भय की ओर बढ़ते हैं। ब्रैम स्टोकर की पुस्तक *ड्रैक्यूला* इतनी भयानक है कि उसका किसी मनोरोगी बच्चे पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है। मैं ऐसे बच्चे के सामने जानबूझकर *ड्रैक्यूला* की प्रति नहीं छोड़ूँ। फिर भी क्योंकि मेरा काम भय की जड़ तक पहुँचना है, मैं उसे वह किताब पढ़ने से रोकूँगा भी नहीं। बल्कि, मैं उन लक्षणों से सलटूँगा जो पुस्तक पढ़ने से बच्चे में उभरेंगे।

याद आता है कि बचपन में मैं उस बाइबल कथा से बेहद घबरा गया था जिसमें बच्चों को भालू खा जाते थे। पर इसके बावजूद आज तक किसी ने बाइबल को प्रतिबंधित करने की बात नहीं की है। कई बच्चे बाइबल तक में अश्लील हिस्सों की तलाश करते हैं। जब मैं छोटा था तो मुझे ऐसे सारे हिस्से पता थे। अब मुझे यह लगता है कि भालुओं के प्रति मेरा डर कहीं इन हिस्सों की जानकारी से जगे अपराधबोध का नतीजा तो नहीं था।

हम अक्सर खून-खराबे से भरी कथाओं का बच्चों पर होने वाले असर को बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं। पर ज़्यादातर बच्चे पीड़ादायी कहानियों को बेहद चाव से पढ़ते हैं। रविवार रात को जब मैं बच्चों को साहसिक कारनामों के किस्से गढ़कर सुनाता हूँ, जिनमें नरभक्षियों के चंगुल से वे आखिरी पल में बचा लिए जाते हैं, तो वे खुशी से उछल पड़ते हैं।

बच्चों को जादू-टोने की कहानियाँ शायद अधिक डराती हैं। ज़्यादातर बच्चे भूतों से डरते हैं। खासकर ऐसे बच्चे जो धार्मिक परिवारों से आते हैं। यहाँ भी, यौन मामलों की ही तरह, सही तरीका होगा भय से निपटना, न कि किताब पढ़ने पर रोक लगाना। मैं मानता हूँ कि आत्मा में बसे भूत का खात्मा कठिन काम है, पर शिक्षक या चिकित्सक को यह कोशिश करनी ही पड़ेगी। माता-पिता की ज़िम्मेदारी यह सुनिश्चित करना है कि ये भूत बच्चे की आत्मा में दाखिल ही न हों।

निर्दयी, विकराल भूतों या दुष्ट चुड़ैलों की कहानियाँ बच्चों के माता-पिता को कभी

नहीं सुनानी चाहिए। कुछ लोग *सिण्ड्रैला* की कथा पर इसलिए आपत्ति करते हैं क्योंकि वह एक गलत संदेश देती है : राख से ऊपर उठने की कोशिश करो और परी माँ तुम्हें बदले में पति के रूप में राजकुमार देगी। पर किसी स्वस्थ बच्चे पर *सिण्ड्रैला* की कथा क्या दुष्प्रभाव डाल सकती है?

रेल्वे स्टेशनों के किताब-घरों में अपराध कथाओं की भरमार होती है। जब एक सोलह वर्षीय लड़का एक पुलिसवाले को गोली मारता है, तो लाखों पाठकों को यह आभास तक नहीं होता कि वह लड़का ठीक उसी कल्पना को जी रहा है, जिसे पढ़कर उन्हें आनन्द आता है। लोमहर्षक कथाएँ इस बात का प्रतीक हैं कि हम कल्पना कर पाने में, रचना कर पाने में अक्षम हैं। ऐसी कथाएँ मूलतः दूसरों को आहत करने की, उनकी हत्या करने की हमारी दमित घृणा को छूती हैं।

सिनेमा देखने जाना और किताबें पढ़ना, दो अलग-अलग श्रेणियों में आते हैं। जो लिखा गया है वह कभी भी उतना डरावना नहीं हो सकता जितना वह जो देखा और सुना गया हो। कुछ फिल्में बच्चों को आतंकित कर देती हैं और किसी को पता नहीं होता कि किस पल कोई भयानक दृश्य दिख जाए। पर्दे पर बेइंतहा हिंसा दर्शाई जाती है। पुरुष एक दूसरे को जबड़े पर मुक्के जड़ते दिखाए जाते हैं। यहाँ तक कि वे महिलाओं पर भी हमला करते दर्शाए जाते हैं। समाचार-चित्रों में बॉक्सिंग और कुश्ती प्रतियोगिताएँ दिखाई जाती हैं। इसी पर बैलों के दंगल (बुल-फॉईटिंग) पीड़ादाई परिदृश्य को पूरा करते हैं। मैंने *पीटर पैन* की परीकथा में बच्चों को मगरमच्छों या डाकुओं से डरते देखा है। बैम्बी नामक हिरनी की फिल्म इतनी खूबसूरत, मानवतावादी और प्रेमल है कि उसे देखने के बाद कोई हिरन का शिकार कैसे कर पाता है यह मेरी समझ से परे है। बच्चों को यह फिल्म बेहद प्यारी है, यद्यपि जब शिकारी के कुत्ते बैम्बी पर हमला करते हैं तो बच्चे डर के मारे रो पड़ते हैं। अतः जब कुछ माँ-बाप छोटे बच्चों को कुछ फिल्में देखने से रोकते हैं, तो बात समझ में आती है।

यौन फिल्में ज़्यादातर बच्चों के लिए नुकसानदेह हैं - इस धारणा पर सवाल उठाए जा सकते हैं। ज़ाहिर है कि मुक्त बच्चों पर उनका दुष्प्रभाव नहीं होगा। मेरे छात्र-छात्राओं ने *ल रौंदे* नामक फ्रेंच फिल्म बिना भावनाएँ या विपरीत असर दर्शाए देखी है। यह इसलिए होता है क्योंकि बच्चे वही देखते हैं जो वे देखना चाहते हैं।

यौन दृश्यों के बिना फिल्में बॉक्स ऑफिस में पिट जाती हैं। यौन फिल्मों से होने वाली राष्ट्रीय आय किताबों या संगीत से कहीं अधिक होती है। संगीत सभा की टिकटों की जितनी बिक्री होती है उससे अधिक बिक्री सौंदर्य प्रसाधनों की होती है। पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि यौन के जिस रूप के उल्लेख की इजाज़त है, उसकी तहों में वह रूप भी होता है जिसकी अनुमति नहीं होती। दुल्हन के वाहन के पीछे

जूता और बिखेरे जाने वाले चावल उन्हीं गैरउल्लेखनीय वस्तुओं के प्रतीक हैं।

फिल्मों की लोकप्रियता हममें छुपी भगोड़ी वृत्ति के कारण है। यही कारण है कि फिल्म निर्माता भव्य दृश्य और खूबसूरत पोशाकें पेश करते हैं। ऐसे भोग-विलास के परिवेश में खराब पात्रों की गर्दनें उड़ती हैं और सद्‌चरित्र पात्र हमेशा के लिए सुख चैन से जीवन काटते हैं।

हाल में हमने एक चलचित्र देखा जिसमें एक व्यक्ति ने अपनी आत्मा शैतान को बेच दी थी। सभी बच्चे इस बात पर सहमत थे कि शैतान काफी कुछ मेरे जैसा लग रहा था। मैं उन सभी बच्चों के लिए शैतान बन जाता हूँ जिन्हें बचपन से यह सिखाया गया है कि यौन दुराचार ईश्वर के विरुद्ध पाप है। जब मैं उन्हें यह कहता हूँ कि हमारे शरीर का कोई भी भाग पापमय नहीं है तो वे मुझे ललचाने वाले शैतान के रूप में देखने लगते हैं। मनोरोगी बच्चों के लिए मैं भगवान और शैतान, दोनों का ही प्रतीक बन जाता हूँ। ऐसे ही एक नन्हें ने शैतान की हत्या करने के लिए हथौड़ी उठा ली। मनोरोगी बच्चों की मदद करना खतरे से खाली नहीं है।

बच्चों की दोस्तियों पर रोक लगाना, अधिकतर दृष्टान्तों में कठिन सिद्ध होता है। मुझे लगता है कि यह केवल तब किया जाना चाहिए जब पड़ौसी बच्चा क्रूर या दादागिरी झाड़ने वाला हो। सौभाग्य से बच्चे स्वयं स्वाभाविक रूप से चयन क्षमता रखते हैं और देर-सबेर उपयुक्त दोस्त तलाश लेते हैं।

5

बच्चों की समस्याएँ

क्रूरता और परपीड़न

क्रूरता विकृत प्रेम है, इसीलिए परपीड़न में आनन्द का अतिरेक हमेशा विकृत कामुकता होती है। क्रूर व्यक्ति कुछ दे नहीं पाता क्योंकि देना प्रेम का कृत्य है।

क्रूरता मनुष्य का सहज स्वभाव नहीं होता। पशु क्रूर नहीं होते। कोई बिल्ली, चूहे से इसलिए खिलवाड़ नहीं करती कि वह क्रूर है। उसके लिए यह खेल भर है। वह क्रूरता कर रही है, यह आभास उसे नहीं होता।

मनुष्यों में क्रूरता अक्सर अवचेतन उद्देश्यों के कारण उपजती है। समरहिल के लम्बे अनुभव में मुझे बिरले ही कोई ऐसा बच्चा मिला है, जो पशुओं को सताता हो। हाँ, कुछ साल पहले एक अपवाद ज़रूर था। तेरह साल के जॉन को उसके जन्मदिन पर एक पिल्ला मिला। उसकी माँ ने लिखा था, "वह जानवरों से प्यार करता है।" जॉन नन्हें स्पॉट को अपने साथ ले जाता। मैंने पाया कि वह कुत्ते से ठीक बर्ताव नहीं कर रहा है। मुझे लगा कि वह स्पॉट को अपने छोटे भाई जिम के रूप में देख रहा है, जो उसकी माँ का चहेता था।

एक दिन मैंने जॉन को स्पॉट को पीटते हुए देखा। मैं उस नन्हें कुत्ते के पास गया, उसकी गर्दन पर हाथ फेरकर कहा, "हलो जिम।" लगता है कि मैंने उसे इस बात के प्रति सचेत कर दिया कि वह अपने छोटे भाई का गुस्सा उस निरीह पिल्ले पर निकाल रहा है। उसने इसके बाद पिल्ले को नहीं पीटा। पर मैंने केवल उसके लक्षण भर को छुआ था। दूसरे को सताने में आने वाले आनन्द का इलाज मैं नहीं कर सका था।

मुक्त और प्रसन्न बच्चों के क्रूर होने की सम्भावना कम है। कई बच्चों में क्रूरता उन पर हुई वयस्कों की क्रूरता के कारण जन्मती है। कोई खुद, बिना दूसरों को पीटने की इच्छा के, पिट नहीं सकता। शिक्षक की तरह तब आप खुद भी किसी अपने से कमज़ोर व्यक्ति को पीटने के लिए चुनते हो। किसी भी कठोर अनुशासन वाले स्कूल के बच्चे, समरहिल के बच्चों से कहीं ज़्यादा क्रूर होते हैं।

क्रूरता का हमेशा तर्क से स्पष्टीकरण दे दिया जाता है- *तुम्हें पीटने से मुझे ही ज़्यादा तकलीफ होती है*। ऐसे कम ही होंगे जो ईमानदारी से यह कहें कि, "मैं लोगों को इसलिए पीटता हूँ क्योंकि मुझे इससे संतोष मिलता है।" जबकि पिटाई का असली कारण यही होता है। वे दूसरों को पीटने में आने वाले आनन्द को

नैतिकता की आड़ में छुपाते हैं। "मैं अपने बच्चे को नाजुक नहीं बनाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वह इस दुनिया में जी सकने में सक्षम बने जो उसे न जाने कितनी ठोकरें लगाएगी।" "मैं अपने बेटे को इसलिए ठोकता हूँ कि बचपन में मैं खूब ठुका हूँ, और उससे मुझे बड़ा फायदा हुआ था।"

जो माता-पिता अपने बच्चों को पीटते हैं वे हमेशा ऐसे ही स्पष्टीकरण देते हैं। मुझे आजतक ऐसे माँ-बाप नहीं मिले जो यह कहें कि, "मैं अपने बच्चे को इसलिए पीटता हूँ क्योंकि मैं उससे नफरत करता हूँ। मैं अपने आप से, अपनी बीबी से, अपनी नौकरी से, अपने सगे-सम्बंधियों से, सबसे नफरत करता हूँ। मैं अपने बेटे को इसलिए पीटता हूँ क्योंकि वह छोटा है और पलटकर मुझे पीट नहीं सकता। मैं उसे इसलिए पीटता हूँ क्योंकि मैं अपने बॉस से डरता हूँ। जब वह मुझे दफ्तर में डपटता है तो घर लौटकर मैं अपना गुस्सा, अपने बेटे पर निकालता हूँ।"

अगर माता-पिता खुद से यह सब पूरी ईमानदारी से कह सकें, तो उन्हें बच्चों को पीटने की ज़रूरत ही न लगे। क्रूरता अज्ञानता और खुद से नफरत करने की भावना से जन्मती है। क्रूरता दूसरों को तकलीफ देने में संतोष पाने वाले को अपने विकृत स्वभाव को पहचानने से भी बचाती है।

हिटलर की जर्मनी में यातना शिविरों (कॉन्संट्रेशन कैम्पों) में यहूदियों पर हुए अत्याचार विकृत यौन प्रवृत्तियों वाले लोगों द्वारा किए गए। बच्चे को घर या स्कूल में पीटना ठीक वैसा ही है जैसा यातना शिविरों में यहूदियों को यातना देना। अगर वहाँ इस यातना का मूल कारण यौन विकृति थी, तो घरों और स्कूलों में मारपीट में आनन्द लेने वाले की भावना का भी शायद यही कारण हो।

मानसिक क्रूरता को झेलना, शारीरिक क्रूरता झेलने से कहीं ज़्यादा मुश्किल है। सरकारी कानून से स्कूलों में मार-पिटाई पर तो पाबन्दी लगाई जा सकती है, पर कोई भी कानून उस व्यक्ति तक नहीं पहुँच सकता जो मानसिक यातना देता है। माता-पिता की कड़वी और द्वेषपूर्ण ज़बान बच्चे को इतना नुकसान पहुँचा सकती है, जिसका बखान नहीं किया जा सकता। हम उन पिताओं को पहचानते ही हैं जो अपने बेटों पर फब्तियाँ कसते हैं। *अरे सत्यानाशी, तुमसे कोई भी काम ढंग से किया नहीं जाता*। ऐसे पुरुष अपनी पत्नियों के प्रति अपनी नफरत जताने के लिए लगातार नुक्ताचीनी करते हैं। ऐसी पत्नियाँ भी होती हैं जो अपने पति व बच्चों को डाँट-डपटकर उन पर हुक्म चलाती हैं। अपनी पत्नी की नफरत बच्चों पर निकालने वाले पति एक खास तरह की मानसिक क्रूरता दर्शाते हैं।

कई बार शिक्षक तिरस्कार और तानों के माध्यम से मानसिक क्रूरता जताते हैं। किसी भयभीत और निरीह बच्चे पर फब्तियाँ कसते समय उनकी अपेक्षा यह रहती है कि बाकी बच्चे उस पर ज़ोर-ज़ोर से हँसें।

बच्चे कभी क्रूर नहीं होते, बशर्ते उनकी किसी गहन भावना का दमन न किया गया हो। आज़ाद बच्चे खुद से नफरत नहीं करते। इसलिए वे दूसरों से भी घृणा नहीं करते, क्रूर नहीं होते।

हरेक नन्हें 'गुण्डे' का जीवन किसी न किसी तरह तोड़ा-मरोड़ा गया होता है। अक्सर वह दूसरों के साथ वही करता है जो उसने झेला होता है। हर पिटाई के साथ बच्चे में दूसरों को पीड़ा देने की इच्छा जगती है या फिर वह दूसरों को वही पीड़ा देता है।

जिन बच्चों का दमन किया जाता है उनके मज़ाक भी क्रूर होते हैं। किसी को उल्लू बनाने की वारदातें समरहिल में मैंने बिरले ही देखी हैं। ऐसी जो घटनाएँ हुई हैं वे निजी स्कूल से आए नए छात्रों के दिमाग की उपज रही हैं। कभी-कभार छुट्टियों के बाद, घरेलू दमन झेलकर लौटने पर बच्चे छेड़छाड़, साइकिल छुपाना जैसी हरकतें करते हैं। पर यह दौर सप्ताह भर से ज़्यादा नहीं चलता। समरहिल का हँसी-मज़ाक अमूमन दयापूर्ण ही होता है। इसका कारण यही है कि बच्चों को अपने शिक्षकों से प्रशंसा और प्यार मिलता है। जब नफरत और भय की ज़रूरत न रहे तो बच्चे अच्छा व्यवहार करते हैं।

आपराधिकता

कई मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चा जन्म से अच्छा या बुरा पैदा नहीं होता। उसमें परोपकार और अपराध, दोनों ही वृत्तियाँ मौजूद होती हैं। मेरा मानना है कि बच्चे में अपराध या द्वेष की स्वाभाविक वृत्ति नहीं होती। बच्चे में अपराध वृत्ति विकृत प्रेम के रूप में उभरती है। यह क्रूरता की क्रांतिकारी अभिव्यक्ति है। प्यार की कमी ही इसकी जड़ है।

एक दिन मेरा एक नौ वर्षीय छात्र अपने आप खेल रहा था। वह धीमी आवाज़ में गुनगुना रहा था, "मैं माँ को मार डालना चाहता हूँ।" यह अवचेतन आचरण था क्योंकि उस वक्त वह एक नाव बना रहा था सो उसका पूरा ध्यान नाव बनाने में लगा हुआ था। सच्चाई यह है कि उसकी माँ अपनी ज़िन्दगी जीती है और उससे मिलने भी बिरले ही आती है। वह अपने बेटे को प्यार नहीं करती। यह बात वह अवचेतन रूप से समझता है।

पर इस प्यारे से लड़के ने अपनी ज़िन्दगी की शुरुआत हिंसक विचारों से नहीं की थी। यह तो वही पुरानी कहानी है, *अगर मुझे प्यार नहीं मिलता तो नफरत ही सही।* बच्चों में अपराध के प्रत्येक उदाहरण की जड़ में प्रेम का अभाव होता है।

नौ साल के एक दूसरे छात्र के मन में ज़हर का डर सा था। उसे डर लगता था कि उसकी माँ उसे ज़हर दे डालेगी। वह अक्सर कहता था, "मैं जानता हूँ कि तुम्हारा इरादा क्या है, तुम मेरे खाने में ज़हर मिला दोगी।" शायद मानसिक रूप से बीमार इस बच्चे के मन में माँ और छोटे भाई को ज़हर खिलाने की इच्छा जगती होगी। उसका डर बदले का डर था। *मैं माँ को ज़हर देना चाहता हूँ। कहीं वह बदले में मुझे ज़हर न खिला दे।*

अपराध नफरत की अभिव्यक्ति है। बाल अपराध वृत्ति का अध्ययन अन्ततः इस अध्ययन में बदल जाता है कि आखिर बच्चा क्योंकर नफरत करने लगता है। यह आहत अहम का सवाल होता है।

हम इस तथ्य को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते कि बच्चे मुख्यतः अहंकारी होते हैं। उनके लिए दूसरा कोई महत्वपूर्ण नहीं होता। जब उनका अहम संतुष्ट होता है तो उनमें अच्छाई पनपती है। पर अहम भूखा हो तो अपराध वृत्ति पनपती है। अपराध समाज से बदला लेता है क्योंकि समाज ने उसके अहम को प्यार देकर नवाज़ा नहीं होता।

अगर इन्सान आपराधिक वृत्ति के साथ पैदा होता, तो मध्यमवर्ग के भद्र परिवारों में भी उतने ही अपराधी पैदा होते जितने वंचित कच्ची बस्तियों में। पर सम्पन्न लोगों को अपने अहम की अभिव्यक्ति के अधिक मौके मिलते हैं। पैसे से मौज-मस्ती खरीदी जाती है, सुसंस्कृत परिवेश मिलता है। अपनी संस्कृति और अपने परिवार के प्रति गर्व की भावना आती है। यह सब व्यक्ति के अहम को पालते-पोसते हैं। पर गरीबों का अहम भूखा रह जाता है। चन्द ही गरीब बच्चे जीवन में किसी तरह की विशिष्टता हासिल कर पाते हैं। अपराधी बनकर, गुण्डा बनकर या दादा बनकर भी विशिष्टता हासिल की जा सकती है।

कई लोग मानते हैं कि खराब फिल्में देखने से बच्चे अपराधी बनते हैं। मुझे यह दूरदर्शी नज़रिया नहीं लगता। मुझे शंका है कि कोई फिल्म किसी को भ्रष्ट कर सकती है। किसी नवयुवक को एक फिल्म किसी अपराध को करने का कोई तरीका ज़रूर सुझा सकती है। पर अपराध वृत्ति का कारण पहले से मौजूद होता है। एक फिल्म किसी अपराध को कला का जामा पहना सकती है। पर जिसने पहले से अपराध करने का विचार नहीं किया हो उसे अपराध करने की बात नहीं सुझा सकती।

अपराध पहले स्तर पर एक पारिवारिक मामला है। दूसरे स्तर पर समुदाय का। हममें से जो ईमानदार होंगे वे ये स्वीकार करेंगे कि अपनी कल्पनाओं में हमने अपने परिवार की हत्या की है। मेरी एक छात्रा अपने परिवार के सभी सदस्यों की अचानक मौत की कल्पना करती थी। खासकर अपनी माँ की।

ऐसी हत्यारी इच्छाओं के मूल में सत्ता और ईर्ष्या होती है। कोई भी बच्चा सत्ता नहीं सह सकता। पर चार से सोलह वर्ष की उम्र में इतने बच्चों का दमन होता है कि मुझे आश्चर्य इस बात से ही होता है कि दुनिया में जितनी हो रही हैं, उससे अधिक हत्याएँ क्यों नहीं होतीं।

बच्चे में सत्ता पाने की इच्छा दरअसल प्रशंसा और प्रेम पाने की इच्छा होती है। बच्चा अपनी चेष्टाओं से प्रशंसा और ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए अन्तर्मुखी बच्चों में (ऐसे बच्चे जो भीरू होते हैं, जिनमें मेल-जोल बढ़ाने की क्षमता नहीं होती) आपराधिक विचार मिलते हैं। अपनी सुन्दर छोटी बहन को मेहमानों के सामने नाचता देख साधारण दिखने वाली एक लड़की उसकी भयानक मृत्यु की कल्पना कर सकती है।

बहिर्मुखी बच्चों को नफरत करने के कम कारण मिलते हैं। वे हँसते हैं, नाचते हैं, गप्पे लड़ाते हैं। देखने-सुनने वालों की प्रशंसा उन्हें संतुष्ट करती है।

अन्तर्मुखी बच्चे एक कोने में बैठे सोचते रहते हैं कि क्या कैसे होना चाहिए। मेरे स्कूल का जो सबसे अन्तर्मुखी बच्चा है, वह हमारी सामाजिक संध्याओं में कोई हिस्सा नहीं लेता, कभी गाता-गुनगुनाता नहीं है। बच्चों के एक-दूसरे के साथ धक्कमपेल करने वाले खेल तक में वह शामिल नहीं होता। जब वह व्यक्तिगत पाठों के लिए मेरे पास आता है, तो वह बताता है कि एक निहायत उम्दा जादूगर उसका हुक्म मानता है। अगर वह कहे तो जादूगर तुरन्त एक रोल्स रॉयस गाड़ी उसकी खिदमत में पेश कर दे। एक दिन मैंने उसे एक कहानी सुनाई कि समरहिल के सारे बच्चे दुर्घटना के बाद एक द्वीप में फँस गए। लगा उसे कहानी पसन्द नहीं आई। मैंने कहा कि वह कहानी में मनचाहा बदलाव कर सकता है। उसने कहा कि कहानी कुछ यों बदल दीजिए कि अकेला मैं बच जाऊँ।

हम सब इस प्रवृत्ति से परिचित हैं। यह प्रवृत्ति है दूसरों को धकेलकर या गिराकर खुद ऊपर चढ़ने की। एक चुगलखोर की यही मानसिकता होती है,"सर, टॉमी गाली बक रहा था।" यानी मैं गाली नहीं बकता, *मैं तो बिल्कुल अच्छा लड़का हूँ।*

कल्पना में अपने दुश्मन को मारने और सच में उसका खून कर डालने में केवल कुछ डिग्री का ही अन्तर है। हम सबमें थोड़ी-बहुत प्यार की भूख है, यानी हम सब सम्भावित अपराधी हैं। मैं पहले इस बात पर इतराया करता था कि मनोवैज्ञानिक तौर-तरीकों के कारण मैं बच्चों को उनकी अपराधवृत्ति से छुटकारा दिला पाता हूँ। पर मुझे लगता है कि दरअसल यह श्रेय प्रेम को ही दिया जाना चाहिए। यह ढोंग करना कि मैं नए छात्र को प्यार करने लगता हूँ, गलत होगा। पर इतना ज़रूर है कि बच्चे यह समझते हैं कि मैं उनके अहम का सम्मान करता हूँ, इसलिए उन्हें चाहता भी हूँ।

आपराधिकता का वास्तविक इलाज है, बच्चे को वह जैसा है वैसा बने रहने की इजाज़त देना। यह मैंने सालों पहले उस वक्त सीख लिया था जब मैं होमर लेन के *लिटिल कॉमनवैल्थ* में गया था। उसने अपराधी बच्चों को, वे जैसे थे, वैसे बनने की आज़ादी दी और वे सुधर गए। कच्ची बस्तियों में अपने अहम की तुष्टि के लिए सबका ध्यान खींचने का काम असामाजिक आचरण द्वारा ही किया जा सकता है। लेन ने मुझे बताया था कि ये बाल-अपराधी अदालत में अपना बयान देते समय गर्व से चारों ओर नज़र डालते हैं। पर लेन के साथ जाकर जिन बाल-अपराधियों ने कृषक समूह बनाया, उन्होंने अपने लिए नए मूल्य पाए, सामाजिक मूल्य पाए, अच्छे मूल्य पाए। डोरसेट फार्म में जो लेन ने कर दिखाया मेरे लिए वह अपने आप में इस बात का पर्याप्त सबूत है कि बच्चों में जन्मजात अपराध वृत्ति नहीं होती।

मुझे एक नया लड़का याद आता है जो डोरसेट फार्म से भागा था। लेन उसके पीछे-पीछे दौड़े और उसे पकड़ने में सफल रहे। लड़के की पिटने की आदत थी। उसने बचाव में बाँह से चेहरा ढँक लिया। लेन मुस्कुराए और उसकी जेब में कुछ पैसे डाल दिए।

"यह किसके लिए?" लड़के ने हकलाते हुए पूछा।

लेन ने कहा, "ट्रेन से घर लौटो, पैदल न जाना।" वह लड़का उसी रात कॉमनवैल्थ लौट आया।

मैं इस तरीके के बारे में सोचता हूँ और फिर अधिकांश सुधार गृहों के कठोर कायदे-कानूनों के बारे में। कानून दरअसल अपराधी बनाता है। पिता की कठोर आवाज़ में घर का कानून तमाम पाबन्दियाँ लगा, बच्चे के अहम को दबाता है। राज्य का कानून, घरेलू कानून की अवचेतन यादें जगाता है।

दमन हमेशा अवज्ञा जगाता है। स्वभाविक है कि अवज्ञा बदले की भावना पैदा करती है। अगर हमें अपराध खत्म करने हैं तो हमें वे सब चीज़ें खत्म करनी होंगी जो बच्चों में बदला लेने की इच्छा जगाती हैं। हमें बच्चे के प्रति प्यार और सम्मान दर्शाना होगा।

चोरी

हमें दो तरह की चोरियों में फर्क करना होगा : एक सामान्य बच्चे द्वारा की गई चोरी और किसी मनोरोगी द्वारा की गई चोरी।

एक साधारण बच्चा भी चोरी करता है। ऐसा, वह कुछ पाने के लोभ में करता है। या फिर अपने दोस्तों के साथ मिलकर कुछ जोखिम उठाने की इच्छा से करता है।

उसके मन में *मेरा* और *तेरा* का फर्क पक्का नहीं होता। एक उम्र तक समरहिल के कई बच्चे ऐसी चोरियाँ करते हैं। उन्हें उम्र के इस चरण को जी लेने की छूट दी जाती है।

कई स्कूली मास्टरों ने अपने बगीचों पर बात करते समय मुझे बताया कि उनके छात्र उनके फल चुराते हैं। समरहिल के बड़े से बगान के पेड़, फलों से लदे रहते हैं। पर हमारे बच्चे बिरले ही फल चुराते हैं। कुछ समय पहले स्कूल की आमसभा में दो बच्चों पर फल चुराने का आरोप लगाया गया। वे नए लड़के थे। जब उन्हें अपनी आत्मा की आवाज़ों से मुक्ति मिल गई तो फल चुराने में उनकी रुचि न रही।

स्कूल की चोरियाँ अधिकतर सामूहिक होती हैं। इससे लगता है कि दरअसल जोखिम उठाने की इच्छा की इसमें प्रमुख भूमिका होती है। बल्कि इतना ही नहीं, इसमें दूसरों के सामने प्रदर्शन करने, अपनी जुगत-भिड़ाने की और नेतृत्व की क्षमता दिखाने की इच्छाएँ भी जुड़ी होती हैं।

बिरले ही कोई एकल चोर दिखता है। अमूमन ऐसा चोर एक चालाक लड़का होता है, जिसका चेहरा फरिश्तों सा भोला-भाला होता है। वह समरहिल में अक्सर बच जाता है क्योंकि हमारे यहाँ कोई ऐसा चुगलखोर नहीं है जो उसका राज़ बता दे। चेहरे से किसी चोर को पहचाना नहीं जा सकता। हमारे यहाँ अबोध चेहरे और आँखों वाला एक लड़का है। मुझे शक यह है कि भण्डारघर से कल रात जो फलों का डिब्बा गायब हुआ उसके बारे में उसे सब पता है।

इस सबके बावजूद तेरह साल की उम्र में चोरी करने वाले तमाम बच्चे, बड़े होकर ईमानदार नागरिक बनते हैं। सच्चाई यह लगती है कि हम जितना सोचते हैं, उससे कहीं ज़्यादा समय बच्चों को बड़े होने में लगता है। यहाँ बड़ा होने से मेरा मतलब सामाजिक व्यक्ति बनने से है।

बच्चा दरअसल आत्म-केन्द्रित होता है। यह चरण करीब-करीब वयःसन्धि की उम्र तक चलता है। उस वक्त तक वह अपनी पहचान को दूसरों के साथ नहीं जोड़ पाता। *मेरा-तेरा* का विचार वयस्क विचार है। बच्चे जब परिपक्व होते हैं तभी उनमें यह विचार विकसित होता है।

अगर बच्चों को प्यार मिले, वे आज़ाद हों, तो *समय के साथ* वे अच्छे और ईमानदार ही बनते हैं। हो सकता है कि आपको लगे कि बात को अति सरल बनाकर कहा जा रहा है। पर मैं व्यवहार और इस सिद्धान्त में आड़े आने वाली परेशानियों से परिचित हूँ।

समरहिल में मैं ऑइस-बॉक्स या पैसों का डिब्बा खुला नहीं छोड़ सकता। हमारे स्कूल की आमसभा में बच्चे एक-दूसरे पर सन्दूक खोलने का आरोप लगाते हैं।

समुदाय में एक ही चोर हो तो पूरा समुदाय ताले-चाबी वाला बन जाता है। पचपन साल पहले विश्वविद्यालय के छात्रों के कमरे में मैं अपने ओवरकोट की जेब में कोई किताब छोड़ने से डरता था। मैंने यह भी सुना है कि कुछ संसद सदस्य अपने कोट और ब्रीफकेस में कोई कीमती सामान छोड़ने से हिचकिचाते हैं।

व्यक्ति के विकास में ईमानदारी का विचार काफी बाद में, निजी सम्पत्ति की अवधारणा के साथ विकसित हुआ। ईमानदारी के बारे में एक सच है, भय। किसी प्रकार की अमूर्त ईमानदारी मुझे अपने आयकर के बारे में झूठ बोलने से नहीं रोकती। बल्कि जो रोकता है वह है पकड़े जाने पर अपमान का डर। यह भय कि मेरी साख मिट्टी में मिल जाएगी, घर और काम बरबाद हो जाएगा।

अगर किसी भी मसले पर कोई नियम बनता है तो यह मानकर चलना चाहिए कि लोग उसके विपरीत आचरण करते रहे हैं। जिस देश में पूर्ण शराबबन्दी हो चुकी हो, वहाँ यह नियम नहीं होगा कि शराब पीकर वाहन चलाना जुर्म है। सभी देशों के चोरी-डकैती, धोखाधड़ी आदि के कानून इसी विश्वास पर आधारित हैं कि मौका मिला, तो लोग चोरी-डकैती और धोखाधड़ी करेंगे। और यह सच भी है।

सभी वयस्क कम या अधिक बेईमान होते हैं। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो कस्टम अधिकारी की नज़र बचाकर कुछ सामान साथ न ले आते हों। उससे भी कम ऐसे लोग होंगे जो आयकर बचाने के लिए हेरा-फेरी न करते हों। फिर भी उनमें से हरेक सच में इस बात से परेशान हो उठेगा कि उसके बेटे ने एक चवन्नी चुराई है।

दूसरी ओर, एक-दूसरे के साथ लेन-देन में लोग काफी ईमानदार होते हैं। किसी के यहाँ खाने पर जाने पर उनका चाँदी का एक चम्मच चुरा लेना आसान होता है। पर यह विचार शायद ही मन में उठे। पर अगर टिकट जाँचने वाले ने आपके वापसी टिकट को पंच न कर दिया हो, तो उसे फिर से इस्तेमाल करने की बात आप ज़रूर सोच सकते हैं। दरअसल वयस्क, एक व्यक्ति और एक संस्था में, चाहे वह निजी हो या सरकारी, अन्तर करते हैं। बीमा कम्पनी को धोखा देने में कोई हर्ज़ नहीं माना जाता पर परचून का सामान बेचने वाले को धोखा देने की बात भी नहीं सूझती। पर बच्चे ऐसा कोई अन्तर नहीं करते। वे छात्रावासों में अपने साथ रहने वाले लड़कों, अपने शिक्षकों, यहाँ तक कि दुकानों तक से कुछ उठा लेते हैं। सभी बच्चे शायद चोरी न करें, पर चुराई गई चीज़ों में हिस्सेदारी बाँटने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। ज़ाहिर है कि ऐसी बेईमानी जितनी गरीब बच्चों में मिलती है, उतनी ही सम्पन्न परिवारों के बच्चों में भी मिलती है।

मैंने पाया है कि मौका मिलने पर कुछ बच्चे चोरी करते हैं। बचपन में मैंने चोरी इसलिए नहीं की क्योंकि मुझे पूरी तरह अनुकूलित कर दिया गया था। चोरी का मतलब था पकड़े जाने पर जमकर धुलाई और नरक की आग में निरन्तर जलना।

पर स्वाभाविक है कि मेरी तरह आसानी से न डरने वाले बच्चे चोरी करेंगे। फिर भी मैं कहता हूँ कि प्यार के वातावरण में पले-बढ़े बच्चे चोरी करने की उम्र पार करने के बाद ईमानदार इन्सानों के रूप में परिपक्व होंगे।

दूसरी तरह की चोरी, आदतन या विवशता में की जाने वाली चोरी, बच्चे में मनोरोग का प्रमाण है। अमूमन यह प्यार की कमी की निशानी होती है। इसका उद्देश्य अवचेतन होता है। हरेक घोषित बाल अपराधी को लगता है कि उन्हें कोई नहीं चाहता। ऐसी चोरी किसी मूल्यवान वस्तु को पा लेने की कोशिश का प्रतीक है। चाहे पैसे चुराए जाएँ, या गहने, या कुछ और, यह प्रेम चुराने की अवचेतन कोशिश है। इसका इलाज है बच्चे को भरपूर प्यार दिया जाना। जब मैं, अपनी तम्बाकू चुरा लेने वाले बच्चे को कुछ पैसे देता हूँ, तो मैं उसके चेतन विचारों को नहीं, उसकी अवचेतन भावना को सम्बोधित करता हूँ। सम्भव है कि वह सोचे कि मैं निहायत बेवकूफ हूँ। पर वह जो सोचता है उससे फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ता है उससे, जो वह महसूस करता है। समय के साथ चोरी-चपाटी बन्द हो जाती है क्योंकि जिस प्रेम को वह अवचेतन रूप से चुरा रहा था वह उसे स्वतः मिलने लगता है। फिर उसे चोरी की दरकार नहीं रहती।

इस सन्दर्भ में मैं उस लड़के का वाकया बताना चाहता हूँ जो हमेशा दूसरे बच्चों की साइकिल चलाया करता था। आम सभा में उस पर आरोप लगा, "वह दूसरों की साइकिल काम में लेकर, निजी सम्पत्ति के नियम को लगातार तोड़ता है।" फैसला हुआ, "वह गुनहगार है," सज़ा दी जाए। सज़ा थी, "समुदाय को कहा गया कि उसके लिए साइकिल खरीदने के लिए सब चन्दा करें।" समुदाय ने चन्दा दिया।

चोरी के बदले ईनाम देने की बात को मैं सीमित करना चाहूँगा। अगर बच्चे की मनोवृत्ति घटिया है, या उसका भावनात्मक विकास रुक गया है, तो इसका उल्टा असर होगा। अगर उसका दिमाग चढ़ा हुआ है तो उसे प्रतीकात्मक उपहार से फायदा नहीं होगा। समस्यात्मक बच्चों के साथ काम करते समय मैंने पाया है कि प्रायः हरेक नन्हें चोर की उस पुरस्कार के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया रही जिसे चोरी के बदले दिया गया था। असफलता केवल उन्हीं परिस्थितियों में हासिल हुई, जहाँ चोरी वाला बच्चा समझ-बूझकर चोरी कर रहा था और जिसे पुरस्कार की आड़ में छिपे इलाज से सुधारा नहीं जा सकता था। स्थिति उस समय और पेचीदा हो जाती है जब चोरी माता-पिता के प्रेम के अभाव और यौन भावनाओं के दमन के कारण की जाती है। इस श्रेणी में वे लोग आते है जिन्हें चोरी का रोग *क्लैप्टोमैनिया* होता है। शिक्षक अपने स्तर पर ऐसे बच्चों की पूरी मदद नहीं कर सकते। दमन को शुरू करने वाले होते हैं, माता-पिता। वे अगर प्रतिबंध लगाना बन्द करें तो बच्चा सुधर सकता है।

मेरे स्कूल में एक बार एक सोलह साल का लड़का भेजा गया। वह जब स्टेशन पर उतरा तो उसके हाथ में आधा टिकट था, जो उसके पिता ने लंदन में यात्रा के लिए खरीदा था। यानी उसकी उम्र कम बताते हुए। जिन बच्चों को बेईमानी की आदत पड़ चुकी है, उनके माता-पिता से मैं कहना चाहूँगा कि वे अपने गिरहबान में झाँकें। पता करने की कोशिश करें कि उनके किस आचरण ने बच्चे को बेईमान बनाया है।

जब माता-पिता बच्चों की बेईमानी के लिए बदमाश दोस्तों, फिल्मों की हिंसा, या पिता के सेना में होने की वजह से बच्चे पर नियंत्रण की कमी आदि को दोष देते हैं, तो वे दरअसल भूल करते हैं। जो बच्चा घर में प्रेम और प्रशंसा के साथ पलता है, सेक्स के प्रति जिसका दृष्टिकोण सहज रूप में विकसित हो पाता है, उन पर इन तमाम कारणों का असर सीमित या न के बराबर पड़ता है।

मुझे पता नहीं कि बच्चों के जो सामाजिक क्लीनिक खोले गए हैं वहाँ नियमित रूप से जाने का छोटे चोरों पर क्या असर पड़ता है। मैं इतना भर जानता हूँ कि उनके तौर-तरीके कठोर नहीं हैं और वहाँ के सामाजिक कार्यकर्ता बच्चों को समझने की कोशिश करते हैं। उन पर नैतिक फैसले नहीं देते, न ही चरित्र सुधारने के नाम पर उन्हें डाँटते-फटकारते हैं। पर वहाँ काम करने वाले बाल-मनोवैज्ञानिक व प्रोबेशन अधिकारियों के प्रयास मानसिक रूप से बीमार बच्चों के घर द्वारा बाधित होते हैं। लगता है सफलता तब ही मिलती है जब मनोवैज्ञानिक और अधिकारी बच्चे के प्रति माँ-बाप का आचरण बदल पाते हैं। क्योंकि ये छोटे चोर दरअसल हमारे बीमार समाज की बीमारी के प्रतीक हैं। व्यक्तिगत स्तर पर चाहे कितना भी इलाज क्यों न किया जाए, वह एक खराब घर, कच्ची बस्ती की गलियों और एक विपन्न परिवार का असर धो नहीं सकेगा।

यह बिल्कुल सच बात है कि पाँच से पन्द्रह साल के अधिकांश बच्चों को ऐसी शिक्षा मिल रही है जो सिर्फ दिमाग को सम्बोधित करती है। उनके भावनात्मक जीवन से किसी का कोई सरोकार नहीं होता। जबकि किसी मनोरोगी बच्चे में भावनात्मक उतार-चढ़ाव ही उसे चोरी करने पर मजबूर करता है। स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विषयों का ज्ञान या अज्ञान उसके अपराध में कोई भूमिका नहीं निभाता।

सीधा-सादा सच यह है कि कोई भी सुखी व्यक्ति लगातार कुछ चुराने पर मजबूर नहीं होता। जो सवाल आदतन चोरी करने वाले बच्चे के सन्दर्भ में पूछे जाने चाहिए वे हैं : उसकी पृष्ठभूमि क्या है? क्या उसका घर-परिवार सुखी हैं? क्या उसके माता-पिता उससे हमेशा सच बोलते रहे हैं? धर्म या सेक्स को लेकर उसके मन में अपराधबोध तो नहीं है? क्या उसे लगता है कि उसके माता-पिता उससे प्यार नहीं करते? उसे चोर बनाने के लिए उसके भीतर का कौन-सा नरक

ज़िम्मेदार है? ज़ाहिर है कि हमारे जज उसे जिस नरक में ठूँसेंगे वह उसके आन्तरिक नरक को खत्म नहीं कर सकेगा।

मानसिक इलाज किशोर चोरों की समस्याओं का समाधान कर पाए यह आवश्यक नहीं है। इससे बच्चे को मदद ज़रूर मिलेगी। शायद वह अपने कुछ भयों या नफरतों से मुक्त भी हो पाएगा। पर जब तक नफरत का बीज उसके वातावरण में बना रहेगा, वह किसी भी वक्त अपनी पुरानी स्थिति में लौट सकता है। पर अगर उसके साथ उसके माता-पिता को भी मानसिक इलाज दिया जाए तो सम्भवतः अधिक सफलता मिलेगी।

मेरे पास एक समय एक बड़ा सा बच्चा था जिसकी मानसिक आयु दो या तीन साल की ही थी। वह दुकानों से चोरी करता था। मैंने सोचा कि पहले दुकानदार को आगाह कर मैं उसके साथ दुकान में जाऊँ और उसकी मौजूदगी में कुछ चुराऊँ। उस लड़के की नज़र में मैं उसके पिता के समान भी था और खुदा भी। मेरा विचार यह था कि उसका पिता उससे नाखुश था और चोरी का कारण भी शायद यही था। मैंने सोचा कि अगर वह अपने नए पिता-खुदा को चोरी करते देखेगा तो चोरी के बारे में फिर से विचार करेगा। मेरी अपेक्षा यह थी कि वह मेरी चोरी का ज़ोरदार विरोध करेगा।

किसी मनोरोगी बच्चे को उसकी चोरी की आदत से छुटकारा दिलाने का मुझे एक ही उपाय दिखता है - उसका अनुमोदन करना। मनोरोग विरोधाभास से उपजे दबाव का परिणाम है, जहाँ बच्चे को यह कहा गया हो कि उसे किसी चीज़ को चाहना नहीं चाहिए, जिसे दरअसल वह चाहता है। मैंने पाया है कि ऊपर से लादी गई आत्मा की आवाज़, जब ढीली पड़ती है तो बच्चे अधिक खुश और बेहतर बन पाते हैं। बच्चे को उस आत्मा की आवाज़ से मुक्त कर दीजिए और उसकी चोरी करने की आदत भी सुधर जाएगी।

आपराधिक प्रवृत्ति

बन्दूकों और औज़ारों की तरह हाथ में पहने जाने वाले पीतल के दस्तानों के इस युग में अधिकारी बाल अपराध को लेकर पूरी तरह उलझे हुए हैं, और उसे रोकने के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। अखबारों में आए दिन इस समस्या से निपटने के तमाम सुझाव छपते हैं। किशोरों को सुधारगृहों में भेजना एक मुश्किल तरीका है, जहाँ ड्रिल और सज़ा के कठोर नियम हों। मैंने एक चित्र देखा था, जिसमें लड़कों को भारी लट्ठे कन्धों पर रखवाकर कवायद करवाई जा रही थी। ऐसी जगहों में किसी के कोई अधिकार माने ही नहीं जाते।

मैं मानता हूँ कि ऐसे नरक में कुछ महीने गुज़ारने पर कुछ सम्भावित अपराधी रोके जा सकते हैं। पर ऐसा करना समस्या की जड़ तक नहीं पहुँचता। बल्कि भय यह है कि वह किशोरों को स्थाई रूप से समाज से नफरत करने वालों में बदल दे।

आज से तीस साल पहले होमर लेन ने *लिटिल कॉमनवैल्थ* नामक सुधारगृह द्वारा सिद्ध कर दिया था कि बाल-अपराधियों को प्रेम से जीता जा सकता है, उनके पक्ष की सत्ता द्वारा जीता जा सकता है। लेन ने लंदन की अदालत से उन लड़के-लड़कियों को छाँटा जो पूरी तरह असामाजिक थे, गुण्डों या ठगों के रूप में अपनी पहचान पर उन्हें घमण्ड था। ऐसे 'लाइलाज' बच्चे *लिटिल कॉमनवैल्थ* में आए जहाँ उन्हें स्व-शासित समुदाय, स्नेह और अनुमोदन मिला। समय के साथ ये बच्चे नेक और ईमानदार नागरिक बने। उनमें से कई को मैं अपना दोस्त मानता था।

अपराधी बच्चों को समझने और उनसे निपटने में लेन बेमिसाल था। वह उन्हें इसलिए सुधार सका क्योंकि वह उन्हें लगातार प्यार और समझ देता रहा। उसने हरेक अपराध कृत्य में छिपे उद्देश्य तलाशे क्योंकि उसका विश्वास था कि हरेक अपराध के पीछे मूलतः कोई नेक इरादा रहा होगा। उसने पाया कि बच्चों से कोरी बातचीत बेकार है। इससे किए कामों की गिनती मात्र होती है। उसका मानना था कि अगर किसी बच्चे का सामाजिक आचरण खराब हो तो उसे अपनी इच्छाओं को भरपूर जी लेने देना चाहिए। उसके पास आए बच्चों में से एक, जाबेज़ ने, एक बार सारे प्याले-प्लेटें तोड़ डालने की नाराज़गी भरी इच्छा जताई। लेन ने उसे लोहे का सरिया थमाया और चालू हो जाने को कहा। जाबेज़ ने अपनी भड़ास निकाली। पर अगले ही दिन वह लेन के पास आया और कोई ज़िम्मेदारी भरे और अधिक वेतन वाले काम की माँग की। लेन ने जानना चाहा कि उसे ज़्यादा पैसों की ज़रूरत क्यों है। जाबेज़ ने कहा, "मैं उन प्याले-प्लेटों की कीमत चुकाना चाहता हूँ।" लेन का स्पष्टीकरण यह था कि तोड़-फोड़ से जाबेज़ के कई अन्तर्विरोध और मानसिक कुण्ठाएँ चरमरा कर ढह गईं। ज़िन्दगी में पहली बार सत्ता में बैठे किसी व्यक्ति ने उसे गुस्सा निकालने के लिए प्याले तोड़ने पर प्रोत्साहित किया। इस कृत्य का उस पर सकारात्मक भावनात्मक असर हुआ होगा।

होमर लेन की *लिटिल कॉमनवैल्थ* से जुड़े सभी बाल-अपराधी शहर की कुख्यात कच्ची बस्तियों से थे। पर मैंने उनमें से एक के बारे में भी यह नहीं सुना कि वे सुधरने के बाद गुण्डागर्दी की ज़िन्दगी की ओर लौटे। मैं लेन के उपाय को प्यार की राह कहता हूँ। और किसी अपराधी को *नाटकीय सज़ा देने* को नफरत का रास्ता। नफरत ने किसी के, किसी भी मर्ज़ का कभी इलाज नहीं किया। मेरा निष्कर्ष यही है कि नाटकीय तरीका किसी किशोर को सुधार नहीं सकेगा। मैं यह बखूबी जानता हूँ कि अगर आज मैं एक जज होता और मेरे सामने एक अकड़ा, किशोर अपराधी होता तो मुझे नहीं सूझता कि मैं उसका क्या करूँ? मुझे यह कहते शर्म

आती है कि आज हमारे देश में *लिटिल कॉमनवैल्थ* जैसा कोई दूसरा सुधारगृह नहीं है। लेन की 1925 में मृत्यु हो गई थी और हमारी सरकार ने इस अनोखे इन्सान से कुछ भी नहीं सीखा।

फिर भी कहना होगा कि हाल के चन्द वर्षों में हमारे प्रोबेशन अधिकारियों ने बाल-अपराधियों को समझने की वास्तविक इच्छा जताई है। वकीलों के विरोध के बावजूद मनोवैज्ञानिकों ने भी आम जनता को यह सिखाया है कि बाल-अपराध का कारण बदमाशी नहीं बल्कि रोग है, जिसमें रोगी को समझ और सम्वेदनशीलता की ज़रूरत होती है। हवा का रुख नफरत की ओर न होकर प्रेम की ओर है। अटूट नैतिक नाराज़गी के बदले समझने की कोशिश की ओर है। यह हवा धीमी है। पर धीमी हवा भी कुछ संक्रमण तो बहा ले जा सकेगी। समय के साथ इसका वेग बढ़ेगा।

मुझे कोई भी ऐसे प्रमाण नहीं मिले हैं जिससे यह सिद्ध हो कि हिंसा, या क्रूरता, या नफरत से किसी व्यक्ति को अच्छा बनाया जा सका है। एक लम्बे अर्से तक मैंने कई समस्यात्मक बच्चों के साथ काम किया है, जिनमें कई बाल-अपराधी भी थे। मैंने देखा कि वे कितने दुखी और नफरत से भरे होते हैं। मेरे प्रति वे अहंकारी और श्रद्धाहीन व्यवहार करते हैं, क्योंकि मैं एक शिक्षक हूँ, पिता की जगह हूँ, उनका दुश्मन हूँ। मैंने उनकी तनावपूर्ण नफरत और उनका अविश्वास झेला है। पर समरहिल में ये सम्भावित बाल-अपराधी स्वशासित समुदाय में खुद पर शासन करते हैं। वे सीखने और खेलने के लिए स्वतंत्र हैं। जब चोरी करते हैं तो पुरस्कार पाने की सम्भावना भी रहती है। उन्हें कोई उपदेश की घुट्टी नहीं पिलाता, इहलौकिक या पारलौकिक सत्ता का भय नहीं दिखाता। कुछ ही सालों में ये नफरत से भरे बच्चे प्रसन्न सामाजिक प्राणियों के रूप में वापस दुनिया में लौटते हैं। जहाँ तक मुझे पता है, समरहिल में जिन बाल-अपराधियों ने सात साल बिताए हों, उनमें से एक भी जेल नहीं भेजा गया है, न उसने कभी बलात्कार किया है, या असामाजिक व्यक्ति बना है। उन्हें मैंने नहीं सुधारा है, उन्हें सुधारने वाला है वातावरण। समरहिल का वातावरण विश्वास देता है, सुरक्षा देता है। इसमें सम्वेदनशीलता है, यहाँ दोषारोपण नहीं होता, यहाँ कोई किसी पर फैसला नहीं सुनाता।

समरहिल के बच्चे स्कूल से निकलने पर न तो अपराधी बनते हैं, न ही गुण्डाटोली के सदस्य। क्योंकि उन्हें बिना भय, सज़ा, और उपदेशों के, गुण्डागर्दी की सहज वृत्तियों को जी लेने का अवसर दिया जाता है। उन्हें एक स्थिति से विकसित हो स्वाभाविक रूप से दूसरी स्थिति में पहुँचने की छूट दी जाती है।

मुझे पता नहीं कि किसी वयस्क अपराधी की प्रेम के प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी।

निश्चित है कि चोरी के ईनाम से उसका इलाज नहीं हो पाएगा। यह बात मुझे उतनी ही पक्की तरह पता है जितनी यह बात कि उसे जेल भेजने से भी उसका इलाज नहीं किया जा सकेगा। इलाज की आशा तभी हो सकती है जब अपराधी की उम्र कम हो। फिर भी पन्द्रह साल के किशोर को भी अगर आज़ादी दी जाए तो वह सुधरकर अच्छा नागरिक बन सकता है।

एक बार समरहिल में एक बारह साल का बच्चा आया। उसे उसके दुराचरण के कारण कई स्कूलों से निकाला जा चुका था। यही बच्चा हमारे यहाँ एक प्रसन्न, रचनात्मक व सामाजिक बच्चे में बदला। अगर उसे किसी सुधारगृह में भेजा जाता, तो वहाँ की दमनकारी सत्ता के नीचे वह निश्चित रूप से खत्म हो जाता। अगर किसी समस्यात्मक बच्चे के लिए आज़ादी इतना कुछ कर सकती है, तो फिर उन लाखों-लाख 'सामान्य' बच्चों के लिए आज़ादी क्या कुछ नहीं कर सकती जो पारिवारिक दमन के कारण विकृत हो जाते हैं।

तेरह वर्षीय टॉमी एक बड़ी भारी समस्या था। वह चोरी करता था, तोड़-फोड़ करता था। एक बार छुट्टियों के दौरान वह घर नहीं जा सका, हमने उसे स्कूल में ही रखा। दो महीनों तक वह समरहिल में अकेला रहा। उसका आचरण बढ़िया था। हमें खाने-पीने की चीज़ों और रुपए-पैसों पर ताला-चाबी नहीं लगाने पड़े। पर जैसे ही उसकी टोली लौटी उसने भण्डार गृह पर धावा बोला। इससे सिद्ध होता है कि एक व्यक्ति के रूप में और एक समूह के सदस्य के रूप में बच्चा दरअसल दो भिन्न व्यक्ति होता है।

सुधारगृहों के शिक्षक मुझे अक्सर बताते हैं कि असामाजिक किशोर की बढ़त सामान्य बच्चों की तुलना में कम होती है। मैं कहना चाहूँगा कि भावनात्मक रूप में भी वे सामान्य से कम होते हैं। एक समय था जब मैं यह मानता था कि बाल-अपराधी दरअसल एक कुशाग्र बच्चा होता है जिसकी रचनात्मक ऊर्जा असामाजिक कृत्यों में इसलिए झलकती है, क्योंकि उसे अभिव्यक्त करने का कोई रचनात्मक तरीका उसके पास नहीं होता। उसे कुण्ठाओं और अनुशासन से मुक्त करें, तो वह ज़रूर चतुर, रचनात्मक, यहाँ तक कि कुशाग्र बच्चा बन सकेगा। पर मैं गलत था, दुखद रूप से गलत था। बाल-अपराधियों के साथ सालों-साल बिताने के बाद मुझे एक ही बच्चा याद आता है जो बाद में कुछ कर गुज़र सका। इनमें से कई का आचरण और बेईमानी ज़रूर सुधर सकी और वे नियमित नौकरियाँ करने लगे। पर एक भी अच्छा विद्वान या कलाकार, कुशल इंजीनियर या बढ़िया अभिनेता नहीं बना। जब उनकी असामाजिक प्रवृत्तियाँ खत्म हो गईं तो अधिकांश वयस्क मरे-मरे से और उबाऊ बने। उनमें किसी तरह की, आगे बढ़ने की इच्छा नहीं थी।

जब भी बच्चों को अज्ञानी माँ-बाप के साथ खराब वातावरण में जीना पड़ता है तो

वे अपनी असामाजिकता को पूरी तरह जी नहीं पाते। अगर गरीबी और कच्ची बस्तियाँ खत्म कर दी जाएँ, माता-पिता का अज्ञान मिटा दिया जाए तो सुधारगृहों की ज़रूरत कम हो जाएगी।

बाल-अपराधों का इलाज दरअसल समाज के अपने नैतिक अपराधों और उनके प्रति नैतिक उदासीनता के इलाज से ही हो सकता है। हमें हमारे सामने उपस्थित दो पक्षों में से एक को चुनना है। हम चाहें तो अपने बाल-अपराधियों को घृणा भरे नरक के रास्ते धकेलें या फिर प्रेम की राह चुनें।

मुझे कुछ पल यह कल्पना करने दीजिए कि मैं आंतरिक मामलों का सचिव हूँ और मेरे पास शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने की असीमित ताकत है। मुझे एक सामान्य कार्यक्रम, या कहें स्कूलों के लिए एक पंच-वर्षीय योजना बनाने दें।

सचिव के रूप में मैं सारी तथाकथित सुधार शालाओं को खत्म कर दूँगा और उनके बदले पूरे देश में शैक्षणिक बस्तियाँ बसाऊँगा। मैं शिक्षकों और आवासगृह माताओं के लिए विशेष प्रशिक्षण केन्द्र खुलवाऊँगा। हरेक बस्ती पूरी तरह स्वशासित होगी। शिक्षकों को विशेष सुविधाएँ नहीं होंगी। वे वही खाएँगे, वैसे ही रहेंगे जैसे उनके छात्र-छात्राएँ। बच्चे जो भी सामुदायिक काम करेंगे उसके लिए उन्हें मज़दूरी मिलेगी। इन बस्तियों का नारा होगा आज़ादी। किसी किस्म का धर्मोपदेश, नैतिक उपदेश, या सत्ता वहाँ नहीं होगी।

धर्म को इसलिए दूर रखूँगा क्योंकि धर्म सिर्फ बोलता है, उपदेश देता है, भावनाओं का शुद्धिकरण और दमन करता है। धर्म पाप की कल्पना वहाँ करता है, जहाँ दरअसल पाप न हो। वह स्वतंत्र इच्छाशक्ति को मानकर चलता है जबकि कई बच्चे अपनी प्रवृत्तियों के इस कदर गुलाम होते हैं कि उनकी इच्छाशक्ति स्वतंत्र रह ही नहीं पाती।

धार्मिक अनुकूलन के बदले मैं, भावनाओं को, बिना क्रूरता और अन्याय के, प्रेम से अनुकूलित करने की पैरवी करूँगा। शैक्षणिक बस्तियों में इस आदर्श को पाने का एक तरीका होगा - जहाँ तक हो सके बिना सत्ता की नफरत के नौजवानों को अपने हाल पर छोड़ना। मेरा अनुभव बताता है कि यही अकेला रास्ता है।

शिक्षकों को अपने छात्र-छात्राओं के समान बनना सिखाया जाएगा, उनसे श्रेष्ठ बनना नहीं। सम्मान के लबादे और व्यंग्य का वे त्याग करेंगे। वे किसी तरह का भय नहीं जगाएँगे। उन्हें असीमित धैर्यशील स्त्री-पुरुष बनना होगा, जो दूर तक देख सकें। अन्ततः आने वाले परिणामों में उन्हें आस्था रखनी होगी।

शिक्षकों की मुख्य विशेषता होगी अपने छात्र-छात्राओं में आस्था दर्शा पाने की क्षमता। बच्चों के प्रति शिक्षकों का व्यवहार सम्मानजनक होगा, वे उनसे चोर-

उचक्कों सा व्यवहार नहीं करेंगे। पर साथ ही उन्हें व्यावहारिक भी बनना पड़ेगा। वे किसी आदतन चोरी करने वाले को समुदाय के कोषाध्यक्ष की ज़िम्मेदारी नहीं सौपेंगे। शिक्षकों को उपदेश झाड़ने के लोभ पर काबू पाना होगा। उन्हें यह सीख लेना होगा कि शब्दों से अधिक प्रभावशाली, कृत्य होते हैं। उन्हें प्रत्येक बाल/किशोर अपराधी का इतिहास जानना होगा, उसकी *पूरी* पृष्ठभूमि को समझना होगा।

बुद्धिमानी जाँचने वाले परीक्षणों को इस बस्ती में गौण स्थान दिया जाएगा। क्योंकि वे महत्वपूर्ण सम्भावनाओं की ओर इंगित नहीं कर पाते। वे भावनाओं, रचनात्मकता, मौलिकता और कल्पनाशक्ति का सही आकलन नहीं कर पाते।

शिविर का वातावरण जेल जैसी संस्था का न होकर, अस्पताल जैसा होगा। जिस प्रकार कोई चिकित्सक किसी यौन रोग से पीड़ित व्यक्ति के प्रति नैतिक दृष्टिकोण नहीं अपनाता, उसी प्रकार शिविर का स्टाफ भी यह मानकर चलेगा कि सभी अपराधी रोगी हैं। अस्पताल से एक ही अर्थ में यह बस्ती फर्क होगी। यहाँ सामान्यतः किसी को कोई दवाएँ नहीं दी जाएँगी। मनोचिकित्सा से सम्बंधित दवाएँ भी नहीं। इलाज वातावरण में मौजूद वास्तविक प्रेम का ही नतीजा होगा। स्टाफ को मानवीय स्वभाव में भी वास्तविक आस्था दर्शानी होगी। यह सच है कि कई दृष्टान्तों में असफलता ही हाथ लगेगी। कुछ लोग लाइलाज सिद्ध होंगे। समाज को उनसे निपटना होगा। पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम होगी। अधिकाँश बाल-अपराधी प्रेम, सहिष्णुता व विश्वास के वातावरण में सुधर सकेंगे।

अविश्वासी लोगों को मैं होमर लेन और एक किशोर अपराधी के वाकये की याद दिलाना चाहूँगा, जिसने आजीवन कारावास भुगत रहे एक कैदी को जूते बनाने की एक नई मशीन लाने न्यूयॉर्क भेजा। वह नई मशीन के पूरे हिसाब-किताब के साथ लौटा। वॉर्डन ने पूछा, "तुम्हें न्यूयॉर्क में भागने का नायाब मौका मिला था, तुमने उसका फायदा क्यों नहीं उठाया।" कैदी सिर खुजलाता, कुछ देर सोचता रहा, तब बोला, "पता नहीं, शायद इसलिए क्योंकि आपने मुझ पर भरोसा किया।"

जेल और सज़ा, इन्सानों में इस अनूठी आस्था की जगह नहीं ले सकते। किसी उलझे हुए व्यक्ति के लिए इस विश्वास का अर्थ यह होता है कि कोई उन्हें नफरत की जगह प्यार दे रहा है।

बच्चे का सुधार

इलाज, उपचार करने वाले से अधिक बीमार पर निर्भर होता है। उपचारक के पास जाने वाले तमाम लोगों में असफलता इसलिए होती है क्योंकि उन्हें उनके रिश्तेदार घेर-घारकर उपचारक के पास भेजते हैं। अगर कोई पुरुष अपनी पत्नी को मनोविश्लेषण के लिए जाने पर मजबूर करता है, तो उसकी पत्नी मान तो जाती है लेकिन गुस्सा बना रहता है। *मेरा पति मुझे नापसन्द करता है, मुझमें बदलाव लाना चाहता है। मुझे यह बात अच्छी नहीं लग रही है।*

यही परेशानी उस वक्त भी आती है जब किशोर अपराधी को जबरन उपचार के लिए भेजा जाता है। किशोरों या वयस्कों का उपचार तब ही कारगर हो सकता है, जब रोगी स्वयं इलाज चाहे।

अधिकांश बाल-अपराधियों को अगर सिर्फ आज़ादी दी जाए, उपचार न भी जोड़ा जाए, तो भी उनकी अधिकतर समस्याएँ सुलझ सकेंगी। मैं *आज़ादी* की बात कह रहा हूँ, स्वेच्छाचारिता की नहीं, भावुकता की भी नहीं। पर जो रोगी हैं वे केवल आज़ादी से नहीं सुधारे जा सकेंगे। जिन लोगों का मानसिक विकास रुक गया है, उन पर आज़ादी का कोई असर नहीं होगा। पर बच्चों के छात्रावास में यह ज़रूर कारगर होगी, बशर्ते उसका उपयोग हर समय हो।

कुछ साल पहले एक लड़का मेरे पास भेजा गया। वह पक्का चोर था और चोरी भी चतुराई से करता था। उसके आने के एक हफ्ते बाद मेरे पास लिवरपूल से एक फोन आया, "मैं फलाँ-फलाँ एक नामी-गिरामी नाम बोल रहा हूँ। मेरा भतीजा आपके स्कूल में है। उसने पत्र लिखकर मुझसे पूछा है कि वह चंद दिनों के लिए मेरे पास आ सकता है क्या? आपको कोई आपत्ति तो नहीं है?"

बिल्कुल नहीं, मैंने जवाब दिया, पर उसके पास पैसे तो नहीं हैं। उसका किराया कौन देगा? बेहतर हो कि आप उसके माता-पिता से सम्पर्क करें।

अगली दोपहर लड़के की माँ का फोन आया कि अंकल डिक ने उनसे बात की है। उनकी ओर से आर्थर लिवरपूल जाना चाहे तो जा सकता है। किराया भी पता कर लिया गया है। वह 28 शिलिंग होता है। क्या मैं फिलहाल आर्थर को 2 पाउण्ड 10 शिलिंग दे सकता हूँ? दोनों ही फोन स्थानीय फोन-बूथ से किए गए थे। आर्थर ने अपने वृद्ध अंकल और अपनी माँ की आवाज़ों की हूबहू नकल की थी। उसने

मुझे फाँस लिया। इससे पहले कि मैं समझ पाता कि मैं उल्लू बनाया गया हूँ, मैं उसे पैसे दे चुका था।

मैंने अपनी पत्नी से इस पर चर्चा की। हम दोनों सहमत थे कि उससे पैसे वापस लेना गलत होगा, क्योंकि यही तो उसके साथ अब तक होता आया था। मेरी पत्नी ने पुरस्कार की बात सुझाई। मैं देर रात उसके कमरे में गया।

"आज तो तुम्हारा भाग्य बड़ा अच्छा है?" मैंने कहा।

"बेशक," उसका जवाब था।

मैंने कहा, "लेकिन जितना तुम सोच रहे हो, उससे भी ज़्यादा अच्छा रहा, तुम्हारे लिए यह दिन।"

"क्या मतलब?" उसने जानना चाहा।

"अरे, तुम्हारी माँ का दुबारा फोन आया था," मैंने सहजता के साथ जोड़ा। "उन्होंने कहा कि किराए के बारे में उनसे गलती हो गई है। वह 28 शिलिंग नहीं 38 शिलिंग है।" और मां ने तुम्हें 10 शिलिंग और देने को कहा है। यह कहकर मैंने उसके बिस्तर पर दस शिलिंग का नोट उछाला और वह कुछ कहे इससे पहले ही चलता बना।

अगली सुबह वह लिवरपूल गया। जाते वक्त वह एक खत छोड़ गया जो मुझे उसके जाने के बाद दिया जाना था। उसकी शुरुआत थी, "प्रिय नील, तुम मुझसे बेहतर अभिनेता हो।" घटना के कई सप्ताह बाद तक वह मुझसे पूछता रहा कि मैंने उसे और पैसे क्यों दिए थे।

एक दिन मैंने उसे जवाब दिया, "जब मैंने पैसे दिए तो तुम्हें क्या लगा।" वह कुछ देर ध्यान से सोचता रहा, फिर धीमे से बोला, "पता है, मुझे ज़बरदस्त धक्का लगा। मैंने खुद से कहा कि मेरी ज़िन्दगी में यह पहला इन्सान है जो मेरे पक्ष में है।" यह उदाहरण है उस लड़के का जिसे उस प्रेम का अहसास हुआ, जिसमें अनुमोदन का पुट था। अमूमन यह चेतना काफी देर से आती है। जिसका इलाज किया जा रहा हो उसे इलाज के प्रभाव का अक्सर कुछ हल्का-सा अहसास ज़रूर होता है। पर वह कई महीनों बाद होता है।

पिछले दिनों मेरा बिगड़ैल बाल-अपराधियों से काफी पाला पड़ा। मैंने उन्हें हमेशा चोरी के बाद पुरस्कृत किया। कई बच्चों को, जब वे सुधर गए, तो इस बात का अहसास हुआ कि मेरी ओर से जो अनुमोदन जताया गया उससे उन्हें मदद मिली।

बच्चों के साथ काम करते समय मनोवैज्ञानिक गहराइयों में उतरना पड़ता है। उसके आचरण के पीछे छिपे गहरे उद्देश्य तलाशने पड़ते हैं। कोई लड़का असामाजिक है, पर आखिर क्यों? स्वाभाविक ही है कि उसकी हरकतें आड़े आती हैं, हमें उनसे

खीज होती है। सम्भव है वह दादागिरी करता हो, शायद चोर हो, शायद दूसरों को पीड़ा देने में उसे मज़ा आता हो। पर क्यों भला? शिक्षक खीझकर उस पर चीखेगा, उसे सज़ा देगा, उसे बुरा-भला कहेगा। पर शिक्षक की खीझ ज़ाहिर हो जाने के बावजूद समस्या जस की तस बनी रहेगी। कठोर अनुशासन द्वारा शिक्षा की जो माँग फिलहाल फिर से सिर उठा रही है, उससे केवल लक्षणों का इलाज हो सकेगा, पर अन्ततः उसका प्रभाव शून्य रहेगा।

माँ-बाप एक बच्ची को समरहिल लाते हैं, जो झूठ बोलती है, चोरी करती है, जो दूसरों की बुराई करती है, चुगली लगाती है। वे उसके दोषों की लम्बी फेहरिस्त मुझे बताते हैं। पर बच्ची को यह जताना भारी भूल होगी कि मुझे उसके बारे में कुछ बताया गया है। मुझे उस वक्त तक धीरज रखना होगा, जब वह बच्ची खुद स्कूल के, मेरे व दूसरों के प्रति आचरण से, अपने बारे में बताए।

सालों पहले एक लाइलाज, समस्यात्मक बच्चा मेरे पास लाया गया। उसके माता-पिता का ज़ोर था कि उसे किसी मनोचिकित्सक के पास जाँच के लिए ले जाया जाए। मैंने विशेषज्ञ से अलग से आधा घण्टा बात की। उन्हें सब कुछ विस्तार से समझाया। तब बच्चे को अन्दर बुलाया गया। विशेषज्ञ महोदय ने छूटते ही कहा, "नील साहब बता रहे हैं कि तुम एक बेहद खराब लड़के हो।" यह *उनकी* मनोचिकित्सा थी।

इसी तरह की अज्ञानी, पूरी तरह से गलत विधि का सामना मुझे बार-बार करना पड़ा है। एक मेहमान ने एक बार एक बच्चे से, जो अपने कद को लेकर कुण्ठित था कहा, "उम्र के हिसाब से तुम्हारा कद काफी कम है।"

किसी दूसरे मेहमान ने एक लड़की से कहा, "तुम्हारी बहन तो बड़ी चतुर है, है ना?" बच्चों से व्यवहार की कला की परिभाषा है *यह जानना, कि क्या नहीं करना चाहिए*।

पर दूसरी ओर बच्चे को यह जताना भी ज़रूरी है कि आपको उल्लू नहीं बनाया जा सकता। आप किसी बच्चे को लगातार अपनी टिकटें चुराने दें, तो यह निरर्थक होगा। यह कहना कि, "तुम्हारी माँ ने बताया था कि तुम टिकट चुराते हो" से फर्क है, "मैं जानता हूँ कि तुमने मेरी टिकटें ले ली हैं।"

बच्चों के माता-पिता को उनके बारे में कुछ भी लिखने से मैं घबराता हूँ। डरता हूँ कि कहीं वह पत्र इधर-उधर पड़ा न रह जाए और छुट्टियों में घर आए बच्चे के हाथ लग जाए। पर इससे भी ज़्यादा डर इस बात का लगता है कि कहीं वे बच्चे को खत में यह न लिखें कि, "नील ने बताया है कि तुम कक्षाओं में बिल्कुल नहीं जा रहे हो, और तुमने सबकी नाक में दम कर रखा है।" अगर ऐसा होता है, तो

बच्चा मुझ पर कभी भी विश्वास नहीं करेगा। सो अमूमन मैं जितना कम बता सकता हूँ, उतना बताता हूँ। केवल जब माँ-बाप बिल्कुल भरोसेमन्द और जागरूक होते हैं, तब ही मैं कुछ विस्तार से चर्चा करता हूँ।

मैं सामान्यतः बच्चे के पक्ष में सही काम करता हूँ, क्योंकि मेरे लम्बे अनुभव ने मुझे सही रास्ता भी बताया है। इसमें मेरी कोई चतुराई नहीं है, न यह कोई जन्मजात गुण है। यह केवल अभ्यास की बात है। शायद कहीं इस बात का भी असर पड़ता हो कि मैं अनावश्यक चीज़ों की ओर से आँखें मूँद लेता हूँ।

बिल एक नया लड़का है। वह किसी लड़के के पैसे चुराता है। पीड़ित लड़का मुझसे पूछता है, "अगली आम सभा में मैं उस पर आरोप लगाऊँ? बिना सोचे मैं कहता हूँ, "ना, मुझ पर छोड़ दो।" मैं उससे बाद में तर्क-वितर्क कर सकता हूँ। बिल के लिए आज़ादी की बात नई है। वह इस नए वातावरण का पूरी तरह अभ्यस्त नहीं हो सका है। वह खूब कोशिश कर रहा है कि वह लोकप्रिय हो, उसके साथी उसे स्वीकार करें। इसी चक्कर में वह शान बघारता, दिखावा करता फिर रहा है। उसकी चोरी की बात सार्वजनिक करने का मतलब होगा, उसमें शर्म और भय जगाना। सम्भव है कि इससे बच्चे में विरोध भावना जगे और तब असामाजिक व्यवहार भड़क उठे। इसके विपरीत अगर वह अपने पिछले स्कूल में, गुण्डा नेता रहा हो जिसे शिक्षकों के विरुद्ध अपनी खुराफातों पर नाज़ हो तो वह आरोप लगने के बाद और अधिक इतरा सकता है। यह जताने की कोशिश कर सकता है कि वह कितना महान है।

किसी दूसरे समय कोई बच्चा कहता है, "मैं मेरी पर आरोप लगाऊँगा कि उसने मेरे क्रेयॉन चुराए हैं" तो मैं कोई खास रुचि नहीं लेता हूँ। इसलिए, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरी स्कूल में दो वर्षों से है और परिस्थिति से खुद निपटने की ताकत उसमें है।

तेरह साल का एक नया लड़का जो हमेशा से पढ़ाई से नफरत करता रहा है, समरहिल आता है। कुछ हफ्ते वह जी भरकर मटरगश्ती करता है। तब ऊबकर मेरे पास आता है और कहता है, "मैं पढ़ाई के लिए जाऊँ?" मैं जवाब दे सकता हूँ, "इससे मेरा क्या लेना-देना?" यह मैं इसलिए कहता हूँ क्योंकि उसे अपनी आन्तरिक इच्छाओं को तलाशना है। पर सम्भव है कि किसी दूसरी बच्ची से मैं कहूँ, "हाँ, अच्छा विचार है" क्योंकि सम्भव है कि उसका घरेलू और स्कूली जीवन एक समय-सारिणी के इर्द-गिर्द चला हो और वह तय नहीं कर सकती हो कि वह क्या चाहती है। मुझे उस वक्त तक इंतज़ार करना होगा, जब तक वह स्वावलम्बी नहीं बन जाती। पर जवाब देते समय मैं इन व्यक्तिगत पक्षों पर कोई सचेत सोच-विचार नहीं करता।

प्रेम का अर्थ है व्यक्ति के पक्ष में होना। प्रेम का अर्थ है अनुमोदन। मैं जानता हूँ कि बच्चे यह धीरे-धीरे समझते हैं कि आज़ादी का मतलब स्वेच्छाचारिता से भिन्न है। पर यह सच्चाई वे समझ सकते हैं, समझते भी हैं। अन्ततः आज़ादी हमेशा कारगर होती है - प्रायः हरेक दृष्टान्त में।

खुशी की राह

फ्रॉयड ने कहा था कि हर तरह का मनोरोग दरअसल यौन भावनाओं के दमन से जन्मता है। सो मैंने खुद से कहा, "मेरे स्कूल में ऐसा नहीं होगा।" "फ्रॉयड ने कहा कि अवचेतन मन, चेतन मन से कहीं अधिक ताकतवर होता है। मैंने कहा, "मेरे स्कूल में हम बुराई नहीं करेंगे, सज़ा नहीं देंगे, नैतिक उपदेश नहीं देंगे। हरेक बच्चे को उसकी अन्तःप्रेरणा के अनुरूप जीने का मौका देंगे।"

धीरे-धीरे मैं समझ पाया कि फ्रॉयड को मानने वाले ज़्यादातर लोग, बच्चे की स्वतंत्रता को न तो समझते हैं और न ही उसमें विश्वास करते हैं। वे आज़ादी को स्वेच्छाचारिता मानने की गलती करते हैं। जिन बच्चों को अपने सा बने रहने की इजाज़त ही नहीं मिली, जिन्होंने दूसरों की आज़ादी का सम्मान करना भी नहीं सीखा, ऐसे बच्चों का वे इलाज कर रहे थे। मेरा पक्का विश्वास है कि फ्रायडियनों ने अपने सिद्धान्त ऐसे ही गड्ड-मड्ड बच्चों पर आधारित किए।

मैंने धीरे-धीरे पाया कि मेरा क्षेत्र, इलाज का न होकर, रोगनिरोध का है। इसका पूरा अर्थ समझने में मुझे सालों लगे। तब पता चला कि समरहिल में आने वाले बच्चे इलाज की वजह से नहीं, बल्कि आज़ादी की वजह से सुधरते हैं। मैंने पाया कि मेरा मुख्य काम चुपचाप बैठे रहकर, उस सबका अनुमोदन करना है जिसे बच्चा अपनी कमी मानकर नफरत करता है। अर्थात मुझे बच्चे पर लादे गए उस विवेक को तोड़ना है जो उसमें खुद के प्रति नफरत जगाता है।

जब कोई नया बच्चा आता है और गालियाँ देता है तो मैं मुस्कुराकर कहता हूँ, "जारी रखो, गाली देने में कोई बुराई नहीं है।" यही मैं हस्तमैथुन, झूठ बोलने, चोरी करने और उनकी तमाम दूसरी खुरापातों के लिए भी कहता हूँ जो सामाजिक रूप से गलत मानी जाती हैं।

कुछ समय पहले एक नन्हा हमारे पास आया। वह मुझपर सवालों की झड़ी बरसाने लगा : "उस घड़ी की क्या कीमत दी थी आपने?" "कितने बजे हैं?" "स्कूल का सत्र कब खत्म होगा?" वह बच्चा बड़ा तनावग्रस्त रहता था और कभी अपने सवालों के जवाब सुनता तक नहीं था। मुझे पता था कि वह उस अहम सवाल

से लगातार कतरा रहा था जिसका जवाब दरअसल उसे चाहिए था।

एक दिन वह मेरे कमरे में आया और उसने तमाम सवाल पूछे। मैंने एक भी जवाब नहीं दिया और पढ़ता रहा। दर्ज़न भर सवालों के बाद मैंने नज़रें उठाईं और सहज भाव से कहा, "क्या पूछा तुमने? बच्चे कहाँ से आते हैं?"

वह उठ खड़ा हुआ, उसका चेहरा लाल हो गया। "मुझे यह नहीं जानना है कि बच्चे कहाँ से आते हैं," इतना कहकर वह कमरे से भाग गया।

दस मिनट बाद वह फिर लौटा। "यह टाइपराईटर आपने कहाँ से खरीदा? इस सप्ताह सिनेमाघर में कौन सी फिल्म चल रही है? आपकी उम्र क्या है?" (*कुछ देर चुप्पी के बाद*), "बता भी दीजिए कि बच्चे आते *भला* कहाँ से हैं?"

मैंने उसे सही जवाब दिया उसके बाद वह मुझसे कोई सवाल पूछने नहीं आया।

दिमागी कचरे की सफाई मेहनत का काम है। इस तरह का काम इसलिए सहनीय बन जाता है क्योंकि किसी दुखी बच्चे को सुखी और आज़ाद बच्चे में बदलते देखना आनन्ददायक है। पर इसका एक दूसरा पहलू भी है। जहाँ अथक परिश्रम के बाद भी सफलता हाथ नहीं लगती। साल भर एक बच्चे के साथ काम करें और खुश हों कि उसकी चोरी की आदत छूट गई है। और तब अचानक वह फिर से चोरी करे और शिक्षक पूरी तरह से हताश हो जाए। मैंने किसी छात्र के सुधरने पर खुद को बधाई दी ही होगी कि कोई शिक्षक पाँच मिनट बाद ही दौड़ता हुआ आया और उसने बताया, "टॉमी ने फिर चोरी करना शुरू कर दिया है।"

मनोविज्ञान कुछ-कुछ गौल्फ के खेल जैसा है। वहाँ आप खेल के एक चक्कर में दो सौ बार गेंद को मारते हैं, आप नाराज़ होते हैं, गुस्से में उसका बल्ला भी तोड़ डालते हैं, पर जैसे ही धूप से चमकती अगली सुबह सामने आती है, आप फिर से दिल में नई आशा लेकर खेलने पहुँचते हैं।

अगर आप किसी बच्चे को कोई अत्यावश्यक सच्चाई बताते हैं या वह अपनी परेशानियाँ आपको बताता है तो आप दोनों के बीच एक अन्तरंग रिश्ता बनता है। यानी वह अपनी सारी भावनाएँ आप पर न्यौछावर करता है। जब मैं किसी छोटे बच्चे के जन्म या हस्तमैथुन के बारे में भ्रान्तियाँ दूर करता हूँ तो एक खास और मजबूत रिश्ता हमारे बीच बनता है। किसी एक समय यह अन्तरण नकारात्मक भी बन सकता है। तब वह नफरत का अन्तरण होता है। पर किसी भी सामान्य बच्चे के साथ यह नकारात्मक चरण अधिक समय नहीं चलता, उसके बाद जल्दी ही प्रेम का अन्तरण प्रारम्भ हो जाता है। बच्चे के अन्तरण जल्दी ही विलय हो जाते हैं। वह कुछ समय बाद मेरे बारे में सब कुछ भूल जाता है और दूसरे बच्चों के साथ भावनात्मक रिश्ते बनाने लगता है। क्योंकि मैं पिता समान हूँ यह अंतरण लड़कियों

में ज़्यादा स्वाभाविक रूप से पनपता है। लेकिन मैं यह नहीं कह सकता हूँ कि लड़कियों में मेरे प्रति हमेशा सकारात्मक अंतरण होता है और लड़कों में नकारात्मक। बल्कि मैंने कई बार लड़कियों की घोर नफरत भी देखी है।

समरहिल में मैं चिकित्सक भी था और मनोवैज्ञानिक भी। पर मुझे धीरे-धीरे समझ आया कि इन दोनों भूमिकाओं को एक साथ नहीं निभाया जा सकता है। मुझे मनोचिकित्सक की भूमिका छोड़ देनी पड़ी क्योंकि अधिकांश छात्र, जो मुझे अपने राज़ बताते हैं, मेरे साथ काम नहीं कर पाते हैं। वे मुझसे खीझने लगते हैं और मेरी आलोचना से भी डरते हैं। अगर मैं किसी एक के बनाए चित्र की तारीफ करता हूँ तो दूसरों को जलन होती है। सच्चाई यह है कि मनोचिकित्सक को स्कूल में रहना ही नहीं चाहिए। उससे सामाजिक मेलजोल रखने में बच्चों की कोई रुचि नहीं होनी चाहिए।

मनोविज्ञान की सभी शाखाओं में अवचेतन की परिकल्पना को स्वीकारा गया है। अर्थात वे यह मानकर चलते हैं कि हम सब में दबी हुई इच्छाएँ, प्रेम और नफरत होती है, जिनके बारे में हमें पता तक नहीं होता। इसलिए किसी भी व्यक्ति का चरित्र चेतन आचरण और अवचेतन आचरण का मिश्रण होता है।

चोरी के मकसद से घर में घुसा नौजवान यह जानता है कि वह पैसे और कीमती चीज़ें पाना चाहता है। पर वह अपने गहरे अवचेतन उद्देश्य को नहीं जानता, जिसके चलते वह पैसे कमाने के बदले चुराने का रास्ता चुनता है। यह उद्देश्य दबा हुआ होता है इसलिए नैतिक भाषण या सज़ा उसे कभी सुधार नहीं सकते। डाँट-फटकार उसके कानों तक पहुँचती है और सज़ा उसका शरीर झेलता है। ये उपदेश और सज़ाएँ बच्चे के अवचेतन उद्देश्यों तक नहीं पहुँचते जो उसके आचरण को नियंत्रित करते हैं।

इसलिए धर्म, उपदेशों के द्वारा बच्चे के अवचेतन मानस तक नहीं पहुँचता। पर अगर उसी बच्चे का पादरी, किसी रात उसके साथ चोरी करने जाए तो जो आत्म-घृणा उसके असामाजिक आचरण के लिए ज़िम्मेदार है, वह पिघलने लगे। ऐसा सहानुभूतिपूर्ण रिश्ता उसे दूसरी तरह से सोचने पर मजबूर करेगा। एक से ज़्यादा बच्चों का इलाज उस समय सम्भव हुआ जब मैंने उनके साथ मिलकर पड़ोसियों की मुर्गी चुराई थी या स्कूल की तिजोरी से पैसे चुराए। जहाँ शब्द नहीं पहुँचते वहाँ कर्म पहुँचता है। यही कारण है कि बच्चे की कई समस्याएँ प्रेम और अनुमोदन से सुलझती हैं। मैं यह नहीं कहता कि जिसे चोरी करने की या दूसरों को पीड़ा देने की बीमारी है वे लोग भी प्यार से सुधर जाएँगे। पर अमूमन प्यार से बच्चों में चोरी, झूठ बोलना और तोड़-फोड़ को सुधारा जा सकता है। मैंने यह करके सिद्ध किया है कि आज़ादी के होने से और नैतिक अनुशासन के न होने से ऐसे तमाम बच्चों

को सुधारा जा सका है जिनका भविष्य जेल ही लगता था।

वास्तविक आज़ादी जो सामुदायिक जीवन में उतरी हो, जैसे समरहिल में, कई लोगों पर वही असर करती है जो किसी व्यक्ति पर मनोविश्लेषण का होता है। इससे अब तक का छुपा उभर आता है। आज़ादी ताज़ी हवा का वह झोंका है जो खुद उसकी आत्मा के और दूसरों के प्रति नफरत को साफ कर देता है।

नौजवानों की इस जद्दोजहद में कोई निष्पक्ष नहीं रह सकता। हमें कोई न कोई पक्ष चुनना ही पड़ता है : सत्ता या आज़ादी, अनुशासन या स्वशासन। आधे-अधूरे कदमों से काम नहीं चलेगा क्योंकि स्थिति काफी खराब है।

हरेक बच्चे को उसके माता-पिता और शिक्षक विरासत में दो में से एक स्थिति दे सकते हैं। एक वह जहाँ उसकी आत्मा मुक्त हो, काम में वह प्रसन्न रहे, दोस्ती में खुश हो, प्रेम में आनन्दित हो। दूसरी स्थिति वह जहाँ वह संघर्षों से जूझता हो, खुद से, मानवता से नफरत करता हो।

प्रसन्नता कैसे दी जा सकती है? मेरा अपना जवाब है : *सत्ता खत्म करें। बच्चे को उसकी तरह बनने दें। उसे इधर-उधर नहीं धकियाएँ। उसे न सिखाएँ। उसे भाषण न पिलाएँ। उसे सुधारने की कोशिश न करें। कुछ भी करने का दबाव उस पर न डालें।* सम्भव है आपका जवाब यह न हो। पर अगर आप मेरे जवाब को नकारेंगे तो एक बेहतर जवाब तलाशने की ज़िम्मेदारी भी आप पर ही है।

6

अभिभावकों की समस्याएँ

प्रेम व नफरत

बच्चे को उसका विवेक उसके माँ-पिता, शिक्षक, पादरी यानी उसके वातावरण से मिलता है। उसकी उलझनें दरअसल मानवीय स्वभाव और विवेक के बीच संघर्ष का परिणाम हैं। फ्रॉयड के पारिभाषिक शब्दों में कहें तो उसके 'सुपर ईगो' और उसके - 'इड' के बीच का संघर्ष।

विवेक इस कदर हावी हो सकता है कि बच्चा सन्यासी बन जाए, संसार और शरीर दोनों त्याग दे। अधिकांश दृष्टान्तों में एक तरह का समझौता होता है। यह समझौता इस कहावत में झलकता है, 'सप्ताह में छह दिन शैतान की चाकरी और इतवार को भगवान की।'

प्रेम और नफरत एक दूसरे के विलोम नहीं हैं। प्रेम का विलोम है उदासीनता। घृणा प्रेम का ही दूसरा पहलू है, जो दमन के कारण घृणा में बदल जाता है। घृणा में हमेशा भय का पुट होता है। यह हम उस बच्चे में देख सकते हैं जो अपने छोटे भाई से नफरत करता है। उसकी नफरत की जड़ इस भय में है कि वह माँ का प्यार खो देगा। साथ ही वह भाई के प्रति मन में उठी बदले की भावना से भी डरता है।

चौदह वर्षीय अंशी, एक विद्रोही स्वीडिश लड़की थी। समरहिल में आने के बाद उसने शुरुआत मुझे लतियाने से की ताकि मैं नाराज़ हो जाऊँ। दरअसल मैं उसके पिता की जगह था जिससे वह नफरत करती थी, डरती थी। उसे कभी अपने पिता की गोद नहीं मिली थी। न ही कभी पिता ने उसके प्रति अपना प्यार ही जताया था। जब उसके सहज प्यार के बदले उसके पिता ने प्रेम नहीं दिया, तो उसका प्यार नफरत में बदल गया। उसे समरहिल में अचानक एक नया पिता मिला जो सख्ती से व्यवहार नहीं करता था। पिता, जिससे वह डरती नहीं थी। ऐसे में उसकी नफरत उभरकर सामने आई। यह तथ्य कि अगले ही दिन उसका व्यवहार कोमल और स्नेहमय था, इस बात का प्रमाण है कि उसकी नफरत दरअसल परिवर्तित प्यार ही थी।

अंशी द्वारा मुझ पर किए गए हमले का महत्व समझने का मतलब होगा सेक्स के प्रति उसके विकृत दृष्टिकोण को समझना। अंशी एक बालिका विद्यालय से आई थी जहाँ लड़कियाँ अंधेरे कोनों में लुक-छिपकर यौन चर्चा करती थीं। अपने पिता के प्रति उसकी नफरत आंशिक रूप से उचित यौन-शिक्षा के अभाव के कारण भी

उपजी थी। अपनी माँ के प्रति भी उसके मन में नफरत थी क्योंकि उसने इस दिशा में स्वाभाविक जिज्ञासा को सज़ा देकर दबाया था।

अधिकांश माता-पिता यह नहीं समझते कि सज़ा देकर वे अपने बच्चों के प्यार को नफरत में बदल रहे हैं। बच्चों में नफरत को पहचानना आसान नहीं होता। माताएँ नहीं समझतीं कि पीटने के बाद बच्चे में दिखाई पड़ने वाली कोमल भावना दरअसल नफरत को दबाने का नतीजा है। दबाई गई भावनाएँ मरती नहीं हैं, केवल उस वक्त के लिए सो जाती हैं।

किशोरों के नीति उपदेश नाम से मारकस की एक पुस्तक है। मैं प्रयोग के रूप में बच्चों को अक्सर उसकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ पढ़कर सुनाता हूँ। उनका भावार्थ है:

टॉमी ने अपना घर जलते देखा

माँ को लपटों में खत्म होते देखा,

देखा कि गिरती ईंट से पिता मर गया है,

और टॉमी हँसा, और हँसता गया। तब तक, जब तक वह बीमार न हो गया।

यह पंक्तियाँ बच्चों की पसन्दीदा पंक्तियाँ हैं। इन्हें सुनते या पढ़ते वक्त वे बड़े ज़ोर से हँसते हैं। अपने माता-पिता को खूब प्यार करने वाले बच्चे भी ज़ोर से हँसते हैं क्योंकि उनके मन में नफरत दबी होती है। वह नफरत जो पिटाई, आलोचना और सज़ा की वजह से भड़कती और दबाई जाती रही है।

अमूमन ऐसी नफरत काल्पनिक घटनाओं में उभरती है जिनमें माता-पिता प्रत्यक्ष रूप से जुड़े नहीं होते। अपने पिता को बेहद प्यार करने वाला एक किशोर छात्र, अक्सर कल्पना करता था कि वह एक शेर को गोली दाग रहा है। मैंने कहा कि वह शेर का वर्णन करे। जल्दी ही उसे लगने लगा कि वह शेर दरअसल उसके पिता से जुड़ा हुआ बिम्ब है।

एक सुबह मैंने हरेक बच्चे को एक-एक कर बुलाया और उन्हें अपनी मृत्यु की कहानी सुनाई। हरेक चेहरे पर उस वक्त एक चमक दिखी जब मैंने अपनी शव यात्रा का वर्णन किया। वह पूरा समूह उस दोपहर बेहद खुश नज़र आया। विशाल दैत्यों के मरने की कहानियाँ बच्चों को इसलिए पसन्द आती हैं क्योंकि वह दैत्य अमूमन पिता का बिम्ब होता है।

अपने अभिभावकों के प्रति नफरत को लेकर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसकी शुरुआत हमेशा उस समय से होती है जब बच्चा अहंकारी होता है। छोटा बच्चा प्यार और सत्ता चाहता है। हरेक गुस्सैल शब्द, हरेक चपत, हरेक चोट, प्यार और

सत्ता से वंचित करने के समान है। बच्चे के लिए माँ के हरेक फटकार भरे शब्द का अर्थ है, ''माँ मुझे प्यार नहीं करती है।'' पिता के हरेक ''उसे मत छुओ'' के कड़कदार आदेश का अर्थ है, ''यह मेरे रास्ते में आता है। अगर मैं उनके नाप का होता।''

हाँ अभिभावकों में बच्चों के प्रति नफरत होती है, लेकिन वह उतनी खतरनाक नहीं होती जितनी बच्चों में अपने अभिभावकों के प्रति नफरत। अभिभावकों का दोष ढूँढना, गुस्सा करना, मारना और भाषण पिलाना नफरत की ही प्रतिक्रियाएँ हैं। अतः आपस में प्यार न करने वाले अभिभावकों के बच्चे के स्वस्थ विकास की सम्भावना बहुत ही कम है। क्योंकि बच्चों पर इसे उतारना ऐसे अभिभावकों की आदत में शुमार है।

जब बच्चे को प्यार नहीं मिलता है तो वह इसके विकल्प के बतौर नफरत चुनता है। ''माँ मुझ पर ध्यान नहीं देती है। वह मुझे प्यार नहीं करती है। वह मेरी छोटी बहन से प्यार करती है। मैं उसका ध्यान अपनी ओर खींचकर *ही* रहूँगा। मैं ऐसा ज़रूर करूँगा।'' और वह फर्नीचर को लात जमा देता है। बच्चों के व्यवहार की सभी समस्याएँ दरअसल इसलिए हैं क्योंकि वे प्यार के अभाव के प्रतीक थे। सभी सज़ाएँ और नैतिक उपदेश इस नफरत को बढ़ाते ही हैं। वे कभी भी समस्या का समाधान नहीं करते।

नफरत पैदा करने वाली एक और स्थिति वह है जब बच्चे के अभिभावक उस पर अपना स्वामित्व जताने लगते हैं। वह अपने बंधनों से नफरत करता है और साथ ही उनकी अपेक्षा भी करता है। यह द्वन्द्व कभी-कभी क्रूरता के रूप में उभरता है। स्वामित्व जताने वाली माता की नफरत दब जाती है लेकिन हरेक भावना को बाहर निकलना ही चाहिए इसलिए बच्चा बिल्ली को लात मारता है या अपनी बहन को मारता है। माँ के विरुद्ध जाने की बजाय यह एक आसान विकल्प है।

यह एक नीरस उक्ति बन गया है कि हम दूसरों में उस चीज़ से नफरत करते हैं जिसे हम खुद में नफरत करते हैं। यह प्रभावहीन तर्क हो या न हो पर यह सच है। अपने बचपन में पाई गई नफरत को हम अपने बच्चों को अर्पित कर देते हैं।

यह कहा गया है कि अगर आप नफरत नहीं कर सकते तो आप प्यार भी नहीं कर सकते। शायद। मेरे लिए नफरत करना मुश्किल काम है। और मैं हमेशा बच्चों को वह देने में असमर्थ रहा हूँ जिसे व्यक्तिगत प्यार कहा जा सकता है। और भावुक प्यार तो निश्चित तौर पर कभी भी नहीं। *भावुकता* शब्द को परिभाषित करना मुश्किल काम है। मैं इसे राजहंस के गुणों को बत्तख पर टिकाना कहता हूँ।

जब मैं एक चोर, एक आग लगाने वाले और कत्ल कर सकने वाले व्यक्तित्व रॉबर्ट

का उपचार करता हूँ तो मैं स्वाभाविक रूप से खुद में उसकी उसके पिता के प्रति प्यार और नफरत भी अन्तरण कर लेता हूँ। एक दिन मुझसे बात करने के बाद वह बाहर की ओर भागा और एक घोंघे को उसने अपने जूते से कुचल डाला। उसने मुझे आकर इस घटना के बारे में बताया भी। मैंने उससे घोंघे का वर्णन करने को कहा। उसका जवाब था, ''एक लम्बा, बदसूरत, चिपचिपा कीड़ा।''

मैंने उसे एक कागज़ दिया और उस पर घोंघा लिखने को कहा। उसने लिखा ''एक घोंघा।'' (A Snail)

मैंने कहा, ''देखो जो तुमने लिखा है।''

अचानक वह ज़ोर से हँसा। उसने अपनी पेंसिल

निकाली और उसके नीचे लिखा

A Snail

A.S. Neill

''क्या तुम्हें पता नहीं था कि मैं ही वह लम्बा, बदसूरत, चिपचिपा कीड़ा था जिसे तुम मारना चाहते थे, क्या तुम्हें पता था।'' मैंने मुस्कुरा कर कहा।

अब तक लड़के को मुझसे कतई खतरा न था। मुझे नफरत करने में उसके चेतन का बड़ा हाथ था। लेकिन अगर मैंने ऐसा कुछ कहा होता, ''बेशक मैं ही घोंघा था। पर तुम सचमुच मुझसे नफरत नहीं करते हो। तुम अपने उस हिस्से से नफरत करते हो जिसका मैं द्योतक हूँ। तुम वह चिपचिपे कीड़े हो जिसे मार डाला जाना चाहिए। तुम अपने ही एक गुण को मार डालना चाहते हो आदि..आदि।''

मेरे लिए यह एक खतरनाक मनोविज्ञान होता। रॉबर्ट का काम है कंचे खेलना और पतंग उड़ाना। मुझे या कोई शिक्षक या डॉक्टर को बस इतना ही करना चाहिए कि उसे उन द्वंद्वों से मुक्त कर दे जो पतंग उड़ाने में आड़े आते हैं।

कृतज्ञता की अपेक्षा करने वाले अभिभावक बच्चों की प्रकृति के बारे में कुछ भी नहीं जानते। बच्चे किसी के भी ऋणी नहीं होना चाहते। समरहिल में मुझे उन बच्चों की नाराज़गी का लम्बा अनुभव है जिन्हें मैंने कम फीस में या बिना फीस के रखा है। वे फीस देने वाले बीस बच्चों से ज़्यादा मात्रा में मुझसे नफरत करते हैं। शॉ लिखते हैं, ''हम जिनके लिए त्याग करते हैं उन्हें नफरत किए बगैर हम त्याग नहीं कर सकते हैं।''

यह सच है। इसका उलट भी सच है, ''हम तब तक दूसरों के लिए त्याग नहीं कर सकते जब तक कि हम उन लोगों की नफरत नहीं पा जाते जिनके लिए त्याग किया जा रहा है।'' एक अलमस्त प्रदाता कृतज्ञता नहीं चाह सकता। अपने बच्चों

से कृतज्ञता की अपेक्षा रखने वाले अभिभावकों को निराशा ही हाथ लगती है। अंत में यह कि सभी बच्चों को लगता है कि सज़ा नफरत है और बिलाशक वह है भी। और हर सज़ा बच्चे में नफरत को और और बढ़ाती ही है। अगर आप किसी ऐसे दकियानूस का अध्ययन करते हैं जो कहता है कि मैं पिटाई में विश्वास करता हूँ तो आप हमेशा उसे नफरत से भरा ही पाएँगे। मैं इस पर बहुत ज़ोर नहीं दे सकता कि नफरत से नफरत उपजती है और प्यार से प्यार। किसी भी बच्चे की नफरत का उपचार आज तक प्यार के सिवाय किसी और चीज़ से नहीं हुआ है।

बच्चे को बिगाड़ना

एक बिगड़ा बच्चा - आपने *बिगड़ा* शब्द का उपयोग चाहे जिस भी अर्थ में किया हो - वास्तव में एक बिगड़े समाज का उत्पाद है। ऐसे समाज में वह बच्चा भयातुरता के साथ जीवन से चिपटे रहता है। उसे आज़ादी की जगह स्वेच्छाचार की छूट दी गई है। वह वास्तविक आज़ादी का अर्थ तक नहीं समझ सका जिसका मतलब दरअसल जीवन-*प्रेम* ही होता है।

बिगड़ा बच्चा स्वयं अपने लिए तथा समाज के लिए समस्या होता है। रेलगाड़ियों में वह यात्रियों के पैर कुचलते चलता, गलियारों में चीखता, परेशान माँ-बाप के शान्त रहने के अनुरोध की अवहेलना करता मिलता है। दरअसल माता-पिता के अनुरोधों को वह न जाने कब से सुनना बन्द कर चुका होता है।

बाद के जीवन में, जैसे-जैसे वह बिगड़ा छोकरा बड़ा होता जाता है, उसकी ज़िन्दगी, एक अनुशासन में पले बच्चे की ज़िन्दगी से भी बदतर होती जाती है। बिगड़ा बच्चा बेहद आत्म-केन्द्रित होता है। वह ऐसा व्यक्ति बनता है जो अपने सोने के कमरे में अपने कपड़े बिखेरकर दूसरों से उसे समेटने की उम्मीद करता है। ज़ाहिर है कि अपने वयस्क रूप में वह बिगड़ा बच्चा तमाम बार लताड़ झेल चुका होता है।

अक्सर बिगड़ा बच्चा इकलौता बच्चा होता है। अपने उम्र का कोई साथी न तो उसे साथ खेलने को मिलता है, न खुद की तुलना करने को। स्वाभाविक ही है कि वह इस स्थिति में खुद का तादात्म्य अपने माता-पिता के साथ ही करता है। अर्थात वह ठीक वही सब करना चाहता है, जो उसके माता-पिता करते हैं। और क्योंकि माँ-बाप भी उसे दुनिया का अजूबा मानते हैं वे उसकी अक्ल-प्रौढ़ता को प्रोत्साहित करते हैं। वे उसे हल्के से भी डाँटने से बचते हैं क्योंकि उन्हें डर यह लगता है कि ऐसा करने पर वह कहीं रूठ न जाए।

कभी-कभार उन शिक्षकों में भी मुझे यही दृष्टिकोण दिखता है जो अपने छात्र-छात्राओं को लाड़ करते हैं। ऐसे शिक्षक हमेशा इस भय में जीते हैं कि कहीं बच्चों में उनकी लोकप्रियता खत्म न हो जाए। बिगाड़ने का शाही रास्ता है यही भय। अच्छे शिक्षक और माँ-बाप को अपनी निष्पक्षता पनपानी होगी। बच्चे के साथ अपने रिश्ते में उसे अपनी ग्रन्थियों को आड़े नहीं आने देना होगा। ज़ाहिर है ऐसा कर पाना कठिन है क्योंकि हमें अपनी मनोग्रन्थियाँ नज़र नहीं आती हैं। उदाहरण के लिए एक दुखी माँ के बच्चे के बिगड़ा बनने की पूरी सम्भावना है क्योंकि सम्भवतः वह उस पर गलत तरीके का स्नेह उकेलेगी।

समरहिल में बिगड़ा लड़का हमें हमेशा परेशान करता है। वह मेरी पत्नी को थका देता है, क्योंकि उसके लिए वह एक वैकल्पिक माँ की तरह होती है। वह तमाम सवाल पूछ-पूछकर मेरी पत्नी की जान खाता है: "यह सत्र कब खत्म होगा?", "समय क्या हुआ है?", "मुझे पैसे मिल सकते हैं?" इस सबके तले छुपी होती है माँ के प्रति उसकी घृणा। ये सारे सवाल उसे सताने के मकसद से पूछे गए होते हैं। बिगड़ी लड़की हमेशा मुझे उकसाने की कोशिश करती है क्योंकि मैं उसके पिता के स्थान पर होता हूँ। उसकी कोशिश अमूमन प्रेम प्रतिक्रिया के बदले नफरत भरी प्रतिक्रिया उकसाने की रहती है। नई-नई आई बिगड़ी लड़की मेरा कलम छुपा लेती है या किसी दूसरी लड़की से कहती है, "नील तुम्हें बुला रहा है।" असल में वह चाहती है कि नील *उसे* बुलाए।

ऐसे बिगड़े लड़के-लड़कियों ने मेरे दरवाज़े को ठोकरें मारी हैं। इस कोशिश में मेरी चीज़ें चुराई हैं कि मैं प्रतिक्रिया करूँ। अचानक एक बहुसंख्यक परिवार में खुद को पाकर बिगड़े बच्चों को गुस्सा आता है। वे मुझसे और शेष शिक्षकों से उसी समर्पण की उम्मीद रखते हैं जो उसके प्रेमी माता-पिता से उसे मिला करता था।

बिगड़े बच्चों को अमूमन अधिक जेबखर्च दिया जाता है। जब माँ-बाप बच्चे के लिए एक पाउण्ड का नोट भिजवाते हैं तो मैं मन मसोसता हूँ। खासकर उस स्थिति में, जब मुझे उनकी आर्थिक परेशानियों के कारण बच्चे की फीस कम करनी पड़ी हो या पूरी तरह माफ करनी पड़ी हो।

बच्चे को, जो कुछ वह माँगे वह सब नहीं देना चाहिए। आजकल बच्चों को ज़रूरत से अधिक दिया जाता है। इतना कि वे भेंट की कीमत तक समझना बन्द कर देते हैं। ज़रूरत से ज़्यादा चीज़ें खरीद-खरीदकर देने वाले माँ-बाप अक्सर वे होते हैं जो अपने बच्चे को पूरा प्यार नहीं करते। ऐसे माता-पिता महँगी चीज़ें भेंट कर अपने प्रेम की कमी की आपूर्ति करते हैं। ठीक उसी तरह जैसे बेवफा पति, पत्नी को खुश करने के लिए ऐसा महँगा कोट भेंट करता है, जो उसकी जेब के बाहर हो। मेरा नियम यह है कि मैं अपनी हर लन्दन यात्रा के बाद अपनी बेटी के लिए

कोई भेंट न लाऊँ। नतीजतन वह हर यात्रा के बाद भेंट की उम्मीद भी नहीं रखती। बिगड़े बच्चों के लिए वस्तुओं का कोई मूल्य भी नहीं होता। उसे आप स्पीड वाली चमचमाती साइकिल दें, और तीन सप्ताह बाद वह उस साइकिल को रात भर बरसात में भीगने और जंग खाने छोड़ आता है।

बिगड़ा बच्चा दरअसल माता-पिता के लिए जीवन में दूसरे मौके का प्रतिनिधित्व करता है। *मैं ज़िन्दगी में बहुत कम हासिल कर पाया क्योंकि इतने लोगों ने मेरी राह में रोड़े अटकाए थे। पर मेरे छोटे बेटे को पूरा मौका मिलेगा कि वह वहाँ भी सफल हो सके जहाँ मैं खुद असफल रहा था।* इसी अन्तः प्रेरणा के चलते वह पिता अपने बच्चे पर पियानो बजाना सीखना लादता है जो स्वयं संगीत शिक्षा से वंचित रह गया था। विवाह के बाद अपने कैरियर को तिलांजलि देने वाली माँ अपनी बेटी को बैले नृत्य सीखने भेजती है, चाहे उसकी बेटी के पैरों में थिरकन तक न हो। ऐसे ही माता-पिता असंख्य लड़के-लड़कियों को ऐसी नौकरियाँ या पढ़ाई करने पर बाध्य करते हैं, जिनकी उन बच्चों ने कभी सपने तक में कल्पना नहीं की थी। माता-पिता अपनी भावनाओं के आगे लाचार हैं। कठोर परिश्रम से कपड़ा व्यवसाय जमाने वाले पिता को जब यह पता चलता है कि उसका बेटा अभिनेता या कलाकार बनना चाहता है, तो वह यह बात पचा नहीं पाता। पर अक्सर ऐसा ही होता है।

बिगड़े बच्चे की एक वह श्रेणी भी है, जिसमें माँ बच्चे को बड़ा होने देना तक नहीं चाहती। मातृत्व एक महत्वपूर्ण काम है - पर यह ताउम्र चलने वाली ज़िम्मेदारी नहीं है। अधिकांश माताएँ यह समझती हैं, पर अपनी बेटी के लिए अक्सर यह टिप्पणी भी करती रहती हैं, "वह ज़रूरत से अधिक तेज़ी से बड़ी हो रही है।"

दूसरों के व्यक्तिगत अधिकारों को तोड़ने की छूट बच्चों को कभी नहीं दी जानी चाहिए। जो माता-पिता अपने बच्चों को बिगाड़ना नहीं चाहते उन्हें आज़ादी और स्वेच्छाचार में अन्तर समझ *लेना* होगा।

सत्ता और अधिकार

जब मनोविज्ञान ने अवचेतना के महत्व को उभारा, उसके पहले बालक को एक विवेकशील इन्सान माना जाता था। सोचा जाता था कि बालक में इच्छाशक्ति होती है। उसके सहारे वह अच्छा या बुरा करना स्वयं चुनता है। यह भी माना जाता था कि उसका दिमाग कोरी स्लेट के मानिन्द होता है जिस पर कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक को बस लिखना भर है।

अब हम यह समझने लगे हैं कि बालक में कुछ भी स्थिर या गतिहीन नहीं होता। वह तो गतिशील आवेगों का पुलिन्दा है। वह अपनी इच्छाएँ कार्यों द्वारा व्यक्त करता है। वह वृत्ति से स्वार्थी होता है और हमेशा अपनी शक्ति को जाँचना चाहता है। अगर प्रत्येक वस्तु में सेक्स समाहित है तो सत्ता की चाहना भी हर जगह मौजूद है।

शिशु शायद यह समझ लेता है कि अपने आसपास के वातावरण पर उसकी सत्ता शोर से अभिव्यक्त होती है। उसके वयस्क संगी-साथियों की शोरगुल पर जो प्रतिक्रिया होती है, सम्भव है उससे शोर के महत्व की बढ़ी-चढ़ी छवि उसके मन में जगती हो। या फिर उसे शोर अपने आप में महत्वपूर्ण लगता हो।

बालवाड़ी में अक्सर शोर को दबाया जाता है। पर इसके भी पहले जो दमन होता है उसका सम्बंध बच्चे में स्वच्छता की आदतें डालने की कोशिश से है। हम यह अनुमान ही लगा सकते हैं कि शायद बच्चा मल-मूत्र त्याग की क्रियायों द्वारा स्वयं को ताकतवर समझता है। सम्भव है कि मलत्याग उसके लिए बेहद महत्वपूर्ण हो क्योंकि यह कुछ बनाने का उसका पहला कार्य होता है। मैंने कहा कि हम अनुमान ही लगा सकते हैं क्योंकि साल या दो साल की उम्र में बच्चा क्या महसूस करता है, क्या सोचता है, यह कोई बता ही नहीं सकता। सात-आठ वर्ष के बच्चे अपने मल त्याग में सत्ता का अनुभव करते हैं।

एक सामान्य महिला को शेर से डर लगता है। पर एक मनोरोगी महिला को चूहे से। शेर वास्तविक है पर चूहा उस दबाई गई रुचि का प्रतीक है जिसे पहचानने में वह डरती है। बच्चों की इच्छाएँ भी दमन से मनोग्रन्थियों में बदल सकती हैं। कई बच्चों को रात में डर लगता है। वे भूतों से, चोरों से या झोली वाले बाबा से डरते हैं। अज्ञानी माता-पिता मानते हैं कि आया द्वारा सुनाई गई कहानी इस भय का कारण है। पर आया की कहानी मनोग्रन्थि को केवल एक रूप भर देती है। उसके भय की जड़ है उसकी यौन रुचियों का माता-पिता द्वारा दमन। बच्चा अपनी दबाई गई रुचियों से ही डरता है। ठीक उसी तरह जिस प्रकार चूहे से डरने वाली महिला अपनी दबाई गई रुचि से डरती है।

आवश्यक नहीं कि दमन मूलतः यौन दमन ही हो। जो नाराज़ पिता चीखकर कहता है, "यह शोर बन्द करो।" वह शोर में बच्चे की रुचि को, पिता में भयातुर रुचि में तब्दील कर सकता है। जब बच्चे की इच्छा दबाई जाती है तो वह घृणा करता है। अगर मैं एक तीन साल के बच्चे से उसका खिलौना छीन लूँ तो वह सम्भव हो तो मुझे मार ही डाले।

एक दिन मैं बिली के साथ बैठा था। मैं एक आरामकुर्सी पर पसरा था जिसका कपड़ा काली और नारंगी धरियों का था। मैं बिली का एवज़ी पिता हूँ।

उसने कहा, ''एक कहानी सुनाओ।''

''तुम सुनाओ,'' मैंने कहा।

''ना'' उसका आग्रह था, वह नहीं सुना सकता मुझे ही सुनाना होगा।

''हम साथ-साथ कहानी सुनाते हैं,'' मैंने कहा। ''जब मैं रुकूँ तो तुम कुछ कहना, ठीक है? लो सुनो एक बार एक''

बिली ने मेरी कुर्सी की धारियों पर नज़र डाली और कहा, ''बाघ था।'' मैं समझ गया कि वह धारीदार पशु मैं ही था।

''वह बाघ, इसी स्कूल के बाहर सड़क किनारे रहता था। एक दिन, एक लड़का उस सड़क पर जा रहा था। लड़के का नाम था''

''डॉनल्ड,'' बिली ने कहा। डॉनल्ड उसके दोस्त का नाम है।

''वह बाघ उछला''

''और उसने डॉनल्ड को खा लिया।'' बिली ने तत्परता से जोड़ा।

''इस पर डेरिक ने कहा, 'बाघ मेरे भाई को खा ले, यह मैं होने नहीं दूँगा।' सो उसने अपनी बन्दूक उठाई और सड़क पर बाघ की ओर बढ़ा। बाघ फिर उछला और''

''और उसने उसे खा लिया।'' बिली खुशी से बोला।

''तब नील को बड़ा गुस्सा आया। 'मेरे सारे स्कूल को बाघ खा जाए यह मैं नहीं होने दूँगा।' उसने दो बन्दूकें उठाईं और बाहर निकला। बाघ उछला और''

''और उसे भी खा लिया।''

''इस पर बिली ने कहा यह तो चलेगा नहीं। उसने भी अपनी दो बन्दूकें, अपनी तलवार, छुरा और अपनी मशीनगन ले ली और सड़क पर निकला। बाघ उछला और''

''बिली ने बाघ को मार डाला,'' बिली ने विनम्रता से जोड़ा।

''बहुत खूब।'' मैं चीखा। ''उसने बाघ को मार डाला। वह बाघ को दरवाज़े तक घसीट कर लाया और एक आमसभा बुलाई। बैठक में एक शिक्षक ने कहा, 'नील तो अब बाघ के पेट में है और हमें एक नए हेडमास्टर की ज़रूरत होगी। मेरा प्रस्ताव है कि...'''

बिली ने नज़रें झुका लीं और चुप रहा।

''मेरा प्रस्ताव है कि...''

''तुम्हें पता है कि उसने मेरा नाम लिया था,'' बिली चिढ़कर बोला।

"और यों बिली समरहिल का हेडमास्टर बना," मैंने कहा। "पता है उसने पहला काम क्या किया?"

"वह तुम्हारे कमरे में गया और उसने तुम्हारी खराद और तुम्हारा टाइपराइटर ले लिया," बिली ने बिना झिझक या शर्मिन्दगी के साथ कहा।

बिली की एक और कहानी है। उसने एक दिन मुझसे कहा, "मुझे पता है कि मुझे पिताजी के कुत्ते से भी बड़ा कुत्ता कहाँ से मिल सकता है।" उसके पिता के पास दो विशालकाय कुत्ते हैं।

"कहाँ से?" मैंने जानना चाहा, पर वह सिर हिलाता रहा, और उसने जवाब नहीं दिया।

"तुम उसे क्या नाम दोगे, बिली?"

उसका जवाब था, "होस पाइप।"

मैंने उसे कागज़ थमाया। "ज़रा होस पाइप बनाकर तो दिखाओ।"

उसने एक बड़ा सा लिंग बनाया। मुझे अपने साइकिल में हवा भरने वाले पुराने पम्प की याद आई। मैं उसे लाया और बिली को दिखाया कि वह उसका उपयोग पानी छिड़कने के लिए कैसे कर सकता है।

"लो अब तुम्हारे पास तुम्हारे पिता से बड़ा होस पाइप है।" वह ज़ोर से हँसा। होस पाइप में उसकी रुचि गायब हो गई।

सवाल यह है कि बिली का दृष्टान्त *यौन दृष्टान्त था या सत्ता का*? मुझे लगता है कि उसका मसला सत्ता से जुड़ा था। बाघ को (मुझे) मारने की इच्छा पिता को मारने की इच्छा का ही दोहराव था। इसका यौन से प्रत्यक्ष रूप से कोई लेना-देना नहीं था। अपने पिता के शिश्न से बड़े लिंग की इच्छा भी ताकत की इच्छा थी। बिली की कल्पनाएँ सत्ता सम्बंधी कल्पनाएँ थीं। मैं उसे अपने साथियों से बड़ी गप्पें हाँकते सुनता हूँ कि वह कैसे एक ही बार में कई हवाई जहाज़ उड़ा सकता है। उसकी हर बात में अहम झलकता है।

दबाई गई इच्छा कल्पना को जन्म देती है। हर बच्चा बड़ा बनना चाहता है। उसके परिवेश की एक-एक चीज़ उससे यही कहती है कि वह नन्हा-सा है। बच्चा उस परिवेश पर विजय चाहता है। यह विजय उसे उससे भागने पर मिलती है। वह अपने पंखों के सहारे ऊपर उठता है और कल्पना में अपने सपने जी लेता है। इंजन ड्राइवर बनने की महत्वाकांक्षा भी सत्ता की चाहना से उपजती है। तेज़ गति से दौड़ती एक समूची रेलगाड़ी को नियंत्रित करना, सत्ता का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

बच्चों में *पीटर पैन* नामक पात्र लोकप्रिय है। इसलिए नहीं कि वह छोटा-सा है

बल्कि इसलिए क्योंकि वह उड़ सकता है, डाकुओं से भी लड़ सकता है। और वयस्कों को वह इसलिए पसन्द आता है क्योंकि वे भी बच्चे बनना चाहते हैं, बिना उत्तरदायित्वों के, बिना किसी संघर्ष के। पर कोई लड़का हमेशा के लिए लड़का नहीं बने रहना चाहता है। सत्ता की इच्छा उसमें आगे बढ़ने की, बड़े हो जाने की लालसा पैदा करती है।

बचकाना शोरगुल और जिज्ञासा का दमन बच्चों के सहज सत्ता प्रेम को विकृत कर देता है। जिन बच्चों को बालअपराधी कहा जाता है, जिन पर यह आरोप लगाया जाता है कि उन पर फिल्मों का दुष्प्रभाव है, वे दरअसल उसी सत्ता को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं जिसे दबाया या कुचला गया है। मैंने पाया है कि असामाजिक घोषित किया गया लड़का जो खिड़कियाँ तोड़ने वाले हुजूम का नेता हो, आज़ादी के वातावरण में अमूमन कानून और व्यवस्था का पोषक बन जाता है।

एन्सी अपने स्कूल में नियम तोड़ने वालों की नेत्री थी। उसका स्कूल उसे रख नहीं पाया। समरहिल आने की दो रातों के बाद वह मुझसे खेल-खेल में लड़ने लगी। कुछ देर बाद वह लड़ाई खेल-खेल की नहीं रही। लगभग तीन घण्टों तक उसने मुझे लातें जमाई, काटा और लगातार कहती रही कि वह मुझे गुस्सा दिलाकर ही दम लेगी। मैंने भी ठान लिया था कि मैं नाराज़ नहीं होऊँगा, मैं मुस्कुराता रहा। ज़ाहिर है मुझे शान्त रहने में काफी ज़ोर लगाना पड़ा। अन्ततः मेरे एक शिक्षक ने मधुर संगीत बजाया। एन्सी शान्त हुई। एक ओर एन्सी के हमले का सम्बंध यौन से था, परन्तु उसका एक सत्ता पक्ष भी था। मैं उसकी नज़र में कानून और व्यवस्था का प्रतीक भी था। मैं हैडमास्टर जो था।

एन्सी को अपनी ज़िन्दगी अस्तव्यस्त लगने लगी। उसने पाया कि समरहिल में तोड़े जाने के लिए नियम-कानून हैं ही नहीं। बिन पानी की मछली-सा हाल हो गया उसका। उसने दूसरे छात्र-छात्राओं में गड़बड़ी फैलाने की कोशिश की, पर बिल्कुल छोटे बच्चों के अलावा उसकी दाल नहीं गली। व्यवस्था के विरुद्ध टोली के नेतृत्व में सत्ता नियंत्रण के जिस अहसास की उसे आदत थी उसे वह फिर से तलाशना चाहती थी। वास्तव में तो वह कानून और व्यवस्था से ही प्यार करती थी। पर वयस्कों द्वारा बनाई गई कानून व्यवस्था में उसे अपनी सत्ता अभिव्यक्त करने का कोई अवसर नहीं मिल पा रहा था। ऐसे में उसने दूसरा रास्ता चुना, वह रास्ता था कानून व्यवस्था के प्रति विद्रोह का।

उसके आने के सप्ताह भर बाद स्कूल की आमसभा हुई। एन्सी खड़ी हुई उसने हर चीज़ का मखौल उड़ाया। ''मैं कानून के लिए मत तो दूँगी, पर सिर्फ इसलिए क्योंकि उन्हें तोड़ने में मज़ा आएगा।''

हमारी गृहमाता खड़ी हुईं। उन्होंने कहा, ''एन्सी ने साफ कर दिया है कि उसे ऐसे

नियम नहीं चाहिए जिनका सब लोग पालन करते हों, सो मेरा प्रस्ताव है कि अब कोई नियम ही न हों, सिर्फ अव्यवस्था हो।''

एन्सी ने ज़ोर से कहा, ''हुर्रा!'' और छात्रों को कमरे से बाहर ले गई। यह वह आसानी से कर सकी क्योंकि वे सब छोटे बच्चे थे और उस उम्र में नहीं पहुँचे थे कि उनका सामाजिक विवेक विकसित हो चुका हो। वह बच्चों को कार्यशाला में ले गई, सबने आरियाँ उठाईं। उन्होंने घोषणा की, कि वे सारे फलों के पेड़ काट डालेंगे। मैं हमेशा की तरह बाग में खुदाई करने चल दिया।

दस मिनट बाद एन्सी मेरे पास आई, ''अव्यवस्था रोकने और फिर से नियम कानून लाने के लिए क्या करना होगा?'' उसने नरमी से जानना चाहा।

''मैं तुम्हें कोई सुझाव नहीं दे सकता,'' मेरा जवाब था।

''क्या एक और आम सभा नहीं बुलाई जा सकती?'' उसने पूछा।

''ज़रूर बुलाई जा सकती है, पर मैं उसमें नहीं आऊँगा। हमने तय किया है कि हमें अव्यवस्था चाहिए।'' वह लौट गई और मैं खुदाई करता रहा।

कुछ देर बाद वह वापस लौटी। ''हमने बच्चों की बैठक कर ली है,'' वह बोली, ''हमने तय किया है कि पूरे स्कूल की बैठक हो। तुम आओगे?''

''पूरे स्कूल की बैठक?'' मैंने पूछा। ''हाँ, मैं आऊँगा।''

बैठक में एन्सी गम्भीर थी। हमने शान्ति से अपने नियम पारित किए। अव्यवस्था के दौरान हुआ कुल नुकसान था - एक लकड़ी के खम्भे को दो में काट दिया गया था।

एन्सी ने सालों तक सत्ता के विरुद्ध अपने स्कूल की टोली का नेतृत्व करने का मज़ा उठाया था। विद्रोह भड़काने का काम उसे वास्तव में पसन्द नहीं था। उसे अव्यवस्था से घृणा थी। वह अपने बाहरी जामे के तले एक नियम-कानून का पालन करने वाली नागरिक थी। पर उसमें सत्ता की तीव्र इच्छा भी थी। शिक्षकों से विद्रोह कर वह स्वयं को उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करना चाहती थी। उसे कानून इसलिए नापसन्द थे क्योंकि वह उस सत्ता से नफरत करती थी जो नियम बनाते हैं। उसका तादात्म्य दण्ड देने वाली अपनी माँ के साथ था। दूसरों के प्रति उसका दृष्टिकोण परपीड़ादाई था। हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं कि सत्ता के प्रति घृणा वास्तव में अपनी माँ की सत्ता के प्रति नफरत का प्रतीक था। मुझे ऐसे रोगियों का इलाज यौन दृष्टान्तों से भी कठिन लगता है। जिन घटनाओं ने बच्चे में यौन को लेकर अपराध-बोध जगाया हो, उन तक पहुँचना आसान है। पर उन हज़ारों घटनाओं और उपदेशों को जानना बड़ा कठिन है जो बच्चे को परपीड़ादाई सत्तालोलुप व्यक्ति में बदल देते हैं।

मुझे अपनी एक असफलता याद आती है। जब मैं जर्मनी में पढ़ाता था तो मेरे पास एक तेरह वर्षीय स्लाविक लड़की मारोस्लावा को भेजा गया। वह अपने पिता से बेहद नफरत करती थी। छह महीनों के लिए उसने मेरी स्कूली ज़िन्दगी नारकीय बना डाली। वह स्कूल की बैठकों में मुझ पर आरोप लगाती। एक बार उसने यह प्रस्ताव रखा कि मुझे स्कूल से निकाल दिया जाए क्योंकि मैं बिल्कुल निकम्मा इन्सान था। तीन दिन मैं छुट्टी पर रहा। पुस्तक लिखने का काम शुरू कर उसका आनन्द लेने लगा। पर दुर्भाग्य से एक और स्कूली बैठक हुई जिसमें निर्णय यह लिया गया (ज़ाहिर है कि एक मत विरोध का भी था) कि मुझे वापस बुलाया जाए। मारोस्लावा हमेशा कहती थी, "मुझे स्कूल में बॉस नहीं चाहिए।" वह सत्तालोलुप थी, उसका अहम् भी बहुत भारी-भरकम था। जब वह जाने लगी (मुझे उसकी माँ से कहना पड़ा कि मैं उसका इलाज नहीं कर पाया) तो मैंने उससे हाथ मिलाया।

"मैं तुम्हारी खास मदद नहीं कर पाया, है न?" मैंने प्रेम से कहा।

"पता है क्यों?" उसने रूखी मुस्कान के साथ पूछा। "मैं बताती हूँ। मैं पहले दिन जब तुम्हारे स्कूल में आई, मैंने एक डिब्बा बनाया और तुमने कहा, मैं बहुत ज़्यादा कीलों का इस्तेमाल कर रही हूँ। उसी पल मुझे पता चल गया कि तुम भी दुनिया के दूसरे मास्टरों की तरह ही हो। एक बॉस हो। उस पल के बाद तुम मेरी मदद कर ही नहीं सकते थे।"

"तुम ठीक कह रही हो," मैंने कहा, "नमस्ते।"

यह सम्भावना कहीं ज़्यादा है कि घृणा दबाए गए प्रेम के बदले, दबाई गई सत्ता हो। मारोस्लावा से जो घृणा का प्रस्फुटन होता था, वह ऐसा था जिसे महसूस किया जा सकता हो। सत्ता की भूख केवल पुरुषों की नहीं, महिलाओं की भी चारित्रिक विशेषता हो सकती है। आमतौर पर स्त्रियाँ अपनी सत्ता लोगों पर जमाना चाहती हैं, और पुरुष भौतिक वस्तुओं पर। मारोस्लावा और एन्सी निश्चित रूप से लोगों पर अपनी सत्ता जमाना चाहती थीं।

आठ वर्ष से कम उम्र का कोई बच्चा स्वार्थी नहीं होता, वह केवल अहंवादी होता है। जब किसी छह साल के बच्चे का पिता उसे निस्वार्थी बनने की शिक्षा देता है, स्वार्थी बनने पर पीटता है तो उसका विवेक शुरू में वस्तुपरक होता है। *जब पिता देख रहा हो तो मुझे अपनी मीठी गोलियाँ बाँटकर खानी चाहिए*। पर साथ ही तादात्म्य की एक प्रक्रिया भी शुरू हो जाती है। वह पिता जितना ही बड़ा बनना चाहता है, वह सत्ता पाना चाहता है। उसे माँ का उतना ही ध्यान चाहिए जितना पिता को मिलता है। उसका तादात्म्य पिता के साथ हो जाता है। इस प्रक्रिया में वह अपने पिता का दर्शन भी अपना लेता है। वह एक छोटा अनुदारवादी या छोटा उदारवादी बनता है। मानो उसकी आत्मा में उसका पिता ही जुड़ गया हो। चेतना,

जो अब तक पिता की बाहरी आवाज़ थी, अब उसके अन्तर में बसी पिता की आवाज़ में तब्दील हो जाती है। इसी प्रक्रिया से लोग कट्टर बैप्टिस्ट, या कैल्विनिस्ट या कम्यूनिस्ट बनते हैं।

जो लड़कियाँ अपनी माँ से पिटती हैं, वे स्वयं भी पीटने वाली बनती हैं। इसका अच्छा उदाहरण है स्कूल-स्कूल का खेल। उसमें जो शिक्षक बनता है वह हमेशा सबकी धुलाई करता है।

बड़े होने की बच्चों की इच्छा दरअसल सत्ता की कामना है। वयस्कों का आकार तब बच्चों में हीन भावना पैदा करता है। बड़े देर रात तक क्यों जग सकते हैं? उन्हीं के पास सबसे अच्छा टाइपराइटर, गाड़ी, औज़ार और घड़ियाँ क्यों होती हैं?

जब मैं हजामत करता हूँ तो मेरे छात्र अपने चेहरे पर साबुन लगाते हैं। उन्हें इसमें मज़ा आता है। धूम्रपान की इच्छा भी मुख्यतः बड़े होने की इच्छा ही है। अक्सर इकलौते बच्चों को सबसे ज़्यादा बाधाओं को झेलना पड़ता है। यही कारण है कि स्कूल में उसे सम्भालना भी सबसे कठिन होता है।

एक बार मैंने एक गलती की और एक लड़के को दूसरे छात्रों के आने से दस दिन पहले स्कूल ले आया। वह शिक्षकों के कमरे में बैठकर, अकेले सोने के लिए एक कमरा पाकर बड़ा खुश था। पर जब दूसरे बच्चे आ गए तो वह असामाजिक बन गया। अकेला था तो उसने कई चीज़ों की मरम्मत करने में मदद की थी, पर दूसरे बच्चों के आने पर वह तोड़फोड़ करने लगा। उसका गर्व आहत हुआ। अचानक वह वयस्क नहीं रहा। उसे चार दूसरे लड़कों के साथ एक बड़े कमरे में सोना पड़ा, उसे जल्दी सोने जाना पड़ा। उसके हिंसक विरोध ने मुझे यह निर्णय लेने पर मजबूर किया कि मैं बच्चे को कभी ऐसा मौका नहीं दूँ कि वह स्वयं का तादात्म्य वयस्कों के साथ कर ले।

जब सत्ता की इच्छा *बाधित* होती है तो वह बुराई का ही साथ देती है। मानव अच्छे होते हैं, वे भला करना चाहते हैं, वे प्रेम करना और पाना चाहते हैं। नफरत और विद्रोह वास्तव में बाधित प्रेम और बाधित सत्ता ही हैं।

ईर्ष्या/जलन

स्वामित्व की भावना से जलन पैदा होती है। अगर शारीरिक प्रेम व्यक्ति को अपने 'स्व' से परे ले जाता तो वह पुरुष अपनी प्रेमिका को किसी दूसरे पुरुष को चूमते पा, उसे खुश देखकर, खुद भी उसकी खुशी से प्रसन्न होता। पर शारीरिक या

यौनिक प्रेम के साथ स्वामित्व की भावना जुड़ी होती है। जिस व्यक्ति में स्वामित्व की भावना प्रबल हो वह जलन के कारण अपराध करता है।

ट्रोब्रिएण्ड द्वीप के निवासियों में यौनिक जलन की नामौजूदगी सुझाती है कि जलन हमारी अधिक जटिल सभ्यता का फल है। डाह या जलन अपनी प्यारी वस्तु या व्यक्ति के प्रति प्रेम तथा स्वामित्व के मिलेजुले भाव से उत्पन्न होता है। अक्सर कहा जाता है कि ईर्ष्यालु पुरुष उस व्यक्ति को गोली नहीं मारता जो उसकी पत्नी को भगा ले गया हो, बल्कि अपनी पत्नी की ही हत्या करता है। शायद इसलिए ताकि वह उस औरत को ही, जो उसकी संपत्ति है, उसके स्पर्श से दूर कर दे। यह बात कुछ वैसी है जैसे एक मादा खरगोश अपने उस शिशु को स्वयं खा जाती है जिसे लोग बहुत अधिक छूते हैं। एक शिशु का अहम् भी ऐसा ही होता है, उसे या तो सब कुछ चाहिए होता है या फिर कुछ भी नहीं। उसे बाँटना नहीं आता।

जलन का रिश्ता यौन से कम और सत्ता से अधिक है। जलन एक आहत अहम् की प्रतिक्रिया है। "मैं उसकी नज़र में सर्वप्रथम नहीं हूँ। मैं सबसे प्यारा नहीं हूँ। मेरा स्थान गौण है।" डाह का यही मनोविज्ञान हमें, व्यावसायिक गायकों या विदूषकों से मिलता है। मैं जब छात्र था तो मैं विदूषकों से सिर्फ इतना भर कहकर दोस्ती गाँठ लेता था कि वह दूसरा विदूषक बिल्कुल बेकार है।

जलन में हमेशा ही खोने के भय का पुट होता है। एक ऑपेरा गायिका, दूसरी प्रधान गायिका से नफरत करती है, क्योंकि उसे भय है कि उसकी वाहवाही में कमी आ जाएगी। तुलना से हम पाएँगे कि प्रतिष्ठा में कमी के भय से दुनिया में जितनी जलन पैदा होती है वह प्रेम में प्रतिद्वन्द्व से उत्पन्न जलन से कहीं अधिक है।

अतः परिवारों में बड़े बच्चे की नज़र में उसकी निजी कदर कितनी है, इसी भाव पर सब कुछ निर्भर करता है। अगर आत्म संचालन ने उसे इतना स्वतंत्र बना दिया है कि उसे हर पल माता-पिता के अनुमोदन की ज़रूरत न हो तो वह अपने नवजात भाई या बहन से उतना नहीं जलेगा जितना वह बच्चा जो स्वतंत्र न हो, जो अपनी माँ के पल्लू से बँधा हो और कभी भी पूरी तरह आत्मनिर्भर न बना हो। इसका मतलब यह नहीं है कि एक से अधिक बच्चों के माँ-बाप तटस्थ हो सिर्फ यही देखें कि बड़े बच्चे की छोटे बच्चे के लिए क्या प्रतिक्रिया है। हमें शुरू से ही ऐसे काम से बचना होगा जो जलन की भावना को उकसाए। उदाहरण के लिए घर आए मेहमानों के सामने अपने छोटे बच्चे का प्रदर्शन। हर उम्र के बच्चे में न्याय का भाव होता है - या कहें अन्याय का भाव होता है। समझदार माता-पिता हमेशा यह सुनिश्चित करने की कोशिश करते हैं कि छोटा बच्चा अधिक लाडला न बन जाए। उसे बड़े बच्चे से ज़्यादा तरजीह न दी जाए, यद्यपि ऐसा कर पाना हमेशा सम्भव नहीं होता।

बड़े भाई को यह भी अन्याय लग सकता है कि माँ छोटे भाई या बहन को स्तनपान कराती है। पर अगर बड़ा बच्चा स्तनपान का चरण स्वाभाविक रूप से पार कर चुका है तो शायद उसे जलन न हो। पर इस विषय पर हमें अधिक प्रमाणों की आवश्यकता है। एक आत्म संचालित बच्चे की नवागंतुक शिशु को लेकर क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका मेरा निजी अनुभव नहीं है। जलन मानव स्वभाव की एक स्थाई वृत्ति है या नहीं, यह मैं नहीं जानता।

बच्चों के साथ के अपने लम्बे अनुभव में मैंने पाया है कि कई लोग बड़े हो जाने पर भी ऐसी किसी घटना की स्मृति नाराज़गी के साथ संजोए रखते हैं जिसमें उन्हें बचपन में अपने साथ हुआ अन्याय याद आता है। इसमें खासकर वे घटनाएँ होती है जिसमें छोटे द्वारा किए गए काम की सज़ा बड़े को झेलनी पड़ी हो। "दोष मुझ पर ही थोपा जाता है" यह गुहार कई बड़े भाई या बहन की होती है। जिस भी झगड़े में छोटा रो दे, तो व्यस्त माँ की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है - बड़े को डपटना।

जिम की आदत थी कि जो मिले उसे चूमना। उसका चूमना भी, चूमना कम और चूसना अधिक होता था। मैंने निष्कर्ष निकाला कि जिम स्तनपान में अपनी शिशु रुचि से उबर नहीं पाया है। मैं जाकर उसके लिए दूध पीने की एक बोतल खरीद लाया। हर रात सोते समय जिम इस बोतल से दूध पीता। दूसरे लड़के जो शुरू में उस पर ज़ोर-ज़ोर से हँसते थे और यों बोतल में अपनी रुचि को छिपाते थे जल्दी ही जिम से जलने लगे। उनमें से दो ने बोतल की माँग की। जिम अचानक उस छोटे भाई की तरह हो गया जिसका माँ के स्तन पर एकाधिकार था। मैंने सबको बोतलें ला कर दीं। इस तथ्य ने कि दूसरों ने भी बोतलें माँगी, यह सिद्ध कर दिया कि इन लड़कों की स्तनपान में रुचि बरकरार थी।

भोजनकक्ष में जलन के प्रति खास सावधानी बरतनी पड़ती है। अगर मेहमानों के आतिथ्य में उन्हें कुछ खास व्यंजन परोसे जाएँ तो बच्चे तो क्या शेष कार्यकर्त्ता भी ईर्ष्यालु बन उठते हैं। अगर रसोइया किसी वरिष्ठ छात्रा को एस्पैरेगस जैसी कोई खास चीज़ थमा दे, तो पक्षपात के चर्चे होते हैं।

कुछ वर्षों पहले स्कूल में एक नये औज़ार बक्से (टूलकिट) के आगमन ने खासी परेशानी खड़ी कर दी। जिन बच्चों के पिता उन्हें बढ़िया और कीमती औज़ार नहीं दिलवा सकते थे, वे सब बेहद जलते और अगले तीनेक सप्ताह तक उनका व्यवहार असामाजिक बन गया। एक लड़का जो औज़ारों के उपयोग को बखूबी समझता था, उसने एक रन्दा उधार लिया। उसने उसकी धारक्षर पत्ती को हथौड़े से ठोक-पीटकर निकाल डाला और रन्दे को बर्बाद कर दिया। उसने मुझे बताया कि लोहा निकाला कैसे जाता है, यह वह भूल ही गया था। यह ध्वंसात्मक क्रिया चाहे सचेत

क्रिया रही हो या अवचेतन, थी यह जलन का परिणाम।

सम्भव है कि हर बच्चे के लिए उसका अपना कमरा हम उपलब्ध न करवा सकें, फिर भी उसका अपना कोना ज़रूर होना चाहिए, जहाँ वह अपने मन की कर सके। समरहिल की कक्षाओं में हर बच्चे की अपनी टेबल होती है, और अपनी एक जगह भी और वे अपने कोने को खूब मज़े से सजाते हैं।

हमारे यहाँ कई बार निजी सत्र भी जलन का कारण बनते हैं।"मेरी को निजी सत्र मिल रहे हैं, मुझे क्यों नहीं?" यदाकदा ऐसा भी हुआ है कि कोई लड़की जानबूझकर समस्यात्मक बच्चे-सा आचरण करे, महज़ इसलिए कि उसका नाम भी निजी सत्र वाले बच्चों की सूची में शामिल कर लिया जाए। एक बार एक लड़की ने कुछ खिड़कियों के शीशे तोड़े। जब उससे पूछा गया तो उसने कहा, "मैं चाहती हूँ कि नील मुझे निजी सत्र दे।" ऐसा व्यवहार करने वाली लड़की अमूमन वह होती है जिसे लगता है कि उसके पिता ने उस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है।

क्योंकि बच्चे अपनी घरेलू समस्याएँ और जलन अपने साथ स्कूल में लेकर आते हैं, मुझे अपने काम में सबसे अधिक भय उन पत्रों से लगता है जो माता-पिता अपने बच्चों को लिखते हैं। मुझे एक बार एक पिता को साफ-साफ लिखना पड़ा कि, "कृपया अपने पुत्र को पत्र न लिखें। जब-जब वह आपका पत्र पाता है, उसका व्यवहार बिगड़ जाता है।" पिता ने मुझे तो कोई उत्तर नहीं भेजा पर अपने बेटे को पत्र लिखना बन्द कर दिया। करीब दो महीने बाद मैंने पाया कि उस लड़के के पास उसके पिता का पत्र आया है। मुझे नाराज़गी तो हुई पर मैं चुप रहा। उस रात करीब बारह बजे लड़कों के कमरे से चीखें सुनाई दीं। मैं उसके कमरे में भागता हुआ पहुँचा। मैं वक्त पर पहुँच गया इस कारण मैं हमारी बिलौटी को बचा सका जिसका गला घोंटने पर वह लड़का आमादा था। अगले दिन मैं उसके कमरे में वह पत्र ढूँढने गया। मुझे पत्र मिल गया। उसमें एक वाक्य था "पिछले सोमवार को टॉम (लड़के का छोटा भाई) का जन्मदिन था। लिज़ी मौसी ने उसे एक बिल्ली का बच्चा भेंट दिया।" जो कल्पनाएँ जलन से उपजती हैं वे अपराध की सीमाएँ नहीं मानतीं। ईर्ष्यालु बच्चा अपनी कल्पना में अपने प्रतिद्वन्द्वी की हत्या तक कर डालता है। दो भाई छुट्टियों के बाद समरहिल से घर जा रहे थे। बड़ा भाई बड़ा भयभीत हो गया, "मुझे डर है कि फ्रेड रास्ते में खो जाएगा," वह दोहराता रहा। दरअसल उसे डर यह था कि कहीं उसका दिवास्वप्न साकार न हो जाए।

"ना," उस ग्यारह वर्षीय लड़के ने अपने भाई के बारे में कहा, "ना, मैं ठीक यह नहीं चाहता कि वह मर जाए, पर अगर वह एक लम्बी यात्रा पर भारत या ऐसी किसी जगह चला जाए, और तब लौटे जब वह बड़ा हो चुका हो, तो यह मुझे अच्छा ही लगेगा।"

समरहिल में आने वाले हर नए छात्र या छात्रा को करीब-करीब तीन महीने तक दूसरे छात्र-छात्राओं की अवचेतन घृणा झेलनी पड़ती है। क्योंकि किसी भी परिवार में नवागंतुक के प्रति बच्चों की पहली प्रतिक्रिया घृणा की ही होती है। बड़ा बच्चा अमूमन यह मानता है कि माँ की आँखें अब बस उस नए बच्चे को ही देखती हैं, क्योंकि वही माँ से चिपट कर सोता है, माँ का सारा ध्यान वही पाता है। अपनी माँ के प्रति दबी नफरत की पूर्ति कई बार उसके प्रति अत्यधिक स्नेह से भी होती है। परिवार में अमूमन बड़ा बच्चा सबसे अधिक नफरत करता है। छोटे बच्चे को घर का इकलौता राजा होने का अनुभव ही नहीं होता। विचार करूँ तो लगता यह है कि मैंने जितने मनोविकार वाले बच्चे देखे हैं, उनमें सबसे खराब हाल या तो इकलौते बच्चों के थे या परिवार के सबसे बड़े बेटे या बेटी के।

बड़े बच्चे के मन में उपजी नफरत को माता-पिता अनजाने ही और उकसाते हैं। "भई टॉम, तुम्हारा छोटा भाई ऊँगली पर लगी ऐसी छोटी-सी चोट पर इतना बखेड़ा कभी न करता।"

मुझे याद आता है कि जब मैं छोटा-सा था, उस वक्त एक लड़के का उदाहरण हमेशा मुझे दिया जाता था। वह उम्दा छात्र था, हमेशा कक्षा में अव्वल रहता था, दौड़ के सारे इनाम उसके नाम होते थे। उसकी मृत्यु हो गई। उसका अन्तिम संस्कार मुझे एक मधुर घटना के रूप में याद है।

शिक्षकों को अक्सर माता-पिता की जलन का सामना करना पड़ता है। समरहिल और मेरे प्रति स्नेह के कारण माता-पिता में उपजी ईर्ष्या के चलते मुझे एकाधिक बार अपने छात्र-छात्राओं से हाथ धोना पड़ा है। यह बात समझी जा सकती है। एक मुक्त शाला में बच्चे को वह सब करने की छूट मिलती है जो वह चाहता है, तब तक, जब तक वह छात्र-छात्राओं तथा शिक्षकों से बनी आम सभा द्वारा तय किए गए नियमों को न तोड़े। कई बार तो बच्चे छुट्टियों तक में घर नहीं जाना चाहते। जो माता-पिता स्कूल या शिक्षकों से डाह नहीं करते वे अमूमन ऐसे माता-पिता होते हैं जिनका घर में बच्चों से व्यवहार समरहिल में किए जाने वाले व्यवहार के समान होता है। वे अपने बच्चों में भरोसा करते हैं और उन्हें उनके सहज रूप में बने रहने की आज़ादी भी देते हैं। ऐसे बच्चे घर जाने के प्रति उत्साहित रहते हैं।

माता-पिता तथा शिक्षकों के बीच स्पर्धा की आवश्यकता है ही नहीं। अगर अभिभावक बच्चे के सहज प्रेम को निरंकुश आज्ञाओं और नियमों द्वारा नफरत में बदलते हैं, तो उन्हें यह पता ही होना चाहिए कि बच्चा स्नेह की तलाश किसी दूसरे ठौर पर करेगा। एक शिक्षक या शिक्षिका महज़ एवज़ी पिता या माता होते हैं। माता-पिता के प्रति स्वाभाविक प्रेम जब बाधित होता है तब वही शिक्षकों पर

उड़ेला जाता है। इसलिए क्योंकि उस शिक्षक को प्यार करना, पिता को प्यार करने से अधिक आसान है।

मैं ऐसे पिताओं की गिनती तक नहीं कर सकता जो ईर्ष्यावश अपने पुत्रों से नफरत करते हैं। ये पीटर पैन नुमा पिता थे जो अपनी पत्नियों से माँ का सा प्रेम चाहते थे, और अपने नन्हे प्रतिद्वन्द्वी 'यानी अपने पुत्र' से नफरत करने लगे थे और उनकी निष्ठुर पिटाई करते थे। श्रीमान पिता महोदय, आपको पारिवारिक त्रिकोण में अपनी स्थिति काफी पेचीदा लगेगी। आपके शिशु के आगमन के बाद, आप कुछ अर्थों में स्वयं को कटा हुआ पाएँगे। कई महिलाएँ प्रसव के बाद यौन-जीवन में अपनी रुचि खो देती हैं। ऐसा न भी हो तो भी आपके परिवार का चरित्र बदलेगा, आपको मिलने वाला प्यार भी अब बँटेगा। जो हो रहा है उसके प्रति आपको सचेत होना होगा, अन्यथा आप अपने ही शिशु से जलने लगेंगे। समरहिल में दर्ज़नों बच्चे ऐसे रहे हैं जिन्होंने माँ या पिता की जलन झेली है। इनमें अधिकतर दृष्टान्त पिता की ईर्ष्या के थे जिसमें पिता अपने ही पुत्र के प्रति कठोर और हिंसक बन गए थे। अगर पिता माँ का प्यार पाने के लिए अपने बच्चों से स्पर्धा करने लगे तो बच्चे कमोबेश मनोरोगी ही बनते हैं।

मैंने ऐसी माताओं को भी देखा है जो अपनी बेटियों की उस ताज़गी और सौंदर्य से नफरत करने लगती हैं, जिसे वे स्वयं खो चुकी हैं। अमूमन यह वे माताएँ होती हैं, जिन्होंने ज़िन्दगी भर कोई दूसरा काम नहीं किया होता है, जो भूतकाल में जीती हैं और सालों पहले अपनी जवानी के दिनों में जीते गए दिलों के दिवास्वप्न देखा करती हैं।

मैं पहले युवाओं को प्रेम में पड़ते हुए देख खीजने लगता था। इस भावना का विश्लेषण मैं कुछ यूँ करता था कि मेरी खीज इस आशंका के कारण है कि कहीं कोई गड़बड़ न हो जाए। पर तब मुझे अहसास हुआ कि सच्चाई कुछ और है। मुझमें युवाओं के प्रति स्वामित्व का भाव था। इस अहसास ने मेरी खीज और भय को धो दिया।

युवा वर्ग के प्रति ईर्ष्या एक वास्तविक सत्य है। एक सत्रह वर्षीया लड़की ने मुझे बताया था कि जिस निजी आवासीय शाला में वह पहले पढ़ती थी, वहाँ उसकी शिक्षिका वक्ष को शर्मनाक मानती थी। वह तंग अंतर्वस्त्रों द्वारा उन्हें छिपाने को कहा करती थी। यह दृष्टान्त एक चरम दृष्टान्त था, पर यह उसी सच्चाई को बयान करता है जिसे हम सब भूलने की कोशिश करते हैं। वह सच्चाई है कि हताश और दमित प्रौढ़ावस्था, युवाओं से नफरत करती है। इसलिए क्योंकि प्रौढ़ावस्था युवाओं से ईर्ष्या करती है।

तलाक

आखिर वह क्या है जो बच्चों को मनोरोगी बना डालता है? कई उदाहरणों में साफ नज़र आता है कि जब माता-पिता एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, तो बच्चे पर विपरीत असर पड़ता है। एक मनोरोगी बच्चा प्यार का भूखा होता है। उसके घर में प्यार नहीं होता। वह माँ-बाप को हमेशा एक-दूसरे पर गुर्राते सुनता है। सम्भव है कि माँ-बाप अपने मन-मुटाव को बच्चे से दूर रखने की कोशिश भी करते हों। पर घर के वातावरण में उनके बीच का तनाव हमेशा तैरता है, जिसका बच्चे को पूरा अहसास होता है। वह जो सुनता है, उससे कहीं ज़्यादा वह हाव-भाव से समझता है। *प्यारी गुड़िया, आँख के तारे* जैसे प्यार के सम्बोधनों से किसी बच्चे को आप बहका नहीं सकते।

तमाम उदाहरणों के अलावा मेरे पास ऐसे भी बच्चे आए हैं:

एक पन्द्रह साल की लड़की जिसे चोरी की आदत थी। उसकी माँ, पिता के प्रति वफादार नहीं थी और बच्ची यह बात जानती थी।

एक चौदह वर्षीय लड़की, दुखी और खोई-खोई रहने वाली बच्ची। उसका रोग उस दिन से शुरू हुआ जब उसने अपने पिता को उनकी प्रमिका के साथ देखा।

एक बारह वर्षीय लड़की जो सबसे नफरत करती थी। उसके पिता नपुंसक थे और माँ बदमिज़ाज।

एक आठ वर्षीय लड़का जो चोर था। उसके माता-पिता खुल्लम-खुल्ला लड़ते थे।

नौ साल का लड़का जो काल्पनिक दुनिया में रहता था। उसके माता-पिता एक-दूसरे के प्रति अपनी नाराज़गी को छुपाए रखने की कोशिश करते रहते थे।

चौदह वर्षीय लड़की, जो बिस्तर गीला करती थी। उसकी माँ और पिता अलग-अलग रहते थे।

नौ वर्षीय लड़का जिसे घर में बदमिज़ाजी के कारण सम्भालना असम्भव था, कल्पना में खुद को महान समझता था। उसकी माँ अपने विवाह से बड़ी दुखी थी।

मुझे अहसास हुआ कि किसी बच्चे को उसके मनोरोग से छुटकारा दिलाना उस वक्त कितना कठिन है, जब उसके घर का वातावरण प्रेमविहीन हो। जब कोई माँ मुझसे पूछती है कि "मैं अपने बेटे/बेटी का क्या करूँ?" तो मेरा जवाब होता है, "आप स्वयं मनोविश्लेषक के पास जाएँ।"

कई बार दम्पत्ति मुझसे आकर यह कहते हैं कि अगर बच्चा न होता तो वे जुदा हो जाते। यह सच है कि एक-दूसरे से असन्तुष्ट माता-पिता *अगर* जुदा हो जाएँ तो अक्सर बेहतर रहता है। स्थितियाँ हज़ार गुना अधिक बेहतर होतीं। अगर विवाह सम्बंध में प्यार न हो तो घर-परिवार दुखी ही होता है। दुख और तनाव से भरा वातावरण बच्चे की आत्मा को मार डालता है।

दुखी वैवाहिक जीवन बिता रही माता का बच्चा अक्सर उसके प्रति घृणा दर्शाता है। वह अपनी माँ को खूब तकलीफ देता है, और इसी में उसे मज़ा आता है। ऐसा ही एक लड़का अपनी माँ को काटता और नोचता था। सताने के दूसरे कम तकलीफदेह तरीके होते हैं माँ का ध्यान हमेशा अपनी ओर आकर्षित करना। एडिपस सिद्धांत के अनुसार मामला वास्तव में उलटा होना चाहिए। छोटा बच्चा माँ का प्यार पाने में अपने पिता को अपना प्रतिद्वंद्वी मानता है। कोई भी इस बात को मानेगा ही कि जब पिता इस दौड़ से बाहर जा रहा है तो उसका बच्चा उसका उचित प्रेमी होगा ही और अपनी माता के प्रति उसकी कोमलता बढ़ जाएगी। लेकिन मैं अक्सर प्यार की बजाय बच्चे में माँ के प्रति बढ़ी हुई नफरत देखता हूँ।

जो माँ अपने विवाहित जीवन में खुश नहीं होती वह अपने बच्चों से पक्षपात करती है। वह अपना पूरा स्नेह किसी एक बच्चे पर उड़ेलती है। ज़ाहिर है कि एक बच्चे के लिए प्रेम बेहद महत्वपूर्ण होता है। पर असन्तुष्ट माँ या पिता अपने प्यार में संतुलन नहीं रख पाते। वे या तो बहुत अधिक प्यार उड़ेलते हैं या बहुत कम। यह कहना बड़ा मुश्किल है कि बहुत ज़्यादा या बहुत कम में कौन सी स्थिति ज़्यादा खतरनाक है।

जो बच्चा प्यार का भूखा है वह सबसे नफरत करता है, वह असामाजिक होता है, सबकी आलोचना करता है। और जो प्यार में डूबा रहता है वह माँ की लाड़ली या लाड़ला तो बनता है पर उसकी अन्तरात्मा दब्बू बन जाती है। माँ एक संस्थान का प्रतीक भी बन सकती है। जैसे कि एक घर के रूप में या मातृगिरजा, मातृभूमि आदि के रूप में।

मेरा तलाक कानून से कोई सरोकार नहीं है। मैं वयस्कों को कोई सलाह नहीं देना चाहता। पर बच्चों का अध्ययन करना मेरा सरोकार है। इसलिए माता-पिता को यह सलाह ज़रूर देना चाहता हूँ कि एक मनोरोगी बच्चे को फिर से स्वस्थ बनाना हो तो घर के वातावरण को बदलना ज़रूरी होगा। माँ-बाप को हिम्मत रखकर यह समझना होगा कि बच्चों पर उनका प्रतिकूल असर पड़ रहा है। एक माँ ने एक बार कहा था, "अगर मैं अपने बच्चे से दो साल नहीं मिलूँगी तो मैं उसे खो दूँगी।"

मेरा जवाब था आप उसे पहले ही खो चुकी हैं। और सच, वे अपने बच्चे को खो *चुकी* थीं, क्योंकि वह घर में बेहद दुखी था।

अभिभावकों की चिन्ताएँ

कहा जा सकता है दुश्चिन्ताग्रस्त माँ या पिता वे हैं जो दे नहीं सकते। यानी जो अपना प्यार, सम्मान, विश्वास अपने बच्चों को नहीं दे सकते।

हाल में एक माँ अपने बेटे के पास समरहिल आई। पूरे शनिवार-इतवार उन्होंने उसका जीना दूभर कर दिया। वह भूखा नहीं था, पर वे तब तक उसके सिर पर सवार रहीं जब तक उसने पूरा खाना ठूँस न लिया। वह पेड़ पर लकड़ी का घर बनाकर गन्दा होकर आया, उन्होंने तुरन्त उसे स्नानघर में ले जाकर रगड़-रगड़कर साफ कर दिया। उसने अपने जेब खर्च से आइसक्रीम खरीदकर खाई तो उन्होंने भाषण दे डाला कि आइसक्रीम उसके पेट को नुक्सान पहुँचाएगी। जब बच्चे ने मुझे मेरे नाम से पुकारा तो उन्होंने तुरन्त टोका कि मुझे *मिस्टर* नील पुकारा जाए।

मैंने उनसे कहा, "जब आप इतनी ही चिन्ताग्रस्त रहती हैं तो आपने अपने बेटे को इस स्कूल में क्यों दाखिला दिलवाया?"

उन्होंने बेहद मासूमी से जवाब दिया, "क्यों? इसलिए क्योंकि मैं चाहती हूँ कि वह मुक्त और खुश रहे। मैं चाहती हूँ कि वह बड़ा होकर आत्मनिर्भर बने, उस पर बाहरी चीज़ों का बुरा असर न पड़े।"

मैंने जवाब में कहा, "ओह।" और सिगरेट सुलगा ली। सच उस महिला को कतई यह इल्म नहीं था, कि वह अपने बेटे पर ज़्यादती कर रही है या बेवकूफी में अपने कुण्ठाग्रस्त जीवन की समूची दुश्चिन्ताएँ अपने बेटे की ओर उड़ेल रही है।

मेरा सवाल यह है, "इस बारे में क्या किया जा सकता है?" दरअसल कुछ भी नहीं। सिवाए इसके कि माता-पिता की दुश्चिन्ताओं से बच्चों को पहुँचने वाले नुकसान के कुछ उदाहरण सामने रख दूँ। इस आशा के साथ कि शायद लाख में से एक माँ या पिता उन्हें पढ़कर यह कहे, "अरे, ऐसे तो मैंने कभी सोचा ही नहीं। मैं तो माने बैठा हूँ कि मैं बिल्कुल सही व्यवहार कर रहा हूँ। शायद गलती मेरी है।"

एक परेशान माँ ने मुझे लिखा, "मुझे समझ ही नहीं आता कि मैं अपने बेटे का क्या करूँ? वह बारह साल का है और उसने अचानक वुलवर्थ की दुकान से चोरी करना शुरू कर दिया है। कृपया मुझे बताएँ कि मुझे क्या करना चाहिए।" यह बात कुछ ऐसी है कि कोई आदमी बीस साल से हर दिन दारू की एक पूरी बोतल

गटकता रहा हो और तब उसे पता चले कि उसका जिगर पूरी तरह बर्बाद हो गया है। उस समय उसे यह सलाह देना निरर्थक होगा कि भाई दारू को हाथ न लगाना। इसलिए बाल व्यवहार की समस्या से ग्रस्त बच्चे की माँ को मैं यही सुझाता हूँ कि वे बाल-मनोचिकित्सक के पास जाएँ या बच्चों की क्लिनिक का पता ढूँढ वहाँ सम्पर्क करें।

यह भी सम्भव है कि उस परेशान माँ को जवाब में लिखूँ कि, "देवीजी, आपका बेटा इसलिए चोरी करता है क्योंकि उसके घर का वातावरण असन्तोषजनक है। वह बड़ा दुखी है। उसे बढ़िया घरेलू वातावरण उपलब्ध करवाएँ।" पर ऐसा करने पर मैं उसमें अपराध-बोध जगा दूँगा। अगर वह नेक नीयत रखती होगी तब भी वह अपने बेटे को अनुकूल वातावरण नहीं दे सकेगी, क्योंकि उसे पता ही नहीं होगा कि वह वातावरण को कैसे बदले। और अगर वह यह जानती भी हो तो उसमें ऐसा कर पाने के लिए आवश्यक भावनात्मक क्षमता नहीं होगी।

पर एक मनोचिकित्सक के दिशानिर्देश में, एक इच्छुक माँ, काफी कुछ बदल सकेगी। सम्भव है कि मनोचिकित्सक उसे अस्नेही पति से बच्चे को दूर रखने की, या सख्त दादी-नानी से उसे अलग करने की सलाह दे। पर जो मनोचिकित्सक बदल नहीं सकेगा, वह है उस महिला का अन्तस। वह महिला जो लगातार नीति उपदेश देने पर बाध्य है, जो चिन्ताग्रस्त है, भयभीत है, सेक्स के विरुद्ध है, जो हमेशा बच्चे के पीछे पड़ी रहती है। ज़ाहिर है कि सिर्फ बाहरी वातावरण बदलने की अपनी ही सीमा होती है।

मैंने एक डरी माँ का ज़िक्र तो कर दिया, पर मुझे एक दूसरे किस्म की माँ के साथ एक साक्षात्कार याद आ रहा है। वह हमारी सात वर्षीय भावी छात्रा की माँ थी। उसने जितने सवाल पूछे सभी दुश्चिन्ता से उपजे थे। "क्या यहाँ कोई इस बात का ध्यान रखता है कि बच्ची ने सुबह और रात मंजन किया है या नहीं? कोई इस पर नज़र तो रखेगा न कि वह कहीं सड़क पर न चल दे? क्या उसे रोज़ पढ़ाया जाएगा? कोई उसे हर रात उसकी दवा तो पिलाएगा न?" ऐसी चिन्ताग्रस्त माँएँ अचेतन ही अपने बच्चों को अपनी अनसुलझी समस्याओं का हिस्सा बना देती हैं। एक और माँ थी जो हमेशा अपनी बिटिया के स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित रहती थी। वह मुझे लगातार लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ लिखती थी जिसमें हमेशा निर्देश होते थे कि बच्ची को क्या खाना है, क्या नहीं, कैसे कपड़े पहनाने हैं आदि-आदि। मेरे पास चिन्तित माता-पिता के तमाम बच्चे रहे हैं। मैंने हमेशा पाया है कि चिन्तित माता-पिता के बच्चे उनकी चिन्ताएँ विरासत में पा लेते हैं। अक्सर इसका परिणाम रोगग्रस्त 'हाइपोकोंड्रियाग्रस्त' बच्चा होता है।

मार्था का एक छोटा भाई था। माता-पिता दोनों ही हमेशा दुश्चिन्ताग्रस्त रहते थे। मैं अभी भी सुन पा रहा हूँ कि मार्था बाग में अपने भाई को चिल्लाकर नसीहत

दे रही है, "अरे ताल में न जाना, पैर गीले हो जाएँगे।" या "रेत में मत खेलो, तुम्हारी नई पैंट गन्दी हो जाएगी।" मैंने लिखा कि मैं सुन पा रहा हूँ, दरअसल मुझे लिखना चाहिए था कि जब वह हमारे स्कूल आई उस वक्त मैं सुना करता था। आजकल अगर उसका भाई चिमनी साफ करने वालों जैसा लगे तो भी उसे फर्क नहीं पड़ता। पर अब भी सत्र समाप्ति के सप्ताह भर पहले उसकी पुरानी चिन्ताएँ लौट आती हैं। क्योंकि उसे यह अहसास होता है कि वह घर के लगातार चिन्ताग्रस्त वातावरण में लौटने वाली है।

कभी-कभी मुझे लगता है कि कठोर अनुशासन वाले स्कूल इसलिए लोकप्रिय होते हैं, क्योंकि तब छात्र-छात्राएँ छुट्टियों में घर लौटने से बेहद खुश होते हैं। उस समय माता-पिता, बच्चों के खुश और खिले चेहरों में घर के प्रति प्यार देख पाते हैं। जबकि स्कूल के लिए उनके मन में नफरत ही होती है। पर बच्चे की नफरत सख्त और कठोर शिक्षकों की ओर पलट जाती है, और उसका प्यार माता-पिता पर उमड़ता है। यहाँ वही मनोविज्ञान काम करता है जब माँ बच्चे के मन में यह कहकर पिता के प्रति नफरत जगाती है, "ठहरो, रात पापा को लौटने दो। वे ही तुम्हें ठीक करेंगे।"

मैं अक्सर चिकित्सकों और दूसरे व्यवसायों से जुड़े पुरुषों को कहते सुनता हूँ, "मैं अपने बेटों को एक बड़े प्राइवेट स्कूल में पढ़ा रहा हूँ, ताकि उनका उच्चारण बढ़िया हो और वह ऐसे लोगों से मिलें, जो उनके काम आ सकें।" वे यह मानकर चलते हैं कि हमारे सामाजिक मूल्य ठीक वैसे ही बने रहेंगे जैसे पिछली पीढ़ियों के थे। भविष्य को लेकर माता-पिता के मन में एक निहायत वास्तविक भय होता है।

माता-पिता कठोर अनुशासन वाले स्कूल तब चाहते हैं, जब उनके घर में भी कठोर अनुशासन हो। ताकि बच्चों के दमन की घर की परम्परा स्कूल में जारी रहे। वे बच्चे को शान्त, सम्मान करने वाले और नपुंसक बनाते हैं। और फिर ऐसे स्कूल बच्चे के दिमाग को प्रशिक्षित करने का बेहतरीन काम भी करते हैं। वे उसके भावनात्मक जीवन और रचनात्मक इच्छाओं पर अंकुश लगाते हैं। ऐसे स्कूल बच्चों को सिखाते हैं कि उन्हें सभी तानाशाहों और बॉस का हुक्म मानना है। बालवाड़ी से ही बच्चे के मन में डर के बीज रोपे जाते हैं। वे सत्तालोलुप कठोर शिक्षकों के अनुशासन में पनपते हैं। औसत माता-पिता बच्चे का बाहरी रूप देखते हैं। वे उसके स्कूल ब्लेज़र, सतही शिष्टाचार और फुटबॉल भक्ति से खुश होते रहते हैं। वे मानते हैं कि उनका लाडला उम्दा शिक्षा पा रहा है। इस तथाकथित शिक्षा की बलिवेदी पर बच्चे के जीवन को चढ़ते देखना तकलीफ देता है। कठोर स्कूल केवल सत्ता की माँग करते हैं और भयभीत माता-पिता इससे खुश होते हैं।

हरेक अहम्-केन्द्रित सत्ता की चाह के अनुरूप एक शिक्षक का अहम् भी बच्चों को अपनी ओर खींचता है। पर ज़रा सोचें कि शिक्षक किस कदर माटी का देवता है।

वह हमेशा केन्द्र में रहता है, वह आज्ञा देता है जिसकी अनुपालना की जाती है। वह न्याय करता है। कक्षा में वही बोलता है। एक मुक्तशाला में सत्ता का विचार ही खत्म कर दिया जाता है। समरहिल में यह गुंजाइश नहीं है कि शिक्षक अपने अहम् का प्रदर्शन करे। वह बच्चों के मुखर अहम् भाव से टक्कर नहीं ले पाता। अक्सर बच्चे मेरे प्रति आदर भाव दर्शाने के बदले मुझे 'बेवकूफ' या 'गधा' कहते हैं। अमूमन ये नाम उनके स्नेह का प्रतीक होते हैं। एक मुक्त शाला में स्नेह और प्रेम का भाव महत्वपूर्ण होता है। शब्द गौण बन जाते हैं।

समरहिल में आने वाला बच्चा अमूमन एक कठोर दुश्चिन्ताग्रस्त घर से आता है। उसे यहाँ मनचाहा करने की छूट मिलती है। उसकी कोई आलोचना नहीं करता। कोई उसे शिष्टाचार बरतने को नहीं कहता। कोई उसे यह नहीं कहता कि वह इस कदर चुप रहे कि वह दिखे तो, पर सुनाई न दे। ज़ाहिर है कि बच्चे को यह स्कूल स्वर्ग समान लगता है। क्योंकि एक लड़के के लिए स्वर्ग वही है जहाँ वह अपने समूचे अहम् को अभिव्यक्त कर सके। स्वयं को अभिव्यक्त कर पाने की खुशी अक्सर उनके मन में मुझसे जुड़ जाती है। उनकी नज़र में मैं ही वह व्यक्ति हूँ जो उन्हें आज़ादी देता है। मैं वह पिता बन जाता हूँ जैसा पिता होना चाहिए। दरअसल वह लड़का मुझसे प्यार नहीं करता। बच्चे असल में प्यार करते ही नहीं हैं, वे तो बस प्यार चाहते हैं। उनके विचार जो शब्दों का रूप नहीं लेते दरअसल ये होते हैं - *मैं यहाँ खुश हूँ। वह बूढ़ा नील खासा भला आदमी है। वह कभी टाँग नहीं अड़ाता। ज़रूर वह मुझसे प्यार करता है, नहीं तो वह मुझपर हुकुम न चलाता?*

जब छुट्टियाँ होती हैं बच्चा स्कूल से घर जाता है। घर में वह पिता की टॉर्च इस्तेमाल करता है और उसे किसी कोने में भूल आता है। पिता नाराज़ होते हैं। बच्चा समझ लेता है कि घर में आज़ादी नहीं है। एक लड़का मुझसे अक्सर कहा करता था मेरे घरवाले पुराने विचारों के हैं। मैं यहाँ की तरह घर पर आज़ाद नहीं हूँ। मैं जब घर लौटूँगा तो मैं अपनी माँ और अपने पिता को सबक सिखा दूँगा। उसने शायद यही किया होगा, क्योंकि उसका स्कूल बदल दिया गया।

मेरे कई छात्र-छात्राओं को 'रिश्तेदारियों' का रोग है। फिलहाल मेरा मन है कि मैं अपने छात्र छात्राओं के कुछ रिश्तेदारों से बहसबाज़ी कर लूँ। इनमें से दो दादा-नाना (धार्मिक प्रवृत्ति के), चार चाचियाँ-मासियाँ-बुआएँ या मामियाँ (धार्मिक प्रवृत्ति की होने के साथ कपट-लजालू भी), दो चाचा-मामा (अधार्मिक पर नीति उपदेशक) हैं। मैंने अपने एक छात्र को उसके दादाजी के पास भेजने से मना कर दिया था क्योंकि वे हमेशा बड़े उत्साह से नरक की ज्वाला से उसे डराते थे। पर उसके माँ-बाप ने कहा कि ऐसा करना सम्भव नहीं होगा। बेचारा बच्चा।

मुक्तशाला में बच्चे अपने रिश्तेदारों से बच जाते हैं। आजकल मैं उन्हें फटकने नहीं देता। दो साल पहले एक चाचाजी पधारे और अपने नौ साल के भतीजे को घुमाने

ले गए। लड़का लौटा और भोजनागार में डबलरोटी फेंकने लगा। मैंने कहा, ''लगता है बाहर जाकर तुम्हें बहुत बुरा लगा है। तुम्हारे चाचा ने क्या बातें कीं?''

उसने बड़े हल्केपन से कहा, ''ओह, चाचा तो ईश्वर की बात करते रहे। ईश्वर और बाइबल।''

''क्या उन्होंने बाइबल से वे पंक्तियाँ सुनाईं जहाँ अपनी रोटी पानी में फेंकने का उल्लेख है?'' यह पूछते ही वह हँसने लगा। तब उसने डबलरोटी फेंकना बन्द किया। अब जब चाचाजी पधारेंगे तो बच्चा अनुपलब्ध होगा।

अपने बच्चों के माता-पिता से मुझे खास शिकायत नहीं है। हमारी खासी पटती भी है। अधिकांश माता-पिता सभी चीज़ों में पूरा साथ देते हैं। कुछेक के मन में आशंकाएँ उठती हैं, पर वे फिर भी विश्वास करते हैं। मैं उन्हें अपनी पद्धति की बात साफ बताता हूँ। मैं हमेशा साफ कहता हूँ कि यही चलेगा, इसे पूरी तरह स्वीकारना होगा। मान्य न हो तो बच्चे को दाखिल ही न कराओ। जो पूरा साथ देते हैं, उनके मन में जलन का भाव नहीं उपजता। क्योंकि ऐसे में बच्चे घर में भी उतने ही आज़ाद होते हैं जितना स्कूल में।

पर जिन बच्चों के माता-पिता समरहिल के तौर-तरीकों में पूरा विश्वास नहीं करते, वे छुट्टियों में घर जाने से कतराते हैं। उनके माता-पिता उनसे काफी अपेक्षाएँ रखते हैं। वे यह नहीं समझते कि एक आठ साल का बच्चा मुख्यतः सिर्फ खुद में रुचि लेता है। उसके मन में न तो सामाजिक भावना होती है न ही कर्तव्य का कोई भाव। समरहिल में हम उसे उसके आत्मकेन्द्रितपन को अभिव्यक्त करने का पूरा मौका देते हैं, ताकि वह उस चरण से उबर सके। हम मानते हैं कि एक दिन वह खुद-ब-खुद बदल जाएगा, क्योंकि वह दूसरों के अधिकारों और मतों का सम्मान करना सीख चुका होगा। बच्चों की नज़र से देखें तो स्कूल और घर में जो अन्तर है वह काफी खतरनाक होता है। विरोधाभासी विचार व अवधारणाएँ उसमें द्वन्द्व पैदा करते हैं। सही भला कौन है, घर या स्कूल? बच्चे के विकास और शान्ति के लिए ज़रूरी है कि घर और स्कूल का उद्देश्य एक ही हो, दृष्टिकोण साझा हो।

माता-पिता और शिक्षकों में मतभेद का मुख्य कारण मुझे डाह लगता है। एक पन्द्रह वर्षीय छात्रा ने एक बार मुझे कहा, ''अगर मुझे अपने पापा को बहुत खिझाना या गुस्सा दिलाना हो तो उनसे सिर्फ इतना ही कहना काफी होता है 'नील साब फलाँ-फलाँ कहते हैं।''' चिन्ताग्रस्त माता-पिता उन सभी शिक्षकों से जलते हैं जिन्हें बच्चा प्यार करता है। और यह स्वाभाविक भी है, आखिर बच्चे भी एक तरह से आपकी सम्पत्ति ही होते हैं। वे माता-पिता के अहम् भाव का ही हिस्सा होते हैं।

और फिर शिक्षक भी वैसे ही होते हैं, मानवीय कमज़ोरियों से भरे हुए। कई शिक्षकों के अपने बच्चे भी नहीं होते। वे अचेतन रूप से अपने छात्र-छात्राओं को गोद ले

लेते हैं। अक्सर वे अजाने ही माता-पिता से बच्चा छीनने की कोशिश में जुट जाते हैं। यह ज़रूरी है कि शिक्षकों का विश्लेषण भी किया जाए। ऐसा नहीं है कि मनोविश्लेषण इन सब फसादों की रामबाण औषधि है। उसका असर सीमित ही होता है, फिर भी उससे कम से कम ज़मीन तैयार हो सकती है। इसका मुख्य फायदा यह है कि इसके सहारे दूसरों को समझाना आसान बन जाता है। व्यक्ति में उदारता बढ़ती है। सिर्फ इसी कारण मैं इसे शिक्षकों के लिए उपयोगी मानता हूँ। जिस शिक्षक का विश्लेषण हो चुका है वह बच्चों के प्रति अपने नज़रिए को समझने लगता, उसका सामना कर, खुद को सुधार सकता है।

जिस घर में भय और द्वन्द्व उपजें वह खराब है। अपने बच्चे को बहुत धकियाने वाले चिन्ताग्रस्त माता-पिता उसे नाराज़ बना देते हैं। अचेतन रूप से वह बच्चा अपने मन में यह ठान लेता है कि वह अपने माता-पिता को किसी कीमत पर नहीं जीतने देगा। पर जिस बच्चे का पालन-पोषण दुश्चिन्ताओं और द्वन्द्वों के बीच न हुआ हो, वह जीवन को एक साहसिक अभियान के रूप में स्वीकारता है।

अभिभावकों की जागरूकता

जागरूक होने का मतलब है पूर्वाग्रहों से, बचकाने दृष्टिकोणों से मुक्त होना। या कहें यथासम्भव आज़ाद होना। क्योंकि बचपन में जो अनुकूलन हो जाता है, उससे पूरी तरह आज़ाद भला कौन हो पाता है? जागरूक होने का मतलब है चीज़ों को गहराई से समझना, सतही चीज़ों को छोड़ देना। बच्चों के प्रति भावनात्मक जुड़ाव के चलते यह आसान नहीं होता। *मैंने अपने बच्चों की ज़िन्दगी किस कदर उलझा दी है!* यह रोना सैकड़ों खतों में मैं सुनता हूँ। पर बच्चों को आज़ादी के मार्ग पर चला पाने में शिक्षक अभिभावकों से ज़्यादा सफल होते हैं। क्योंकि वे बच्चों से कुछ दूरी बनाए रख सकते हैं।

कई बार मुझे किसी पिता को खत लिखकर भी समझाना पड़ा है कि उसके समस्यात्मक बेटे को सुधारने की सम्भावना केवल तभी बनेगी जब वे स्वयं अपने तौर-तरीकों में भी कुछ फेरबदल करें। मुझे यह समझाना पड़ा कि यदि घर पर सिगरेट पीने पर उसकी पिटाई होती है, तो समरहिल में सिगरेट पीने की छूट देना असम्भव है। यही बात *न नहाने, कपड़े न धोने, मन आए तो न पढ़ने-लिखने, गाली बकने* आदि पर भी लागू होती है।

मैंने कभी किसी बच्चे को उसके घर के विरुद्ध नहीं भड़काया है। अगर इन परेशान बच्चों में कोई सुधार हुआ है तो वह आज़ादी की वजह से ही हुआ है। गैर-जागरूक घर में इस चुनौती का सामना करना सम्भव नहीं होता। क्योंकि वहाँ आज़ादी का

क्या असर हो सकता है, इसकी समझ ही नदारद होती है।

मैं कुछ उदाहरणों से माता-पिता और बच्चे के बीच गलत रिश्ते को उजागर करना चाहूँगा। जिन बच्चों की बात मैं यहाँ लिख रहा हूँ वे किसी रूप में असामान्य नहीं हैं। वे तो बस एक ऐसे वातावरण के मारे हैं जहाँ बच्चों की वास्तविक ज़रूरतों की कोई समझ नहीं है।

एक लड़की है मिलड्रेड। वह जब भी छुट्टियों के बाद लौटती है तो द्वेष भरा, लड़ाकू और कपट भरा व्यवहार करती है। वह दरवाज़े भड़ाक से बन्द करती है, अपने कमरे की शिकायत करती है, अपना बिस्तर उसे ठीक नहीं लगता। और भी हज़ारों शिकायतों से भर जाती है। तकरीबन आधा सत्र बीतने के बाद ही उसे झेलना कुछ आसान हो पाता है। पूरी छुट्टियाँ वह और उसकी माँ एक दूसरे के पीछे पड़े रहते हैं। उसकी माँ ने दरअसल एक गलत इन्सान से विवाह किया है। दुनिया भर की स्कूली आज़ादी इस बच्ची को स्थाई सन्तोष नहीं दे सकती। सच्चाई यह है कि अगर छुट्टियों में उसका अनुभव बेहद तकलीफदेह रहा हो तो वह स्कूल लौटने पर छोटी-मोटी चोरियों भी करती है। माँ को इस स्थिति के प्रति सचेत करने पर भी उसका घरेलू वातावरण बदला नहीं जा सकता। वहाँ जगरूकता नहीं है और घृणा पटी पड़ी है। वहाँ हर पल बच्ची की ज़िन्दगी में दखलन्दाज़ी होती है। कई बार समरहिल आने के बाद भी बच्चा अपने घर के प्रभाव से बच नहीं सकता। ऐसा प्रभाव जिसमें न तो कोई मूल्य हों, ना ही बच्चे क्या सोचते या महसूस करते हैं, उसका कोई ज्ञान हो। दुर्भाग्य यह है कि लोगों को मूल्य आसानी से सिखाए नहीं जा सकते।

आठ साल का जॉनी जब स्कूल लौटता है तो उसके चेहरे का हाव-भाव ही बिगड़ा होता है। वह अपने से कमज़ोर बच्चों को छेड़ता है, उन पर धौंस जमाता है। उसकी माँ समरहिल में विश्वास करती हैं, पर पिता कठोर अनुशासन वाले इन्सान हैं। हुक्म होते ही जॉनी को उछलकर आदेश का पालन करना होता है। वह बताता है कि पिता अक्सर उसे चपतियाते हैं। उनका क्या किया जाए? पता नहीं।

मैंने एक पिता को खत लिखा, "आप अपने बेटे की किसी भी बात पर आलोचना न करें। ऐसा करना घातक होगा। उस पर नाराज़ न हों उसे डपटें नहीं। और सबसे ज़रूरी यह है कि उसे कभी कोई सज़ा न दें।" पर यही लड़का जब छुट्टियों में घर जाता है तो पिता उसे स्टेशन पर लेने आते हैं। लड़के से सबसे पहले कहते हैं, "तनकर तो खड़ा हो, कुबड़ाए क्यों जा रहा है।"

पीटर की माँ ने, जब-जब उसका बिस्तर सूखा मिले उसे एक अठन्नी देने का वादा किया। मैंने इसके विपरीत कदम उठाया और कहा कि बिस्तर गीला मिलने पर उसे तीन अठन्नियाँ मिलेंगी। पर बच्चे के मन में मेरे और माँ की बात को लेकर

द्वन्द्व न पैदा हो इसलिए मैंने माँ को समझाया कि वह मेरे इनाम के पहले अपना 'इनाम' बन्द कर दे। अब पीटर का बिस्तर स्कूल से ज़्यादा घर पर गीला होता है। उसकी मानसिक परेशानी का एक हिस्सा यह है कि वह बच्चा बने रहना चाहता है। वह अपने नन्हे भाई से बेहद जलता है। उसे अस्पष्ट रूप से यह भी समझ आता है कि उसकी माँ उसका इलाज करना चाहती है। पर मैं उसे यह जता देना चाहता हूँ कि उसका बिस्तर गीला भी हो जाए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक उसकी बच्चा बने रहने की ज़रूरत हो, मेरी तीन अठन्नियाँ उसे बच्चा बने रहने को प्रोत्साहित करती हैं। उस समय तक, जब वह *स्वाभाविक रूप से इस चरण से खुद-ब-खुद उबर नहीं जाता*। अगर अनुशासन या घूस के सहारे उसे सुधारने की कोशिश की जाती है तो उसके मन में, इस आदत को लेकर अपराध-बोध जगता है। इस बात को लेकर ही एक नैतिक मूल्य उस पर लाद दिया जाता है। एक नैतिक उपदेश झाड़ने वाला बनने से बेहतर है कि बच्चा बिस्तर गीला करे।

नन्हा जिमी छुट्टियों से लौटकर एलान करता है, मैं इस बार एक भी कक्षा से गायब नहीं होऊँगा। ज़ाहिर है उसके माता-पिता उस पर हाई-स्कूल परीक्षा दे डालने का दबाव डालते रहे होंगे। वह सप्ताह भर कक्षाओं में नियमित जाता है। उसके बाद वह महीने भर गोल कर जाता है। बातचीत से डाले गए दबाव की निरर्थकता इसी से सिद्ध हो जाती है। पर इससे भी खतरनाक बात यह है कि इस तरह की बातचीत बच्चे के विकास में आड़े आती है।

जैसा मैंने पहले ही कहा, ये बच्चे समस्याग्रस्त बच्चे नहीं हैं। एक तार्किक वातावरण और माता-पिता की सूझबूझ से वे सभी सामान्य बच्चे बन सकते हैं।

मेरी माता-पिता से शिकायत यह है कि वे सीखते ही नहीं हैं। बच्चों के साथ मेरा ज़्यादातर काम माता-पिता की भूलों को सुधारने का होता है।

मेरे पास एक बार एक समस्याग्रस्त बच्चा आया जो गलत शिक्षण का शिकार था। मैंने उसकी माँ को कहा कि उसे इस स्थिति को सुधारना होगा। उसने ऐसा करने का वायदा किया। गर्मियों की छुट्टियों के बाद वह उसे वापस लेकर आई।

मैंने कहा, "क्या तुमने वह प्रतिबंध हटा लिया।"

उसने कहा, "हाँ"

"बहुत अच्छा। लेकिन आपने किया क्या?"

मैंने कहा, "अपने शिश्न से खेलना गलत बात नहीं है। लेकिन यह एक बेवकूफी भरी चीज़ है।"

उसने एक प्रतिबंध को हटाकर दूसरा जड़ दिया था। और वह बेचारा बच्चा असामाजिक, बेइमान, घृणा और चिन्ता से भरा रहा।

मैं अभिभावकों को यह समझाने की कोशिश करता हूँ कि बच्चा कभी नहीं सीखेगा।

मेरा मुख्य काम अभिभावकों की गल्तियाँ सुधारना होता है। मेरे मन में उन माता-पिता के प्रति सहानुभूति भी है और प्रशंसा का भाव भी, जो पूरी ईमानदारी से पूर्व में की गई अपनी गल्तियों को देखने-समझने की कोशिश करते हैं और अपने बच्चों के प्रति अपने व्यवहार को सुधारने की कोशिश भी करते हैं। पर आश्चर्यजनक बात यह है कि शेष माता-पिता बच्चों के हिसाब से बदलने के बदले पुराने, निरर्थक और खतरनाक तौर-तरीकों को अपनाए रहना पसन्द करते हैं। और भी आश्चर्यजनक बात यह है कि वे मेरे प्रति बच्चों के स्नेह से जलते हैं।

दरअसल बच्चे मुझसे इतना प्यार नहीं करते जितना वे मेरी दखलन्दाज़ी न करने की नीति को पसन्द करते हैं। मैं उनके दिवास्वप्नों का पिता जो हूँ। जबकि उनके खुद के पिता 'खबरदार, शोरगुल इसी पल बन्द करो' की घोषणा करते हैं। मैंने कभी सभ्य व्यवहार या शिष्ट भाषा की माँग नहीं की। कभी यह नहीं पूछा कि हाथ-मुँह धोए गए हैं या नहीं। मैंने उनसे कभी हुकुमपरस्ती की, या श्रद्धा की या गौरव की रक्षा करने की माँग नहीं की। संक्षेप में मैंने बच्चों से वैसा ही सम्मानजनक बर्ताव किया जिसकी वयस्क अपने प्रति अपेक्षा करते हैं। और फिर मैं यह भी समझता हूँ कि उनके पिता और मेरे बीच कोई वास्तविक स्पर्धा हो ही नहीं सकती। उनका काम है परिवार के लिए पैसे कमाना। और मेरा काम है बच्चों का अध्ययन करना, उन्हें अपना पूरा समय और रुचि देना। अगर माता-पिता बाल मनोविज्ञान का अध्ययन नहीं करते ताकि वे अपने बच्चे के विकास के प्रति जागरूक रहें, तो वे पिछड़ जाएँगे। और सच यह है कि माता-पिता *अक्सर* काफी पीछे रह जाते हैं।

एक पिता ने मेरे स्कूल में पढ़ने वाली अपनी बच्ची को लिखा, "अगर तुम्हारे हिज्जे इतने कमज़ोर हैं, तो बेहतर हो कि तुम खत ही न लिखो।" और यह उस लड़की को लिखा गया, जिसके बारे में हम यह तय नहीं कर पाए थे कि वह मानसिक रूप से कमज़ोर है या नहीं। कई बार मुझे किसी शिकायती पिता या माँ को डपटना पड़ा है। कहना पड़ा है, "आपका बेटा चोरी करता है, अभी तक बिस्तर गीला करता है। वह असामाजिक है, दुखी है, खुद को कमतर समझता है। और आप इस बात को रो रहे हैं कि वह जब स्टेशन पर उतरा तो उसका चेहरा और हाथ गन्दे थे।" वैसे मुझे गुस्सा जल्दी नहीं आता। पर जब मैं ऐसी माँ या ऐसे पिता से मिलता हूँ जिन्हें यह पता नहीं चलता कि बच्चे के आचरण में क्या ज़रूरी है और क्या सतही, तो मैं नाराज़ हो जाता हूँ। शायद इसीलिए मुझे माता-पिता अपना विरोधी भी मान सकते हैं। पर जब कोई माँ अपने बच्चे से मिलने आती है और उसे बगीचे में गन्दा और फटेहाल देखने पर भी चहककर मुझसे कहती है कि, "बेटा कितना स्वस्थ और खुश दिख रहा है," तो मेरा मन खुशी से भर उठता है।

मैं जानता हूँ कि यह बात बेहद कठिन है। आखिर हम सबके अपने-अपने मानक

होते हैं, अपने व्यक्तिगत मूल्य होते हैं। इनके हिसाब से हम दूसरों को नापा करते हैं। शायद मुझे माफी माँगनी चाहिए कि मैं बच्चों के बारे में बड़ा कट्टर हूँ। उन माता-पिताओं के प्रति धीरज खो बैठता हूँ, जो बच्चों को मेरी नज़र से नहीं देखते। पर अगर मैं माफी माँग लूँ तो मैं ढोंगी ही कहलाऊँगा। क्योंकि सच्चाई यह है कि मैं जानता हूँ कि जहाँ तक बच्चों का सवाल है, मेरे ही मूल्य सही हैं।

जो माँ-बाप अपने बच्चे के साथ अपने खराब रिश्तों को सच में सुधारना चाहते हैं, उन्हें खुद से कुछ सीधे-सच्चे सवाल करने चाहिए। दर्ज़नों सार्थक सवाल मैं सुझा सकता हूँ। *क्या मैं अपने बच्चे से इसलिए नाराज़ हूँ कि आज सुबह मेरा अपने पति (या पत्नी) से झगड़ा हुआ था? क्या मेरी नाराज़गी का कारण यह है कि रात को सहवास में मुझे तृप्ति का अनुभव नहीं हुआ? या फिर इसलिए कि पड़ोसन का कहना है कि मैं अपने बेटे को बिगड़ा बना रही हूँ? या इसलिए कि मेरा वैवाहिक जीवन असफल है? या फिर इसलिए कि दफतर में बॉस ने मुझे फटकार लगाई है?* इस तरह के सवाल अगर खुद से पूछे जाएँ तो सच में फायदेमन्द होंगे।

पर गहराई से जुड़े ऐसे सवाल जिनका ताल्लुक जीवन भर के अनुकूलन और पूर्वाग्रहों से है, वे तो हमारी चेतना के दायरे से भी बाहर हैं। यह कल्पना करना असम्भव है कि एक खीझा हुआ पिता थमकर खुद से पूछे कि *क्या बेटे के गाली बकने से मैं इसलिए नाराज़ हूँ क्योंकि मेरा पालन-पोषण डण्डे के ज़ोर पर, नीति उपदेशों के साथ किया गया था? मेरे मन में खुदा का और निरर्थक सामाजिक तौर तरीकों का खौफ बैठाया गया था? मेरी स्वाभाविक यौन-इच्छाओं को पूरी ताकत से दबाया गया था?* इन सवालों के जवाब तलाशने का मतलब होगा आत्मविश्लेषण करना, जो हममें से अधिकांश लोगों के बूते के बाहर है। दुर्भाग्य है, क्योंकि अगर इनका जवाब मिलता तो कई बच्चों को मनोरोग और दुख से बचाया जा सकता।

बाइबल के जिस उदाहरण को पीढ़ियों से भौतिक अर्थ में समझा जाता रहा है वह यह है कि पिता के पापों के फल बच्चों को झेलने पड़ते हैं। अशिक्षित लोग भी नाटककार इब्सन की रचना *घोस्ट्स* (भूत) की यह बात बखूबी समझ लेते हैं कि नाटक में पिता के यौनरोगी होने के कारण बेटे का जीवन बर्बाद हो जाता है। पर जो बात समझी नहीं जाती वह यह है कि अक्सर पिता के मानसिक पापों के कारण बच्चे का सर्वनाश होता है। कम आयु में ही बच्चों पर अपने तौर-तरीके लादने से पैदा होने वाली चारित्रिक विकृतियों से बच्चों को बचाने का एक ही तरीका है- जागरूक माता-पिता द्वारा प्रारम्भ से ही बच्चे को स्वनिर्देशन की राह पर चलाना।

इस बात पर ज़ोर देना होगा कि स्वनिर्देशन का मतलब है हमारे तयशुदा तौर-तरीकों के परे बहुत कुछ देना। माता-पिता को कम से कम प्रारम्भिक दो वर्षों तक अपने काफी समय और स्वार्थों की आहुति देनी होगी। उन्हें अपने शिशु का प्यार

और कृतज्ञता पाने के लिए कोई खेल करना बन्द करना होगा। जब रिश्तेदार मिलने आएँ तो शिशु से मुस्कान या करतब दिखाकर प्रदर्शन करने की माँग करना बन्द करना होगा। स्वनिर्देशन का अर्थ है अभिभावकों का निस्स्वार्थ होना। इस बात पर मैं ज़ोर इसलिए दे रहा हूँ क्योंकि मैंने नौजवान माता-पिता को यह सोचते पाया है कि वे बच्चे को स्वनिर्देशन की राह पर चला रहे हैं, जबकि दरअसल वे उसे अपनी सुविधाओं के अनुरूप ढाल रहे होते हैं। जब उन्हें रात को सिनेमा देखने जाना हो तो वे उसे जल्दी सोने पर मजबूर करते हैं। कुछ बाद में वे बच्चे को ऐसा मुलायम, बिना शोर करने वाला खिलौना देते हैं जिससे पापाजी के आराम में खलल न पड़े।

"बस भी कीजिए," माँ-बाप प्रतिवाद करते हैं, "यह सब आप हमसे *कैसे* कह सकते हैं? आखिर हमारे भी ज़िन्दगी में कुछ अधिकार हैं।" पर मेरा जवाब है - "नहीं, बच्चे के शुरुआती दो चार सालों तक आपके कोई अधिकार नहीं हैं। क्योंकि ये साल सतत निगहबानी के हैं। क्योंकि हमारा समूचा वातावरण ही स्वनिर्देशन के खिलाफ है। इसलिए सचेत रहकर बच्चे के हित में एक कड़ी लड़ाई लड़नी पड़ती है।"

जो माता-पिता अपने बच्चों को स्वनिर्देशन और आज़ादी की राह पर चलाना चाहते हैं, उनके लिए मेरे कुछ दूसरे सुझाव भी हैं।

बच्चे को बच्चा गाड़ी में डाल, घण्टों तक बाग में छोड़ आना खतरनाक काम है। किसी को पता ही नहीं चल सकता कि इस दौरान अगर शिशु अचानक जग जाए, और खुद को एक अनजान जगह पाकर डर जाए, या उसे अकेलापन महसूस हो, तो क्या होगा? जिन लोगों ने ऐसे में बच्चों की चीखें सुनी हैं, उन्हें इस बेहूदा तरीके का कुछ अन्दाज़ तो ज़रूर हुआ होगा।

अगर आप चाहते हैं कि आपका बच्चा बिना मनोरोगी बने बड़ा हो, तो *खबरदार*, उससे दूरी मत बनाएँ। ज़रूरी है कि आप उससे खेलें, केवल उसके खेल ही नहीं, बल्कि बच्चा बनकर *उसके साथ* खेलें। उसके जीवन में घुल जाएँ, उसकी रुचियों को स्वीकारें। अगर आप में बेवकूफी भरा आत्म-सम्मान का भाव ठूँस-ठूँसकर भरा है तो आप यह नहीं कर पाएँगे।

अगर बच्चे दादा-दादी या नाना-नानी से अलग रहें तो बेहतर रहता है। क्योंकि अक्सर बुज़ुर्गवार बच्चों को पालने-पोसने के कायदे-कानून खुद बनाना चाहते हैं। वे सिर्फ उसकी अच्छाइयाँ या कमियों पर नज़र रखते हैं। इस तरह के घरों में बच्चों के दो नहीं चार-चार बॉस होते हैं। बढ़िया से बढ़िया घरों में भी नाना-दादा बचपन के बारे में अपने बासी विचार लागू करना चाहते हैं। अक्सर दादा-दादी, नाना-नानी अपने मालिकाना लाड़-प्यार से बच्चों को बिगाड़ते हैं।

ऐसा खासतौर से तब होता है जब दादी-नानी के पास, अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से फारिग हो चुकने के कारण, कोई निजी मकसद नहीं रह जाता। तीसरी पीढ़ी उन्हें फिर से काम शुरू करने का मौका देती है। वे यह मानने लगते हैं कि उनकी बहू या बेटी अकुशल माँ है, सो दादी या नानी लगाम सम्भाल लेती है। इससे बच्चा दो दिशाओं में खिंचने लगता है। सम्भावना यह बनती है कि वह *दोनों ही* पक्षों से दूरी बना ले। बच्चे के लिए बहसबाज़ी का मतलब होता है प्रेम की नामौजूदगी। फिर चाहे यह बहस माँ और दादी/नानी में हो या पति-पत्नी में। लाख कोशिशों के बावजूद आपसी मनमुटाव बच्चे से छुपा नहीं रह पाता। वह अचेतन रूप से ही यह *समझने* लगता है कि उसके घर में प्यार नामौजूद है।

कई बार स्कूल का सवाल भी परेशानी का कारण बनता है। सम्भव है आपकी पत्नी बच्चे को एक प्रगतिशील सहशिक्षण वाले स्कूल में पढ़ाना चाहती है। और आपकी इच्छा यह हो कि वह किसी सरकारी स्कूल में पढ़े। सम्भव है इस कारण आप दोनों में टकराव हो। इस स्थिति से निपटने के मेरे पास कोई ठोस सुझाव नहीं हैं। पर मैं यह ज़रूर जानता हूँ कि मेरे सबसे मुश्किल छात्र-छात्राएँ वे बच्चे रहे हैं जिनके माता-पिता के बीच शिक्षा को लेकर मतभेद था। हमारा एक छात्र था जिसके पिता समरहिल के विचारों के पूरी तरह खिलाफ थे। पर घर में शान्ति बनाए रखने के नाम पर उन्होंने घुटने टेक दिए। वह बच्चा यहाँ कोई प्रगति नहीं कर सका। इसलिए, क्योंकि वह जानता था कि उसके पिता स्कूल से नाखुश थे। बच्चे के लिए ऐसी स्थिति भारी परेशानी खड़ी करती है। ऐसे में वह यहाँ जड़ें नहीं जमा पाता। उसे डर रहता है कि उसके पिता किसी भी दिन यह तय कर उसका दाखिला किसी अनुशासन वाले स्कूल में करवा सकते हैं।

माता-पिता और शिक्षकों के बीच थोड़ा बहुत तनाव तो रहता है। कई शिक्षक यह बात समझते हैं। कुछ तो शिक्षकों और माता-पिता के बीच होने वाली बैठकों के द्वारा दोनों पक्षों को पास लाने की कोशिश भी करते हैं। यह बहुत ही बढ़िया बात है। हर जगह यह होना चाहिए। शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि बच्चों के जीवन में उनकी भूमिका कभी भी उतनी प्रभावशाली नहीं हो सकती है, जितनी माता-पिता की होती है। यही कारण है कि अगर बच्चा घरेलू वातावरण के कारण एक समस्याग्रस्त बच्चा बना है, तो उसे सुधारना इतना कठिन बन जाता है।

माँ-बाप को यह समझना चाहिए कि आज नहीं तो कल, बच्चे उनसे छिटकेंगे और दूर होंगे। ज़ाहिर है मैं यह नहीं कह रहा कि बच्चों को माता-पिता से दूर रहना चाहिए, या कभी उनसे मिलना ही नहीं चाहिए। मेरा मतलब है *मानसिक और आत्मिक* दूरी से। एक शिशु की अपने घर पर जो निर्भरता होती है, उससे कट जाने से। स्वाभाविक है कि माँ अपने बच्चे को खुद पर निर्भर बनाए रखना चाहती है।

मैं तमाम परिवारों से परिचित हूँ जहाँ कोई बेटी अपने बूढ़े माता-पिता की देखभाल के लिए वहीं बनी रहती है। ऐसे अधिकांश उदाहरणों में उनका परिवार सुखी नहीं होता।

बेटी के चित्त का एक भाग उसे दुनिया में निकलने और खुद की ज़िन्दगी अपनी तरह से जीने को उकसाता है। पर उसका दूसरा हिस्सा, ज़िम्मेदार हिस्सा, उसे अपने माता-पिता के पास रहने को मजबूर करता है। उसके अन्तस में लगातार एक द्वन्द्व चलता है। और यह द्वन्द्व अक्सर उसकी खीझ में झलकता है, *ज़ाहिर है मैं माँ को खूब प्यार करती हूँ। पर सच में वे कई बार इतना थकाती हैं, कि बस।*

आज हज़ारों-लाखों महिलाएँ दुनिया का सबसे उबाऊ काम करती हैं। वे रोटी पकाती हैं, बर्तन माँजती हैं, कपड़े धोती और इस्तरी करती हैं, झाड़ू-बुहारी करती हैं। वे घर की देखभाल करने वाली निःशुल्क दासियाँ हैं और उनका जीवन उबाऊ और थकाऊ है। परिवार के घर छोड़ते ही माँ का काम खत्म हो जाता है। नन्हें चूज़े घोंसले से एक दिन उड़ जाते हैं और वह घोंसला वीरान हो जाता है। माँ को शिकायत की नहीं, हमदर्दी की ज़रूरत रहती है। स्वाभाविक है कि वह चाहती है कि यह स्थिति जब तक सम्भव हो बनी रहे। फिर चाहे इस प्रक्रिया में उसके बच्चों को नुकसान ही क्यों न पहुँचे। इससे एक संकेत तो यह मिलता है कि हरेक महिला का अपना कोई न कोई काम-धँधा तो होना ही चाहिए, ताकि बच्चों के बड़े होने के बाद वह उसे फिर से अपना सके।

माता-पिता खुदा की जगह होते हैं। यह खुदा डाह करने वाला खुदा है। माता-पिता के पास कानूनी रूप से यह अधिकार है कि वे यह कह सकें कि *मैं अपने बच्चे को इसी तरह ढालूँगा*। माँ-बाप चाहें तो बच्चों को पीट सकते हैं। उन्हें डरा सकते हैं, उनका जीना हराम कर सकते हैं। इस स्थिति में कानून सिर्फ तभी दखल दे सकता है, जब बच्चे को गम्भीर शारीरिक नुकसान पहुँचे। पर अगर यह नुकसान मानसिक हो, तो कितना भी गम्भीर नुकसान क्यों न हो कानूनी दखल सम्भव नहीं होती। त्रासदी यह है कि माता-पिता का पक्का विश्वास यह होता है कि वे जो कुछ भी कर रहे हैं, अपने बच्चे के भले के लिए ही कर रहे हैं।

समूची मानवता इसी आस पर टिकी है कि अगर माता-पिता सजग हों, और बच्चों के मुक्ति, ज्ञान और प्रेम की दिशा में बढ़ाने के पक्ष में हों, तो वे *जो कुछ करेंगे* वह उनके हित में ही होगा।

अगर इस किताब से एक भी माता-पिता को यह समझ आ सके कि वे अपने बच्चे पर किस तरह, और किस हद तक अच्छा या बुरा असर डाल सकते हैं, तो इसे लिखने का मकसद हासिल हो जाएगा।

7

सवाल-जवाब

सामान्य

सवाल : *आप मानवता को जीवन विरोधी कहते हैं। इससे आपका क्या मतलब है? मैं जीवन विरोधी नहीं हूँ, न ही मेरे मित्र।*

मैंने अपने जीवन में दो भयावह विश्वयुद्ध देखे हैं। सम्भव है कि मैं एक तीसरा और अधिक भयानक युद्ध भी देखूँ। कई करोड़ नौजवान इन दो युद्धों में मरे हैं। जब मैं छोटा-सा लड़का था तो तमाम सैनिक 1914 और 1918 के बीच दक्षिण अफ्रीका में उस साम्राज्यवादी युद्ध में खप रहे थे जो तमाम युद्धों को खत्म करने के नाम पर लड़ा जा रहा था। 1939 से 1945 के दौरान फासीवाद को खत्म करने के नाम पर वे जान गँवा रहे थे। कल वे शायद साम्यवाद के दमन के नाम पर मरें। इस सबका मतलब यह है कि कुछ केन्द्रीय ताकतों के हुक्म पर, लोग उन मुद्दों के नाम पर अपने और अपने बच्चों के जीवन की आहुति दे डालते हैं, जो उनके व्यक्तिगत जीवन को छूते तक नहीं हैं।

अगर हम राजनीतिज्ञों, व्यापारियों या शोषकों के मोहरे बने रहे तो हम जीवन विरोधी और मृत्यु प्रेमी ही रहेंगे। हम मोहरे इस अर्थ में हैं कि हमें जीवन को नकारात्मक रूप में तलाशने को प्रशिक्षित किया गया है। हमें प्रशिक्षित किया गया है कि हम निरीह भाव से सत्ता-लोलुप समाज के अनुरूप खुद को ढालते चलें। अपने मालिक के हुकुम पर, उसके आदर्शों के लिए जान गँवाने को तैयार रहें। रूमानी उपन्यासों में ही लोग प्रेम के नाम पर जान देते हैं। वास्तविक जीवन में लोग घृणा के लिए मरते हैं।

यह तो था भीड़ का पक्ष। पर व्यक्तिगत रूप से भी मानव अपने रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में जीवन विरोधी है। उसका वैवाहिक जीवन असन्तोषजनक होता है, उसकी सारी मौज-मस्ती घटिया किस्म की और सच्चाई से भागने की होती है। वह नैतिकता का नाड़ा पकड़े रहता है, हर तरह की स्वाभाविकता को वह गलत या अपर्याप्त मानता है। और यही सब वह अपने बच्चों को भी सिखाता है।

जीवन प्रेमी बच्चे में शारीरिक सुख या पढ़ने-लिखने के प्रति, ईश्वर, शिष्टाचार या सौम्य व्यवहार के प्रति अपराध-बोध पैदा नहीं किया जा सकता। जो माता-पिता या शिक्षक जीवन प्रेमी हैं वे अपने बच्चों को मारते-पीटते नहीं हैं। कोई जीवन प्रेमी नागरिक हमारी दण्ड संहिता को, फाँसी की सज़ा को, समलैंगिकों को दी जाने वाली सज़ाओं को, गैर-कानूनी औलाद के प्रति हमारे दृष्टिकोण को झेल ही नहीं

सकता। कोई भी जीवन-प्रेमी इन्सान गिरजे में बैठकर यह घोषणा नहीं कर सकता कि वह एक अधम पापी है।

मैं साफ कर दूँ कि मैं स्वेच्छाचारिता का हिमायती नहीं हूँ। मेरे लिए चीज़ों को जाँचने का सीधा-सा तरीका है। *जो अगला आदमी कर रहा है, क्या वह सच में किसी दूसरे को नुकसान पहुँचाने वाला है?* अगर इस सवाल का जवाब नकारात्मक मिलता है तो आपत्ति उठाने वाला इन्सान जीवन विरोधी है।

इस तरह दूसरा पक्ष प्रस्तुत करते समय कहा जा सकता है कि युवावर्ग जब नाचता-गाता है, खेलता-कूदता है, घूमने फिरने या फिल्में देखने, संगीत सभा में या नाटकों में जाता है, तो अपना जीवन प्रेम प्रदर्शित करता है। इस तर्क में दम है। क्योंकि युवावर्ग हमेशा उस सबकी चाहना रखता है जो जीवन प्रेमी है। वे इस कदर जीवन्त और आशावादी होते हैं कि सत्ता के हज़ार दमन के बावजूद अपनी मौज-मस्ती तलाश लेते हैं। उम्र के साथ यह भावना बनी रहती है, पर व्यक्ति का नज़रिया अस्पष्ट बनता जाता है। वह मौज-मस्ती चाहता तो है, पर उससे डरता भी है।

जब मैं किसी को *जीवन विरोधी* कहता हूँ तो मेरा मतलब यह नहीं कि वे मृत्यु तलाशते हैं। मेरा मतलब यह है कि वे जीने से ज़्यादा डरते हैं, और मौत से कम। जीवन विरोधी होने का अर्थ मौत के पक्ष में होना भी नहीं है। जीवन विरोधी होने का मतलब है सत्ता के पक्ष में, गिरजे द्वारा बनाए गए धर्म के पक्ष में, दमन के पक्ष में, शोषण के पक्ष में होना। या कम से कम इनसे नियंत्रित होना।

मैं बात समेटकर कहता हूँः जीवन हितैषी होने का मतलब है आनन्द, खेल-कूद, प्रेम, रोचक काम, पसन्दीदा गतिविधियाँ, हँसी, संगीत, नृत्य, दूसरों का खयाल रखना और मानव में आस्था रखना। जीवन-विरोधी होने का अर्थ है- दायित्व, आज्ञापालन, लाभ और सत्ता के पक्ष में होना। मानव इतिहास में हमेशा ही जीवन विरोधी तत्व जीतते रहे हैं, और आगे भी तब तक जीतते रहेंगे जब तक हम अपने युवा वर्ग को वर्तमान वयस्कों की अवधारणाओं के अनुरूप ढालते रहेंगे।

सवाल : *क्या आप यह नहीं मानते कि अगर दुनिया के करोड़ों-करोड़ लोगों की आर्थिक समस्याओं का समाधान हो जाए तो मानवता की अधिकांश तकलीफें दूर हो जाएँगी?*

यह अहसास बड़ा असन्तोषजनक है कि हमारा घरेलू और स्कूली प्रशिक्षण अधिकांश लोगों को बेहद उबाऊ ज़िन्दगी की दिशा में ले जाता है। सच है कि दुकानों और दफ्तरों के निहायत उबाऊ काम भी आवश्यक हैं। पर जो कतई अनावश्यक है, वह है उन लोगों की मुर्दानगी जो अपनी काम की मेज़ों या बिक्री काउन्टरों से घृणा करते हैं। जिन्हें अतृप्त भावनाओं को शान्त करने के लिए बेहूदी

फिल्में, कुत्ता दौड़, घटिया पत्रिकाओं और सनसनीखेज़ समाचार पत्रों का सहारा लेना पड़ता है।

बड़ी गाड़ियों के करोड़पति मालिकों का आंतरिक जीवन कुलियों से अधिक सुखी नहीं होता। मेरा जवाब यह है कि अगर व्यक्ति की आत्मा जीवन-विरोधी, प्रेम-विरोधी हो तो वह आर्थिक सुविधाओं या सुरक्षा का सुख भी नहीं भोग सकता। गरीब और अमीर दोनों में ही एक बात समान होती है, वह यह कि दोनों ही एक ऐसी दुनिया के लिए तैयार किए जाते हैं जहाँ प्रेम को नापसन्द किया जाता है, जो प्रेम से डरता है, और जो प्रेम को एक अश्लील मज़ाक बना डालता है।

कई लोग जो यह मानते हैं कि दुनिया के अधिकांश लोग दुखी हैं, वे यह कहेंगे कि अगर आर्थिक समस्याओं का समाधान कर दिया जाए तो ज़िन्दगी सन्तोषजनक और आज़ाद बन जाएगी। मैं इस बात में विश्वास नहीं कर पाता। हमने आर्थिक मुक्ति की जितनी झलक देखी है वह खास उत्साहजनक नहीं है। ज़रूरी नहीं है कि हर घर में सुविधा-सम्पन्न रसोईघर उपलब्ध करवाने वाली आर्थिक मुक्ति, खुशहाली और ज्ञान की दिशा में ले ही जाएगी। हाँ, उससे कुछ सुविधा ज़रूर हासिल होती है जो कुछ समय बाद यांत्रिक रूप से स्वीकार ली जाती है। उसका भावनात्मक मूल्य तब खो जाता है।

चरित्र-निर्माण के हमारे तौर-तरीकों ने इंग्लैण्ड को भौतिक रूप से सफल देश ज़रूर बनाया है। हमारा जीवन स्तर उनके कारण बढ़ा है। पर हमारी सफलता यहीं तक सीमित है। ज़्यादातर लोग आज भी दुखी हैं। जी नहीं, अकेले आर्थिक समाधान से दुनिया का दुख, उसके अपराध, उसके कलंक, मनोरोग और बीमारियाँ खत्म नहीं होंगे।

सवाल : *दुखी दाम्पत्य का हमें क्या करना चाहिए?*

कुछ मध्यमवर्गीय माता-पिता ऐसी स्थिति में मनोविश्लेषण का सहारा लेते हैं जिससे अक्सर विवाह टूटते हैं। पर विश्लेषण अधिक सफल हो जाएँ तो भी हम दुनिया भर का विश्लेषण नहीं कर सकते। व्यक्तियों के इलाज के नाम पर जो कुछ किया जाता है वह छुट-पुट स्तर पर है और उसका आम जनता पर कोई असर नहीं पड़ता।

मानवता के लिए एक ही समाधान है। वह है बच्चों का सही तरह पालन-पोषण, न कि मनोरोगियों का इलाज करना। मुझे स्वीकारना पड़ेगा कि आज की वैवाहिक समस्याओं को सुलझाने का मेरे पास कोई जवाब नहीं है। यह सोचना बड़ा तकलीफदेह है कि श्री और श्रीमती ब्राउन साथ-साथ एक दुखद जीवन इसलिए बिता रहे हैं क्योंकि उनका पालन-पोषण जीवन विरोधी वातावरण में हुआ था। पर सच्चाई यह है कि इस बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता।

यह बात निराशावादी लग सकती है। पर आशावादी हम केवल तब बन सकते हैं जब हम अपने बच्चों की परवरिश इस तरह करें कि वे सेक्स और जीवन से नफरत न करें। जब-जब मैं किसी बच्चे की पिटाई देखता हूँ, यह देखता हूँ कि उससे झूठ बोला जा रहा है, एक ऐसा बच्चा देखता हूँ जो खुद के नग्न शरीर से शर्माता है, मैं इस दुखद अहसास से भर जाता हूँ कि ऐसा बच्चा बड़ा होकर घृणित पति या पत्नी में बदलेगा।

सवाल : *क्या आप ज़रूरी मानते हैं कि पति-पत्नी का बौद्धिक स्तर एक-सा होना चाहिए?*

विवाह में बौद्धिक पक्ष गौण होता है। दिमागों का मेल उबाऊ और ठण्डा मामला है। पर जहाँ दिल जुड़ते हैं वहाँ गर्मी होती है। एक दूसरे को देने का भाव पनपता है। प्रकृति एक स्त्री और पुरुष को उनकी बौद्धिक क्षमता के कारण प्रेमपाश में नहीं बाँधती। पर बाद में जब काम भावना कमज़ोर पड़ती है तो बौद्धिक रुचियों की समानता हो तो दम्पत्ति खुश रहते हैं। सुखी दाम्पत्य के लिए एक नुस्खा शायद असरदार रहता है। वह है एक सी विनोदी प्रवृत्ति।

सवाल : *सेक्स को लेकर चिन्ताओं का क्या कारण है? आजकल इतने नौजवान आत्महत्या क्यों करते हैं?*

मुझे शंका है कि कोई भी बच्चा सेक्स की फिक्र करता है। बाहरी सतह पर जो चिन्ताएँ नज़र आती हैं उसका स्रोत कहीं गहरा है। ये चिन्ताएँ काम भावनाओं को लेकर पाप के अहसास से जन्मती हैं। जिन बच्चों में हस्तमैथुन को लेकर अपराध-बोध नहीं जगाया जाता वे तेज़ और उत्साही होते हैं।

स्टैकल का कहना था, "आत्महत्या भी अन्तिम यौन क्रिया है।" जिस बच्चे में काम भावनाओं का दमन किया जाता है वह अपने शरीर और आत्मा से घृणा करने लगता है। उसके लिए आत्महत्या एक तार्किक प्रतिक्रिया होती है। अगर शरीर इतना ही घृणास्पद है तो जितनी जल्दी उससे छुटकारा पाया जाए उतना ही अच्छा है।

सवाल : *सामाजिक कार्यकर्ताओं के बारे में आपकी क्या राय है?*

जो सामाजिक कार्यकर्ता झुग्गी बस्तियों के समस्याग्रस्त बच्चों के घरों में जाते हैं उनकी मैं श्रद्धा करता हूँ। वे बेहतरीन काम करते हैं। पर सवाल यह है कि क्या उनका काम गहराई में जाता है?

उनसे यह अपेक्षा तो कोई नहीं करता कि वे उन बच्चों के माता-पिता का मनोविश्लेषण करें। यह भी सभी जानते हैं कि उनका काम निहायत मुश्किल है। वे उन झुग्गी बस्तियों को गायब भी नहीं कर सकते जो बच्चों को असामाजिक

बनाती हैं। न ही वे उन नासमझ माता-पिता को बदल सकते हैं जो गलत खान-पान द्वारा या सेक्स को एक छिपाने वाली अश्लील क्रिया के रूप में प्रस्तुत करके अपने बच्चों का विकास अवरुद्ध करते हैं।

समाज कल्याण के काम में जुड़े कार्यकर्ता सच में नायक-नायिका ही हैं। वे कोशिश करते हैं कि पीड़ित बच्चों को उनके खराब पारिवारिक जीवन की खामियों से उबार सकें। अगर ऐसे किसी कार्यकर्ता का आज़ादी में पक्का और पूरा विश्वास हो, तो भी वह झुग्गी बस्ती के उस घर में उन सिद्धान्तों को कैसे लागू करेगा? क्या उनमें से कोई किसी औरत से यह कह सकेगा, "देवीजी आपका बेटा इसलिए चोरी करता है क्योंकि उसका शराबी बाप उसे आए दिन पीटता है। इसलिए भी क्योंकि जब वह दो साल का था तब आपने उसे अपने शिश्न को छूने पर पीटा था। इसलिए भी कि आपने कभी उसके प्रति प्यार नहीं जताया।" क्या वह माँ यह सब समझ सकेगी?

मैं यह नहीं कहता कि माँ को फिर से शिक्षित नहीं किया जा सकता। पर इतना ज़रूर कहता हूँ कि एक सामाजिक कार्यकर्ता या किसी दूसरे व्यक्ति की बातचीत से स्थिति को बदला नहीं जा सकता। इन स्थितियों में समस्या का एक हिस्सा आर्थिक है। इसलिए झुग्गी बस्तियों के उत्थान द्वारा समस्याओं को जड़ से हटाने के कदम उठाने होंगे।

समरहिल के बारे में

सवाल : *समरहिल प्रणाली में बच्चे की इच्छाशक्ति कैसे विकसित होती है? अगर उसे हमेशा मनमर्ज़ी से चलने दिया जाए तो उसमें स्वनियंत्रण कैसे पनपेगा?*

समरहिल में बच्चे को हमेशा मनचाहा करने की छूट *नहीं* मिलती। बच्चों द्वारा बनाए गए नियम ही उन्हें चारों ओर से सीमा में बाँधते हैं। उसे केवल वही चीज़ें अपनी मर्ज़ी से करने दी जाती हैं जो केवल *उसे* प्रभावित करती हैं, किसी दूसरे को नहीं। वह चाहे तो सारे दिन खेल सकता है क्योंकि पढ़ना और खेलना सिर्फ उसे प्रभावित करते हैं। पर उसे कक्षा में पुंगी बजाने की छूट नहीं होती क्योंकि ऐसा करना दूसरों को भी प्रभावित करेगा।

इच्छाशक्ति भला है क्या? मैं दृढ़ संकल्प करूँ तो तम्बाकू पीना छोड़ सकता हूँ। पर इच्छाशक्ति से प्रेम नहीं कर सकता, न ही वनस्पतिशास्त्र का विषय पसन्द करने लग सकता हूँ। कोई भी व्यक्ति संकल्प कर खुद को अच्छा या फिर बुरा व्यक्ति ही बना सकता है।

किसी व्यक्ति को दृढ़ इच्छाशक्ति वाला इन्सान बनने के लिए प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता। अगर आप बच्चों को आज़ादी में शिक्षित करते हैं तो उन्हें स्वयं के प्रति अधिक सजग ज़रूर बना सकते हैं क्योंकि आज़ादी से अवचेतन मन की ज़्यादातर चीज़ें चेतन स्तर पर उभर आती हैं। यही कारण है कि समरहिल के बच्चों में जीवन को लेकर शंकाएँ कम होती हैं। उन्हें *पता होता है* कि वे दरअसल क्या चाहते हैं। और मुझे लगता है कि वे उसे हासिल भी कर पाते हैं।

ध्यान रहे कि जिसे हम अक्सर कमज़ोर इच्छाशक्ति कहते हैं, वह दरअसल अरुचि का संकेत होता है। कोई भी कमज़ोर इन्सान, जिसे रुचि के बिना भी टैनिस खेलने पर बाध्य किया जा सकता है, दरअसल एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी खुद की रुचियों को ही नहीं जानता। गुलामी थोपने वाला अनुशासन ऐसे व्यक्ति को हमेशा कमज़ोर इच्छाशक्ति वाला और निरुपाय बनाए रखता है।

सवाल : *अगर समरहिल में बच्चा कोई खतरनाक काम करता है तो क्या आप इसकी इजाज़त देते हैं?*

बिल्कुल नहीं। एक बात लोग अक्सर नहीं समझते कि बच्चों को आज़ादी देने का अर्थ यह कतई नहीं होता कि उन्हें बेवकूफी करने की छूट मिले। हम अपने छोटे बच्चों को उनके सोने का समय खुद तय नहीं करने देते। हम उन्हें मशीनों, गाड़ियों, टूटे काँच या गहरे पानी के खतरों से बचाते हैं। किसी बच्चे को ऐसी कोई ज़िम्मेदारी नहीं सौंपी जानी चाहिए जिसे निभाने के लिए वह तैयार न हो। पर एक बात ध्यान रहे कि बच्चे जिन खतरों का सामना करते हैं उनमें से ज़्यादातर गलत शिक्षा का नतीजा होते हैं। जो बच्चा आग के साथ खतरनाक हरकतें करता है उसे आग की सच्चाई जानने से दरअसल रोका गया है।

सवाल : *क्या समरहिल के बच्चों को घर की याद सताती है?*

मैंने पाया है कि जब कभी कोई दुखी माँ किसी नए बच्चे को समरहिल लाती है तो बच्चा उससे लिपटकर ज़ारज़ार रोता है, घर वापस ले जाने की माँग करता है। मैंने यह भी पाया है अगर बच्चा जी भरकर चीखे-चिल्लाए नहीं तो माँ झल्लाती है। वह *चाहती* है कि उसके बच्चे को घर की याद आए। जितनी बार घर को याद करेगा, सिद्ध होगा कि बच्चा उससे उतना ही प्यार करता है। अक्सर माँ के जाने के पाँच मिनट बाद ही वह बच्चा खुशी से खेलता नज़र आता है।

यह कहना कठिन है कि एक दुखी घर से आए बच्चे को स्कूल शुरू करते समय घर की क्यों याद आती है। सम्भावना तो यही है कि घर में उसे दुश्चिन्ताएँ घेरे रहती होंगी। वह शायद यह सोचता हो कि इस समय घर में क्या हो रहा है? ऐसा सोचने का कारण यह हो सकता है कि उसकी माँ, जिसे अपने पति का स्नेह नहीं मिलता, अपना पूरा प्यार या घृणा बच्चे की ओर उड़ेलती है।

घर की बेहद याद आना अमूमन इस बात का सूचक है कि बच्चे का घर अच्छा नहीं है, ऐसा घर है जहाँ घृणा अधिक है। बच्चे को घर की कमी इसलिए नहीं अखरती कि वहाँ प्रेम है, बल्कि इसलिए कि वहाँ तकरार है और उसे सुरक्षा भी मिलती है। इसमें विरोधाभास की ध्वनि आती है, लेकिन वह है नहीं। ध्यान रहे कि घर जितना दुखी होगा बच्चा उतना ही संरक्षण तलाशेगा। उसके जीवन को स्थिरता देने वाली कोई चीज़ नहीं है। इसीलिए वह उस चीज़ में स्थायित्व तलाशता है जिसे वह 'घर' कहता है। घर से दूर रहने पर वह मन में उसकी एक आदर्श छवि बनाता है। उसे अपने घर की नहीं, उस घर की याद सताती है जिसकी उसके मन में *लालसा* है।

सवाल : *क्या आप समरहिल में कमज़ोर बच्चों को भी दाखिला देते हैं?*

बेशक। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप किसे कमज़ोर या पिछड़ा कहते हैं। हम मानसिक रूप से विकलांग बच्चों को नहीं लेते। पर स्कूल में जिन्हें पिछड़ा हुआ कहा जाता है, उनका किस्सा दरअसल कुछ दूसरा ही होता है।

समरहिल के पिछड़ेपन के मानदण्डों का परीक्षाओं, जोड़ बाकी या अंकों से कोई लेना-देना नहीं है। कई बार पिछड़ेपन का बस इतना भर अर्थ होता है कि बच्चे के अन्तस में एक अचेतन द्वन्द्व है या फिर उसे अपराध-बोध घेरे हुए है। अगर वह लगातार इस सवाल का सामना कर रहा हो कि, **'**मैं सच में दुष्ट हूँ या नहीं?**'** तो वह गणित या इतिहास में रुचि भला कैसे ले सकता है?

मैं इस सवाल का जवाब निजी अहसास के साथ देता हूँ क्योंकि बचपन में मैं सीखने में कोई रुचि नहीं लेता था। मेरी जेबों में लोहे या पीतल के टुकड़े या पुर्ज़े भरे रहते थे। मेरी नज़रें पाठ्यपुस्तक पर होतीं पर मन हमेशा कलपुर्ज़ों में भटकता था। मैंने बिरले ही कोई कमज़ोर लड़के या लड़की को देखा है जिसमें रचनात्मक काम करने की क्षमताएँ न हों। और फिर स्कूली विषयों में प्रगति के आधार पर किसी छात्र या छात्रा को पिछड़ा मानना न केवल निरर्थक है बल्कि घातक भी है।

सवाल : *अगर कोई बच्चा स्कूल की आम सभा द्वारा लगाए गए जुर्माने को न भरे तो क्या किया जाता है?*

बच्चे ऐसा कभी नहीं करते हैं। पर हाँ, अगर उन्हें यह लगे कि उनके साथ अन्याय हुआ है तो शायद वे ऐसा करें। पर हमारे यहाँ अपील की प्रणाली है जो इस अन्याय के भाव से निपटने में मदद करती है।

सवाल : *आप कहते हैं कि समरहिल के बच्चों के दिमाग बड़े स्वच्छ हैं। इससे आपका मतलब क्या है?*

स्वच्छ दिमाग का मतलब है वह व्यक्ति जिसे किसी बात से धक्का न पहुँचे। धक्का पहुँचने का मतलब है कि कुछ भावनाओं का दमन किया गया है। क्योंकि जो चीज़ इतना चौंका देती है उसमें बेहद रुचि जागती है।

विक्टोरियन युग में महिलाएँ पैर का नाम सुनते ही चौंक जाती थीं। ज़ाहिर है कि पैर से जुड़ी चीज़ों में उनकी असामान्य रुचि थी। पैर उनके लिए यौन से जुड़े थे। और यौन भावनाओं की बातचीत को लेकर तमाम वर्जनाएँ थीं। इसलिए समरहिल में जहाँ यौन या काम भावनाओं को पाप की धारणा से जोड़कर नहीं देखा जाता बच्चे इन विषयों पर गुपचुप बातें नहीं करते। यहाँ गन्दी फुसफुसाहट नहीं होती। हमारे बच्चे जिस तरह शेष सभी चीज़ों के बारे में संजीदा हैं, उतने ही संजीदा वे इन तथाकथित वर्जित बातों में भी हैं।

सवाल : *सात साल का विली जब समरहिल में पहला सत्र बिताकर आया तो उसकी भाषा इतनी खराब हो चुकी थी कि पड़ोसियों ने अपने बच्चों को उससे खेलने से ही मना कर दिया। इस बारे में मैं क्या करूँ?*

विली के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है, दुखदायी है। पर विकल्प क्या है? अगर आपके पड़ोसी *साला* या *जाहिल* से सकते में आ जाते हैं तो उन्होंने अपने आप को बेहद दबाकर रखा हुआ है। ऐसे लोगों से विली का दूर रहना ही बेहतर है।

सवाल : *समरहिल के बच्चे फिल्मों के बारे में क्या सोचते हैं?*

वे सभी तरह की फिल्में देखते हैं। हमारे यहाँ कोई सैंसरशिप नहीं है। इसका नतीजा यह होता है कि जिस समय वे स्कूल से निकलते हैं, तब तक फिल्मों के बारे में उनकी समझ अच्छी हो जाती है। अक्सर बड़े बच्चे यह कहकर फिल्म देखने जाने से मना कर देते हैं कि फिल्म खास मज़ेदार नहीं लग रही। बड़े बच्चों ने फ्रांस, इटली और जर्मनी की तमाम फिल्में देख रखी हैं और वे हॉलीवुड की बनी औसत फिल्मों की आलोचना करते हैं। छोटे बच्चे प्रेम कथाओं की फिल्में देखना पसन्द नहीं करते।

सवाल : *जो बच्चा पलटकर जवाब दे, ज़बान लड़ाए, उसका क्या किया जाए?*

समरहिल के बच्चे बदतमीज़ी से पलटकर जवाब नहीं देते। बच्चा ऐसा तभी करता है जब कोई 'सम्माननीय व्यक्ति' उसे निहायत नीचा मानकर पेश आता है। समरहिल में हम बच्चों की भाषा ही बोलते हैं। अगर कोई शिक्षक पलटकर जवाब देने की शिकायत करे, तो हम समझ जाएँगे कि वह बेकार है।

सवाल : *जो बच्चा दवा न ले उसका आप क्या करते हैं?*

मैं नहीं जानता। समरहिल में कोई ऐसा बच्चा नहीं रहा जो अपनी दवा नहीं लेना चाहता हो। हमारे यहाँ खाना-पीना संतुलित होता है सो बीमारी समस्या नहीं है।

सवाल : *क्या समरहिल के बड़े बच्चे अपने से छोटे बच्चों का ध्यान रखते हैं?*

जी नहीं। छोटे बच्चों पर ध्यान देने की कोई ज़रूरत नहीं होती। वे अपने ही ज़रूरी मामलों में उलझे रहते हैं।

सवाल : *क्या समरहिल में कभी अश्वेत बच्चे भी पढ़ने आए हैं?*

हाँ, हमारे यहाँ दो अश्वेत बच्चे थे। और जहाँ तक हमने देखा, दूसरे बच्चे उनकी चमड़ी के रंग के प्रति सचेत नहीं थे। एक अश्वेत बच्चा कुछ दादा किस्म का था। बच्चे उसे नापसन्द करते थे। पर दूसरा बड़ा लोकप्रिय था।

सवाल : *क्या समरहिल में बॉय स्काउट हैं?*

नहीं, मुझे नहीं लगता कि हमारे बच्चे हर दिन एक भला काम करने के विचार को हज़म भी कर पाएँगे। हर दिन सचेत होकर एक 'भला काम' करने में बनावटीपन की बू आती है। बॉय स्काउट आन्दोलन में कई अच्छी बातें हैं, पर नैतिक उत्थान, सही-गलत और शुद्धता के बुर्जुआ विचारों से इसे काफी नुकसान पहुँचा है।

अपने स्कूल में बॉय स्काउटों पर मैंने कोई मत कभी ज़ाहिर नहीं किया है। दूसरी ओर किसी बच्चे ने भी उसमें कोई रुचि नहीं दर्शाई है।

सवाल : *एक धार्मिक पारिवारिक परिवेश में पले बच्चे के बारे में आपकी क्या राय है? क्या आप समरहिल में बच्चों को अपना धर्म पालन करने की इजाज़त देते हैं?*

जी हाँ, बच्चा बिना डर, बिना शिक्षकों या बच्चों की टीका-टिप्पणी के ऐसा कर सकता है। पर मैंने पाया है कि मुक्त वातावरण में बच्चे धार्मिक क्रियाएँ या प्रार्थना आदि करना ही नहीं चाहते।

कुछ नए बच्चे चन्द इतवार तक गिरजा जाते हैं और फिर जाना बन्द कर देते हैं। गिरजा बेहद उबाऊ है। मुझे ऐसा कोई संकेत नहीं मिला है कि बच्चों में पूजा-अर्चना की वृत्ति स्वाभाविक रूप से होती है। जब पाप की भावना धुल जाए तो प्रार्थना का इस्तेमाल भी नहीं होता।

धार्मिक परिवारों के बच्चे अमूमन पूरी तरह ईमानदार नहीं होते। वे दमित होते हैं। किसी भी ऐसी धार्मिक प्रणाली में ऐसा ही होना है, जहाँ जीवन के प्रति प्रेम का मूल भाव नष्ट हो गया और जो अपना पूरा ध्यान मौत के डर पर केन्द्रित रखता हो। बच्चों में खुदा का खौफ तो बैठाया जा सकता है, उसके प्रति प्रेम नहीं। आज़ाद बच्चों को धर्म की दरकार इसलिए नहीं होती क्योंकि उनका जीवन आध्यात्मिक रचनात्मकता से भरपूर होता है।

सवाल : *क्या समरहिल के बच्चे राजनीति में रुचि लेते हैं?*

नहीं। शायद इसलिए क्योंकि वे सभी मध्यवर्गीय परिवारों से हैं जिन्होंने कभी गरीबी का अनुभव नहीं किया है। मैंने नियम बनाया है कि कोई भी शिक्षक बच्चों को राजनीतिक रूप से प्रभावित नहीं करेंगे। धर्म की तरह राजनीति भी व्यक्तिगत चुनाव का मामला है। बच्चे को बड़े होकर यह चुनाव खुद करना चाहिए। यहाँ का कोई छात्र प्रधानमंत्री बन जाए तो मैं समरहिल को एक असफल स्कूल समझूँगा।

सवाल : *क्या समरहिल के छात्र बाद में सेना में भी गए हैं?*

अब तक केवल एक छात्र ही वायु सेना में गया है। सम्भव है कि आज़ाद बच्चों को सेना निहायत रचनात्मकता विहीन लगती हो। आखिर युद्ध का मतलब है विनाश। समरहिल के बच्चे शायद अपने देश के लिए उसी सहजता से लड़ें जैसे दूसरे बच्चे, पर सम्भव है कि वे यह साफ-साफ समझना चाहें कि आखिर वे लड़ किसलिए रहे हैं। हमारे पूर्व छात्रों ने द्वितीय विश्व युद्ध में हिस्सा लिया और कुछ ने अपनी जान भी दी।

सवाल : *आपके स्कूल में लड़के-लड़कियाँ अलग-अलग कमरों में क्यों सोते हैं?*

समरहिल इंग्लैण्ड में स्थित है। और उसे यहाँ के कानूनों और सामाजिक व्यवहारों को मानना ही होता है।

बच्चों के पालन के विषय में

सवाल : *जो माता-पिता आपकी किताबें पढ़ते हैं या आपके भाषण सुनते हैं, क्या वे कुछ बातें समझने के कारण अपने बच्चों से भिन्न और बेहतर व्यवहार करते हैं? क्या माता-पिता को अधिक जानकारी दी जाए तो क्षतिग्रस्त बच्चों का इलाज हो सकेगा?*

जिस माँ में स्वामित्व का भाव बेहद ज़्यादा है वह इस किताब को पढ़कर अपराध-बोध से भर सकती है। वह झल्लाकर कह सकती है मेरा खुद पर बस नहीं चलता। मैं अपने नन्हें का जीवन बर्बाद नहीं करना चाहती। आपके लिए परेशानी को पहचानना बड़ा आसान है, पर इसका इलाज आखिर क्या है? वह सच ही कहती है।

इलाज *भला क्या है*? या कहें क्या इलाज *है भी*। यह सवाल बड़ा टेढ़ा है।

जिस महिला का जीवन उबाऊ हो, तमाम किस्म के खौफों से भरा हो, उसका क्या इलाज हो सकता है? ऐसे पुरुष का क्या इलाज है जो अपने बदतमीज़ बेटे को फन्ने खाँ समझता हो? पर इससे भी टेढ़ा सवाल यह है कि उस माँ या पिता का क्या इलाज है जो अपने कृत्यों से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं? और अगर उन्हें सुझाया जाए कि वे कुछ गलत कर रहे हैं तो वे भड़क उठते हैं।

अकेले जानकारी से कुछ नहीं होता। जब तक माता-पिता इस ज्ञान को स्वीकारने हेतु *भावनात्मक रूप से तैयार न हों* और उनमें यह क्षमता न हो कि नए ज्ञान के अनुरूप कुछ कर सकें, तब तक कुछ नहीं हो सकता।

सवाल : *आप बच्चे के खुश रहने की ज़रूरत पर इतना क्यों बोलते हैं? क्या सच में कोई भी सुखी है?*

यह सवाल बड़ा टेढ़ा है, क्योंकि शब्द बड़ा भरमाते हैं। यह सच है कि हममें से कोई भी हमेशा सुखी नहीं रहता। हमारे दाँतों में दर्द हो सकता है, हमारा प्रेम प्रसंग खटाई में पड़ सकता है, हमें अपना काम बेहद उबाऊ भी लग सकता है।

सुख शब्द का अगर कोई अर्थ है तो वह है आन्तरिक कल्याण का बोध। एक संतुलन का अहसास। जीवन से संतोष का भाव। ये तमाम भाव तभी होते हैं जब व्यक्ति आज़ादी का अनुभव करता है।

सवाल : *आज़ाद बच्चों के चेहरे भयमुक्त होते हैं। अनुशासित बच्चे दबे, दुखी और सहमे-सहमे लगते हैं।*

सुख को हम एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसमें दमन का अहसास कम से कम हो। एक सुखी परिवार ऐसे घर में रहता है जहाँ प्यार बसता हो। दुखी परिवार तनावग्रस्त रहता है।

मैं सुख को सबसे महत्वपूर्ण इसलिए मानता हूँ क्योंकि मैं विकास को सबसे ज़रूरी मानता हूँ। आज़ादी और सन्तुष्टि के भाव के साथ दशमलव के भिन्न से बेखबर रहना बेहतर है, न कि स्कूली परीक्षाएँ दे चेहरे को मुहाँसों से भर लेना। मैंने किसी भी प्रसन्न और आज़ाद बच्चे के चेहरे पर मुहाँसे नहीं देखे हैं।

सवाल : *अगर किसी बच्चे को पूरी आज़ादी दी जाए तो उसे यह अहसास होने में कितना समय लगेगा कि स्व-अनुशासन जीने के लिए बेहद ज़रूरी है? या उसे यह अहसास कभी होगा भी या नहीं?*

पूरी आज़ादी जैसी कोई चीज़ होती ही नहीं है। जो कोई किसी को हर समय उसकी मनमर्ज़ी करने देता है, वह एक खतरनाक डगर पर बढ़ रहा है।

किसी भी इन्सान को पूरी सामाजिक आज़ादी नहीं होती क्योंकि हरेक को दूसरों के अधिकारों का भी सम्मान करना पड़ता है। पर व्यक्तिगत आज़ादी हरेक को मिलनी चाहिए। साफ-साफ कहें तो यूँ कि किसी को यह अधिकार नहीं कि वह किसी बच्चे को लैटिन पढ़ने पर मजबूर करे। इसलिए क्योंकि यह व्यक्तिगत चुनाव की बात है। पर अगर लैटिन भाषा की कक्षा चल रही हो और उसमें कोई हर समय गड़बड़ करे तो उसे कक्षा से बाहर कर देना चाहिए क्योंकि तब वह दूसरों की आज़ादी में बाधा पहुँचा रही होगी।

जहाँ तक स्व-अनुशासन की बात है तो वह कुछ अस्पष्ट-सी चीज़ है। क्योंकि अक्सर इसका मतलब होता है वयस्कों द्वारा लादे गए नैतिक विचारों के अनुसार खुद को अनुशासित करना। जो वास्तविक स्व-अनुशासन है उसमें *न तो* दमन

होता है, *न ही* दूसरों के विचारों की स्वीकृति। उसमें दूसरों के अधिकारों और खुशी का पर्याप्त सम्मान होता है। यह व्यक्ति को उस दिशा में ले जाता है जहाँ वह दूसरों के नज़रिए के सम्मान में कुछ चीज़ें समझबूझकर त्यागता है, ताकि वह सबके साथ शान्ति से रह सके।

सवाल : *क्या आप सच में मानते हैं कि स्वभाव से आलसी लड़के को अपनी ढीली-ढाली चाल से जो चाहे करने देना और यों समय बर्बाद करने देना चाहिए? जब उसे पढ़ाई लिखाई करना ही नापसन्द हो तो आप उसे काम पर कैसे लगाते हैं?*

सच यह है कि आलस बच्चों में होता ही नहीं। आलसी बच्चा या तो शारीरिक रूप से बीमार है या उसकी उन कामों में कोई रुचि नहीं है जो वयस्कों को लगता है उसे करने चाहिए।

मैंने ऐसा कोई बच्चा नहीं देखा जो बारह साल की उम्र से पहले समरहिल आया हो और जिसे आलसी कहा जा सकता हो। हाँ, दूसरे अनुशासित स्कूलों से आने वाले बच्चे समरहिल में 'आलसी' बने रहते हैं, जब तक वे अपनी शिक्षा-दीक्षा से पूरी तरह उबर नहीं जाते। मैं उन्हें कभी भी ऐसे काम पर नहीं लगाता हूँ जो उन्हें नापसन्द हो या जिसके लिए वे तैयार न हों। हमारे आपकी ही तरह उसे भी बाद में तमाम ऐसे काम करने पड़ेंगे जो उसे सख्त नापसन्द हैं। पर अगर उसे इस समय अपने खेल-कूद का चरण भरपूर जी लेने दिया जाए तो वह बाद में हर तरह की परेशानी का सामना कर सकेगा। जहाँ तक मुझे पता है, समरहिल के किसी भी पूर्व छात्र पर आलसी होने का आरोप नहीं लगाया गया है।

सवाल : *क्या आपको लगता है कि बच्चों को दुलारा-पुचकारा जाना चाहिए?*

जब मेरी बिटिया ज़ोई बहुत छोटी थी वह दरवाज़े के बन्द होने की आवाज़ से एक बार चौंक गई और रोने लगी। मेरे पत्नी ने उसे गोदी में उठाया और प्यार से गले लगाया। उसे कुछ ऐसे पकड़ा कि वह हाथ-पैर मार सके।

जब भी बच्चे में किसी तरह की जकड़न दिखाई दे तो माता-पिता को उसके साथ खेलना चाहिए। यह खेल ऐसा हो जिससे वह अपनी माँसपेशियाँ हिलाए-डुलाए। चार-पाँच साल के बच्चों के साथ नकली कुश्ती बड़ी असरकार रहती है। इस कुश्ती में मैं हमेशा हारता हूँ। इसी तरह भावनात्मक या शारीरिक जकड़न को खत्म करने में ज़ोर से हँसना भी असरकारी रहता है। स्वस्थ बच्चे किलकारी भरते हैं, खूब हँसते हैं। पसलियों के पास गुदगुदी बच्चों को खुश करती है। हाँ, यहाँ यह भी बताना ज़रूरी है कि कुछ बाल-मनोवैज्ञानिक बच्चे को ज़्यादा छूने के विरुद्ध हैं। उनके हिसाब से इससे बच्चा माँ या पिता से बंध जाता है, पर यह सब बकवास है। मुझे लगता है कि माँ-बाप को बच्चे को खूब दुलारना चाहिए, थपथपाना, गुदगुदाना चाहिए।

जीवन से विमुख मनोवैज्ञानिकों की सलाह हमें नहीं माननी चाहिए जो यह कहते हों कि बच्चे को अपने साथ बिस्तर पर सुलाना या उसे गुदगुदाना ठीक नहीं है। इस प्रतिबंध के पीछे का अचेतन विचार यह होता है कि इस तरह की छुअन से बच्चे में कामेच्छाएँ जाग जाएँगी। इसमें खतरा तभी है अगर माता-पिता इतने मनोरोगी हैं कि वे बच्चे को छूने पर मज़ा पाते हैं। लेकिन मैं सामान्य अभिभावकों के लिए लिख रहा हूँ। ऐसे अभिभावकों के लिए नहीं जो अब भी बच्चे हैं।

सवाल : *प्रगतिशील माता-पिता दूसरे बच्चों के लड़ाकापन का क्या करें?*

अगर स्व-नियंत्रित विली के माता-पिता उसे किसी सरकारी स्कूल में भेजते हैं, जहाँ उसे दूसरे बच्चों के आक्रामक व्यवहार और द्वेष का सामना करना पड़ेगा, क्या ऐसे में विली के माता-पिता विली को खुद यह अनुभव करने देंगे कि घृणा और हिंसा से उसे कितनी चोट पहुँचती है?

जब पीटर तीनेक साल का हुआ तो उसके पिता ने मुझे कहा कि वे उसे मुक्केबाज़ी सिखाने वाले हैं, ताकि वह दूसरों की नफरत का सामना कर सके। हम एक तथाकथित ईसाई दुनिया में रहते हैं जहाँ चाँटा लगाने पर दूसरा गाल सामने करना प्रेम और उदारता का नहीं बल्कि कायरता का प्रतीक माना जाता है। ज़ाहिर है कि पीटर के पिता सही कह रहे थे। अगर हम कुछ सकारात्मक कदम नहीं उठाते तो हमारे स्व-नियंत्रित बच्चे कई तरह की परेशानियों का सामना करेंगे।

सवाल : *शारीरिक सज़ा के बारे में आपकी क्या राय है?*

शारीरिक दण्ड खराब है क्योंकि इसमें घृणा और क्रूरता शामिल है। इससे सज़ा देने वाले और पाने वाले में नफरत जन्मती है। यह एक अवचेतन यौन विकृति है। ऐसे समाजों में जहाँ हस्तमैथुन वर्जित है वहाँ हाथ (जिससे हस्तमैथुन किया जाता है) पर सज़ा दी जाती है। लड़कों के स्कूल में जहाँ समलैंगिकता को दबाया जाता है वहाँ नितम्बों (इच्छा के स्थान) पर मारा जाता है। धर्म भीरू इलाकों में शरीर के प्रति घृणा शारीरिक दण्ड को बड़ा लोकप्रिय बनाती है।

दरअसल शारीरिक सज़ा हमेशा ही अपनी भावनाएँ दूसरों पर आरोपित करने का कृत्य होता है। सज़ा देने वाला खुद से नफरत करता है और वही नफरत वह बच्चों की दिशा में आगे बढ़ाता है। जो माँ या बाप बच्चों की ठुकाई करते हैं, वे खुद से नफरत करते हैं। यही कारण है कि वे अपने बच्चों से भी नफरत करते हैं। जब कोई शिक्षक बड़ी कक्षा में डण्डे का इस्तेमाल करता है तो मामला नफरत से ज़्यादा सुविधा का होता है। एक साथ ढेरों बच्चों को अनुशासित करने का यही आसान तरीका है। होना यह चाहिए कि ऐसी बड़ी कक्षाओं पर पाबन्दी लगनी चाहिए जहाँ बच्चे बहुत ज़्यादा हों। अगर स्कूल ऐसे हों जहाँ खेलने कूदने, सीखने या न सीखने की आज़ादी हो तो वहाँ धुनाई स्वतः ही बन्द हो जाएगी। जिन स्कूलों में शिक्षक

अपना काम ठीक से जानते समझते हैं, वहाँ कभी भी शारीरिक सज़ा नहीं दी जाती।

सवाल : *क्या आप सच में यह मानते हैं कि गलत आदतें छुड़ाने का सबसे अच्छा तरीका है उन्हें दुराचार करते रहने दिया जाए?*

दुराचार? किसकी राय में दुराचार? गलत आदतें? कौन-सी गलत आदतें? आप शायद हस्तमैथुन की ओर इशारा कर रहे हैं। किसी आदत को जबरन छुड़ाने की कोशिश उसका इलाज नहीं है। किसी भी आदत को छुड़ाने का एक ही तरीका है- बच्चे को उसकी उस आदत में रुचि को जी लेने देना। जिन बच्चों को हस्तमैथुन करने की छूट होती है वे प्रतिबंध लगे बच्चों की तुलना में इस क्रिया में कहीं कम शामिल होते हैं।

मार-पिटाई से आदतें लम्बी खिंचती हैं। बच्चों के हाथ बाँधने पर वे जीवन भर के लिए विकृत हस्तमैथुन करने वाले बन जाते हैं। तथाकथित बुरी आदतें दरअसल बुरी आदतें नहीं हैं। वे नैसर्गिक क्रियाएँ हैं। तथाकथित बुरी आदतें माता-पिता की अज्ञानता और नफरत का नतीजा होती हैं।

सवाल : *क्या स्कूल में गलत तरीकों से पढ़ाने के असर को घर में सही पालन-पोषण से सुधारा जा सकता है?*

मोटे तौर पर यह बात सही है। घर की आवाज़ स्कूल की आवाज़ से कहीं ज़्यादा दमदार होती है। अगर घर में डर और सज़ा न हो तो बच्चा यह विश्वास नहीं करेगा कि स्कूल में जो कुछ होता है या कहा जाता है वह सच है।

माता-पिता को स्कूल में जो कमियाँ लगती हैं उनके बारे में बच्चों से बातचीत करनी चाहिए। माता-पिता अक्सर खराब से खराब शिक्षकों के प्रति भी एक बेवकूफी भरी निष्ठा जताते हैं।

सवाल : *परी-कथाओं और सान्टा क्लॉज़ आदि के प्रति आपका क्या नज़रिया है?*

बच्चों को परी-कथाएँ बेहद पसन्द हैं। उन्हें समर्थन देने का यही कारण पर्याप्त है। और सान्टा क्लॉज़ की खास चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि बच्चे जल्दी ही उसकी सच्चाई जान जाते हैं। मैं खुद कभी बच्चों को सान्टा की सच्चाई नहीं बताता। अगर मैं यह कोशिश करूँ तो हरेक चार साल का बच्चा मुझ पर हँसे।

सवाल : *आप रचनात्मकता को मिल्कियत से बड़ा मानते हैं। फिर भी जब बच्चा खुद कुछ बनाता है तो वह चीज़ उसकी मिल्कियत बन जाती है। वह उसे ज़रूरत से ज़्यादा मूल्यवान समझने लगता है। इस बारे में आप क्या कहते हैं?*

सच्चाई यह है कि ऐसा होता नहीं है। बच्चा जो खुद बनाता है उसे एक दिन या एक सप्ताह भर के लिए कीमती मानता है। बच्चे में स्वामित्व का भाव बहुत

मज़बूत नहीं होता। वह अपनी नई साइकिल बरसात में भीगते छोड़ सकता है, अपने कपड़े इधर-उधर पटक सकता है। असली मज़ा तो बनाने में है। एक सच्चा कलाकार कृति के समाप्त होने पर उसमें कोई रुचि नहीं लेता। रचनाकार को अपनी कलाकृति कभी बहुत पसन्द नहीं आती क्योंकि उसका लक्ष्य तो श्रेष्ठता है।

सवाल : *आप ऐसे बच्चे का क्या करते हैं, जो किसी भी चीज़ में स्थाई रूप से नहीं लगता? कुछ समय संगीत में फिर नृत्य फिर किसी तीसरी चीज़ में रुचि लेता है?*

ज़िन्दगी इसी का नाम है। अपने समय में मैंने पहले फोटोग्राफी फिर जिल्द बँधाई व लकड़ी का काम और पीतल का काम किया है। जीवन हमारी छोटी-बड़ी रुचियों का मेल है। कई सालों तक मैं स्याही से रेखा चित्र बनाता रहा और तब मुझे पता चला कि मैं दसवें दर्ज़े का कलाकार भी नहीं हूँ। और मैंने यह काम छोड़ दिया।

बच्चे की रुचियाँ विविध होती हैं। वह तरह-तरह की चीज़ें करता है। इसी तरह वह सीखता भी है। हमारे लड़के दिनों दिन तक नावें बनाते हैं। पर अगर कोई विमान चालक स्कूल में आ जाए तो वे नावें अधूरी छोड़ हवाई जहाज़ बनाने लगते हैं। हम कभी बच्चे को अपने काम पूरा करने का सुझाव नहीं देते। अगर उसकी रुचि ही मर गई हो तो काम खत्म करने का दबाव डालना गलत होगा।

सवाल : *क्या बच्चों पर कटाक्ष करना चाहिए? क्या इससे बच्चे में विनोद-प्रियता विकसित करने में मदद मिलेगी?*

जी नहीं, कटाक्ष और विनोद में कोई रिश्ता नहीं है। विनोद प्यार का मामला है और कटाक्ष का रिश्ता नफरत से होता है। बच्चे के प्रति कटाक्ष करने से उसमें हीन भावना जागती है। वह अपमानित महसूस करता है। बेहूदा शिक्षक या माता-पिता ही बच्चे पर ताने कस सकते हैं।

सवाल : *मेरा बच्चा हमेशा पूछता है, मैं क्या करूँ, क्या खेलूँ? मैं क्या जवाब दूँ? क्या बच्चे को खेल सुझाना गलत है?*

अगर बच्चे को नए और रोचक काम करने को दें तो अच्छा है। पर ज़रूरी नहीं है कि वह जो काम खुद के लिए तलाशता है वही उसके लिए सबसे बढ़िया है। इसलिए समरहिल का कोई भी शिक्षक बच्चे को कुछ भी करने की सलाह नहीं देता। हमारे शिक्षक उन बच्चों की मदद करते हैं जो किसी चीज़ को *कैसे किया* या बनाया जाए की तकनीकी जानकारी चाहते हैं।

सवाल : *क्या बच्चे के प्रति अपना प्रेम जताने के लिए उपहार देने चाहिए?*

नहीं। प्रेम को बाहरी प्रदर्शन की ज़रूरत नहीं होती। पर बच्चों को उनके जन्मदिन, क्रिसमस आदि पर तोहफे ज़रूर दिए जाने चाहिए। पर उससे कृतज्ञता की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

सवाल : *मेरा बेटा स्कूल से गोल मारता है। इस बारे में मैं क्या करूँ?*

मेरा अनुमान है कि उसका स्कूल उबाऊ है और आपका बच्चा सक्रिय। अमूमन स्कूल से छुट्टी मारने का मतलब है कि स्कूल ठीक नहीं है। सम्भव है तो बच्चे को ऐसे स्कूल में भेजो जहाँ अधिक आज़ादी, रचनात्मकता और प्रेम हो।

सवाल : *क्या मैं बच्चे को एक गुल्लक दे बचत की अवधारणा सिखाऊँ?*

नहीं। बच्चे आज से आगे नहीं देख सकते। कुछ बड़ा हो जाने पर वह कोई महँगी चीज़ लेना चाहे तो बिना किसी के सिखाए समझाए भी पैसा बचाना सीखेगा।

मैं यह बात ज़ोर देकर कहना चाहूँगा कि बच्चों को अपनी गति से बढ़ने देना चाहिए। कई माता-पिता इस रफ्तार को तेज़ करने की भारी गलती करते हैं। बच्चे की कभी उस काम में कोई मदद न करें जो वह खुद कर सकता है। जब कोई नन्हीं कुर्सी पर चढ़ने की कोशिश करती है, तो स्नेहिल माँ या पिता उसे झट उठाकर कुर्सी पर बिठा देते हैं। ऐसा करने के साथ वे उसकी सबसे बड़ी खुशी भी छीन लेते हैं। वह है किसी बाधा को लाँघने की खुशी।

सवाल : *अगर कोई नौ वर्षीय लड़का मेरी मेज़-कुर्सी पर कीलें ठोकना चाहे तो क्या करूँ?*

उससे हथौड़ा ले लें। उसे बताएँ कि मेज़ कुर्सी आपकी है और उसे दूसरों की चीज़ों को नुकसान पहुँचाने का हक नहीं है। और अगर बच्चा फिर भी यह बन्द न करे तो अपना फर्नीचर बेच दें और उस पैसे से मनोचिकित्सक के पास जाएँ। ताकि वह आपको समझा सके कि आपने अपने बेटे को समस्याग्रस्त कैसे बनाया है। कोई भी प्रसन्न बच्चा फर्नीचर को नुकसान नहीं पहुँचाना चाहेगा, बशर्ते घर में कीलें ठोकने के लिए दूसरी चीज़ें मौजूद हों। इस तरह के नुकसान को रोकने का पहला कदम है बच्चे को लकड़ी के टुकड़े और कीलें ला देना। अगर वह फिर भी आपके फर्नीचर में कीलें ठोकना चाहे तो ज़ाहिर है कि वह आपको नापसन्द करता है आपको नाराज़ करना चाहता है।

सवाल : *ज़िद्दी और मुँह फुलाए रहने वाले बच्चे का क्या किया जाए?*

मैं नहीं जानता। समरहिल में ऐसे नमूने दिखते ही नहीं। जब बच्चे आज़ाद हों तो ज़िद का मौका नहीं आता। बच्चों में नज़र आने वाली ढिठाई की ज़िम्मेदारी हमेशा वयस्कों की होती है। अगर आपका नज़रिया बच्चों के प्रति प्रेम का है तो आप जो चाहे करें वह ज़िद्दी नहीं बनेगा। ज़िद्दी बच्चों की हमेशा कोई न कोई शिकायत होती है। ज़िद की स्थिति में मेरा काम होगा उसकी शिकायत की जड़ें तलाशना। मेरा अनुमान है कि तहकीकात करने पर पता चलेगा कि उसे लगता यह है कि उसके साथ अन्याय हुआ है।

सवाल : *मैं अपने छह साल के बच्चे का क्या करूँ जो अश्लील चित्र बनाता है?*

उसे ऐसा करने दें। पर साथ ही अपने घर की सफाई करें। क्योंकि अगर घर में कहीं अश्लीलता है तो उसके स्त्रोत स्वयं आप हैं। किसी भी छह साल के बच्चे में स्वाभाविक अश्लीलता नहीं होती। उसके चित्रों में अगर आपको अश्लीलता नज़र आती है तो दरअसल यह आपकी ही अश्लील जीवन दृष्टि है। मेरा अनुमान है कि जिसे आप अश्लील चित्र कह रहे हैं उसका ताल्लुक पाखाने जाने या गुप्तांगों के चित्रण से होगा। बच्चे को आप अच्छे-बुरे का विचार थोपे बिना, स्वाभाविक मानकर ऐसा करने दें। यह बचकानी और अस्थाई रुचि है, जैसी तमाम अन्य बचकानी रुचियाँ होती हैं। वह इस दौर से जल्दी ही बाहर निकल जाएगा।

सवाल : *मेरा नन्हा इतना झूठ क्यों बोलता है?*

सम्भव है वह अपने माता-पिता की ही नकल कर रहा है।

सवाल : *अगर पाँच और सात साल के भाई-बहन लगातार झगड़ते रहें तो उन्हें रोकने का क्या रास्ता अपनाऊँ? वैसे वे एक दूसरे से बहुत प्यार भी करते हैं।*

सच में? क्या एक को माँ का प्यार दूसरे की तुलना में ज़्यादा तो नहीं मिल रहा? क्या वे माँ-पापा की नकल तो नहीं कर रहे हैं? क्या उनके मन में अपने शरीर को लेकर किसी किस्म का अपराध-बोध तो नहीं है? क्या उन्हें सज़ा दी जाती है? अगर इन तमाम सवालों का जवाब नकारात्मक है, तो यह लड़ाई झगड़ा अपनी सत्ता जमाने की स्वाभाविक लड़ाई है।

पर भाई-बहन को ऐसे बच्चों के साथ भी रहना चाहिए जिनके प्रति उनका भावनात्मक जुड़ाव नहीं है। बच्चे को दूसरों से खुद की तुलना करने का मौका मिलना ही चाहिए। वह अपने भाइयों या बहनों को मानदण्ड मानकर खुद का आकलन नहीं कर सकता। ऐसा करने पर तमाम तरह के भावनात्मक घटक भी उस रिश्ते में जुड़ जाते हैं। जैसे जलन, पक्षपात आदि।

सवाल : *अपने बच्चे को अँगूठा चूसने से कैसे रोकूँ?*

कोशिश भी न करें। अगर आप सफल होते हैं तो आप उसे अँगूठा चूसने के पहले की स्थिति में धकेल चुके होंगे। इससे फर्क क्या पड़ता है? तमाम कार्यकुशल लोग एक समय अँगूठा चूसा करते थे।

अँगूठा चूसना बच्चे की स्तनपान में रुचि के अब तक बने रहने का सूचक है। ज़ाहिर है आठ साल के बच्चे को आप स्तनपान तो नहीं करा सकते। आपको उसकी रचनात्मक रुचि को बाँधने वाले तमाम रास्ते सुझाने होंगे। पर ज़रूरी नहीं है कि इससे यह आदत छूट ही जाए। मेरे यहाँ कई बेहद रचनात्मक छात्र रहे हैं जो परिपक्व बनने की उम्र तक अँगूठा चूसते रहे। इस बात पर बच्चे को न ठोकें।

सवाल : *मेरा दो साल का बच्चा हमेशा खिलौने क्यों तोड़ता है?*

शायद इसलिए क्योंकि वह समझदार है। खिलौने अमूमन बिल्कुल रचनात्मक नहीं होते। उसे तोड़कर वह यह जानना चाहता है कि उसके अन्दर क्या है?

पर मैं पूरी स्थिति से वाकिफ भी नहीं हूँ। अगर बच्चे को मार-पीटकर, उसे अच्छे-बुरे के उपदेश देकर खुद से नफरत करने वाला बच्चा बनाया जा रहा है तो यह बिलकुल स्वाभाविक है कि उसके सामने जो कुछ आएगा वह उसे ज़रूर तोड़ेगा।

सवाल : *बच्चा अगर बहुत फैलावड़ा करता है तो उसे कैसे सुधारा जाए?*

इसे सुधारना क्यों ज़रूरी है? अधिकांश रचनात्मक लोग सफाई पसन्द नहीं होते। अमूमन जो लोग नीरस और निरुत्साही होते हैं उनके ही कमरे चकाचक साफ होते हैं। वे सफाई के आदर्श सामने रखते हैं। मैंने पाया है कि सामान्यतः नौ साल तक के बच्चे सफाई से रहते हैं। नौ से पन्द्रह साल की उम्र में वे ही बच्चे सब कुछ फैलाते हैं। इस उम्र के लड़के लड़कियों को गन्दगी और फैलावड़ा नज़र ही नहीं आता। इस दौर को पार करने के बाद वे फिर से सफाई पसन्द बन जाते हैं।

सवाल : *हमारा बारह साल का बेटा खाने की मेज़ पर आने के पहले हाथ मुँह नहीं धोता। हम क्या करें?*

साफ-सफाई पर इतना महत्व देने की क्या ज़रूरत है? क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि बार-बार हाथ-मुँह धोना भी किसी बात का प्रतीक हो सकता है? कहीं ऐसा तो नहीं कि उसके साफ रहने के प्रति आपका सरोकार इस वजह से हो कि आप उसे नैतिक रूप से गन्दा मान रहे हैं? बच्चे के पीछे न पड़ें। मेरी बात पर विश्वास करें कि गन्दगी को लेकर यह ग्रन्थि व्यक्तिगत रुचि पर आधारित होती है। अगर आप खुद को गन्दा महसूस करते हैं, तभी बाहरी सफाई पर इतना ज़ोर डालने की वृत्ति बनती है। अगर यह ज़रूरी हो कि जब वह खाने की मेज़ पर साफ चिकना बनकर ही आए (मेरा मतलब है कि जब कोई बुआ या चाची के साथ खाने बैठना हो जो आपके बेटे को अपनी वारिस बनाने वाली हों) तो सबसे अच्छा तरीका होगा कि हाथ-मुँह धोने पर बन्दिश लगा दें।

सवाल : *हम अपने पन्द्रह महीने के बच्चे को चूल्हे से दूर कैसे रखें?*

चुल्हे के सामने आड़ लगाएँ। पर उसे उसकी सच्चाई भी जान लेने दें। उसकी अँगुलियाँ अगर हल्के से जलेंगी तो वह दूर रहना सीख जाएगा।

सवाल : *मैं अपनी बेटी को ज़रा भी टोकूँ तो आप कहेंगे कि मैं उससे नफरत करती हूँ, पर मैं ऐसा नहीं करती।*

शायद आप खुद से नफरत करती हों। छोटी-छोटी चीज़ें बड़ी बातों का प्रतीक होती हैं। अगर आपको छोटी बातों पर शिकायत करने की ज़रूरत लगती है तो

आप ज़रूर दुखी महिला होंगी।

सवाल : *बच्चों को किस उम्र में शराब पीने की छूट देनी चाहिए?*

इस बारे में मैं खुद अनिश्चित हूँ। शराब को लेकर मेरी एक निजी ग्रन्थि है। मुझे बीयर पसन्द है। कभी-कभार व्हिस्की भी लेता हूँ। मुझे दूसरी तरह की शराबें भी पसन्द हैं। इसलिए मैं पूर्ण नशाबन्दी का समर्थक तो नहीं हूँ। फिर भी मैं शराब से डरता हूँ। अपनी जवानी में मैंने शराब की तबाही ज़रूर देखी है। यही कारण है कि मैं बच्चों को शराब देना पसन्द नहीं करता।

मेरी बिटिया ने छुटपन में मेरी बियर और व्हिस्की में रुचि दिखाई। मैंने उसे घूँट भरने दिए। बीयर का घूँट ले उसने मुँह बिचकाया और कहा 'बड़ा खराब स्वाद है।' पर व्हिस्की के बाद कहा 'बढ़िया', पर और नहीं माँगी। डेनमार्क में मैंने स्व-निर्देशित बच्चों को एक बार देसी शराब माँगते देखा। उन्हें एक-एक गिलास शराब दी गई। उन्होंने आखिरी बूँद तक पी डाली पर आगे नहीं माँगी। मुझे एक किसान की याद आती है। वह ठण्डे बरसाती दिनों में अपने बच्चों को लेने एक खुली घोड़ा गाड़ी में आया करता था। वह अपने साथ व्हिस्की की बोतल रखता था। हरेक बच्चे को एक-एक घूँट पिलाता था। मेरे पिता यह देख भविष्यवाणी करते थे, "देखना बाद में सब के सब पियक्कड़ बनेंगे।" बड़े होने पर उनमें से एक ने भी शराब को हाथ नहीं लगाया।

देर-सबेर सभी बच्चों के सामने शराब का सवाल उठता है। केवल वे ही लोग शराबी बनते हैं जो अपने जीवन से निपट नहीं पाते। हमारे पूर्व छात्र जब भी समरहिल आते हैं, स्थानीय शराबखाने (पब) में जाकर हमेशा हमप्याला बनते हैं। पर आज तक मैंने नहीं सुना कि उनमें से एक ने भी ज़्यादा पी ली हो।

बिल्कुल अतार्किक होते हुए भी मैं स्कूल में शराब की अनुमति नहीं देता। ज़ाहिर है कि कुछ लोग कहेंगे कि बच्चों को खुद शराब का अनुभव भी लेने देना चाहिए।

सवाल : *जो बच्चे नहीं खाते उनका आप क्या करते हैं?*

पता नहीं। ऐसा कोई बच्चा समरहिल तो आया नहीं। पर अगर कोई ऐसा करता तो मैं समझता कि बच्चा अपने माँ-बाप को अपनी ढिठाई जताना चाहता है। कुछ बच्चे इसलिए समरहिल भेजे ज़रूर गए थे कि वे खाना नहीं खाते। पर यहाँ उन्होंने फाके नहीं किए।

कुछ पेचीदा मामलों में इस सम्भावना पर भी शायद विचार करूँ कि कहीं बच्चा भावनात्मक रूप से अभी भी स्तनपान के स्तर पर तो नहीं है। और ऐसा लगे तो मैं उसे बोतल से दूध पिलाने का सुझाव दूँगा। मुझे यह भी लगेगा कि शायद माँ-बाप खाने-पीने के मामले में बच्चे के पीछे पड़ते होंगे। सम्भव है कि उसे जो नापसन्द हो वह खाने पर बच्चे को मजबूर किया गया हो।

सेक्स के बारे में

सवाल : *अश्लील साहित्य (पोर्नोग्राफी) क्या है?*

इस प्रश्न का जवाब देना आसान नहीं है। दरअसल मुझे अश्लीलता को यौन तथा अन्य प्राकृतिक कार्यों के प्रति एक अश्लील दृष्टिकोण, एक ऐसे अपराध-बोध के रूप में परिभाषित करना चाहिए जो दमित स्कूली छात्रों में जागता है। यही उन्हें अन्धेरे कोनों में ठिठियाने और अश्लील शब्द दीवारों पर लिखने को प्रेरित करता है।

ज़्यादातर यौन किस्से अश्लील होते हैं। उन्हें कहने वाला खुद को यह समझा लेता है कि अच्छा किस्सा उसमें निहित गन्दगी से नहीं, बल्कि किस्से को कहने की कला में, उसके हास्य में निहित होती है। अन्य पुरुषों की तरह मैंने भी हज़ारों यौन किस्से सुने और सुनाए हैं। पर पलटकर सोचने पर लगता है कि उनमें से एक-दो ही ऐसे होंगे जो वास्तव में सुनाने लायक थे।

मैंने पाया है कि यौन किस्से सुनाने वाला व्यक्ति अक्सर वह होता है जिसका यौन-जीवन सन्तोषजनक न हो। यह कहना गलत होगा कि हरेक यौन कथा दमन का नतीजा है। क्योंकि यह तो ऐसी बात होगी कि हास्य ही दमन का नतीजा है। जब चार्ली चैपलिन को मैंने बेदिंग सूट में दो इंच पानी में गोता लगाते देखा तो मैं ठहाके मारकर हँसा, पर गोता लगाने को लेकर मेरी कोई कुण्ठा नहीं है। हास्य तो हरेक हास्यास्पद घटना में होता है। फिर चाहे घटना का रिश्ता यौन से हो या किसी दूसरी चीज़ से।

वर्तमान समाज में हममें से कोई भी एक स्पष्ट रेखा खींचकर यह नहीं कह सकता कि यह अश्लील है और यह नहीं। व्यावसायिक यात्रियों के कहलाए जाने वाले किस्सों में से कई मुझे अपने छात्र जीवन में अच्छे लगा करते थे। पर आज मैं सोचता हूँ कि उनमें से निन्यानवे प्रतिशत भौंडे और अश्लील थे।

अश्लील साहित्य कमोबेश यौन तथा अपराध-बोध का मिला-जुला रूप ही है। जो सुनने वाले विदूषक की सांकेतिक बातों पर ठहाके लगाते हैं, दरअसल ऐसे लोग होते हैं जिनका यौन के प्रति दृष्टिकोण ही रोगग्रस्त होता है। बच्चों को घटिया, गन्दी यौन कथाएँ सुनाने वाले वयस्क विकास के उसी चरण में अटके हुए लोग होते हैं।

अगर सभी बच्चे मुक्त हों और यौन के प्रति उनका स्वस्थ अभिमुखीकरण किया

गया हो तो वयस्कों के अश्लील किस्सों का बाज़ार ही ठप्प हो जाए। पर क्योंकि लाखों-करोड़ों बच्चे यौन के अज्ञानी हैं, अपराध-बोध से ग्रसित हैं, अश्लील वयस्कों को यह अवसर मिलता है कि वे उनकी अज्ञानता और अपराध-बोध को और बढ़ाते चलें।

सवाल : *क्या कुछ खास प्रकार के यौन आचरण अनुचित होते हैं?*

अगर यौन क्रिया में हिस्सा लेने वाले दोनों व्यक्तियों को उसमें आनन्द का अनुभव हो तो हर प्रकार का यौन आचरण उचित ही कहलाएगा। यौन असामान्य व कुत्सित तब ही है जब उसमें दोनों सहभागियों को आनन्द की अनुभूति नहीं होती।

विवाह को शालीन यौन अर्थात नियंत्रित यौन के साथ जोड़ा जाता है। अगर उन युवक-युवतियों को, जो अपने माता-पिता के यौन जीवन को स्वीकार करने लगे हों, यह पता चले कि उनके माता-पिता भी कामक्रीड़ा का आनन्द लेते हैं तो शायद उन्हें गहरा धक्का लगे। समाज के सत्ता स्तम्भों ने कामक्रीड़ा को अश्लीलता का दर्ज़ा दे डाला है। जो यौनक्रीड़ा से भयभीत हैं उनकी प्रतिक्रिया भी कुछ ऐसी ही है। अगर वे कामक्रीड़ा करना भी चाहें तो भी शायद वे आक्रामकता का अनुभव करें। ऐसी आक्रामकता जो निषिद्ध या वर्जित कार्य करने की लोलुपता से जन्मी हो।

जब यौन कोमल हो, प्रेम में नहाया हो तो कुछ भी अनुचित नहीं होता।

सवाल : *बच्चे हस्तमैथुन क्यों करते हैं? क्या उन्हें रोका जाना चाहिए?*

हमें सबसे पहले शैशवावस्था के हस्तमैथुन और वयस्कों के हस्तमैथुन में अन्तर करना पड़ेगा। बच्चों में यह क्रिया वास्तव में हस्तमैथुन होती ही नहीं है। इसका जन्म जिज्ञासा में होता है। बच्चा अपने हाथ, नाक, उँगलियों को तलाशता है। उस वक्त माताएँ आल्हादित होती हैं। पर जब यही वह अपने गुप्तांग के साथ करता है तो माँ उसका हाथ तेज़ी से झटकाती है। नतीजा यह होता है कि बच्चे को अपने शरीर का सबसे रोचक हिस्सा यौनांग ही लगने लगता है।

शिशु का सर्वाधिक उत्तेजना वाला क्षेत्र होता है उसका मुँह। यही कारण है कि जिन बच्चों पर हस्तमैथुन को लेकर नैतिक वर्जनाएँ नहीं थोपी जातीं वे अपने यौनांग में रुचि भी कम ही लेते हैं। अगर किसी छोटे बच्चे को हस्तमैथुन की आदत पड़ चुकी हो तो इसका इलाज इस आदत के अनुमोदन द्वारा ही किया जा सकता है। ताकि जो वर्जित है उसे करने की बाध्यता उसमें न जागे।

उन बड़े बच्चों में भी जो वयःसंधि की अवस्था तक पहुँच चुके हैं, अनुमोदन द्वारा इस आदत में कमी लाई जा सकती है। पर यह याद रखना चाहिए कि यौनेच्छा को भी अभिव्यक्ति का रास्ता चाहिए। आजकल विवाह देर से होते हैं। जब तक व्यक्ति घर बसाने लायक न हो जाए विवाह सम्भव नहीं होता। ऐसे में यौन

परिपक्व युवाओं के समक्ष दो ही रास्ते होते हैं, हस्तमैथुन या गोपनीय यौन सम्बंध। नैतिकता की दुहाई देने वाले इन दोनों ही रास्तों की आलोचना करते हैं, पर कोई विकल्प भी प्रस्तुत नहीं कर पाते। वे पवित्रता के समर्थक हैं जो वास्तव में शरीर को सूली पर चढ़ाने के ही समान है। ऐसा त्याग सन्यासी कर सकते हैं पर साधारण लोगों को यौन इच्छाओं की अभिव्यक्ति का कोई मार्ग चाहिए ही होता है।

जब तक विवाह को उसके आर्थिक पक्ष से स्वतंत्र नहीं किया जाता, हस्तमैथुन एक भारी समस्या बनी रहेगी। हमारे चलचित्र, उपन्यास आदि युवा वर्ग में काम भावनाएँ जगाते हैं। और क्योंकि सहज यौन सम्बंधों की युवाओं को अनुमति नहीं है वे हस्तमैथुन की दिशा में बढ़ने को मजबूर होते हैं। इस जानकारी से कि दरअसल सभी लोग हस्तमैथुन करते हैं, खास मदद नहीं मिलती। ऐसे में युवक-युवती के लिए साथ-साथ रहने की, विवाह समान व्यवस्था ही अकेला उपाय लगता है। पर जब तक यौन के साथ पाप का विचार जुड़ा है यह व्यवस्था एक सामाजिक समाधान का रूप नहीं ले सकती।

फिर से प्रश्न की ओर लौटें : बच्चे से कहें कि हस्तमैथुन पापाचार नहीं है। अगर आप बच्चे को इसके परिणामों के विषय में झूठ बोल चुके हैं कि वह ऐसा करने पर रोगी या पागल बन सकता है, तो हिम्मत जुटाकर उससे साफ कहें कि आपने झूठ बोला था। केवल तब ही आपके बच्चे के लिए हस्तमैथुन का महत्व, उसमें रुचि कम हो पाएगी।

सवाल : *मेरी बिटिया बारह साल की है और घटिया, अश्लील किताबें पढ़ती है। मैं इस विषय में क्या करूँ?*

अगर खरीदने लायक पैसे मेरे पास होते तो मैं उसे ऐसी किताबें खुद खरीदकर देता। तब वह ऐसे घासलेटी साहित्य में अपनी रुचि को पूरी तरह जी लेती।

पर उसकी अश्लीलता में रुचि क्यों है? क्या वह यौन की उस सच्चाई को तलाश रही है, जिसके बारे में आपने उसे खुलकर कुछ बताया नहीं है?

सवाल : *क्या आप एक चौदह साल के बच्चे को अश्लील किस्से सुनाने पर डाँटेंगे?*

कतई नहीं। मैं उसे बेहतर किस्से सुनाऊँगा। अधिकतर वयस्क यौन किस्से सुनाते हैं। मुझे कुछ अच्छे किस्से एक पादरी से मिले थे। यौन में रुचि की निन्दा करना ढकोसला है, यह महज़ पाखण्ड है।

यौन किस्से दरअसल यौन दमन का सीधा परिणाम हैं। पाप के सिद्धान्त से युवावर्ग में जो आवेग उपजता है, उसे बाहर निकालने का एक तरीका है। आज़ादी के वातावरण में अश्लील किस्से अपनी प्राकृतिक मौत मरते हैं। यानी *लगभग* मर जाते हैं पर पूरी तरह नहीं। पूरी तरह इसलिए नहीं मरते क्योंकि यौन में मानव की एक बुनियादी रुचि है।

सवाल : *यौन शिक्षा किसे देनी चाहिए शिक्षकों को या माता-पिता को?*
ज़ाहिर है, माता-पिता को।

धर्म के विषय पर

सवाल : *आप धार्मिक शिक्षा के विरुद्ध क्यों हैं?*

बच्चों के साथ काम करने के लम्बे अनुभव में मैंने पाया है कि उन बच्चों में मनोरोग के लक्षण नज़र आते हैं जिन्हें कठोर धार्मिक वातावरण में पाला-पोसा गया है। कठोर धार्मिक पालन-पोषण यौन भावनाओं को अनावश्यक महत्व देता है।

धार्मिक शिक्षा बालमानस पर इसलिए नुकसान पहुँचाती है क्योंकि अधिकांश धार्मिक लोग मूल पाप के विचार को स्वीकार करते हैं। यहूदी और ईसाई धर्म में शरीर के प्रति नफरत का नज़रिया हावी है। परम्परागत ईसाई धर्म बच्चे के मन में स्वयं के प्रति एक असन्तोष का भाव भरता है। स्कॉटलैण्ड में, जहाँ मेरा बचपन बीता, मैं कम उम्र से ही नरक की आग के खतरे से डरता था।

एक बार एक मध्यमवर्गीय परिवार का नौ साल का लड़का समरहिल आया। उसके साथ मेरी जो बातचीत हुई, वह कुछ यूँ थीः

''खुदा कौन है?''

''यह नहीं पता। पर अगर कोई अच्छा बच्चा बने तो वह स्वर्ग जाता है और खराब हो तो नरक।''

''नरक कैसी जगह है?''

''बिल्कुल अन्धेरी। वहाँ शैतान है। शैतान बहुत खराब है।''

''अच्छा, और नरक में कौन जाता है?''

''खराब लोग जो गालियाँ बकें या लोगों का खून करें।''

बच्चों को इस तरह की बेवकूफी भरी बातें सिखाने से हम कब बाज़ आएँगे। गाली-गलौज और खून क्या बराबर से गुनाह हैं जिसकी ऐसी सज़ा हमें मिलेगी ही?

जब मैंने उस बच्चे से कहा कि वह खुदा का वर्णन करे तो उसने बताया कि उसे यह पता ही नहीं कि खुदा होता कैसा है। पर वह खुदा से प्यार ज़रूर करता है। उसने कहा कि वह खुदा से प्यार करता है, ऐसे खुदा से जिसका वह न तो वर्णन कर सका, न जिसे उसने कभी देखा था। ज़ाहिर है कि वह केवल सुनी-सुनाई बात कर रहा था। सच्चाई यह है कि वह खुदा से *खौफ* खाता है।

सवाल : *क्या आप ईसा मसीह में विश्वास करते हैं?*

कुछ साल पहले समरहिल में एक गृहस्थ उपदेशक का बच्चा दाखिल हुआ। इतवार की रात जब हम सब नाच गाना कर रहे थे, पादरी ने सिर हिलाते हुए कहा, ''नील इतनी खूबसूरत जगह है आपकी। पर आप सब काफिरों के समान क्यों हैं?''

मेरा जवाब था, ''उपदेशक जी आप उम्र भर साबुन के खाली डिब्बों पर खड़े होकर लोगों को उपदेश देते रहे हैं कि उनका उद्धार कैसे होगा। मुक्ति की *बात करते हैं*। हम मुक्ति में *जीते हैं*।''

जी नहीं, हम ज़ाहिराना तौर पर इसाई धर्म का पालन नहीं करते। पर अगर व्यापक दृष्टि से देखें तो समूचे इंग्लैण्ड में शायद समरहिल ही अकेला स्कूल है जो बच्चों से ऐसा व्यवहार करता है, ईसा मसीह जिसकी तारीफ करते। दक्षिण अफ्रीका के कैल्विनिस्ट सम्प्रदाय के पादरी अपने बच्चों को पीटते हैं। ठीक उसी तरह जैसे रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के पादरी बच्चों को पीटते हैं। हम समरहिल में बच्चों को प्यार और प्रशंसा देते हैं।

सवाल : *बच्चों को खुदा के बारे में पहले विचार कैसे दिए जाएँ?*

खुदा है कौन? मैं तो जानता नहीं। ईश्वर का मतलब मेरी नज़र में है हम सबमें बसी अच्छाईयाँ। अगर आप किसी ऐसी चीज़ के बारे में बच्चों को बताते हैं, जिसके बारे में आप खुद भी अस्पष्ट हैं तो आप उसे फायदा नहीं नुकसान पहुँचा रहे होंगे।

सवाल : *क्या कसम खाना भगवान के नाम का गलत इस्तेमाल है?*

बच्चों की कसमों में सेक्स या शारीरिक क्रियाएँ होती हैं - भगवान नहीं। एक ऐसे धार्मिक व्यक्ति से बहस करना मुश्किल है जो भगवान को एक आराध्य के रूप में पेश करता है और बाईबल को सम्पूर्ण सत्य मानकर चलता है। अगर भगवान को भय की बजाए प्रेम की शय के रूप में पेश किया जाता तो कोई भी भगवान के नाम का गलत इस्तेमाल नहीं करेगा। भगवान की निन्दा करने का उपचार है हमारे भगवान को प्रेम भरा बनाना।

मनोविज्ञान के विषय में

सवाल : *क्या यह अवश्यम्भावी नहीं कि हरेक इन्सान बड़ा होकर मनोरोगी बने?*

फ्रॉयड की शोध से जो सवाल हमारे सामने उभरे हैं उनका जवाब है स्व-निर्देशन। हरेक मनोविश्लेषक को यह तो लगता ही होगा कि उसके रोगियों को विश्लेषण की ज़रूरत ही नहीं पड़ती अगर वे बचपन से स्व-निर्देशित होते। सम्भव है कि मेरी स्व-निर्देशित बिटिया को ही किसी दिन मनोविश्लेषक के पास जाकर यह कहना

पड़े, ''डॉक्टर साब मुझे इलाज की ज़रूरत है। मेरे मन में अपने पिता को लेकर एक ग्रन्थि है। मैं इस बात से परेशान हो चुकी हूँ कि मेरा परिचय हमेशा ए.एस.नील की पुत्री के रूप में दिया जाता है। लोग मुझसे हमेशा बड़ी-बड़ी उम्मीदें रखते हैं। वे सोचते हैं कि मुझमें कोई कमियाँ नहीं होनी चाहिए। बुजुर्गवार खुद तो चल बसे पर अपनी किताबों में मेरा अनावश्यक प्रदर्शन कर गए। मैं उन्हें कभी माफ नहीं कर सकती।'' कौन जाने।

सवाल : *खुद के प्रति नफरत किस तरह ज़ाहिर होती है?*

बच्चों में स्वयं के प्रति नफरत उनके असामाजिक व्यवहार में झलकती है। लड़ना झगड़ना, विद्वेष, बदमिज़ाजी, तोड़-फोड़ करने की वृत्ति। खुद के प्रति नफरत हमेशा दूसरों के प्रति नफरत में तब्दील होकर नज़र आती है।

एक अवैध बच्चे की माँ दूसरों में अनैतिक व्यवहार का लांछन लगा सकती है। अपनी कमज़ोरी पर काबू नहीं पा सकने वाले शिक्षक बच्चों पर बेंत जमाएँगे। ताउम्र विवाह न करने वाले और अपनी स्वाभाविक यौन भावनाओं को दबाने वाले कड़वाहट और दूसरों के बारे में किस्से कहानियाँ ही फैलाएँगे। हर तरह की नफरत दरअसल खुद के प्रति नफरत ही है।

यहूदियों पर वे लोग ही अत्याचार करते हैं जो खुद से नफरत करते हैं। यही बात अश्वेतों पर भी लागू होती है। अर्द्धश्वेत या यूरेशियाई लोग अश्वेतों के प्रति श्वेतों की तुलना में कहीं ज़्यादा असहिष्णु होते हैं।

सवाल : *जब आप बच्चों का पक्ष लेते हैं तो क्या आप दरअसल उन पर अपनी मिल्कियत नहीं जमाना चाहते?*

यह सच हो तो भी क्या? जो मैं करता हूँ अगर बच्चों को उससे मदद मिलती हो, तो मेरे उद्देश्य से फर्क क्या पड़ता है?

सवाल : *मैं एक आठ साल की बच्ची को जानती हूँ जो अपनी माँ की मौजूदगी में हकलाती है। ऐसा क्यों?*

हकलाना अक्सर कहने के पहले कुछ समय पाने की कोशिश होती है ताकि खुद को बचाया जा सके। जब मुझसे कोई कठिन सवाल पूछा जाता है तो मैं अपने अज्ञान को छुपाने की कोशिश में शरुआत में कहता हूँ, ''हाँ, अरे, हूँ''। लगता है कि बच्ची अपनी माँ से डरती है। मेरा अनुमान है कि उसकी माँ उसे हमेशा नैतिकता का उपदेश छाँटती होगी।

मैंने पाया कि एक बच्चे की हकलाहट का कारण था अपनी हस्तमैथुन की बात को छुपाने की कोशिश। उसमें अपने इस कृत्य को लेकर अपराध-बोध था। इसका

उपचार उसे इस बात से आश्वस्त करना था कि हस्तमैथुन पाप नहीं है। पर हकलाने के मनोविज्ञान के विषय में पर्याप्त शोध होना अभी बाकी है।

सवाल : *क्या पति पत्नी का और पत्नी पति का मनोविश्लेषण कर सकते हैं?*

किसी भी सम्बंधी को ऐसा नहीं करने देना चाहिए। मुझे कुछ ऐसे उदाहरण पता हैं जिनमें पति या पत्नी में ऐसी कोशिश की गई। पर ऐसे विश्लेषण हमेशा असफल रहे हैं और कहीं तो नुकसानदायक भी। किसी भी पालक को खुद अपने बच्चे का मनोविश्लेषण कभी नहीं करना चाहिए, तरीका चाहे कोई भी हो।

सवाल : *बच्चों को पढ़ाने वाले कई कठोर शिक्षकों के प्रति माता पिता क्यों इतनी कृतज्ञता जताते हैं?*

सवाल अहंकार से जुड़ा है। जो व्यक्ति खड़ा होकर कहता है, ''मुझे बचपन में खूब ठोका गया था। देखा उसका कितना फायदा हुआ'' दरअसल यह कह रहा होता है, ''मेरी ओर देखो। मैं आज एक सफल इन्सान हूँ। बचपन में पिटने के बावजूद या शायद उसी वजह से।''

गुलाम को मुक्ति की चाह नहीं होती। वह तो मुक्ति को समझकर उसका आनन्द भी नहीं ले पाता है। बाहरी अनुशासन लोगों को गुलाम, नीच और स्व-निन्दक बनाता है। वह अपनी ज़ंजीरों को प्रेम करते हैं।

सवाल : *क्या सामान्य शिक्षक भी मनोविश्लेषण कर सकते हैं?*

नहीं ऐसा नहीं किया जा सकता। शिक्षक को पहले खुद अपना ही विश्लेषण करवाना होगा। आखिर उसका अचेतन मानस भी तो उसके लिए अजाना क्षेत्र है। वह किसी बच्चे की अन्तरात्मा के अनजाने इलाके को किस तरह तलाश सकेगा।

सीखने के विषय में

सवाल : *आप लैटिन और गणित के विरुद्ध हैं। बच्चों के मस्तिष्क के विकास के बारे में आपके क्या सुझाव हैं?*

मैं तो यह जानता ही नहीं कि 'दिमाग' दरअसल है क्या? अगर गणित या लैटिन के विशेषज्ञों के दिमाग महान होते हैं, तो इसकी जानकारी कम से कम मुझे नहीं रही है।

सवाल : *क्या उच्च गणित के प्रति आपकी नापसन्दगी का असर समरहिल के बच्चों पर पड़ता हैं? क्या वे इस वजह से गणित नहीं पढ़ते?*

मैं बच्चों से कभी गणित पर बात नहीं करता। मुझे गणित इस कदर पसन्द है कि मैं अक्सर ज्यामिति या बीजगणित की समस्याएँ मज़ा लेने के लिए हल करता हूँ।

मेरा कहना सिर्फ इतना है कि बच्चों के लिए गणित का अध्ययन बेहद अमूर्त बना दिया गया है। अमूमन सभी बच्चे गणित से नफरत करते हैं। आप किसी भी बच्चे से पूछें तो वह दो सेब या दो जामुन तो समझता है, पर बिरले ही एक्स सेब की बात समझते हैं।

साथ ही गणित से मेरी जो आपत्ति है वही लैटिन और ग्रीक भाषाओं से भी है। उन बच्चों को द्विघाती समीकरण क्या पढ़ाई जाएँ जो बाद में गाड़ियाँ सुधारने या मोज़े बेचने का काम करने वाले हों। यह तो पागलपन है।

सवाल : *क्या आप गृहकार्य में विश्वास करते हैं?*

मैं तो कक्षा कार्य को भी तब तक गैरज़रूरी मानता हूँ, जब तक बच्चा उसे खुद अपनी इच्छा से न चुने। गृहकार्य की लत शर्मनाक है। बच्चे उससे नफरत करते हैं। अपने आप में उसे खत्म करने का यही एक कारण काफी है।

सवाल : *कुछ बच्चे केवल तब ही क्यों सीखते हैं, जब उन्हें पीटा जाता है?*

मुझे लगता है कि अगर मुझे पिटाई का डर हो तो मैं भी कुरान या गीता का पाठ करना सीख जाऊँ। पर इसका एक असर यह होगा कि मैं ताउम्र गीता या कुरान से नफरत करूँगा और खुद भी बच्चों को मारने वाला बनूँगा।

सवाल : *एक शिक्षिका को उस वक्त क्या करना चाहिए जब कक्षा में पढ़ाते वक्त एक लड़का अपनी पेंसिल से खेल रहा हो?*

पेंसिल यानी शिश्न। बच्चे के लिए शिश्न से खेलना निषिद्ध है। उपचार-अभिभावकों से कहें कि वे हस्तमैथुन पर से प्रतिबंध हटा दें।

एकलव्य : एक परिचय

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है। यह पिछले कई वर्षों से शिक्षा एवं जनविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही है। एकलव्य की गतिविधियाँ स्कूल व स्कूल के बाहर दोनों क्षेत्रों में हैं।

एकलव्य का मुख्य उद्देश्य है ऐसी शिक्षा जो बच्चे व उसके पर्यावरण से जुड़ी हो, जो खेल, गतिविधि व सृजनात्मक पहलुओं पर आधारित हो। अपने काम के दौरान हमने पाया कि स्कूली प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जब बच्चों को स्कूली समय के बाद, स्कूल से बाहर और घर में भी रचनात्मक गतिविधियों के साधन उपलब्ध हों। इन साधनों में किताबें तथा पत्रिकाएँ एक अहम हिस्सा हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमने अपने काम का विस्तार प्रकाशन के क्षेत्र में भी किया है। बच्चों की पत्रिका **चकमक** के अलावा **स्रोत** (विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर) तथा **संदर्भ** (शैक्षिक पत्रिका) हमारे नियमित प्रकाशन हैं। शिक्षा, जनविज्ञान, बच्चों के लिए सृजनात्मक गतिविधियों के अलावा विकास के व्यापक मुद्दों से जुड़ी किताबें, पुस्तिकाएँ, सामग्री आदि भी एकलव्य ने विकसित एवं प्रकाशित की हैं।

वर्तमान में एकलव्य मध्यप्रदेश में भोपाल, होशंगाबाद, पिपरिया, देवास, इन्दौर व शाहपुर (बैतूल) में स्थित केन्द्रों तथा परासिया (छिंदवाड़ा), हरदा व उज्जैन में स्थित उपकेन्द्रों के माध्यम से कार्यरत है।